BBI

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

जीव विज्ञान (प्राणी विज्ञान एवं वनस्पति विज्ञान)

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

जीव विज्ञान (विज्ञान एवं वनस्पति विज्ञान -प्राणि)

इकाई संख्या		पृष्ठ संख्या
1.	परिचयात्मक प्राणि विज्ञान – (Introductory Zoology)	8–25
2.	कोशिका संरचना एवं कार्यिकी (Cell Structure and Function)	26–57
3.	वर्गिकी एवं प्राणियों का वर्गीकरण (Taxonomy and Classification of Animals)	58–92
4.	जैव प्रक्रियाएँ	93–151
5.	परिस्थितिकी एवं जैव विविधता (Ecosystem and Biodiversity)	152–192
6.	पादप उत्तक एवं आवृबीजियों की औतिकी (Plant tissues and Histology of Angiosperms)	193–221
7.	पादपों का वर्गीकरण एवं अध्ययन	222–240
8.	आवृतिबीजी पादपों का अध्ययन, नर मादा युग्मकोद्भिद संरचना एवं विकास, परागण, निषेचन एवं भ्रूण परिवर्धन(Studies of Angiosperm Plants, Male and Female Gametophyte, Structure and Development, Pollination, Fertilization and Embryo Development)	241–266
9A.	जल सम्बन्ध (Water Relations)	267–277
9B.	खनिज पोषण (Mineral Nutrition)	278–288
9C.	एन्जाइम (Enzymes)	289–298
9D.	श्वसन Respiration	299–319
9E.	प्रकाश संश्लेषण	320–335
9F.	पादप वृद्धि (Plant Growth)	336–357
9G.	पादप गतियाँ	358–366
10.	जैव प्रौद्योगिकी	367–403

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रोनरेश दाधीच(.डॉ).

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,

कोटा (राजस्थान)

संयोजक/ समन्वयक एवं सदस्य

संयोजक

डॉअशोक शर्मा .

सह -आचार्य राजनीति विज्ञान

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

सदस्य **प्राणि-विज्ञान**

विषय समन्वयक

1. **प्रोभाटिया .एल .ए .**
   प्राणिशास्त्र विभाग-
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
2. **डॉअजय वर्मा .**
   विभागाध्यक्ष
   प्राणिशास्त्र विभाग-,राजर्षि शासकीय महाविद्यालय, अलवर
3. **प्रोत्रिवेदी .सी .पी .**
   वनस्पतिशास्त्र विभाग-
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
4. **डॉनरेन .ृद्र जैन**
   विभागाध्यक्ष
   राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झुंझुंनू

सदस्य

प्राणि-विज्ञान

1. **डॉलाल .बी .एस.**
   सेवानिवृत्त प्रोफेसर
   मोहनलाल सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
3. **डॉ रश्मि .सीसोदिया**
   एसोसिएट प्रोफेसर
   प्राणिशास्त्र विभाग-, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

वनस्पति विज्ञान

2. **प्रोत्रिभुवन सिंह .**
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
4. **प्रो.राव .एम .वी .**
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सम्पादन एवं पाठ्यक्रम लेखन

सम्पादक

प्रोभाटिया .एल .ए .

प्राणिशास्त्र विभाग-

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सम्पादक

प्रोत्रिवेदी .सी .पी .

वनस्पतिशास्त्र विभाग-

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

लेखक(विज्ञान-प्राणि)

1. **डॉतायल .एस .**
   प्राणिशास्त्र विभाग-
   अग्रवाल महाविद्यालय, जयपुर
2. **डॉमंजुलता शर्मा .**
   प्राणिशास्त्र विभाग-
   राजस्थान विश्वविद्यालय , जयपुर
3. **डॉनरेन .ृद्र जैन**
   राजकीय महाविद्यालय, झुंझनू
4. **डॉ. शिखा पाटनी**
   पोद्दार इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलोजी बनीपार्क, जयपुर
5. **डॉअवधेश वर्मा .**
   प्राणिशास्त्र विभाग-
   सैनी आदर्श महाविद्यालय बांदीकुई

लेखक(वनस्पति विज्ञान)

1. **डॉधनखड़ .एस .आर.**
   विभागाध्यक्ष, वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, जयपुर
2. **डॉमीनाक्षी वर्मा .**
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय ,जयपुर
3. **डॉजैन.सी.एच .**
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय,जयपुर
4. **डॉ. अरविन्द पारीक**
   महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट ऑफ एप्लाइड साइंस, सीतपुरा, जयपुर
5. **प्रो .पीजैन .एस .**
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय,जयपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ) नरेश दाधीच	प्रो. (डॉ.) अनाम जेटली	प्रो. (डॉ.)पीशर्मा .के .
कुलपति	निदेशक	निदेशक
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	संकाय विभाग	प्रभारी पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन सितंबर 2008

सर्वाधिकार सुरक्षित।इस सामग्री के किसी भी अंश को वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति प्राप्त किए बिना या मिमियोग्राफी अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करना वर्जित है। वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय मे और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कुलसचिव, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,रावतभाटा रोड,कोटा से प्राप्त की जा सकती है।

कुलसचिव, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा द्वारा प्रकाशित

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक **"जीव विज्ञान (प्राणी-शास्त्र एवं वनस्पति शास्त्र)"** वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा प्रस्तावित पाठ्यक्रमानुसार बी. एससी. भाग प्रथम के प्राणी-शास्त्र प्रथम प्रश्न-पत्र के अध्ययन अध्यापन हेतु सृजित की गई है । पुस्तक की भाषा-शैली को सरल, रोचक एवं सुग्राह्म बनाने का अथक प्रयास किया गया है । आवश्यकतानुसार समानार्थी अंग्रेजी शब्द, फ्लोचार्ट, नामांकित चित्र एवं सारणियाँ भी दी गई है। पुस्तक की विभिन्न इकाइयों को विद्वान लेखकों द्वारा लिखा गया है । लेखकों पुस्तक को तथ्यपरक बनाने के लिए प्रमाणिक ग्रन्थों की सहायता प्राप्त की है, इन रचयिताओं के लिए कृतज्ञ तापन इन पंक्तियों के मध्यम से पुस्तक है। यह पुस्तक विद्यार्थीयों के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं हेतु भी सही मार्गदर्शन प्रदान करने में सहायक होगी ।

पुस्तक को अधिक उपयोगी एवं प्रमाणिक बनाने हेतु प्रबुद्ध पाठकों एवं जागरूक विद्यार्थीयों के रचनात्मक सुझाव सादर आमंत्रित है।

इकाई 1 : परिचयात्मक प्राणि -विज्ञान
(Introductory Zoology)

इकाई संरचना

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

1.1.1 परिभाषा (Definition)

1.1.2 प्राणि-विज्ञान का इतिहास (History of Zoology)

1.1.3 शाखाएँ (Branches)

1.1.4 महत्व (Importance)

1.2 जीवधारियों के लक्षण (Character of Living Beings)

1.3 जीवद्रव्य अध्ययन (Study of Protoplasm)

1.3.1 जीवन संगठन (Life Organisation)

1.3.2 परमाणु (Atom)

1.3.3 अणु (Molecule)

1.3.4 आयन्स (Ions)

1.3.5 अकार्बनिक व कार्बनिक यौगिक (Inorganic & Organic Compounds)

1.3.6 जैव-रासायनिक अभिक्रियाएँ (Biochemical Reactions)

1.3.7 ऊतक, अंग व तंत्र (Tissue, Organ & Organ system)

1.3.8 अकार्बनिक यौगिक (Inorganic Compounds) जल (Water), लवण (Salts) आदि

1.3.9 कार्बनिक यौगिक (Organic Compounds) - कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate), वसा (Lipid), प्रोटीन (Protein)

1.3.10 न्यूक्लिक अम्ल (Nucleic Acide) DNA & RNA एवं वर्णक (Pigments)

1.3.11 एन्जाइम का संक्षिप्त परिचय (Brief introduction of enzyme)

1.4 सारांश (Summary)

1.5 शब्दावली (Glossary)

1.6 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers to Self-assessment Question)

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

1.0 उद्देश्य (Objectives)

इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- प्राणि -विज्ञान की परिभाषा, इतिहास, शाखाएँ व महत्व समझ सकेंगे।
- जीवद्रव्य के अव्यवों, रासायनिक बंधो व जैव रासायनिक अभिक्रियाओं को समझ सकेंगे।
- जीवद्रव्य में उपस्थित कार्बनिक व अकार्बनिक यौगिकों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- एन्जाइम्स की व्याख्या कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रकृति में सजीव व निर्जीव दोनों तरह की वस्तुएँ पायी जाती हैं। सजीव वर्ग में सजीव वर्ग में मनुष्य व अन्य प्राणी आते हैं। प्राणी जगत में मनुष्य अन्य प्राणियों से भिन्न है और उसे समझदार जानवर (Civilised Beast) कहना भी गलत नहीं होगा। मनुष्य में प्रकृति को जानने, समझने, खोजने व अध्ययन की उत्सुकता अत्यधिक होती है और यही क्रियाएँ मनुष्य की प्राकृतिक संसार के प्रति आकर्षण व उन्हें समझने की प्रवृत्ति को दर्शाती है। वास्तव में मनुष्य की इसी उत्सुकता ने जीव जगत के ज्ञान या विज्ञान की विभिन्न शाखाओं को जन्म दिया है।

1.1.1 परिभाषा (Definition)

जीव विज्ञान, विज्ञान की वह शाखा है जिसमें जीवों की प्रवृत्ति, संरचना, अंगों की कार्यविधि, जीवों की जीवों से तथा भौतिक वातावरण से अंत क्रियाओं का अध्ययन किया जाता, है।

अरस्तु (Aristotle) ने जीव विज्ञान का प्रारंभिक अध्ययन किया था इसीलिए उन्हें **जीव - विज्ञान** का **जनक** (Father of Biology) भी कहा जाता है। **बायोलॉजी** (Biology) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम **लैमार्क** (Lamarck) ने किया था। बायोलॉजी (बायोस -जीवन; लोगोस - अध्ययन) वह विज्ञान है जिसमें जीवितों का अध्ययन किया जाता है। जीवन का आधार, जीवद्रव्य (Protoplasm) होता है। जीवितों में प्राणी एवं पादप दोनों ही आते हैं। इसी आधार पर जीव -विज्ञान को दो शाखाओं - प्राणि -विज्ञान (Zoology, Greek-प्राणी) और वनस्पति विज्ञान (Botany, Greek Botane - पादप में बाँटा गया है।

1.1.2 प्राणि -विज्ञान का इतिहास (History of Zoology)

प्राणि -विज्ञान पर प्रथम लेख ईसा पूर्व 5वीं सदी के एक ग्रीक चिकित्सा ग्रंथ में समाहित है, इसमें प्राणियों की उपयोगिता के आधार पर वर्गीकरण किया गया है, यथा खाने योग्य प्राणी तथा न खाने योग्य प्राणी । **हिप्पोक्रेट्स** ने मानव रोगों पर प्रथम लेख लिखा और उन्हें **चिकित्साशास्त्र का जनक** कहा जाता है। **अरस्तु** ने 500 प्राणियों की रचना, स्वभाव, वर्गीकरण, जनन आदि का वर्णन किया था । इसीलिए उन्हें **जीव -विज्ञान, प्राणि -विज्ञान** और **भ्रूण विज्ञान का जनक** (Father of Biology, Zoology & Embryology) कहा जाता है । 16 वीं सदी में सूक्ष्मदर्शी (Microscope) के अविष्कार के बाद जीव विज्ञान के बहुमुखी अध्ययन का प्रारंभ

हुआ। कुछ महत्वपूर्ण वैज्ञानिकों का कार्य जो अपने - अपने क्षेत्र में नींव के पत्थर साबित हुआ है।

(1) **एंड्रियस विसैलियस** ने मानव शरीर की आंतरिक संरचना का प्रयोगात्मक अध्ययन किया। उन्हें **आधुनिक शारीरिकी का जनक** (Father of Modern Anatomy) कहा जाता है।

(2) **विलियम हार्वे** ने रूधिर परिसंचरण तंत्र की खोज की।

(3) **जोहनरे** ने कीटों, सरीसृपों, व चोपायों के वर्गीकरण का अध्ययन किया और जाति के सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

(4) **लिओनार्ड दा विन्सी** ने जीवाश्मों को पूर्वकाल के जीवों का प्रमाण बताया। इसीलिए उन्हें **जीवाश्मिकी का जनक** (Father of Palaentology) माना जाता है।

(5) **कैरोलस लिनियस ने** Systerme Nature नामक पुस्तक में पादपों व प्राणियों का वर्गीकरण किया व द्विनाम पद्धति (Binomial Nomenclature) का वर्णन किया । अत: उन्हें **आधुनिक वर्गिकी का जनक** (Father of Modern Taonony) कहा जाता है।

(6) **लैमार्क** ने Philosphie Zoologique नामक पुस्तक में अर्जित गुणों की वंशागति (Inhevitance of acquired characters) का वर्णन किया।

(7) **चार्ल्स डार्विन** ने Origin of species नामक पुस्तक में प्राकृतिक वरणवाद के सिद्धांत का प्रतिपादन किय।

(8) **ह्यूगो डी व्रीज** ने उत्परिवतर्न सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

(9) **डोबजन्सकी** ने आनुवांशिकी एवं उद्विकास का अध्ययन किया।

(10) **लिकै** ने मानव के उद्विकास का अध्ययन किया।

(11) **इयान विलमोन्ट** ने सर्वप्रथम भेड़ का क्लोन बनाया और उसका नाम डौली रखा।

(12) यू एस डिपार्टमेन्ट ऑफ एनर्जी और नेशनल इन्सीट्यूट ऑफ हैल्थ (U.S Department of Energy & National Institute of Health) ने 2001 में **मानव जीनोम प्रोजेक्ट** प्रारंभ किया।

1.1.3 प्राणि - विज्ञान की शाखाएँ (Braches of Zoology)

प्राणि - विज्ञान को अनेक शाखाओं में बाँटा गया है। इसकी मुख्य शाखाएँ निम्न है :

(1) **वर्गीकरण विज्ञान** (Taxonomy) : प्राणि -विज्ञान का सहीं निर्धारण नामकरण और वर्गीकरण के अध्ययन को वर्गीकरण विज्ञान या वर्गिकी कहते हैं।

(2) **आकारिकी** (Mophology) : इसमें सजीवों की बाह्य संरचना का अध्ययन किया जाता है।

(3) **शारीरिकी और औतिंकी** (Anatomy and Histology) : इसमें सजीवों को विच्छेदित कर उनकी भीतरी संरचना का अध्ययन किया जाता है । इसे आंतरिक शरीर शास्त्र भी कहते हैं। **औतिकी** (Histology) में विभिन्न अंगों उत्तकों की संरचना का अध्ययन सूक्ष्मदर्शी द्वारा किया जाता है।

(4) **आनुवांशिकी** (Genetic) : इस शाखा में वंशानुगति एवं जीवों में बदलाव की उत्पत्ति के बारे में अध्ययन किया जाता है।

(5) **भ्रौणिकी** (Embryology) : इसमें सजीवों के भ्रूणीय विकास का अध्ययन किया जाता है।

(6) **उद्विकास** (Evolution) : इस शाखा में जीव-जातिओं के उद्भव एवं विभेदीकरण के इतिहास का वर्णन किया जाता है।

(7) **पारिस्थितिकी** (Ecology) : इस शाखा में सजीव के पर्यावरण व उनके आपस में संबंधों का अध्ययन किया जाता है।

(8) **कार्यिकी** (Physiology) : इस शाखा में शरीर के विभिन्न अंगों एंव तंत्रों के कार्य व कार्यविधि का अध्ययन किया जाता है।

(9) **आणविक प्राणि-विज्ञान** : (Molecular Biology) : जैव अणुओं (Bio-molecules) के रासायनिक संगठन और उनके व कार्यों अध्ययन को आणविक प्राणि-विज्ञान कहते है।

(10) **जैव रसायन** (Biochemistry) : इसमें जीव तंत्र की जैविक क्रियाओं के रासायनिक पक्ष का अध्ययन किया जाता है।

(11) **जैव-प्रौद्योगिकी** (Biotechnology) : सजीवों में वांछनीय गुणों को पैदा करने के लिए किए जाने वाले परिवर्तनों में काम आने वाली व मानवोपयोगी प्रौद्योगिकी जैव - तकनीकी कहलाती है ।

(12) **व्यक्तिवृत्त** (Ontogeny) : इसमें जंतु विशेष के जीवन वृन्त (Life cycle) का अध्ययन किया जाता है।

(13) **जातिवृत्त** (Phylogeny) : इस शाखा में जाति के उद्विकास (Evolution) के इतिहास का अध्ययन किया जाता है।

(14) **व्यवहारिकी विज्ञान** (Ethology) : इस शाखा में प्राणियों के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

(15) **सुजीवनिकी** (Euthenics) : उचित वातावरण, अच्छा पोषण, उत्तम शिक्षा व प्रशिक्षण एवं औषधि द्वारा मानव नस्ल में सुधार का अध्ययन यूथैनिक्स कहलाता है।

(16) **सृजननिकी** (Eugenics) : आनुवांशिकी के नियमों के अनुप्रयोग द्वारा मानव नस्ल में सुधार का अध्ययन यूजैनिक्स कहलाता है।

(17) **यूफेनिक्स** (Euphenics) : आनुवांशिक रोगों के लक्षणात्मक उपचार व नियंत्रण द्वारा मानव नस्ल में सुधार का अध्ययन यूफेनिक्स कहलाता है।

(18) **विकिरण जीव विज्ञान या एक्टिंनोबायोलोजी** (Radiation or Actinobiology) : इसमें जीवों पर विकिरण के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है।

(19) **एक्सोबायोलोजी** (Exobiology) : पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य ग्रहों पर जीवन का अध्ययन एक्सोबायोलोजी कहलाता है।

1.1.4 प्राणि -विज्ञान का महत्व (Importance of Zoology):

प्राणि -विज्ञान का मानव कल्याण में महत्वपूर्ण योगदान है। प्राणि -विज्ञान का महत्व निम्न क्षेत्रों में विशेषतः : माना जाता है।

(1) **पर्यावरण एवं प्राणि-विज्ञान :** जीवित तंत्रों एवं पर्यावरण के बीच एक विशिष्ट सामंजस्य व समन्वय बना रहता है जिसके फलस्वरूप सभी प्राणी अनुकूलित होकर जीवित रह पाते हैं। पर्यावरण के विभिन्न घटकों का ज्ञान जीव'-विज्ञान के अध्ययन से मिलता है।

(2) **कृषि विज्ञान और प्राणि-विज्ञान :** प्राणि-विज्ञान के अध्ययन से कृषि के लिए लाभदायक व हानिकारक जंतुओं व परजीवियों का ज्ञान होता है। जैसे : केंचुएं से मिट्टी की उर्वरता का बढ़ना, परजीवियों के अध्ययन से फसलों की रक्षा करना इत्यादि।

(3) **भोजन और प्राणि -विज्ञान :** प्राणि -विज्ञान से विभिन्न जानवरों के माँस, मछली, अंडा, दूध, तेल, चर्बी और उन के महत्व की जानकारी मिलती है।

(4) **प्राणियों का संरक्षण और प्राणि-विज्ञान :** प्राणियों की कई ऐसी जातियाँ जो विलुप्त होने के कगार पर है, उन्हें प्राणि -विज्ञान की सहायता से संरक्षित किया गया है।

(5) **अंधविश्वास का निवारण व प्राणि -विज्ञान :** जीव जगत के बारे में अनेक किवंदतियाँ, अंधविश्वास और गलत धारणाएँ विद्यमान है । प्राणि-विज्ञान के अध्ययन से इन कुरीतियों को दूर करने में मदद मिलती है।

(6) **स्वास्थय और प्राणि-विज्ञान :** जंतु विज्ञान. से हमें अपने शरीर, अंगों व अंगों की कार्य विधियों का ज्ञान होता है और कार्यिकी हमें शरीर को स्वस्थ रखने में सहायक होती है। प्राणि- विज्ञान के अध्ययन से विभिन्न बीमारियों और उनके निवारण व बचाव के बारे में भी जानकारी मिलती है।

1.2 जीवधारियों के लक्षण (Characters of Living Beings)

जीवधारियों में जीवंतता के लक्षण पाए जाते हैं, जैसे : वृद्धि (Growth), गति (Movements) एवं गमन (Locomotion), पोषण (Nutrition), श्वसन (Respiration), उपापचय (Metabolism), उत्सर्जन (Excretion), उत्तेजनशीलता, प्रजनन (Reproduction), विकास (Development), मृत्यु (Death) आदि पाए जाते हैं।

बोध प्रश्न - 1

बहु विकल्पी प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1. जीव विज्ञान का जनक हैं :
   (a)डार्विन
   (b)अरस्तु
   (c)परकिजे
   (d)हक्सले
2. उत्परिवर्तन सिद्धांत दिया है;
   (a)ह्यूगो डी ब्रीज
   (b)मोरगन

(c)लैमार्क

(c)हार्वे

3. प्राणि - विज्ञान की शाखा जिसमें वंशागति का अध्ययन होता है :

(a)आनुवांशिकी

(b)कोशिकी

(c)यूथेनिक्स

(d)उद्‌विकास

4. वातावरण के संदर्भ में जंतुओं के अध्ययन की शाखा

(a)इक्थियोलॉजी

(b)इकोलॉजी

(c)कोशिका विज्ञान

(d)सृजननिकी

5. डार्विन की पुस्तक Origin of Species में किस सिद्धांत का वर्णन है?

(a)उत्परिवर्तन

(b)प्राकृतिक वरणवाद

(c)अर्जित गुणों की वंशागति

(d)उपरोक्त सभी

6. सजीवता का लक्षण है:

(a)श्वसन

(b)वृद्धि

(c)प्रजनन

(d)उपरोक्त सभी

1.3 जीवद्रव्य का अध्ययन (Study of Protoplasm)

हेक्सले ने जीवद्रव्य को जीवन का भौतिक आधार माना है । (Physical basis of Life) जीवद्रव्य का नामकरण **पुरकिंजे** (Purkinje) ने 1839 में किया। यह एक तरल, गाढ़ा, रंगहीन, पारभासी, वजनयुक्त पदार्थ है । जीव की सारी जैविक क्रियाएँ इसी के द्‌वारा होती है।

जीवद्रव्य को दो भागों में बाँटा जाता है :

(i) कोशिका द्रव्य (Cytoplasm) : यह कोशिका के केन्द्रक एवं कोशिका झिल्ली के बीच रहता
केन्द्रक द्रव्य (Nucleoplasm) : यह कोशिका में केन्द्रक के अंदर रहता है।

(ii) जीवद्रव्य एक कलिल विलयन (Colloidal Solution) है जिसमें यह दो अवस्थाओं सॉल (Sol) अवस्था व जैल (Gel) अवस्था में होता है और यह परस्पर एक दूसरे में बदलती रहती है।

Sol $\rightleftharpoons$ Gel

प्रोटोप्लाज्म के अन्य प्रमुख लक्षण है, जैसे - श्यानता (viscosity), प्रत्यास्था (elasticity), पारभासी (translucent), जल में अविलेय (insoluble) ब्राउनियन गति (Brownion movement), टिंडल घटना (Tyndall effect) अर्थात् जीवद्रव्य पर प्रकाश पुंज डालने पर इसके कण किरणों को इधर उधर छितरा देते हैं। जीव -द्रव्य कोशिका के अंदर इधर -उधर घूमता रहता है, जिसे प्रवाही गति (Cyclosis or streaning movement) कहते हैं। जीवद्रव्य के अवयवों का संक्षिप्त वर्णन आगे किया गया है।

1.3.1 जीवन संगठन (Life Organisation)

जीवन संगठन अतिसूक्ष्म आणविक संगठन से आरंभ होता है और वृहत जीवन स्तर तक होता हु आ पारिस्थितिकी तंत्र और जीवन तंत्र या जैविक तंत्र में समाप्त होता है।

जीवन संगठन के पदानुक्रम के अनुसार, परमाणु सबसे छोटी इकाई है जो मिलकर अणु बनाती है जो रासायनिक क्रियाओं के द्वारा अंगकों का निर्माण करते हैं। कई अंगक एक साथ मिलकर ऊत्तक बनाते हैं। जो विशेष कार्य करते हैं, ऊत्तक मिलकर अंग, व अंग मिलकर अंगतंत्र का निर्माण करते हैं। विभिन्न अंगतंत्र एक जीव बनाते हैं। इस प्रकार एक निश्चित स्थान पर पाए जाने वाले एक ही जाति के जीव जनसंख्या या समष्टि बनाते हैं । विभिन्न समष्टियाँ वातावरण के निर्जीव कारकों के साथ प्रतिक्रिया करती है और पारिस्थितकी तंत्र का निर्माण करती है। पृथ्वी की सतह पर हवा, जमीन और पानी में रहने वाले जीव, जैवमंडल का निर्माण करते हैं।

1.3.2 परमाणु (Atom)

यह तत्व का सबसे छोटा कण है, जो किसी भी रासायनिक अभिक्रिया में भाग ले सकता है परंतु स्वतंत्र अवस्था में नहीं रह सकता है। जैसे : कार्बन (C), नाइट्रोजन (N) इत्यादि।

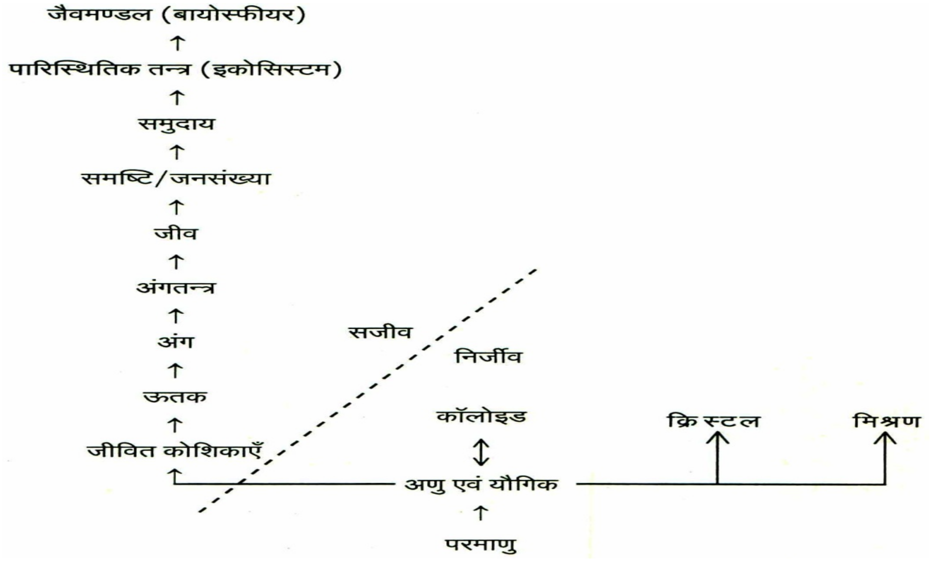

चित्र 1.1 : जीवन संगठन के विविध स्तर

1.3.3 अणु (Molecule)

यह तत्व और यौगिक का सबसे छोटा कण है, जो स्वतंत्र अवस्था में रह सकता है।
जैसे : पानी (H_2O) हाइड्रोजन गैस ($H_2 \uparrow$)

1.3.4 आयन्स (Ions)

एक वैद्युत आवेशित परमाणु अथवा परमाणुओं का समूह जिसमें अतिरिक्त इलैक्ट्रॉनो की प्राप्ति अथवा उपलब्ध इलैक्ट्रॉनों की कमी होने के कारण आयनित अवस्था में आ जाता है, आयन कहलाता है।

उदाहरण : जल में से विद्युत प्रवाहित करने पर हाइड्रोजन (H^+) और ऑक्सीजन (O'') आयन्स बनते हैं।

$$H_2\mathbf{O} \rightleftharpoons 2H^+ + \mathbf{O''}$$

1.3.5 अकार्बनिक व कार्बनिक यौगिक (Inorganic & Organic Compounds)

जीवद्रव्य अकार्बनिक व कार्बनिक यौगिकों का मिश्रण है। इसमें जल, लवण आदि अकार्बनिक यौगिक एवं कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, न्यूकिल अम्ल आदि कार्बनिक यौगिक पाए जाते हैं। इनका संक्षिप्त वर्णन आगे किया गया है।

सारणी 1.1 : जीवद्रव्य के विभिन्न संघटकों की मात्राएं

कार्बनिक यौगिक (Organic Compounds)		अकार्बनिक यौगिक (Organic Compounds)	
प्रोटीन्स	14%	नियामक पदार्थ	
कार्बोहाइड्रेट्स	1%	जल	80%
वसाएं	3%	लवण अम्ल	
न्यूक्लिक अम्ल		एवं	1%
एन्जाइम्स	1%	समाक्षार गैसें	

1.3.6 जैव - रासायनिक अभिक्रियाएँ (Biochemical Reactions)

जैव - रासायनिक अभिक्रियाओं के दौरान इलैक्ट्रॉन एक परमाणु से दूसरे को स्थानांतरित होते रहते हैं अर्थात् परमाणुओं की संरचना में बदलाव आता है, इलैक्ट्रॉनों के आपसी संबंधों में बदलाव आता है, रासायनिक बंध टूटते हैं या पुन : बनते हैं। जीवों तथा वातावरण के बीच आदान - प्रदान होता हैं।

इलैक्ट्रॉनों का स्थानांतरण ऊर्जा स्थानांतरण का माध्यम होता हैं। एक इलैक्ट्रॉन की कमी ऑक्सीकरण कहलाती है जबकि एक इलैक्ट्रॉन का प्राप्त होना अवकरण या अपचयन कहलाता है। अवकरण - ऑक्सीकरण (रेडॉक्स क्रियाएँ) जैविक तंत्रों में ऊर्जा बहाव में मुख्य भूमिका निभाता है।

1.3.7 ऊतक, अंग व तंत्र (Tissue Organ & Organ System)

ऊतक कोशिकाओं का समूह है जो कि भौतिक रूप से आपस में जुड़ी रहती है, जिनकी उत्पत्ति समान होती है और कोई निश्चित कार्य करती है। ऊतकों का समूह जो कि एक निश्चित कार्य करता है, अंग कहलाता है। कई अंग मिलकर एक इकाई की तरह काम करते हैं, जिसे अंग तंत्र कहते हैं।

उदाहरण : पाचन तंत्र (Digestive System), कई अंगों से मिलकर बनता है जैसे : मुख (mouth), मुखीय गुहा (Buccal Cavity), ग्रसनी (Pharyno), ग्रासनाल (Coesophagus), अमाशय (Stomach), आंत्र (Intestine) एवं मलाशय (Rectun) पाचन तंत्र के सभी अंग, ऊतकों के बने होते हैं।

1.3.8 अकार्बनिक यौगिक (Inorganic Compounds)

जल (Water) : हमारे शरीर में 65 - 75% जल की मात्रा होती है। जल एक विलायक के रूप में शरीर में पाया जाता है जो कि कई रासायनिक अभिक्रियाओं के माध्यम का काम भी करता है। जल शरीर के विभिन्न अंगों के निर्माण में सहायता करने के अतिरिक्त रूधिर को तरल अवस्था में बनाए रखता है, भोजन का पाचन करता है एवं अशुद्धियों को पसीने एवं मूत्र के रूप में बाहर निकालता है। यदि शरीर में जल की नियत मात्रा में कमी आ जाए तो **निर्जलीकरण** (Dehydration), रक्त क्षारकता (Blood Basicity), बुखार (Fever), अर्जीण। आदि रोग हो जाते हैं।

लवण (Salts) : हमारे शरीर में पाए जाने वाले प्रमुख खनिज लवण, उनका कार्य व स्रोत सारणी 1.2 में दिए गए हैं।

सारणी 1. 2: प्रमुख खनिज लवण - कार्य एवं स्रोत

खनिज लवण	कार्य	स्रोत
कैल्सियम	हडिड्यों एवं दांतों का निर्माण	दूध, माँस, अण्डा, पपीता आदि
आयोडिन	थायराइड ग्रंथि का नियंत्रण	माँस, मछली, नमक आदि।
लोहा	लाल रक्त कणिकाओं का निर्माण	पालक, मटर, हरी सब्जियाँ आदि।
फॉस्फोरस	जीवद्रव्य व हडिड्यों का निर्माण	दूध, माँस, अण्डा, हरी सब्जियाँ आदि।
पोटेशियम	कोशिकीय संवहन एवं जैविक क्रियाओं का नियंत्रण	दूध, माँस अण्डा आदि।
मैगनीशियम	माँसपेशियों के संचालन एवं तंत्रिका तंत्र की कार्यविधि आदि में सहायता करना	दूध, माँस, अण्डा, हरी सब्जियाँ आदि।
सोडियम	पाचन, उत्सर्जन एवं तंत्रिकातंत्र के कार्य में सहायता करना	खाने का नमक (सोडियम क्लोराइड)

विटामिन : प्रमुख विटामिन, कार्य व स्रोत सारणी 1.3 में दिए गए हैं।

सारणी 1.3 : प्रमुख विटामिन - कार्य एवं स्रोत

विटामिन	**कार्य**	**स्रोत**
विटामिन ए (अजीरोप्यॉल)	आँख, कान, त्वचा व शरीर की सामान्य वृद्धि को बनाये रखना तथा प्रतिरोध क्षमता के विकास में सहायक।	दूध, मक्खन, मछली का तेल,अण्डा, पत्ते दार सब्जी, गाजर आदि।
विटामिन बी -1 (थायमिन)	शारीरिक वृद्धि, भोजन के पाचन एवं हृदय, माँसपेशियों तथा तंत्रिकाओं आदि के सुचारू रूप से कार्य करने में सहायता प्रदान करना।	माँस, अण्डा, दूध, दालें, .सोयाबीन और हरी सब्जियाँ।
विटामिन बी-2 (राइबोफ्लेविन)	शारीरिक वृद्धि आँख त्वचा के कार्य में सहायक।	माँस, अण्डा, दूध सोयाबीन व हरी सब्जियाँ आदि।
विटामिन बी - 3 (पेन्टाथिनिक अम्ल)	कार्बोहाइड्रेट का उपापचय एवं त्वचा के कार्य में सहायक	गन्ने का शीरा, यीस्ट, माँस, दूध, अण्डा आदि।
विटामिन बी - 5 (निकोटिनेमाइड)	वृद्धि कार्बोहाइड्रेट के उपापचय एवं आमाशय, आंतों व तंत्रिकातंत्र के कार्यों में सहायक	माँस, मक्खन, टमाटर, आलू,अनाज व छिलकेदार सब्जियाँ।
विटामिन बी-12 (सायकोथलेमिन)	लाल रूधिर कणिकाओं के निर्माण और नाइट्रोजन में (सायकोबालेमिन) उपापचय में सहायक शारीरिक वृद्धि कणिकाओं के	यकृत (कलेजी)
विटामिन सी (एस्कार्बिक - एसिड)	निर्माण, दाँतों व मसूढ़ों को स्वस्थ रखने में सहायक शारीरिक वृद्धि, हडिड्यों व दाँतों के	नींबू आँवला, संतरा, मौसमी,टमाटर, पालक।
विटामिन डी (कैल्सीफिरौल)	निर्माण तथा जनन में सहायक। जनन अंगों व प्रजनन -शक्ति के	दूध, माँस, मछली का तेल, मक्खन अण्डा आदि।
विटामिन ई	विकास में सहायक।	मटर, अंकुरित अनाज, वसा, दूध,मक्खन, सलाद व हरी सब्जियों।

विटामिन के	यकृत के कार्य तथा रूधिर का थक्का बनने में सहायक	माँस, मछली, राई, गेहूँ आदि।

1.3.9 कार्बनिक यौगिक (Organic Compounds)

जीवन को संपोषित करने और ऊर्जा ग्रहण व उपयोग में लेने के लिए कार्बोहाइड्रेट, लिपिड और प्रोटीन की आवश्यकता होती है। न्यूक्लिक अस्त सभी जैविक क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं। पौधे प्रकाश संश्लेषण के द्वारा कार्बोहाइड्रेट्स का निर्माण करते है। जिन पर पृथ्वी पर पाए जाने वाले समस्त जीव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर करते हैं।

(1) **कार्बोहाइड्रेट** (Carbohydrate) : ये मुख्य ऊर्जा संचायक अणु होते हैं । ये (C,H,O के बने होते हैं और इनका रासायनिक सूत्र $(CH_2O)_N$ होता हैं। इनमें दो हाइड्रोसिल समूह और एक एल्डिहाइज या कीटोन समूह होता है।

रासायनिक संगठन के आधार पर इनकी तीन श्रेणियाँ है;

(i) **मोनोसैकेराइड्स** (Monosaceharides) : ये सरलतमए घुलनशील, मीठे कार्बोहाइड्रेट होते हैं। इन्हें शर्कराएँ (Sugar) कहते हैं। इनमें मारन अणुओं की संख्या तीन से सात हो सकती है।

उदाहरण : ग्लूकोज (Glucose), फ्रक्टोज (Fructose) एंव गैलेक्टोज (Galactose) : छ : कार्बन युक्त; राइबोस (Ribose) एवं डीऑक्सीराइबोस (Deoxyribose) : पाँच कार्बन युक्त मोनोसैकेराइड्स है।

(ii) **डाइसैकराइड्स एवं ओलिगोसैकराइड्स** (Diasaceharides & Oligosaceharides) : समान या विभिन्न मोनोसैकराइड्स के दो अणुओं के ग्लाइकोसिडिक बंध (Glycosidic Bond) द्वारा जुड़ने पर डाइसैकराइड शर्करा बनती है और एक जल का अणु मुक्त होता है। यह घुलनशील व मीठी होती है।

उदाहरण : पादपों में माल्टोज (Maltose), सूक्रोज (Sucrose) व प्राणियों में लैक्टोज (Lactose)।

(iii) **पॉलीसैकराइड्स** (Polysaceharides or Glycans) : ये मोनोसैकराइड्स के कई अणुओं के बहुलकीकरण (Ploymerisation) से बनते हैं।

उदाहरण : ग्लाइकोजन (Glycogen) ग्लूकोज के बहुलीकरण से बनता है। काइटीन, सेल्यूलोज आदि

(2) **वसा** (Lipids) : ये जल में अघुलनशील हाइड्रोकार्बन्स का समूह है। इसमें कार्बन व हाइड्रोजन के बंध सहसंयोजी व अध्रुवीय (Non-pol) होते हैं। वसा के अणुओं का निर्माण एक ग्लिसरोल व 3 वसीय अम्ल के संयोग से होता है। इन्हें ट्राइग्लिराइड्स (Triglycerides) भी कहते हैं।

उदाहरण : घी, तेल, चर्बी व मूँगफली, तिल, सरसों का तेल, ग्लाइकोलिपिड, गेंगलियोलिपिड, कोलेस्टेरॉल्स (Cholesterol) आदि।

(3) **प्रोटीन** (Proteins) : प्रोटीन C,H,O व के बने होते हैं। कई प्रोटीन्स में फॉस्फोरस (P), सल्फर (S) व मैग्नीशियम (Mg) भी पाए जाते हैं। ये जटिल अणुओं के बने होते हैं और आधारभूत 20 अमीनोअम्लों के मिलने से बनते हैं।

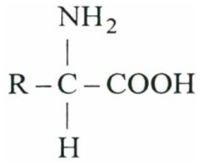

प्रोटीन की संरचना

R = कोई एल्काइल समूह

$-NH_2$ = अमीनो समूह

-COOH= काबोक्सिल समूह

H = हाइड्रोजन

दो या अधिक अमीनों अम्ल पेप्टाइड बंद (Peptride Bond), -CONH- बनाते हैं।

उदाहरण : एन्जाइम, इन्सुलिन, मायोग्लोबिन, हीमोग्लोबिन, फाइब्रिन, कैजीन, क्रोमैटिन, श्लेष्म आदि।

1.3.10 न्यूक्लिक अम्ल (Nucleic Acid)

न्यूक्लिक अम्ल न्यूक्लियोटाइड के रेखीय बहु लक हैं। प्रत्येक न्यूक्लियोटाइड एक पेन्टोस शर्करा, एक फॉस्फेट समूह और एक अकार्बनिक नाइट्रोजन युक्त क्षार - प्यूरीन [एडिनीन (A) और गुआनीन (G) या पाइरीमिडीन [साइटोसिन (C) थाइमीन (T), यूरेसिल (U)] 1 का बना होता है।

DNA (डी ऑक्सीराइबोज न्यूक्लिक अम्ल): एक जाति विशेष के लिए एक DNA अणु दो श्रृंखलाओं का बना होता है जो आस -पास के क्षीण हाइड्रोजन बंधों से जुड़े रहते हैं। दोनों श्रृंखलाओं विपरीत दिशाओं में सीढ़ी के समान पार्श्व से पार्श्व में विन्यासित होती हैं। नाइट्रोजन युक्त क्षार सीढ़ी के चरण बनाते हैं।

RNA (राइबोस न्यूक्लिक अम्ल): ये एकल पॉलीन्यूक्लियोटाइड श्रृंखलाओं के रूप में होते हैं। इनके संश्लेषण DNA के अणुओं की श्रृंखलाओं द्वारा अपनी प्रतिलिपिओं के रूप में किया जाता है। RNA में थायमिन (T) के स्थान पर यूरेसिल (U) उपस्थित होता है।

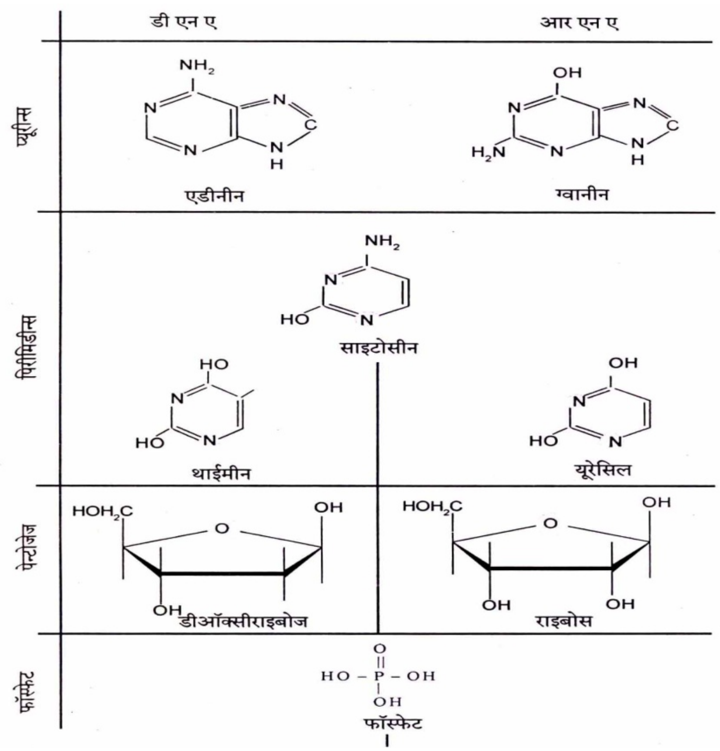

पेन्टोज शर्करा और नाइट्रोजनी क्षारकों के संरचनात्मक सूत्र

डी.एन.ए. के न्यूक्लिओसाइड्स (Nucleosides of DNA):

नाइट्रोजन क्षारक (Nitrogen base)	**शर्करा (Sugar)**	**न्यूक्लिओसाइड्स (Nucleosides)**
1. एडिनीन (Adenine)	+ डीऑक्सीराइबोस शर्करा →	डीऑक्सीएडीनोसिन (Deoxyadenosine)
2. गुवानीन (Guanine)	+ डीऑक्सीराइबोस शर्करा →	डीऑक्सीएडीनोसिन (Deoxyadenosine)
3. थाईमीन (Thymine)	+ डीऑक्सीराइबोस शर्करा →	डीऑक्सीएडीनोसिन (Deoxyadenosine)
4. साइटोसीन (Cytosine)	+ डीऑक्सीराइबोस शर्करा →	डीऑक्सीएडीनोसिन (Deoxyadenosine)

डी.एन.ए. के न्यूक्लिओटाइड्स (Nucleotides of DNA):

नाइट्रोजन क्षारक (Nitrogen base)		**शर्करा (Sugar)**		**फॉस्फोरिक अम्ल (phosphoric acid)**	**न्यूक्लिओसाइड्स (Nucleosides)**
1. एडिनीन (Adenine)	+	डीऑक्सीराइबोस शर्करा	+	H_3PO_4 →	डीऑक्सीएडीनाइलिक अम्ल (Deoxyadenylic

						acid)
2.	गुवानीन (Guanine)	+	ऑक्सीराइबोस शर्करा	+	H_3PO_4 →	डीऑक्सीग्वानिलिक अम्ल (Deoxyguanylic acid)
3.	थाईमीन (Thymine)	+	डीऑक्सीराइबोस शर्करा	+	H_3PO_4 →	डीऑक्सीथायमिडायलिक अम्ल(Deoxythymidylic acid)
4.	साइटोसीन (Cytosine)	+	डीऑक्सीराइबोस शर्करा	+	H_3PO_4 →	डीऑक्सी साइटिडिलिक अम्ल(Deoxycytidylic acid)

आर.एन.ए. के न्यूक्लिओटाइड्स (Nucleotides of RNA)

नाइट्रोजन क्षारक (Nitrogen base)	**शर्करा (Sugar)**	**फॉस्फोरिक अम्ल (phosphorid acid)**	**न्यूक्लिओसाइड्स (Nucleosides)**
1. एडिनीन + (Adenine)	राइबोस शर्करा → (Ribose Sugar)	H_3PO_4	एडिनाइलिक अम्ल (Adenylic acid)
2. गुवानीन + (Guanine)	राइबोस शर्करा → (Ribose Sugar)	H_3PO_4	ग्वानाइलिक अम्ल (Guanylic acid)
3. थाईमीन + (Thymine)	राइबोस शर्करा → (Ribose Sugar)	H_3PO_4	सायडायलिक अम्ल (Cytidylic acid)
4. साइटोसीन + (Cytosine)	राइबोस शर्करा → (Ribose Sugar)	H_3PO_4	यूरिडायलिक अम्ल (Uridylic acid)

आर.एन.ए. के न्यूक्लिओटाइड्स (Nucleosides of RNA)

नाइट्रोजन क्षारक (Nitrogen base)		**शर्करा (Sugar)**		**न्यूक्लिओसाइड्स (Nucleosides)**
1. एडिनीन (Adenine)	+	राइबोस शर्करा **(Ribose Sugar)**	→	राइबोस एडिनइलिक **(Ribose Adenylic)**
2. गुवानीन (Guanine)	+	राइबोस शर्करा **(Ribose Sugar)**	→	राइबोस ग्वानिलिक (Ribose Gunylic)
3. थाईमीन (Thymine)	+	राइबोस शर्करा **(Ribose Sugar)**	→	राइबोस सायमिडायलिक (Ribose Cytidylic)

4. साइटोसीन (Cytosine) + राइबोस शर्करा **(Ribose Sugar)** → राइबोस यूरिडायलिक (Ribose Uridylic)

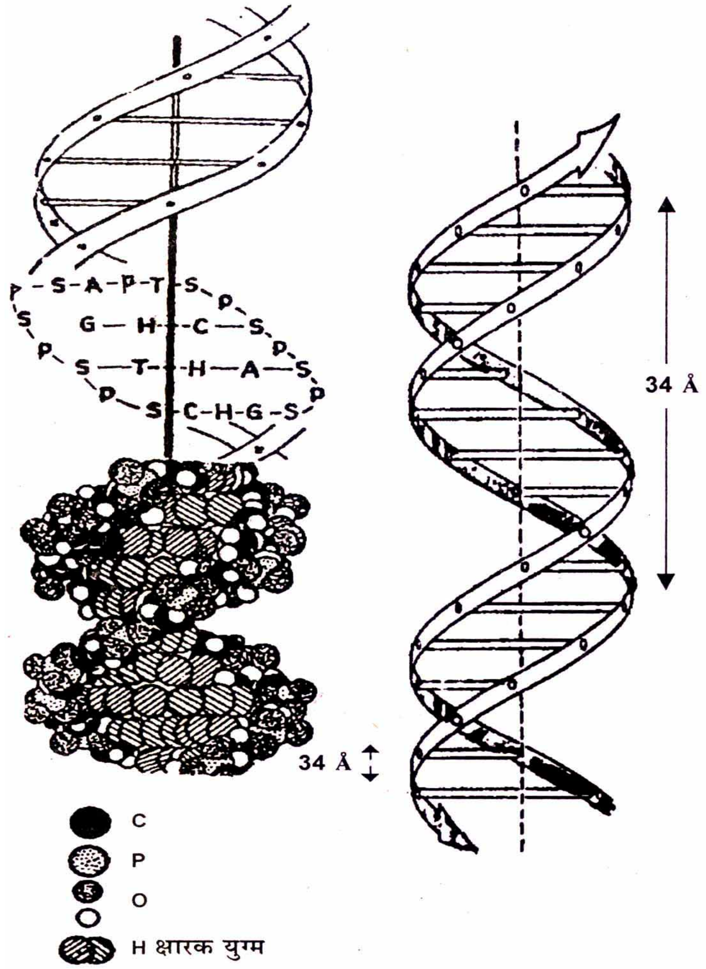

चित्र : डी एन ए (DNA) की संरचना (वॉटसन व क्रिक मॉडल)

न्यूक्लिक अम्ल आनुवांशिक लक्षणों को पीढ़ी-दर-संचरित करते हैं।

वर्णक (Pigments): वर्णक वह पदार्थ होते हैं जो प्रकाश का रंग बदल देते हैं। जब वह प्रकाश को परावर्तित करते है। यह पदार्थ रंगों का चयनित अवशोषण (Selective absorption) करने में सक्षम होते हैं। यह विभिन्न तरंग दैर्ध्य (Wavelength) के प्रकाश का अवशोषण करते हैं।

उदाहरण :

(1) पादप वर्णक (Plant pigments)

एन्थोसायनिन (Authocyanin) लाल, नीले

क्लोरोफिल (Chlorophyll) हरा

कैरोटीनॉयड्स (Carotenoids) लाल, नारंगी या पीले

(2) प्राणि-वर्णक (animal Pigments)

हीमोसायनिन - नीला

बिलरूबिन - हरा

हीमोग्लोबिन - लाल मायोग्लोबिन - लाल

ल्यूसीफरीन

रोडोप्सिन

1.3.11 एन्जाइम का संक्षिप्त परिचय (Brief Introduction 0f enzymes)

एन्जाइम जटिल कार्बनिक उत्प्रेरक (Organic Catalysts) होते हैं, जो जीवित कोशिकाओं द्वारा उत्पन्न होते हैं। इसीलिए इन्हें **बायोकैटेलिस्ट** (Biocatalyst) कहते हैं। ये संरचनात्मक रूप से प्रोटीन हैं।

एन्जाइम उपयुक्ततम तापक्रम व pH पर क्रियाशील होते हैं।

विभिन्न एन्जाइम्स का नामकरण प्राय: पदार्थ के नाम के आगे are लगा कर किया जाता है। जैसे: सूक्रोज (Sucrase), लाइपेज (Lipase) आदि। एन्जाइम सबस्ट्रेट (substrate) के साथ मिलकर एक यौगिक बनाता है जिसे माइकेलिस व मेन्टेन (Michaelis) & (Menten) ने एन्जाइम सबस्ट्रैट कॉम्पलैक्स (Enzyme-substrate complex) कहा।

बोध प्रश्न-2

(1) जीवद्रव्य को जीवन का भौतिक आधार किसने कहाँ?

(a)डीव्रीज

(b)हक्सले

(c)मेन्डल

(d)ब्राउन

(2)जीवन संगठन की न्यूनतम इकाई ;

(a)अणु

(b)परमाणु

(c)आयन

(d)यौगिक

(3)हमारे शरीर में जल का प्रतिशत है,

(a)600% - 70%

(b)70% - 80%

(c)80% - 90%

(d)65% - 75%

(4)स्टेरॉल्स हैं;

(a)प्रोटीन

(b)कार्बोहाइड्रेट

(c)वसा

(d)न्यूक्लिक अम्ल

(5)निम्न में से कौन सा नाइट्रोजन क्षार केवल RNA में पाया जाता है?

(a)एडिनीन

(b)यूरेसिल

(c)थायमिन

(d)साइटोसिन

1.4 सारांश (Summary)

- जीव विज्ञान में जीवों की प्रवृत्ति, संरचना, अंगों की कार्यविधि व सजीव और निर्जीव से अंतः क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।
- जीवधारियों में वृद्धि, गति, गमन, पोषण, श्वसन, उपापचय, उत्सर्जन, उत्तेजनशीलता, प्रजनन, विकास व मृत्यु आदि महत्वपूर्ण क्रियाएँ होती है।
- जीवद्रव्य, कोशिका में पाया जाता है और इसे दो भागों में बाँटा गया हैं: कोशिका द्रव्य व केन्द्रक द्रव्य।
- जीवन संगठन में कोशिका सबसे छोटी इकाई है । परमाणु जुड़कर $\rightarrow$ अणु $\rightarrow$ अंगक $\rightarrow$ कोशिका $\rightarrow$ उत्तक $\rightarrow$ अंग तंत्र $\rightarrow$ जीव जाति $\rightarrow$ जनसंख्या (समष्टि) $\rightarrow$ जैविक समुदाय $\rightarrow$ जैविक समुदाय अजैविक कारक सम्मिलित रूप से पारिस्थित तंत्र का निर्माण करते हैं।
- जैव-रासायनिक अभिक्रियाओं के दौरान रासायनिक बंध टूटते हैं और पुन: बनते हैं।
- अकार्बनिक यौगिक: जल, लवण विटामिन और कार्बनिक यौगिक कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन व न्यूक्लिक अम्ल व वर्णक, जीव द्रव्य के अवयव हैं।
- एन्जाइम कार्बनिक उत्प्रेरक है जो शरीर के अन्दर विभिन्न रासायनिक क्रियाओं को तेज करते है।

1.5 शब्दावली (Glossary)

शारीरिकी	Anatony
वर्गीकरण	Classification
जीवाश्मिकी	Palaentology
उत्परिवर्तन	mutation
आनुवांशिकी	Genetics
उद्विकास	Evolution
पर्यावरण	Environment
परजीवी	Parasite
अजीर्ण	Indigestion
अघुलनशील	Insoluble

1.6 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

1. पोवर सी.बी (2004) सेल बायोलॉजी, Vol-1 हिमालय पब्लिशिंग हाऊस मुम्बई।
2. भाटिया ए. एल, कोहली के.एस. एवं जैन (2006) सेल बायोलॉजी एण्ड जेनेटिक, रमेश बुक डिपो जयपुर।

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answer to self-assessment Questions)

बोध प्रश्न-1

1. (b) 2. (a) 3. (a) 4. (b) 5. (b)
6. (d)

बोध प्रश्न-2

1. (b) 2. (b) 3. (d) 4. (c) 5. (b)

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

1. जीवधारियों के लक्षण बताएँ।
2. जीवन संगठन की विभिन्न इकाइयों को समझाएँ।
3. जीवद्रव्य के अकार्बनिक व कार्बनिक यौगिकों का वर्णन करें।
4. एन्जाइम पर टिप्पणी लिखें।

इकाई 2: कोशिका संरचना एवं कार्यिकी
(Call Structure and Function)

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य (Objectives)

2.1 सामान्य प्रोकैरिओटिक एवं यूकैरियोटिक कोशिका की संरचना (General Structure of Prokaryotic and Eukaryotic Call)

2.1.1 प्रोकैरिओटिक कोशिका

2.1.2 यूकैरियोटिक कोशिका

2.2 पादप एवं प्राणी की कोशिकाओं की तुलना (Comparison between Plant and Animal Call)

2.3 विभिन्न कोशिकांगों की संरचना (संक्षेप) एवं कार्य (Structure of Different Call Organelles (brief) and Function)

2.3.1 कोशिका भित्ति (Call Wall)

2.3.2 प्लाज्मा झिल्ली (Plasma Membrane)

2.3.3 केन्द्रक (Nucleus)

2.3.4 केन्द्रिक या न्यूक्लिओलस (Nucleolus)

2.3.5 क्रोमेटिन जालक (Chrometin Reticulum)

2.3.6 माइटोकॉण्ड्रिया (Mitochondria)

2.3.7 लवक या प्लास्टिड्स (Plastids)

2.3.8 गॉल्जी बॉडी (Golgi body)

2.3.9 अन्त: प्रद्रव्यी जालिका (Endoplasmic Resticulum)

2.3.10 लाइसोसोम (Lysosome)

2.3.11 माइक्रोबॉडीज या सूक्ष्मकाय (Microbodies)

2.3.12 तारक केन्द्रक (Centriole)

2.3.13 सूक्ष्म नलिका (Microtubules)

2.3.14 राइबोसोम (Ribosome)

2.3.15 कशाभिकाएँ एवं पक्ष्माभिकाएँ (Cilia, Flagella and Microtubules)

2.4 कोशिका विभाजन (संक्षिप्त विवरण) [Cell division (brief description)]

2.4.1 सम-सूत्रीय विभाजन (Mitosis)

2.4.2 अर्घ सूत्रीय विभाजन (Meiosis)

2.4.3 असूत्रीय विभाजन (Mitosis)

2.5 सारांश (Summary)

2.6 शब्दावली (Glossary)
2.7 संदर्भ ग्रंथ (Further to self assessment Questions)
2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answer to self assessment Questions)
2.9 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

2.0 उद्देश्य (Objectives)

इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- प्रोकैरिओटिक एवं यूकैरियोटिक कोशिका की संरचना एवं उनमें अन्तर को समझ सकेंगे
- पादप एवं प्राणी कोशिकाओं की तुलना कर सकेंगे
- विभिन्न कोशिकांगों की संरचना एवं कार्य समझ सकेंगे
- कोशिका विभाजन की व्याख्या कर सकेंगे

2.1 सामान्य प्रोकैरिओटिक एवं यूकैरिओटिक कोशिका की संरचना (General Structure of Prokaryotic and Eukaryotic Cell)

2.1.1 प्रोकैरिओटिक कोशिकाएँ (Prokaryotic cells)

प्रोकैरिओटिक कोशिकाएँ सरल रचना वाली कोशिकाएँ है जिनमें एक दृढ़ कोशिका भित्ति से घिरी एक कोशिका कला होती है । इनमें केन्द्रक (Nucleus), हरित लवक (Chlorplast), गॉल्जीकाय (Golgi bodies), व माइटोकॉण्ड्रिया (Mitochondria) का अभाव होता है इनमें एक गुणसूत्र होता है।

उदाहरण : बैक्टीरिया (Bacteria),

नीलहीरत शैवाल (blue Green Algae),

स्पाइरोकीट (Spirochaete) व

माइकोप्लाज्मा या (Mycoplsama or Pleuropneumonia Like Organisms)

प्रोकैरिओटिक कोशिकाएँ यूकैरियोटिक कोशिकाओं से निम्न बातों से भिन्न होती है;

(i) केन्द्रक कला की उपस्थिति।

(ii) माइटोकान्ड्रिया, क्लोरोप्लास्ट, गॉल्जीकाय व लाइसोसोम आदि का अभाव।

(iii) प्रोकैरिओट में केवल एक गुणसूत्र होता है जिसमें DNA का केवल एक दोहरा स्टैण्ड होता है।

(iv) प्रोकैरिओट गुणसूत्र में क्षार प्रोटीन-हिस्टोन का अभाव होता है।

(v) न्यूक्लिओलस एवं समष्टि उपकरण नहीं होते।

(vi) कोशिका कला कोशिका द्रव्य में अन्र्तवलित होती है व इस पर श्वसन एन्जाइम होते हैं।

(vii) कोशिका द्रव्य में अमीबाभ व धाराप्रवाही गतियों का अभाव होता है।

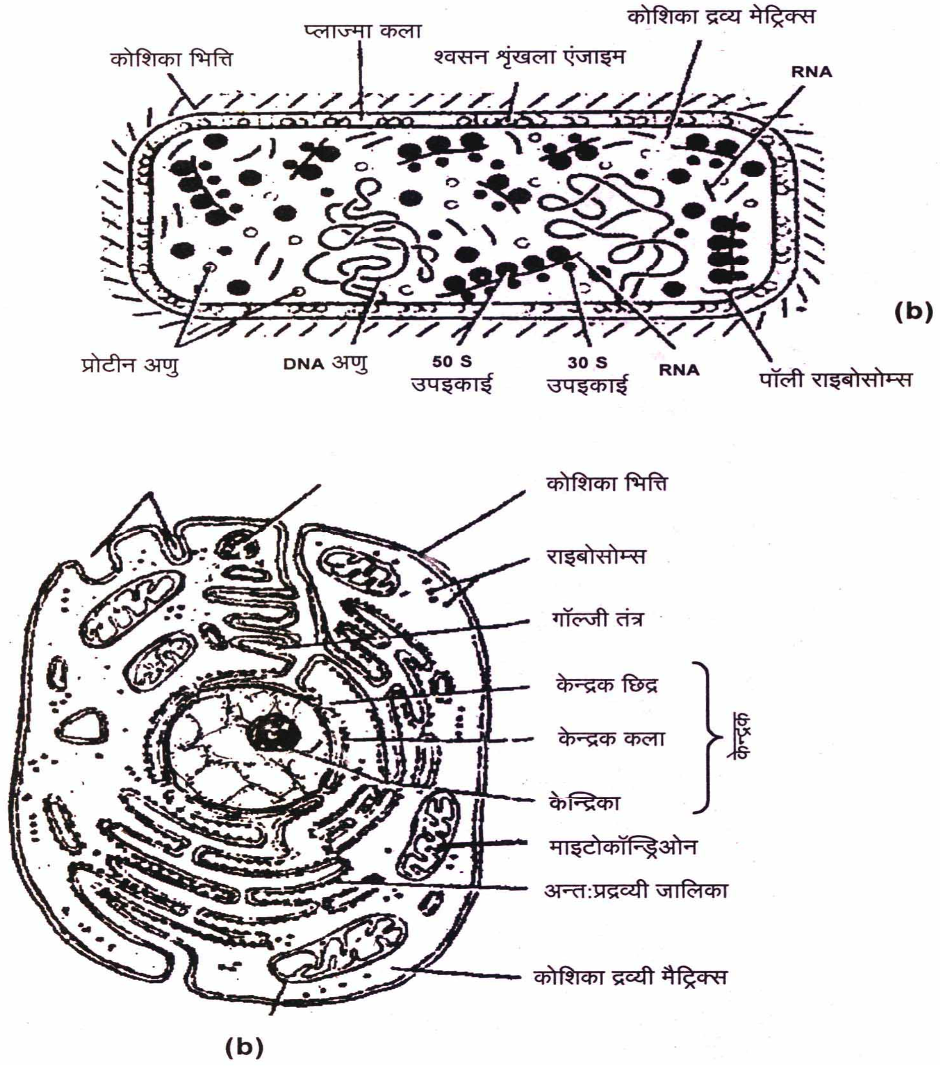

चित्र 2.1 (a) एक जीवाणु कोशिका (प्रोकैरिओटिक कोशिका)
एक यूकैरिओटिक कोशिका

2.1.2 यूकैरिओटिक कोशिकाएँ (Eukaryotic Cell)

यूकैरिओटिक कोशिकाएँ सामान्यत: जटिल रचना वाली कोशिकाएँ हैं। कुछ एक कोशिकाएँ संरचनाएँ जैसे कि प्रोटोजोआ एवं शैवाल भी यूकैरिओटिक कोशिकाएँ हैं। इनमें आकार, संख्या और कार्यिकी विभिन्नता पाई जाती हैं ये प्लाज्मा झिल्ली, कोशिका द्रव्य एवं कोशिकांगों जैसे - माइटोकॉन्ड्रिया एन्डोप्लास्मिक रेटिकुलम, गॉल्जी कॉम्प्लेक्स, लाइसोसोम, राइबोसोम व केन्द्रक की बनी होती है । प्रोकैरिओटिक कोशिकाओं के अलावा सधी यूकैरिओटिक कोशिकाओं के उदाहरण हैं।

2.2 पादप एवं प्राणी कोशिकाओं की तुलना

(Comparison between plant and Animal Cells)

लक्षण	पादप कोशिका (Plant cell)	प्राणि-कोशिका (Animal cell)
1. कोशिका भित्ति (Cell Wall)	कोशिका भित्ति उपस्थित	कोशिका भित्ति अनुपस्थित
2. रिक्तिका (Vacuole)	पीरपक्व कोशिकाओं के मध्य में एक बड़ी धानी अर्थात् रिक्तिका होती है।	प्राय' अनुपस्थित कुछ जीवों में छोटी या सूक्ष्म रिक्तिकाएँ होती है
3. लवक (Plastid)	कुछ जीवाणु व क्रवकों को छोड़कर सभी पौधों में लवक होते हैं ।	अनुपस्थित
4. सेन्ट्रोसोम (Centrosome)	उच्च पादपों में अनुपस्थित होते हैं।	सभी जन्तु कोशिकाओं में पाए जाते हैं।
5. गॉल्जीकाय (Golgi bodies)	कम विकसित एवं छितरा होता है, इसे डिक्टियोसोम (Dictyosome) कहते हैं।	पूर्ण विकसित एवं स्पष्ट गॉल्जीकाय होता है।
6. लाइसोसोम (Lysosome)	अनुपस्थित	उपस्थित
7. संचित खाद्य (Reserve food)	स्टार्च एवं वसा (कवकों में ग्लाइकोजन)	ग्लाइकोजन एवं वसा

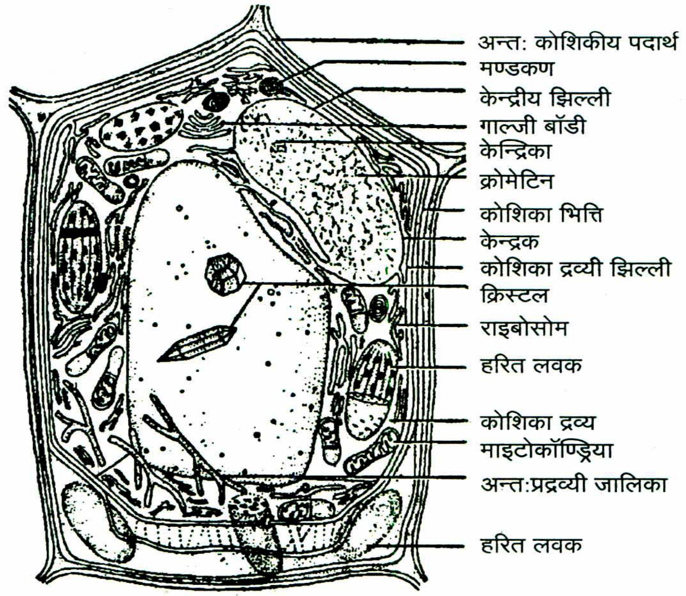

चित्र 2.2 (a): पादप कोशिका का इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शीय चित्र

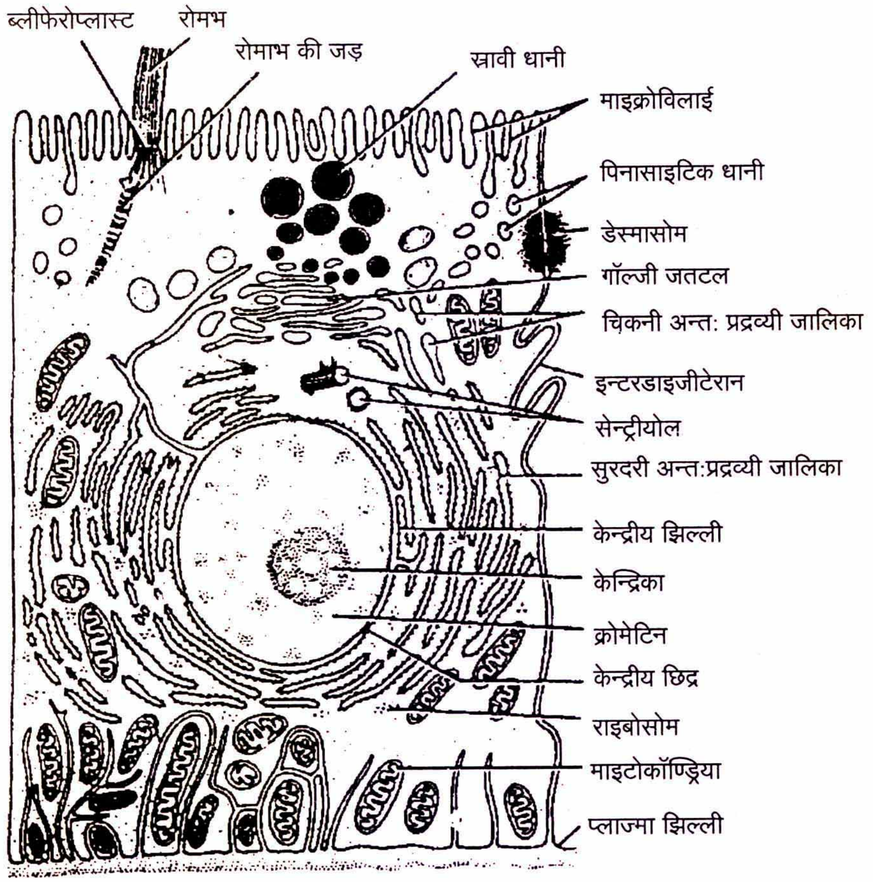

(b) प्राणी कोशिका का इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शीय चित्र

बोध प्रश्न-1

बहुविकल्पी प्रश्न (Multiple choice Question)

1. प्रोकैरियोटिक कोशिका में निम्न में से किसका अभाव होता हैं?
   (a)माइटोकॉन्ड्रिया
   (b)गॉल्जीकाय
   (c)लाइसोसोम
   (d)उपरोक्त सभी
2. पादप कोशिका में निम्न में से कौन सा कोशिकांग अनुपस्थित होता है?
   (a)राइबोसोम
   (b)कोशिका भित्ति
   (c)लाइसोसोम
   (d)माइटोकॉन्ड्रिया
3. प्रोकैरियोटिक कोशिका में कितने गुणसूत्र होते हैं?

(a)दो
(b)एक
(b)अनेक
(c)कोई भी नहीं

4. पादप कोशिका मे संचित मुख्य खाद्य पदार्थ होता है,
(a)ग्लाइकोजन
(b)वसा
(c)स्टार्च
(d)सभी

5. सरलतम कोशिका है,
(a)बैक्टीरिया
(b)पादप
(c)जन्तु
(d)कोई भी नहीं

2.3 विभिन्न कोशिकांग क संरचना एव कार्य (Structure of Different Cell Organelles and Function)

2.3.1 कोशिका भित्ति (Cell Wall)

यह एक निर्जीव पर्त है जो पादप कोशिकाओं में कोशिका कला (cell membrane) कहलाती है और जीवद्रव्य के स्त्रावक पदार्थ (secretory material) के रूप में उत्पन्न होती है। यह मुख्यत: सैल्यूलोज (cellulose) की बनी होती है। प्राणियों में यह अनुपस्थित होती है किन्तु यूग्लीना (euglena) और पैरामीशियम(Paramecium) में यह पाई जाती है।

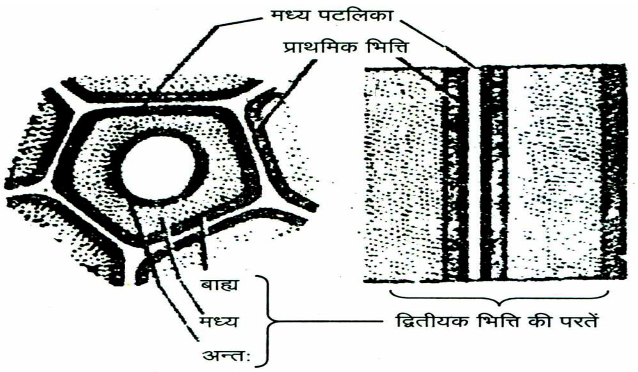

चित्र 2.3 : कोशिका भित्ति की संरचना

कोशीका भित्ति 3 भागों की बनी होती है

(i) **मध्य पटलिका** (Middle Lamella): यह कैल्शियम और मैग्नीशियम पैक्टेट की बनी होती है कोशिका भित्ति के जमाव के लिए एक आधारीय स्तर (basal layer) का कार्य करती है

(ii) **प्राथमिक भित्ति** (primary wall): यह पहली पर्त है जो हैमीसैल्यूलोज और पैक्टिक पदार्थों की बनी होती है

(iii) **द्वितीयक भित्ति** (secondary wall): यह तीन पर्तों की बनी होती है । ये पर्तें सैल्यूलोज और लिग्निन की बनी होती है।

कोशिका भित्ति के कार्य (Functions): कोशिका को दृढ़ता (mechanical strength) प्रदान करना।

2.3.2 प्लाज्मा झिल्ली (Plasma Membrane)

यह एक पतली, लचीली, वरणात्मक परागम्य कला (selectively permeable membrane) है। यह स्तरीय रासायनिक परिवर्तनों के कारण बनती है।

नागेली (Nagelli) ने 1855 में, जीवद्रव्य की बाह्यतम सतह को प्लाज्मा कला नाम दिया । इसे कोशिका कला (Cell Membrance) एव प्लाज्मालैमा (Plasmalemma) भी कहते हैं। इसकी मोटाई 75 μ होती है।

प्लाज्मा झिल्ली की संरचना का अध्ययन करने हेतु **सिंगर एवं निकोलसन** (Singer and Nicholson) ने सन् 1972 में द्रव मोजेक मॉडल (Fluid Mosaic Model) की व्याख्या की। इस प्रारूप के अनुसार वसा अणुओं तरह दोहरी परत प्लाज्मा कला के आधारीय ढांचे का निर्माण करती है। प्रोटीन के अणु इस वसीय परत के मध्य घंसे हुए अथवा इसकी सतह पर पाए जाते हैं।

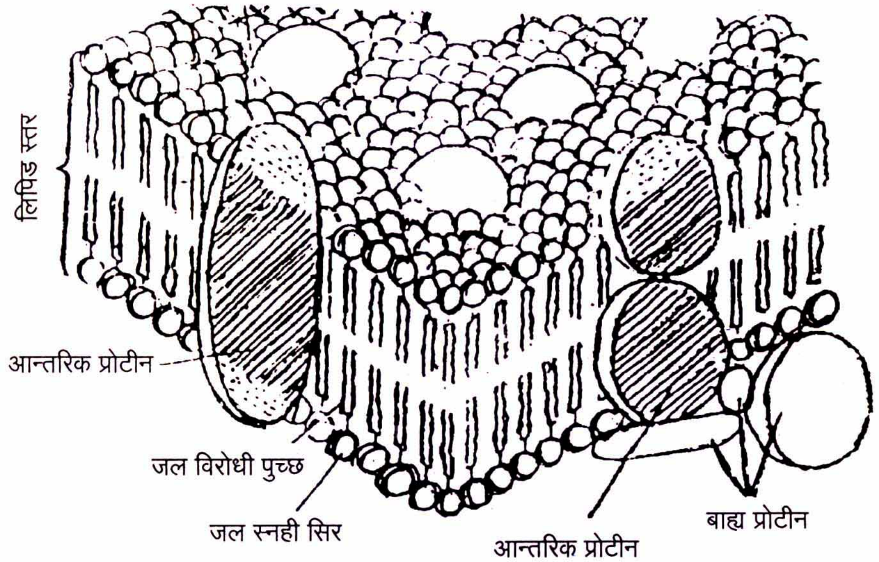

चित्र 2.4 : सिंगर एव निकोलसन का कोशिका कला का तरल मोजेक मॉडल

प्रोटीन के अणु दो प्रकार के होते हैं:

(i) **समाकल प्रोटीन** (Intrinsic protein): जो आंशिक या पूर्णतय: वसा की दोहरी परत में घंसे होते हैं।

(ii) **परिधीय प्रोटीन** (Extinsic proteins) : जो वसीय परत से ढीले रूप में संलग्न रहते हैं।

इस प्रकार सिंगर व निकोलसन के अनुसार, वसा के अणु अर्द्धतरल (quasi-fluid) अवस्था में व समाकल प्रोटीन्स के साथ मोजेक (mosaic) रूप में विस्थापित रहते हैं। इससे कला में लचीलापन आ जाता है व वसा के अणु अक्ष पर स्थानांतरण गति (Transitional Movement) व पार्श्व विसरण (lateral diffusion) में सक्षम हो जाते हैं।

कार्य (Functions):

1. **पारगम्यता** (Permeability): यह विभिन्न पदार्थों के आयन व अणुओं के बाहर जाने पर नियंत्रण रखती है।
2. **निष्क्रिय अभिगमन** (Passive transport): विभिन्न आयन अधिक सांद्रता से कम सांद्रता के क्षेत्र की ओर जाते हैं।
3. **सक्रिय अभिगमन** (Active): इस क्रिया में अणु, परासरण (cosmosis) के नियमों के विपरीत कम सांद्रता से अधिक सांद्रता की ओर जाते हैं और रासायनिक ऊर्जा का उपयोग होता है।
4. **एन्डोसाइटोसिस** (Endocytosis): बाहरी पदार्थ को कोशिका कला के द्वारा घेरे लेने कि क्रिया को एन्डोसाइटोसिस कहते हैं। जब तरल पदार्थों को घेरा जाता है तो क्रिया को पिनोसाइटी क्रिया (Pinocytosis) व ठोस पदार्थों को घेर कर तोड़ने की क्रिया को भक्षकाणु क्रिया (Phagocytosis) कहते हैं।

2.3.3 केन्द्रक (Nucleus)

केन्द्रक कोशिका का अतिस्पष्ट एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंगक है । इसे कोशिका का नियंत्रण कक्ष (controlling centre) भी कहा जाता है क्योंकि सभी कोशिकीय गतिविधियों का नियंत्रण एवं संचालन इसी के द्वारा किया जाता है।

केन्द्रक की खोज 1931 में **रॉबर्ट ब्राउन** (Robert Brown) ने की थी सभी परिपक्व यूकैरिओटिक कोशिकाओं में केन्द्रक उपस्थित होता है। जीवाणु (Bacteria), विषाणु (Virus) व नील-हरित शैवाल (Blue green algae) और प्रोकैरियोटिक कोशिकाओं में संगठित केन्द्रक का अभाव होता है और इसे न्यूक्लिओएड (nucleoid) कहते हैं।

केन्द्रक में साधारणत: केन्द्रकद्रव्य (nucleoplasm), जिसमें गुणसूत्र (chromosmes) और केंद्रिकाएँ (nucleoli) होती है। यह पतली, लचकदार व छिद्रयुक्त केन्द्रक कला (nuclear membrane) द्वारा घिरा रहता है। केन्द्रक द्रव्य में क्रोमेटिन नामक जटिल न्यूक्लियोप्रोटीन होता है। केन्द्रक में उपस्थित प्रोटीन संश्लेषण में भाग लेता है।

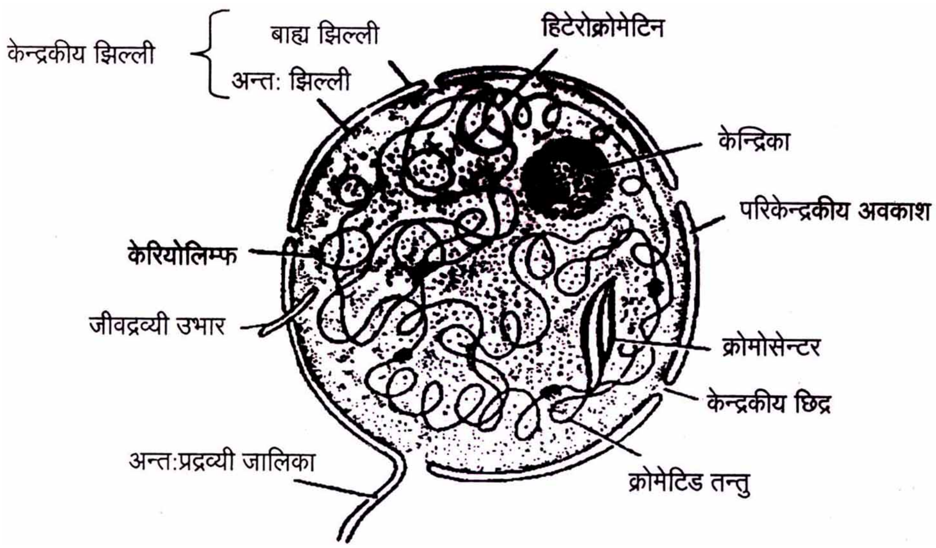

चित्र 2.5 : केन्द्रक की विस्तृत संरचना

कार्य (Functions)

1. कोशिका की समस्त उपापचयी (metabolic) व अन्य क्रियाओं का नियंत्रण।
2. आनुवांशिकता (heredity) में महत्वपूर्ण भूमिका।
3. rRNA, राइबोसोमल धैर्य' का निर्माण।
4. केन्द्रक कला छिद्रित (preforated) होने के कारण कोशिका द्रव्य के बीच आदान- प्रदान।
5. केन्द्रक में प्रोटीन संश्लेषण हेतु समस्त अवयव व आनुवांशिक कूट (Genetic code) के रूप में सूचनाएँ होती हैं।
6. कोशिका विभाजन (cell division) को नियंत्रित करना।

2.3.4 केन्द्रिका या न्यूक्लियोलस (Nucleolus)

केन्द्रिका की खोज सन् 1784 में फॉन्टाना (Fontana) ने की थी। ये गोल या अंडाभ होते हैं व कोशिका विभाजन की प्रोफेज अवस्था में लुप्त होकर टीलोफेज अवस्था में पुन: आभासित होते हैं इलैक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी देखने पर इसके चार भाग दिखते है;

(i) **दानेदार भाग** (Granular Mortion): ये केन्द्रिका का परिधिय स्तर बनाते हैं व राइबोन्यूक्लियो प्रोटीन के बने होते हैं।

(ii) **रेशेदार भाग** (Fibrillar portion): ये भी राइबोन्यूक्लियो प्रोटीन के बने होते हैं व क्रमिक रूप से दानों मे रूपान्तरित होते हैं।

(iii) **अमोर्फस भाग** (Amorphous portion): यह भाग प्रोटीन्स का बना होता है।

(iv) **केन्द्रिका सहसंबंधित क्रोमेटिन** (Nucleolus Associated Chromatin): यह माटे तंतुओं (Fibrils) का बना होता है।

कार्य (Functions):

1. राइबोसोम्स का जीवातजनन (Biogenesis)

2. समसूत्री विभाजन में योगदान
3. राइबोसोमल (RNA/rRNA) व प्रोटीन का निर्माण

2.3.5 क्रोमेटिन जालक (Chromatin Reticulum)

केन्द्रक द्रव्य में धागेनुमा संरचनाएँ पाई जाती है, जिन्हें क्रोमोनिमेटा (Chromonemata) कहते हैं। क्रोमेनिमेटा एक जाल के रूप में केन्द्रक द्रव्य में फैला रहता है एवं इसे क्रोमेटिन जालक (Chromatin Reticulum) कहते हैं। इन्हें क्षारीय अभिरंजनों के द्वारा अभिरंजित किया जा सकता हैं । क्रोमेटिक जालकों के द्वारा ही **गुणसूत्रों** (Chromosomes) का निर्माण कोशिका विभाजन के समय होता है। संघनित (Condensed), गहरे अभिरंजित स्थानों को **हेट्रोक्रोमेटिन** (Heterochromatin) कहते हैं। इनमें RNA की मात्रा अधिक व DNA की मात्रा कम होती है। इसके विपरीत यूक्रोमेटिन (Euchromatin) कम संघनित व हल्के अभिरंजित होते हैं। इनमें DNA की मात्रा RNA से अधिक होती है।

कार्य (Functions):

क्रोमेटिन जालक कोशिका विभाजन के समय गुणसूत्रों में रूपांतरित हो जाता है।

2.3.6 माइटोकाँन्ड्रिया (Mitochondria)

माइटोकाँन्ड्रिया की खोज सर्वप्रथम 1880 में कोलीकर (Kolliker) ने कीटों की रेखित पेशियों में की । फ्लेमिंग (Fleming) ने 1882 में इन्हें फीलिया (Flia) व अल्टमेन (Altman) ने 1890 में इसे बायोब्लास्ट (Bioblast) नाम दिया। बेन्डा (Benda) ने इन्हें 1897 में माइटोकाँन्ड्रिया नाम दिया, और 1902 में इन्हें कोन्ड्रियोसोम (Chondriosome) नाम दिया।

माइटोकाँन्ड्रिया कोशिका में स्वतंत्र रूप से छूते हुए या अधिक ऊर्जा की आवश्यकता वाले स्थानों पर स्थायी रूप से देखा जा सकता है।

माइटोकाँन्ड्रिया को अर्द्ध-स्वायत्त काय (Semi-autonomous bodies) भी कहते हैं क्योंकि इनमें स्वयं का DNA जो कि (DNA) से भिन्न होता है, पाया जाता है।

माइटोकाँन्ड्रिया दोहरी झिल्ली युक्त अंगक (double unit membrance organelle) है। बाहय एवं आंतरिक कलाओं के भीतर दो अक्ष (chambers) होते हैं। माइटोकाँन्ड्रिया की बाहय कला (outer mitochondrial membrane), बाहय सतत स्तर का निर्माण करती है एवं माइटोकाँन्ड्रिया को कोशिका द्रव्य से पृथक करती है।

आंतरिक माइटोकाँन्ड्रिया कला (Inner Mitochondrial Membrane) भीतर की ओर अंगुलीनुमा प्रबंधों (finger like projections) में निरूपित होती है । इन रचनाओं को माइटोकाँन्ड्रिया क्रिस्टी (cristae) कहते हैं माइटोकाँन्ड्रिया की दोनों कलाएँ 80-100A स्थान से पृथक रहती हैं। इस स्थान को परिमाइटोकॉन्ड्रियल स्थान (perimitochondrial space) अथवा बाहय कक्ष (outer Chamber) कहते हैं। माइटोकॉन्ड्रिया में वृत्ताकार DNA (Circular DNA) एवं 10 राइबोसोम मैट्रिक्स में पाई जाती है। आंतरिक कला अर्थात् क्रिस्टी

पर पाए जाने वाले कणों में वृन्त पाया जाता है । इसे F_1 कण (Elementary Particles) कहते है जो आधार (Base), मध्य वृन्त (Stalk) व शीर्ष (Head) से मिलकर बने होते हैं।

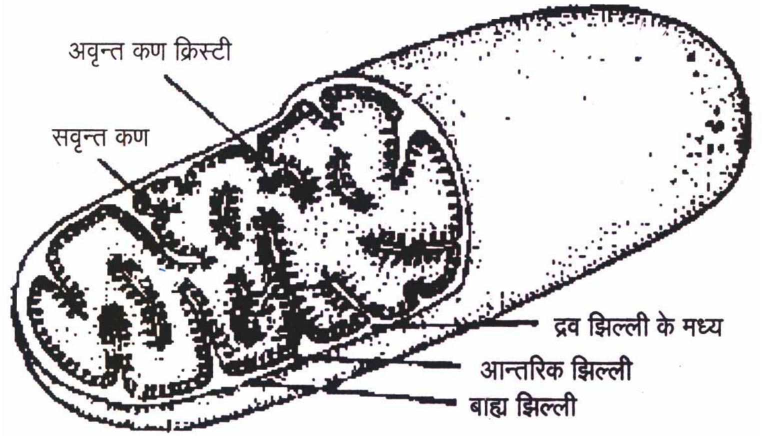

चित्र 2.6: माइटोकॉण्ड्रिया की संरचना

कार्य (Functions):

1. कोशिका का श्वसन केन्द्र है। ऊर्जा ATP की अवस्था में इकट्ठी रहती है और श्वसन में निर्मुक्त की जाती है इसीलिए इसे कोशिका का पावर हाऊस (power House) कहते है।
2. इसमें प्रोटियोलिटिक एन्जाइम पाए जाते हैं।
3. वसा मैटाबोल्ज्मि से संबंधित है।
4. क्रेब्स या सिट्रिक अम्ल चक्र को उत्प्रेरित करते हैं।
5. ऑक्सीकरण व फॉस्फोराइलीकरण की प्रतिक्रिया के लिए उत्तरदायी होते हैं।

2.3.7 लवक या प्लास्टिड्स (Plastids)

कुछ शैवाल (हरी -नीली), कवक व जीवाणुओं के अतिरिक्त लगभग सभी पादप कोशिकाओं में विशेष रचनाएँ जिन्हें प्लास्टिड कहते हैं, पाई जाती हैं। रंगों के आधार पर लवक तीन प्रकार के होते है;

(i) हरितलवक या क्लोरोप्लास्ट (Chloroplast): हरे रंग के

(ii) वर्णीलवक या क्रोमोप्लास्ट (Chloroplast): किसी भी रंग के

(iii) अवर्णीलवक या ल्यूकोप्लास्ट (Leucoplast): रंगहीन या श्वेत

(i) **हरितलवक**: ये क्लोरोफिल युक्त हरे लवक है जिनमें प्रकाश संश्लेषण (photosymthesis) की व्यवस्था होती है । शैवालों व पादपों में यह पाए जाते हैं । क्लोरोप्लास्ट दो परतों का बना होता है, इसके अंदर रंगहीन दानेदार पदार्थ, **पीढिका या स्ट्रोमा** (stroma) पाया जाता है, जिसमें बहुत सी (40-50) प्लेट की तरह की संरचनाएँ जिन्हें **ग्रैनम** (granum) कहते हैं, एक दूसरे से पट्टियों से जुड़ी रहती है । इन पट्टियों को पटलिकाएँ या लैमिली ल वक या प्लास्टिड्स (lamellae) कहते हैं। आवर्द्धित (magnified) क्लोरोप्लास्ट की काट के अनुसार ग्रैनम में उपस्थित लैमिली और पुटिकाएँ होती हैं जो एक के ऊपर एक रखी

रहती हैं । प्रत्येक पुटिका (loculus) को थाइलेकॉइड या डिस्क (thylakoid) कहते हैं। थाइलाकॉइड की यूनिट कलाओं पर क्लोरोफिल अणु ढेर के रूप में उपस्थित होते हैं, इन्हें क्वांटासोम (quantosome) कहा जाता है।

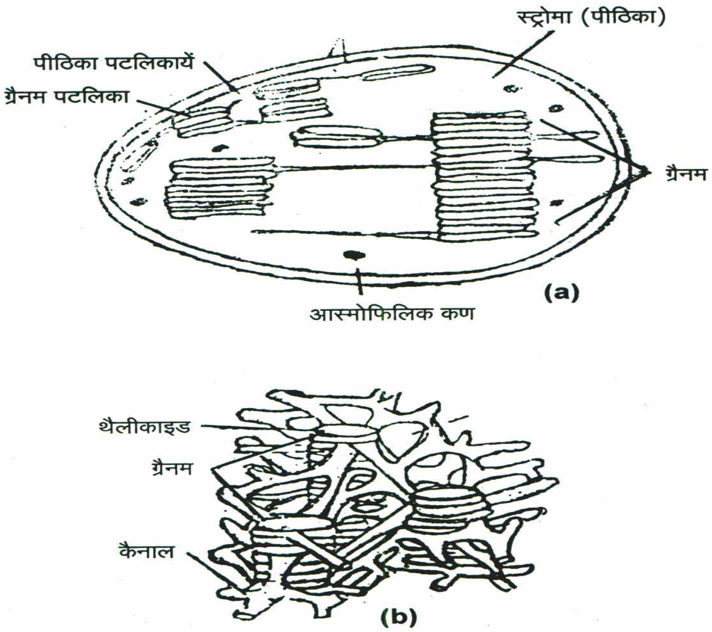

चित्र 2.7 : (a) क्लोरोप्लास्ट की संपूर्ण आंतरिक संरचना

(b) क्लोरोप्लास्ट की सूक्ष्म संरचना (थाइलेकाइड् की व्यवस्था)

(ii) **वर्णीलवक** (Chromoplast) : ये रंगीन - लाल, पीले या नारंगी होते हैं। एन्थोसाएनिन anthocyanin), कैरोटीन (carotene) और जैन्थोफिल (xanthophyll) इस के उदाहरण हैं।

(iii) **अवर्णीलवक** (Leucoplast) : ये रंगहीन लवक होते हैं। ये सामान्यत : पौधों के भूमिगत भाग या वायुवीय भागों के गहरे उत्तकों में पाए जाते हैं। एमाइलोप्लास्ट (amyloplast) शर्करा को मांड (starch) में बदलकर एकत्रित करते हैं। इसी प्रकार इलियोप्लास्ट (elioplast) जो तेल (Oil) संचित करते हैं, प्रोटीनोप्लास्ट (Proteinoplasts) जो प्रोटीन को संचित करते हैं।

2.3.8 गॉल्जी बॉडी (Golgi body)

उच्च जन्तु व पादप कोशिकाओं में अन्तर प्रद्रव्यी जालिका से जुड़ी हुई महीन एवं कणरहित, चिकनी (smooth) नलिकाओं का गुच्छा पाया जाता है, इसे गॉल्जी बॉडी या गॉल्जी कॉम्पलेक्स (Golgi complex) कहते हैं। कैमिलो गॉल्जी ने सन् 1898 में बर्न आउल (Barn Owl) की तंत्रिका कोशिकाओं में सर्वप्रथम गॉल्जी बॉडी को देखा व इसका वर्णन किया। इसे लिपोकॉन्ड्रिया (Lipochondria), डिक्टियोसोम (Dictyosome) के गॉल्जी उपकरण (Golgi Apparatus) भी कहते हैं। एक कोशिका में एक गॉल्जी बॉडी पाई जाती है| पादपों में इसकी संख्या अधिक हो सकती है। गॉल्जी बॉडी, चपटे थैलों, (flatlened sace or cisternae), स्पष्ट बड़े कोष

(large Clear Vacuslae) व अत्यधिक सूक्ष्म कोषों के समूह (cluster of minute vesicles) की बनी होती हैं।

(i) सिस्टर्नी (Cisternae) : ये लंबे, डिस्करूपर या समानान्तर 3.12 नलिकाओं के गुच्छों के रूप में होते हैं। इसकी उत्तल (Convex) सतह, केन्द्रीय आवरण (nuclear envelop) की ओर होती है और गॉल्जी काय का निर्माण स्थल (forning site) बनाती है। इसके विपरीत अवत्तल सतह (concave), गॉल्जी काय का परिपक्वन स्थल (maturation site) कहलाता है।

(ii) थैलेनुमा (Vacuoles) : ये बड़े और गोलाकार थैले, गॉल्जी उपकरण के परिपक्वन स्थलों पर पाए जाते हैं।

(iii) सूक्ष्म कोषों का समूह कर गुच्छा (Cluster of Minute Vesicles) : ये सिस्टर्नी के बाह्य स्थल पर दिखाई देती है और सिस्टर्नी से मुकुलम (budding) के द्वारा बनते हैं। गॉल्जी काय के स्रावी पदार्थ इन्हीं में संग्रहित किए जाते हैं और बाद में लाइसोसोम (Lysosome) में परिवर्तित हो जाते हैं।

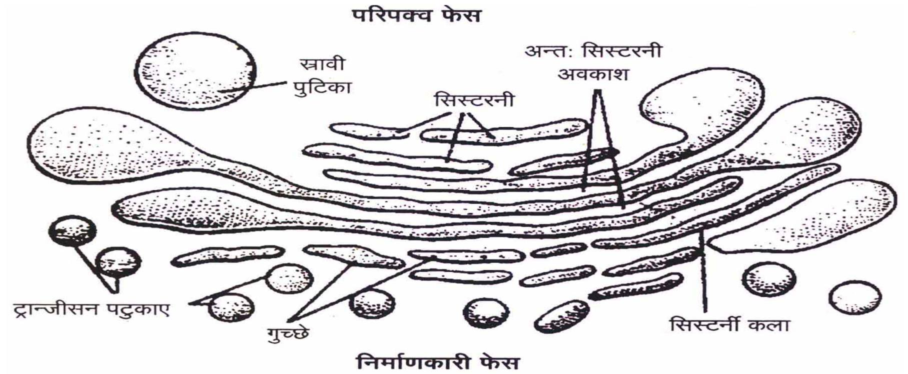

चित्र 2.8: गॉल्जी काम्पलेक्स की परारचना

कार्य (Functions) :

1. **अवशोषण** (Absorption) : लौह, ताँबा, स्वर्ण आदि को अवशोषित करना।
2. **संग्रहण** (Sorption) : वसा व एन्जाइम का संग्रहण करना।
3. **कार्बोहाइड्रेट्स का संश्लेषण** (Carbohydrate Synthesis)
4. **कोशिका स्राव का निर्माण :** ग्लाइकोप्रोटीन, हॉर्मोन्स, एल्बुमिन आदि का संश्लेषण होता है|
5. स्रावी कणों (Secretory Granules) में सांद्र पदार्थों को संग्रहित करना।
6. लाइसोसोम का निर्माण
7. एक्रोसोम का निर्माण (Formation of Acrosome)
8. एक्सोसाइटोसिस (Exocytosis) द्वारा स्रावी पदार्थों को कोशिका से बाहर निकालना।

2.3.9 अन्त:प्रद्रव्यी जालिका (Endoplasmic Reticulum)

कोशिका द्रव्य में अन्त:कलाओं का तंत्र (endomembrame system) जो कोशिकाद्रव्य की मैट्रिक्स का बहु शाखन (ramification) करता है और कोशिका को वलकृत दृढ़ता प्रदान करता

है, अन्त 'प्रद्रव्यी जालिका (ER) कहलाता है। इसे पहले एरगैस्टोप्लाज्मा (Ergoastoplasm) नाम दिया गया था। पोर्टर (Porter) ने 1945 में एंडोप्लाज्मिक रेटीकुलम की खोज की और पोर्टर व **कालमेन** (Parter and kallman) ने 1952 में इसे नाम दिया।

अन्त:प्रद्रव्यी जालिका मुख्यत : तीन रूपों में पाई जाती है :

(i) सिस्टर्नी या लेमीली (Cisternae or Lamellae)

(ii) थैलेनुमा (Vesicles)

(iii) नलिकाओं (Tubules)

सिस्टर्नी, लंबी व चपटी समानान्तर नलिकाएँ होती हैं, इनकी सतह पर राइबोसोम पाए जाते हैं जो प्रोटीन संश्लेषण करते हैं। थैलेनुमा संरचना, अण्डाकार (oval) या गोलाकार होती हैं। नलिकाकार (tubular) संरचनाएँ अनियमित, चिकनी, अतिशाखित (branched) होती हैं व अस्रावी होती हैं।

चित्र 2. 9: (a) एन्डोप्लाज्मिक जाल की तीन प्रकार की संरचनाएँ

अन्त :प्रद्रव्यी जालिका मुख्यत : दो प्रकार की होती हैं :

1. **चिकनी अन्त:प्रद्रव्यी जालिका** (Smooth ER) : इसके बाहर राइबोसोम नहीं होते। यह वसा व स्टेरॉयड्स (steroids) संश्लेषण में भाग लेता है।
2. **दानेदार अन्तःप्रद्रव्यी जालिका** (Rough ER). इसके बाह्य स्तर पर राइबोसोम पाए जाते हैं। और यह प्रोटीन संश्लेषण में भाग लेते हैं।

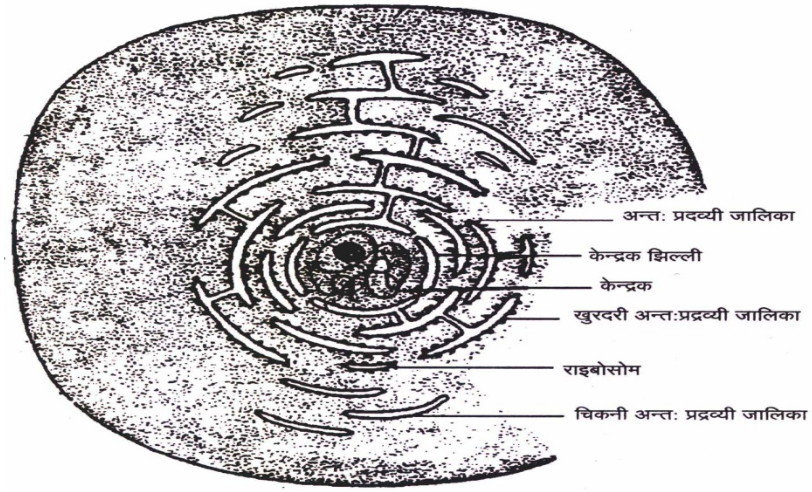

चित्र 2.9: (b) कोशिका में अन्तःप्रद्रव्यी जालिका की स्थिति

कार्य (Functions) :

1. कोशिका को यांत्रिक आधार (mechanical support) देती है।
2. एन्जाइमेटिक क्रियाओं हेतु उत्तरदायी (role in entymatic activities)
3. अन्य कोशिका कलाओं का निर्माण (Formation of other cytomembranes) करती है|
4. पदार्थों का आदान-प्रदान (Exchange of materials) करना।
5. संश्लेषण का कार्य (Synthetic activity) करना।
6. निरावकरण (Detoxification). चिकनी अंतःप्रद्रव्यी जालिका कोशिका को विभिन्न तत्वों के आविष प्रभाव से बचाती है।

2.3.10 लाइसोसोम (Lysosome)

लाइसोसोम की खोज व नामकरण डी ड्यूव (De Duve) ने 1955 में किया। 1949 में सर्वप्रथम यकृत कोशिकाओं के अपकेन्द्रक (Centifugation) से सूक्ष्म गोलाकार गहरी संरचनाओं को देखा, जिन्हें परिकेनेलिकुलर डेन्स बॉडीज (Pericanalicular Dense Bodies) नाम दिया गया था।लाइसोसोम में **पाचक एन्जाइम** (digestive enzyme) पाए जाते हैं अत : इन्हें पाचक रिक्तिका (digestive vacuole) या **आत्मघाती थैली** (suicidal bag) या **लयन थैली** (lytioc bag) कहते हैं। लाइसोसोम के चारें ओर लियोप्रोटीन की एक स्तरीय झिल्ली होती है। लाइसोसोम में बहु रूपता (Polymorphism) पाया जाता है और ये मुख्यत : दो प्रकार प्राथमिक या मूल (Primary Lysosome) और द्वितीयक लाइसोसोम (Secondary Lysosome) के होते हैं।

प्राथमिक लाइसोसोम : इन्हें संग्रह कण (Storage Granule) भी कहते हैं। इनके एन्जाइमिक घटक राइबोसोम द्वारा संश्लेषित होते हैं और अन्त:प्रद्रव्य जालिका में संग्रहित होते हैं जहाँ से ये गॉल्जीकॉमप्लेक्स में चले जाते हैं और झिल्लीबद्ध होते हैं।

Ribosomes,→ER→Golgi→Complex→Lysosome

द्वितीयक लाइसोसोम : इन्हें हेट्रोफैगोसोम (Hetrophagosome) अथवा पाचक रसधानियाँ (digestive vacuoles) भी कहते है। इनमें उपस्थित एन्जाइम जल अपघटन एवं भोजन का पाचन करके बचा हुआ अपशिष्ट पदार्थ कोशिका कला से बाहर निकाल देते हैं।

अवशिष्ट काय (Residual Body) : द्वितीयक लाइसोसोम में भोजन का यदि पूर्णत : पाचन नहीं होता तो इसे अवशिष्ट काय कहते हैं। ये बीमारियों का संकेत भी देते हैं।

स्वभक्षी धानिकाएँ (Autophagic Vacuolex) : इन्हें **साइटोलाइसोसोम अथवा ऑटोफैगोसोम** (Autophagosome) भी कहते हैं। इन लाइसोसोम के द्वारा कोशिका स्वयं अपने पदार्थ का भक्षाए करती है, इसे ऑटोफैगी (Autophagy) कहते हैं, इसीलिए इन्हें कोशिका के आत्मघाती थैले (suicidal bage) भी कहते हैं।

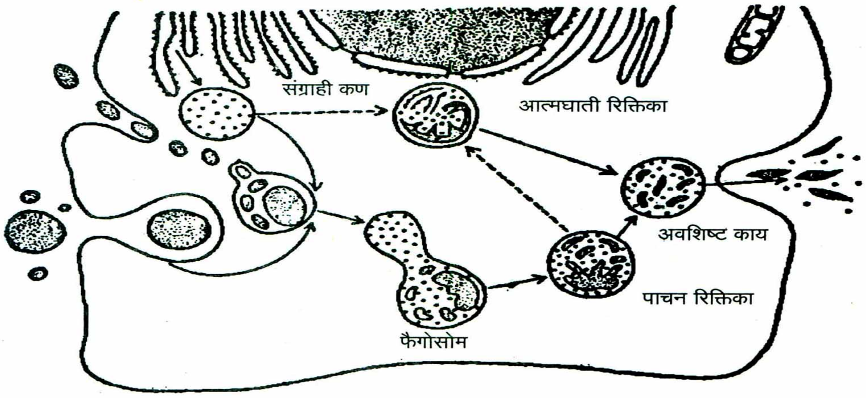

चित्र 2.10: लाइसोसोम की फैगोसाइटिक क्रिया

कार्य (Functions) :

1. बाह्य कणों का पाचन (Digestian of external particles,lysosomal digestion, Intracellular Digestion) फैगोसाइटोसिस (Phagocytosis) या एण्डोसाइटोसिस Endocytosis) के द्वारा होता है, फलस्वरूप अवशिष्ट काय बनती है और एक्सोसाइटोसिस (Exocytosis) के द्वारा यह अवशिष्ट पदार्थ बाहर निकाल दिया जाता है।
2. अन्तर कोशिकीय पदार्थों का पाचन (Digestion of intracellular substances or autophagy) करना।
3. लाइसोसोम के फट जाने पर कई रोग उत्पन्न होते हैं।
4. समसूत्री कोशिका विभाजन (mitosis) का प्रारंभन (initiation) करना।
5. पादपों के बीच अंकुरण (Seed germination in plants) करना। इस समय लाइसोसोमल एन्जाइम निर्मुक्त किए जाते हैं।

2.3.11 माइक्रोबॉडीज अर्थात् सूक्ष्मकाय (Microbodies)

लाइसोसोम जैसे इन कणों में एन्जाइम पाए जाते हैं परन्तु वो लाइसोसोमल एन्जाइम जैसे नहीं होतें। माइक्रोबॉडीज में यूरीकेज (Uricase) मुख्य एन्जाइम होता है। जन्तुओं में पाए जाने वाली माइक्रोबॉडीज में यूरीकेज अनुपस्थित होता है।

रोडिन (Rhodin) ने 1954 में चूहे के वृक्क में तीन प्रकार की माइक्रोबॉडीज का वर्णन किया।

(i) परऑक्सीसोम्स (Peroxisomes) : इनमें परऑक्सीडेज (Peroxidases) एवं कैटेलेसेज (Catalases) नामक एन्जाइम पाए जाते हैं।

(ii) स्फीरोसोम (Spheаrosomes) : इनमें जलअपघटनी एन्जाइम होते हैं। और यह लिपिड का संग्रहण करती हैं।

(iii) ग्लाऑक्सीसोम (Glyoxisomes) : ये पादपों में एण्डोस्पर्म (Endosperm) कोशिका में पाए जाते हैं। इनमें परऑक्सीसोम के अतिरिक्त ग्लाइऑक्सेलेट एन्जाइम भी पाए जाते हैं।

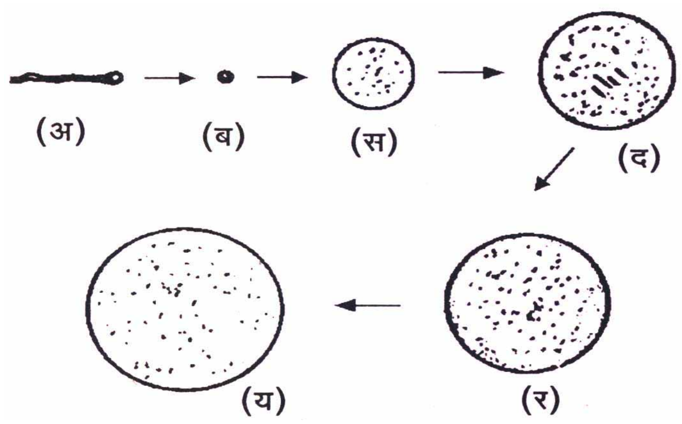

चित्र 2.11 : स्फीरोसोम व तैलीय बूंद का परिवर्धन : एक स्फीरोसोम है जो कि (अ) अन्त:प्रद्रव्यी के से (ब) अलग होकर एक छोटा (स) स्फीरोसोम है (द) बड़ा स्फीरोसोम क्रमश: (य) बीच की अवस्थाओं से गुजरता हुआ (र) तैलीय बूंद में परिवर्तित हो जाता है

कार्य (Functions) :

1. परऑक्सीसोम फोटोरेस्पीरेशन (Photorespiration) क्रिया का संपादन करता है।
2. स्फीरोसोम लिपिड उपापचय (Lipid Metabolism.) से संबंधित है।
3. ग्लाइऑक्सीसोम में पाए जाने वाले एन्जाइम ग्लाइऑक्सीसोम चक्र (Glyoxylate Cycle) में भाग लेते हैं।

बोध प्रश्न - 2

बहुविकल्पी प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1. कोशिका भित्ति मुख्यत : बनी होती है;
   (a)सेल्यूलोज
   (b)ग्लाइकोजन
   (c)काइटिन
   (d)लिग्निन
2. प्लाज्मा झिल्ली (Plasma membrane) की संरचना का अध्ययन करने हेतु द्रव मोजेक मॉडल (Fluid Mosaic Model) दिया था;
   (a)जेकब व मोनोड
   (b)वॉटसन व क्रिक
   (c)सिंगर व निकोलसन
   (d)गॉल्जी व डूवे
3. कोशिका का नियंत्रण कक्ष कहते हैं;
   (a)गॉल्जीकाय

(b)माइटोकॉन्ड्रिया

(c)केन्द्रक

(d)केन्द्रिक

4. माइटोकॉन्ड्रिया की खोज सर्वप्रथम किसने की थी;

(a)कोलीकर

(b)फ्लेमिंग

(c)अल्टमेन

(d)बेन्डा

5. F_1 कण (Elementary) माइटोकॉन्ड्रिया में कहाँ पाए जाते हैं?

(a)बाहृय झिल्ली

(b)क्रिस्टी

(c)पैरीमाइटोकॉन्ड्रिया

(d)मैट्रिक्स

6. प्रकाश संश्लेषण का कार्य करते हैं;

(a)हरितलवक

(b)वर्णीलवक

(c)अवर्णीलवक

(d)सभी

7. एक्रोसोम का निर्माण किस कोशिकांग द्वारा होता है?

(a)लाइसोसोम

(b)गॉल्जीकाय

(c)माइटोकॉन्ड्रिया

(d)कोशिका झिल्ली

8. निराविषीकरण (Detoxification) किस कोशिकांग के द्वारा होता है?

(a)चिकनी अन्तःप्रद्रव्यी जालिका (SER)

(b)दानेदार अन्तःप्रद्रव्यी जालिका (RER)

(c)लाइसोसोम

(d)गॉल्जीकाय

9. आत्मघाती थैली (Suicided bag) किस कोशिकांग को कहते है?

(a)रिक्तिका

(b)माइटोकॉन्ड्रिया

(c)लाइसोसोम

(d)राइबोसोम

10. यूरीकेज (Unicase) एन्जाइम मुख्यत: पाया जाता है?

(a)माइक्रोबॉडीज

(b)राइबोसोम

(c)लाइसोसोम

(d)किसी में भी नहीं

11. अन्तःप्रद्रव्यी जालिका का कौन सा भाग वसा व स्टेरॉयड्स संश्लेषण में भाग लेता है?

(a)चिकनी अन्त:प्रद्रव्यी जालिका

(b)दानेदार अन्तःप्रद्रव्यी जालिका

(c)दोनों

(d)कोई भी नहीं

2.3.12 तारक केन्द्रक (Centriole)

तारक केन्द्रक को कोशिका केन्द्रक (Cell Centre) भी कहते हैं। क्योंकि ये दो कोणों के रूप में दिखता है इसीलिए इसे डिप्लोसोम (Diplosome) भी कहते हैं। वॉन **बेन्डन** (Von Benden) ने 1887 में इसकी खोज की। ये सभी यूकेरियोटिक कोशिकाओं, निम्न पादपों (कवक, फफूँद, ब्रोयोफाइट्स) में पाए जाते हैं। ये केन्द्रक कला के पास स्थित होते हैं।

विभाजित न होने वाली कोशिकाओं में सेन्ट्रोसोम गाढ़ा एवं साफ क्षेत्र होता है जिनमें गहरे रंग की कणिका जिसे सेन्ट्रिओल (Centriole) कहते हैं। कोशिका विभाजन के समय सेन्ट्रिओल केन्द्रक के प्रत्येक ध्रुव पर आ जाते हैं और एस्ट्रल किरणें (Astral rays) बनती हैं जो स्पिन्डिल या तुर्क (Spindle) का निर्माण करते हैं। दोनों सेन्ट्रियोल व सेन्ट्रोसोम मिलकर सेन्ट्रोस्फेयर (Centrosphere) कहलाते हैं।

प्रत्येक सेन्ट्रियोल की भित्ति तीन सूक्ष्म तंतुओं (Astral rays) से बनती है और प्रत्येक त्रिक (Triplet) तीन सूक्ष्मनलिकाओं (Microtubules) से बना होता है। इन्हें आंतरिक सिरे से क्रमश: A,BवCकहते हैं।

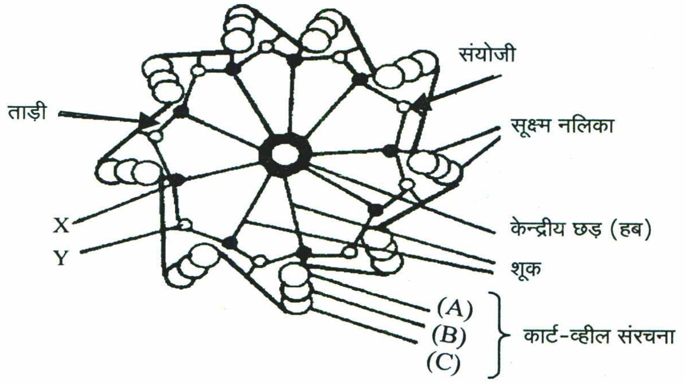

चित्र 2.12 : तारक केन्द्रक अथवा सेन्ट्रिओल की संरचना

कार्य (Functions)

1. ये कोशिका विभाजन के समय तर्कु तंतु (Spindle Fibres) का निर्माण करते हैं।
2. सीलिया, फ्लैजिला, रोम आदि के लिए ये आधारकाय बनाते हैं।
3. स्पमैटोजोआन में फ्लैजैला का निर्माण करते हैं।

2.3.13 सूक्ष्मनलिका (Microtubules)

सूक्ष्म नलिका की खोज सर्वप्रथम 1953 में **डी. राबर्टीस और फ्रांची** (De Robertis and Franchi) ने मज्जावृत तंत्रिका तंतु (Myelinated nerve Fibres) में की थी।

एक आड़ी काट में इनके बाह्य भाग में घनी (Dense) भित्ति (Wall) होती है एवं केन्द्रिय भाग हल्का होता है। माइक्रोट्यूब्यूल की भित्ति लंबे और धुमावदार (Spiral) तंतु सदृश संरचना की बनी होती है जो कई अधोइकाई (Sub-units) की बनी होती है। माइक्रोट्यूब्यूल की चार कक्षाएँ (Class) होती है :

(i) साइटोप्लाज्मिक माइक्रोट्यूब्यूल (Cytoplasmic Microtubule)

(ii) स्पर्मेटिड की ऐक्सेसरी नलिकाएँ और 9+2 काम्प्लेक्स की केन्द्रीय जोड़ियाँ (Accessory tubules of spermatid and central pai of 9+2 Complex)

(iii) "B" नलिकाएँ (B-Tubules)

(iv) "A" नलिकाएँ (A-Tubules of the 9+2 Complex of cilia and flagella)

कार्य (Functions) :

1. यांत्रिक कार्य (Mechanical Function) : कुछ कोशिका प्रवर्धों की आकृति का संबंध माइक्रो नलिकाओं के वितरण (distribution) और विन्यास (Orientation) से होता है।
2. माइक्रो नलिकाएँ कोशिका में परिसंचरण व वहन (circulation and transportation) में सहायक होती हैं।

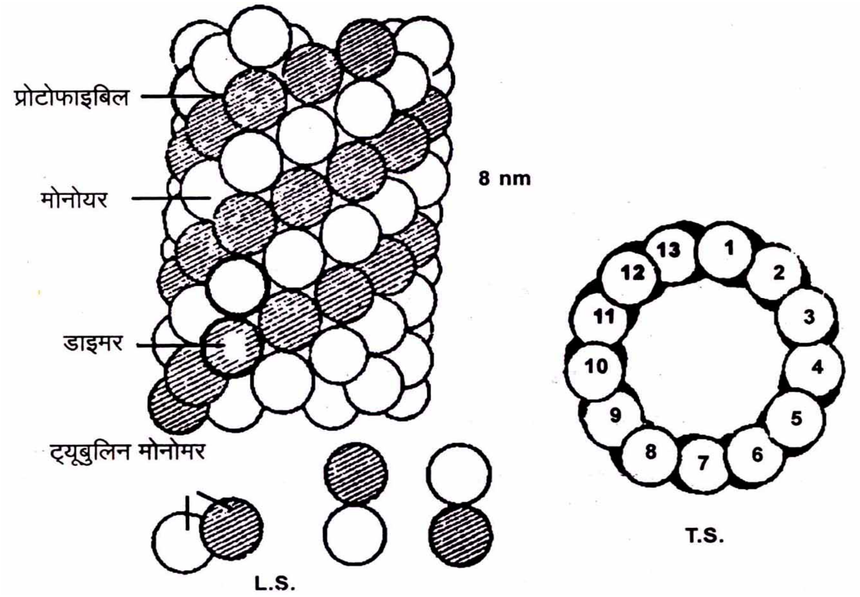

चित्र 2.13 : सूक्ष्मनलिका की संरचना

2.3.14 राइबोसोम (Ribosomes)

क्लॉड (Claude) ने सर्वप्रथम 1941 में राइबोसोम को संघनित कणिकाओं के रूप में देखा व इन्हें माइक्रोसोम (Microsome) नाम दिया। पलाडे (Plade) ने 1955 में इनको राइबोसोम नाम दिया। ये समस्त कोशिकाओं में विद्‌यमान होते हैं और मुख्यत' न्यूक्लि प्रोटीन व एन्जाइम के बने होते हैं। ये अधिकतर एन्डोप्लाज्मिक जाल की बाह्य सतह पर चिपके रहते और स्वतंत्र रूप से भी बिखरे रहते हैं। राइबोसोम मुख्यत प्रोटीन संश्लेषण का कार्य करते हैं अतः इन्हें कोशिका का इंजन (Engine of the cell) भी कहते हैं। कुछ कोशिकांगो उदाहरणार्थ माइटोकॉन्ड्रिया (Mitochondria) व क्लोरोप्लास्ट (Chloroplast) में भी उपस्थित होते हैं।

राइबोसोम सब ईकाइयों (Sub Units) में बंटा होता है। बडी उपइकाई गुम्बदाकार होती है एवं छोटी सब इकाई टोपी की तरह बड़ी इकाई के चपटी सतह से चिपकी रहती है। आकार एवं अवसादन गुणांकS (Svedberg Unit Sedimentation Coefficient) के आधार पर राइबोसोम 2 प्रकार के होते है|

1. 705 राइबोसोम (705 Ribosome) : ये बैक्टिरिया व प्रोकैरियोटिक कोशिकाओं में मिलते हैं। इनकी दो सब यूनिट 305 एवं 505 होती हैं।
2. 80S राइबोसोम (80S Ribosome) : ये यूकैरियोटिक कोशिकाओं में पाये जाते हैं। 80S राइबोसोम की 2 सब यूनिट 60S एवं 40S है

प्रोकैरियोटिक एवं यूकैरियोटिक राइबोसोम में अन्तर

(Differences between Prokaryotic and Eukaryotic Ribosomes)

लक्षण	प्रोकैरियोटिक राइबोसोम	यूकैरियोटिक राइबोसोम
1. अवसादन गुणांक (Sedimentation Coefficient)	70S	80S
2. आणविक भार (Molecular Weight)	2.8x10daltons	40×10daltons
3. आकार (Size)	18nm	20-22
4. बडी उपइकाई (Larger Subunit)	50S	60S
(a) अवसादन गुणांक	1.0×10^6 Daltons	2.7×10^6 Daltons
(b) आण्विक भार	34	40
(c) RNA के प्रकार		
(d) प्रोटीन्स		
5. छोटी उपइकाई (Smaller Submit)	30S	40S

(a) अवसादन गुणांक		
(b) आण्विक भार	1.3×10^6 Daltons	1.3×10^6 Daltons
(c) RNA के प्रकार	16S	18S
(d) प्रोटीन्स	21	30

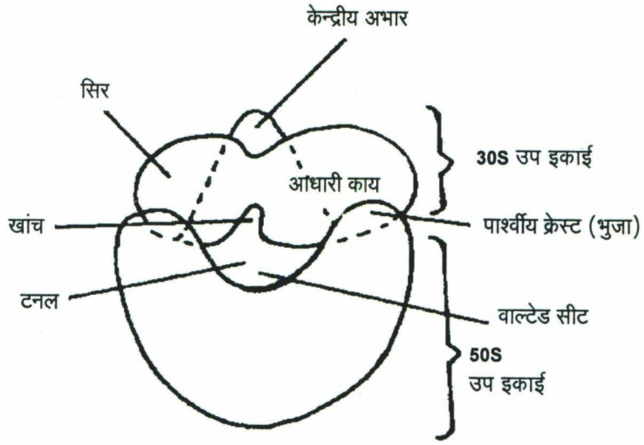

चित्र 2.14 : राइबोसोम की परारचना

माइटोकान्ड्रियल व क्लोरोप्लास्ट राइबोसोम (Mitochondrial and Chloroplast Ribosomes) : प्राणियों में पाये जाने वाले माइटोकान्ड्रियल राइबोसोम का अवसादन गुणांक भिन्न होता है। इनकी वृहत उपइकाई (Lager Submit) 40S-45S व छोटी उप इकाई (Smaller Submit)30S - 35S के मध्य होती है।

राइबोसोम की संरचना मुख्यत : Mg^{2+} की सान्द्रता पर निर्भर करती हैं । Mg^{2-} की 0.001M सान्द्रता पर दोनों सब यूनिट जुड़े रहते हैं।

कार्य (Functions) : राइबोसोम का मुख्य कार्य प्रोटीन संश्लेषण करना है।

2.3.15 कशाभिकाएँ एवं पक्ष्माभिकाएँ (Cilia and Flagella)

सीलिया व फ्लैजैला तंतु बेलनाकार प्रवर्ध (Process) होते हैं जो कि कोशिका की सतह से बाहर निकले होते हैं।

सिलिया में निम्न तीन मुख्य अवयव देखे गए हैं :

(i) **सीलियम** (Ciclium) : यह बेलनाकार व पतली पवर्द्ध है जो कि कोशिका की स्वतंत्र सतह से बाहर निकली रहती है।

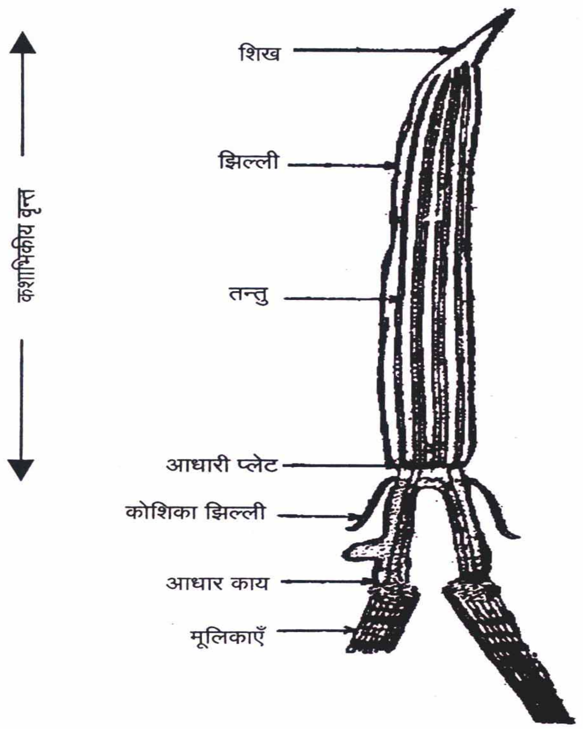

चित्र 2.15: (a) सीलिया की संरचना (L.S.)

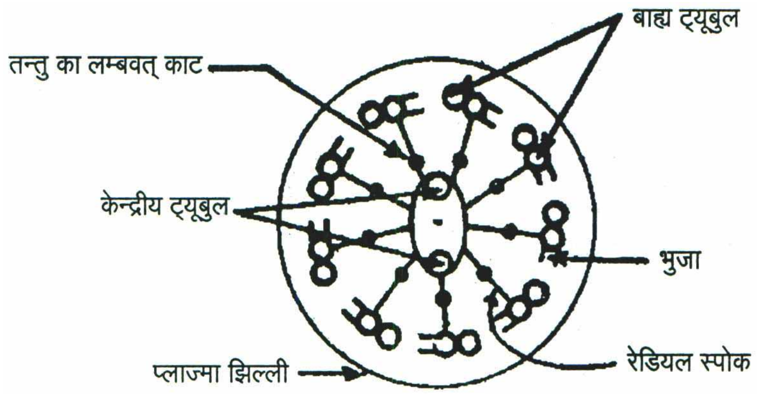

चित्र 2.15: (b) आधारकाय अर्थात् काइनेटोसोम की संरचना

(ii) आधारकाय या आधार कणिका (Basal Body or Basal Granule). ये अंत:कोशिकीय अंगक होते हैं जो सेन्ट्रियोल के समान संरचना रखते हैं।

(iii) पक्ष्मीय मूलिकाएँ (Cilium Rootlets) : कुछ केशिकाओं में आधार कणिकाओं से महीन तंतुक (fibrillae) निकलते हैं जो कि आगे चलकर आपस में जुड़कर एवं शंकुकार गुच्छे (conical bundle) बनाते हैं। ये गुच्छे के चक्र की ओर सिर किए रहते हैं।

कार्य (Functions)

1. कोशिका गति (Cell motion) करना
2. यांत्रिक क्रियाओं (Mechanical activities) में मदद करना।

2.4 कोशिका विभाजन (Cell Division)

जीवित प्राणियों में वृद्धि व मरम्मत कोशिका विभाजन के द्वारा होती है। कोशिका विभाजन, कोशिकाओं के परिपक्व होने के बाद शुरू होता है।

2.4.1 समसूत्रीय विभाजन (Mitosis)

एक जनक कोशिका का दो संतति कोशिकाओं में विभाजन जिनमें जनक कोशिका के बराबर संख्या के गुणसूत्र होते हैं, को सम - सूत्रीय विभाजन (Mitosis) या सोमेटिक विभाजन या केरिओकाइनेसिस (Karyokinesis) कहते हैं।

यह दो अवस्थाओं में पूर्ण होता है।

(1) **केन्द्रक विभाजन** (Karyokinesis) : पैतृक केन्द्रक के दो संतति केन्द्रकों में विभक्त होने की प्रक्रिया।

(2) **कोशिका द्रव्य विभाजन** (Cytokinesis) : दो संतति कोशिकाओं में कोशिका द्रव्य के विभाजन की प्रक्रिया।

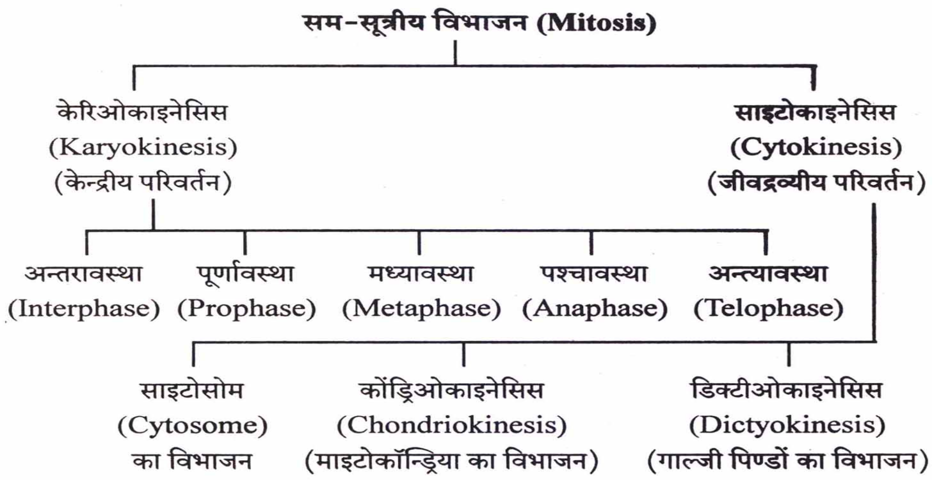

(1) **केन्द्रक विभाजन** (Karyokinesis) चार अवस्थाओं में होता है :

(i) **पूर्वावस्था** (Prophase) : इस अवस्था में क्रोमेटिन कणों का संघनन होता है। स्पाइरीम (Spireme) नामक जाल कुण्डलन व संघनन से गुणसूत्रों का निर्माण करते हैं। सेण्ट्रियोल विभाजित होकर विपरीत ध्रुवों पर पहुँच जाता है और तारा रश्मियों (Equator) बनाता है। केन्द्रक कला और केन्द्रिकाएँ अदृश्य हो जाती हैं।

(ii) **मध्यावस्था** (Metaphase) : इस अवस्था तुर्क की मध्य रेखा (Equator) पर एक प्लेट बनाकर, इक्वेटोरियल प्लेट (equatorial palate) पर व्यवस्थित हो जाते हैं।

(iii) **पश्चावस्था** (Anaphase) : इस अवस्था में जुडवाँ क्रोमेटिड पृथक होकर विपरीत ध्रुवों की ओर खिसकते हैं एवं J या V शक्ल में दिखाई देते हैं।

(iv) **अन्त्यावस्था** (Telophase) : गुणसूत्र अंकुडलित होकर अदृश्य होने लगते हैं। केंद्रिका दुबारा बनती हैं। केंद्रक कला का पुन : निर्माण होता है। अंतत : दो नए केंद्रकों का निर्माण हो जाता है जो अन्तरावस्था (Interphase) के केंद्रक के समान दिखाई देते हैं।

(2) **कोशिका द्रव्य विभाजन** (Cytokinesis) : दो नए बने केंद्रों के मध्य प्लाज्मा कला सिकुड़ कर साइटोप्लाज्म के विभाजन द्वारा दो पूर्ण संतति कोशिकाओं का निर्माण करती हैं। प्लाज्मा कला के इस कुंचन को साइटोकाइनेसिस (Cytokinesis) कहा गया है। जीव कोशिकाओं में कोशिका द्रव्य के विभाजन के समय पैतृक कोशिका में द्रव्य की परिधि (Periphery) की और एक खाँच का निर्माण होता है और पादपों में कोशिका प्लेट (Cell Plate) का निर्माण कोशिका द्रव्य के मध्य में होता है।

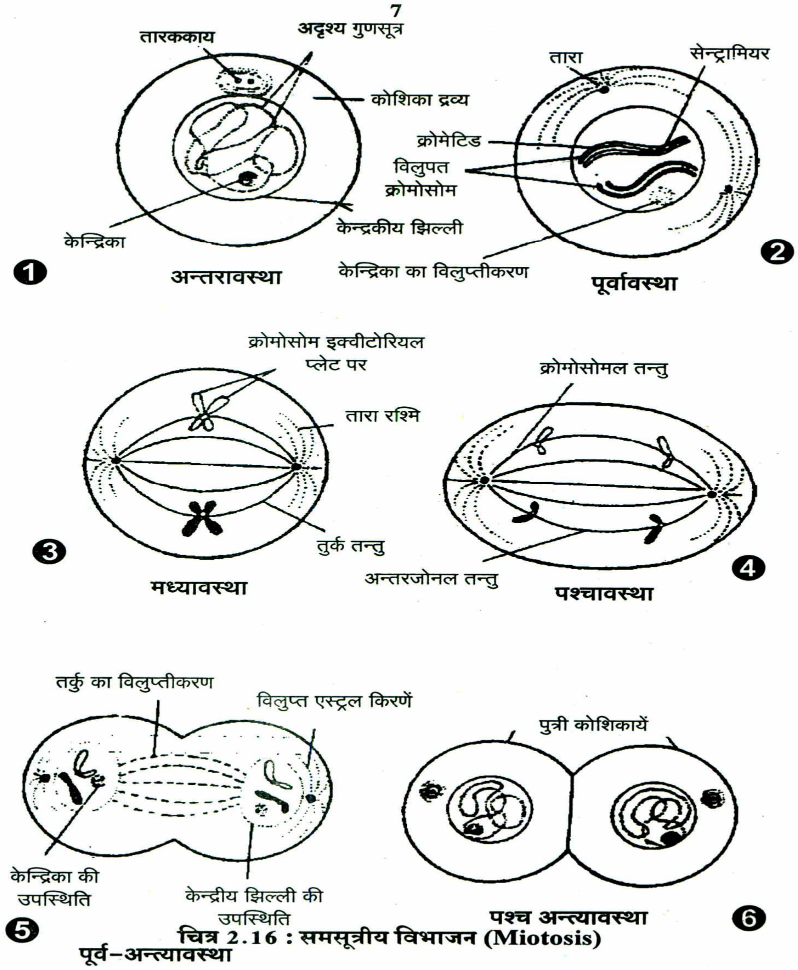

चित्र 2.16 : समसूत्रीय विभाजन (Miotosis)

समसूत्रीय विभाजन का महत्व (Significance of Mitosis) :

1. गुणसूत्र संख्या इस विभाजन के पश्चात दो संतति कोशिकाओं व जनक कोशिकाओं मे समान रहती है ।
2. उत्तकों की मरम्मत इस प्रक्रिया द्वारा होती है।
3. यह एक प्रकार से जनन की अलैंगिक प्रक्रिया (asexual reproduction)

2.4.2 अर्धसूत्रीय विभाजन (Meosis)

यह विभाजन उद्‌विकास की प्रक्रिया को समझने में सहायता करता है। इस विभाजन में केन्द्रक का दो बार विभाजन होता है और यह लैंगिक कोशिकाओं (Sex Cell) में होता है। इसमें संतति कोशिकाओं में गुणसूत्रों की संख्या K संख्या से आधी रह जाती है अत : इसे न्यूनीकरण विभाजन (Reduction Division) भी कहते है। यह दो प्रकार का होता है :

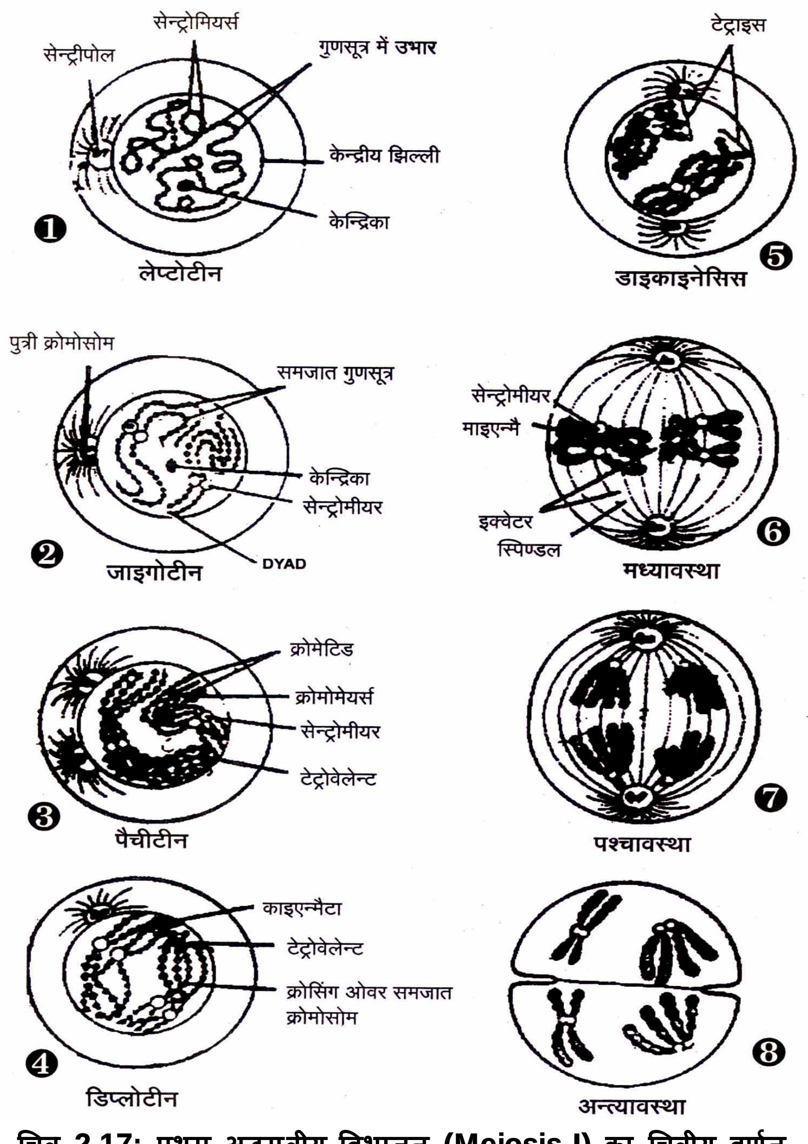

चित्र 2.17: प्रथम अद्धसूत्रीय विभाजन (Meiosis-I) का चित्रीय वर्णन

1. **विषमांग विभाजन** (Heterotypic Division) : इसे प्रथम अर्धसूत्री विभाजन (First Meiotic division) भी कहते है। यहाँ पर दिगुणित कोशिकाओं (dipcoid cell) को एकगुणित (Haploid) कोशिकाओं में विभक्त किया जाता है।

2. **समांगी विभाजन** (Homeotypic Division) :यह विभाजन सूत्रीय विभाजन (mitosis) की भांति ही होता है व इस के दौरान निर्मित दो कोशिकाएँ फिर से विभक्त होकर चार कोशिकाएँ बनाती है।

1. प्रथम अर्धसूत्रीय विभाजन (First Meoitic Division)

(i) **प्रथम पूर्वावस्था :** यह सबसे लम्बी व जटिल प्रक्रियाओं वाली अवस्था है। इसकी पाँच उपावस्थाएँ है।

(a) **लेपटोटिन** (Leptotene) : यहाँ गुणसूत्र विभिन्न आकार के क्रोमोमीयरस (Chromeres)के बने लम्बे पतले धागों की तरह होते हैं।

(b) **जायगोटीन** (Zygotene) : इस अवस्था में समजात गुणसूत्र (Homologus Chromosomes) अपनी पूरी लम्बाई के साथ पास-पास आकर सिनेप्सिस (Synpsis) या जोडी को बाइवेलेन्ट (bivalent) कहते हैं।

(c) **पैकीटीन** (Pachytene) : बाइवेलेन्ट गुणसूत्र लम्बवत दो समान क्रोमेटिड्स में विभक्त हो जाता है तथा प्रत्येक वाइवेलेन्ट के चार क्रोमेटिड होते हैं जिन्हें ट्रेटाड्स कहते हैं। दोनों समजात गुणसूत्र एक दूसरे से पूर्ण रूपेण पृथक नहीं होता वरन X विन्यासनों (X arrangements) अर्थात् काइज्मेटा (Chiasmata) द्वारा एक या अधिक बिन्दुओं पर आपस में जुड़े रहते हैं और इन्हीं स्थानों से टूटते है और अन्तर्विनियम (Interchange) होता है जिसे आनुवांशिक पुर्नमिलन (Genetic recombination) या क्रासिंग ओवर (Crossing over[) होता है।

(d) **डिप्लोटीन** (Diplotene) : समत्रातों के मध्य आकर्षण समाप्त होने पर प्रत्येक बाइवेलेन्ट के दो गुणसूत्र एक दूसरे से अलग हो जाते हैं।

(e) **डाएकानेसिस** (Diakenesis) : गुणसूत्रों की लम्बाई पर काइज्मैटा के विस्थापित (Displacement) होने की प्रक्रिया अर्थात् टरमिनलाईजेशन (terminalization) पूर्ण हो जाती है।

(ii) **पूर्व-मध्यावस्था** (Pre-Metaphase) : केन्द्रक कला व केन्द्रिकाएँ लुप्त हो जाती हैं और स्पिन्डल का निर्माण होता है। प्रत्येक टैट्रावेलेन्ट के दो सेन्ट्रोमीयर मध्य रेखा के विपरीत एक ऊपर व एक नीचे आ जाते हैं।

(iii) **प्रथम मध्यावस्था** (First Metaphase) : टैट्रावेलेन्ट कोशिका के मध्य भाग में खिसकते हैं व स्पिन्डल के मध्य भाग मे व्यवस्थित हो जाते हैं।

(iv) **प्रथम पश्चावस्था** (First Anaphase) : सेन्ट्रोमीयर का अविभाजित रहना इस अवस्था की मुख्य विशेषता है। यहाँ सेन्ट्रोमीयर ध्रुवों की ओर खिसकना शुरू हो जाता है।

(v) **प्रथम अन्त्यावस्था और इन्टरकाइनेसिस** (First Telphase and Interkinesis) : एकगुणित गुणसूत्र ध्रुवों पर पहुँचने के बाद लम्बे व पतले हो जाते हैं। केन्द्रक की कला व केन्द्रिका का पुनर्निर्माण हो जाता है।

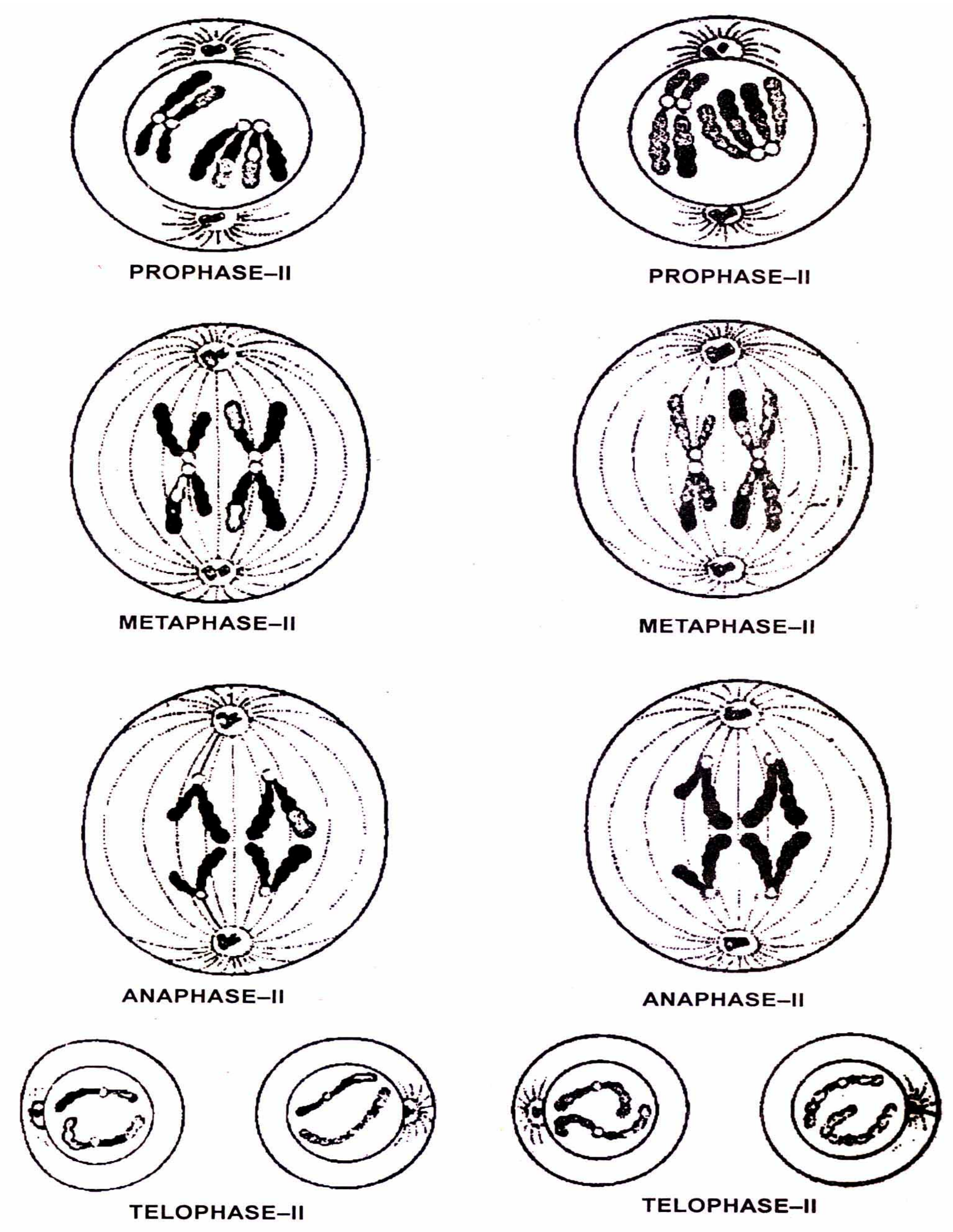

2.18 : द्‌वितीय अद्धसूत्रीय विभाजन

2. **द्‌वितीय अर्धसूत्री विभाजन** (Second Meiotic Division) : यह बिलकुल समसूत्री विभाजन के समान होता है।

अर्धसूत्री विभाजन का महत्व (Significance of Aqeiosis) :

1. गुणसूत्रों की डिप्लोइड (Diploid) संख्या आधी (haploid) हो जाती है।
2. अर्धसूत्री विभाजन के द्‌वारा गुणसूत्रों में विभिन्नता उत्पन्न होती है जिससे उद्‌विकास में सहायता मिलती है ।

2.4.3 असूत्रीय, विभाजन (Amitosis Division)

इसमें केन्द्रक डम्बल जैसा लम्बा होता है व अंत में दो केन्द्रक बन जाते है। संभवत : यह केवल प्रोटोजोआ व कई रूग्ण कोशिकाओं में पाया जाता है।

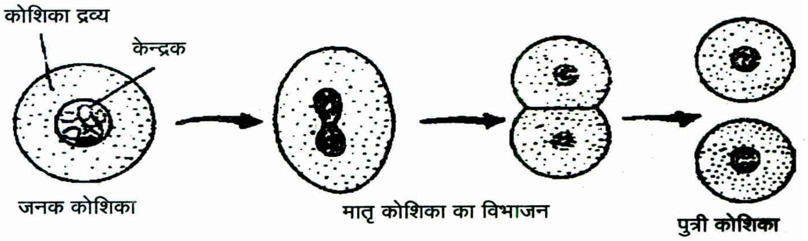

चित्र 2.19: अर्धसूत्रीय विभाजन

बोध प्रश्न - 3

बहुविकल्पी प्रश्न (Multiple choice Questions)

1. कोशिका विभाजन के समय तर्कु तंतु (Spindle fibre) का निर्माण करता है;
   (a)केन्द्रक
   (b)केंद्रिका
   (c)तारक केन्द्रक
   (d)माइटोकान्ड्रिया
2. सूक्ष्मनलिका की खोज 1953 में किसने की?
   (a)डी राबर्टीस व फ्रांची
   (b)सिंगर व निकोलसन
   (c)वॉटसन व क्रिक
   (d)इनमे से कोई नहीं
3. राइबोसोम की संरचना मुख्यत किस आयन की सांद्रता पर निर्भर करती है?
   (a)Ca
   (b)Mg
   (c)Mn
   (d)Fe
4. समसूत्रीय विभाजन जनन की किस प्रक्रिया को प्रदर्शित करता है?
   (a)लैंगिक
   (b)अलैंगिक
   (c)दोनों
   (d)कोई भी नहीं
5. काइज्मेटा (Chiasmata) का निर्माण अर्धसूत्रीय विभाजन के प्रथम पूर्वावस्था की किस उपावस्था में होता है:

(a)लेपटोरीन

(b)जायगोटीन

(c)पैकीटीन

(d)डिप्लोटीन

2.5 सारांश (Summary)

- प्राकैरिओटिक कोशिकाएँ सरल रचना वाली कोशिकाएँ हैं जिनमें संगठित केंद्रक की अनुपस्थिति होती है और युकैरिओटिक कोशिकाएँ जटिल रचना वाली कोशिकाएँ हैं जिनमें संगठित केंद्रक व अन्य कोशिकांग भी पाए जाते हैं।
- पादप कोशिका, जंतु कोशिकाओं से कोशिका भित्ति, बड़ी रिक्तिका, लवक व स्टार्च की उपस्थिति के कारण भिन्न होती है।
- कोशिका भित्ति पादपों में बहातम संरचना होती है जो पौधे को दृढ़ता प्रदान करती है।
- प्लज्मा झिल्ली पतली, लचीली व वरणात्मक परागम्य कला है जो मुख्यत: अभिगमन का कार्य करती है।
- केंद्रक कोशिका का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंगक है इसे कोशिका का नियंत्रण कक्ष भी कहते हैं। इसमें केंद्रिका, क्रेमेटिन जालक और केंद्रक द्रव्य पाया जाता है।
- माइटोकॉन्ड्रिया को कोशिका का पावर हाउस भी कहा जाता है। इसकी भीतरी झिल्ली (क्रिस्टी) में कई महत्वपूर्ण एन्जाइम होते हैं जो श्वसन क्रिया में भाग लेकर ATP का निर्माण करने में सहायक होते हैं। लवक मुख्यत: कार्यिकी के आधार पर तीन प्रकार के होते हैं - हरित लवक, वर्णीलवक व अवर्णीलवक
- गॉल्जीकाय केंद्रक के समीप उपस्थित संरचना होती है जिसका मुख्य कार्य संग्रहण होता है, अंतःप्रद्रव्यी जालिका केंद्रक की बाहय झिल्ली के साथ जड़ी हुई बहुशाखित संरचना है जो मुख्यत दो प्रकार की होती हैं - चिकनी व दानेदार।
- लाइसोसोम को आत्मघाती थैली या लयन थैली 'भी कहते हैं। इसमें बहुरूपता पाई जाती है और यह मुख्यत: पाचन का कार्य करती है।
- माइक्रोबॉडीज एन्जाइम युक्त (मुख्यत: यूरीकेज) संरचना है जो तीन प्रकार - परऑक्सीसोज, स्फीरोसोम व ग्लाइऑक्सीसोम, की होती है।
- तारक केंद्रक यूकैरिओटिक कोशिकाओं में पाया जाता है व कोशिका विभाजन के समय यह तर्कु तंतु बनाता है।
- राइबोसोम दो प्रकार- 70S (प्रोकैरिओटिक) एवं 80S (यूकैरिओटिक) का होता है जिसका मुख्य कार्य प्रोटीन संश्लेषण होता है।
- समसूत्रीय विभाजन में एक कोशिका से दो संतति कोशिकाओं का निर्माण होता है जो अलैंगिक जनन का प्रदर्शन करता है। इसकी दो अवस्थाएँ - केरिओकाइनेसिस (पूर्वावस्था मध्यावस्था, पश्चावस्था व अन्त्यावस्था) और कोशिका द्रव्य विभाजन होती है।

- अर्धसूत्रीय विभाजन, लैंगिक कोशिकाओं में होता है और गुणसूत्रों की संख्या मूल संख्या की आधी रह जाती हैं। इसमें प्रथम अर्धसूत्रीय विभाजन की प्रथम पूर्वावस्था बहुत लंबी होती है व उसकी पाँच उपापस्थाएँ होती हैं - लेप्टोटीन, जायगोटीन, पैकीटीन, डिप्लोटीन व डाएकाइनेसिस।

2.6 शब्दावली (Glossary)

स्रावक पदार्थ	Secretory material
वरणात्मक परागम्य कल	Selectively Permeable membrane
स्थानांतरण गति	Transitional movement
पार्श्व विसरण	Latual diffusion
आनुवांशिक कूट	Genetic code
अर्द-स्वायत्त अंग	Semi -automomous bodies
हरित लवक	Chloroplest
अन्त :प्रद्रव्यी जालिका	Endoplamic reticulum
निवावरण	Detoxification
आत्मघाती थैली	Suicidal bage
स्वभक्षी धानिकाएँ	Autophagic vacules
न्यूनीकरण विभाजन	Reduction division
द्विगुणित कोशिका	Diploid cell
एकगुणित कोशिका	Haploid cell

2.7 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

1. भाटिया, कोहली एवं जैन 2006 - कोशिका विज्ञान एवं जेनेस्टिक्स
2. रस्तोगी बीरवाला - रमेश बुक डिपो, जयपुर कोशिका विज्ञान - केदार नाथ रामनाथ मेरठ

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर(Answer to Self-Assessment Questions)

बोध प्रश्न - 1

1 (d)	2. (c)	3. (b)	4. C	5. (a)

बोध प्रश्न - 2

1. (a)	2. (c)	3. (c)	4. (a)	5. (b)
6. (A)	7. (b)	8. (a)	9. (c)	10(a)

11 (a)

बोध प्रश्न - 3

1. (c 2. (a) 3. (b) 4. (b) 5. (c)

2.9 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

1. कोशिका में केंद्रक का महत्व बताइएँ।
2. अन्तःप्रद्रव्यी जालिका की संरचना व मुख्य कार्यो पर प्रकाश डालिए।
3. निम्न पर टिप्पणी लिखिए :
   (a) लवक
   (b) सिंगर व निकोलसन का प्लाज्मा झिल्ली मॉडल
   (c) राइबोसोम
   (d) सूक्ष्मकाय
   (e) तारक केंद्रक
4. समसूत्रीय विभाजन और अर्धसूत्रीय विभाजन में क्या समानताएँ और अंतर हैं?
5. पादप एवं जन्तु कोशिका की सचित्र तुलना करें।

इकाई 3 : वर्गिकी प्राणियों का वर्गीकरण
(Taxonomy and Classification of Animals)

इकाई संरचना

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 वर्गिकी (Taxonomy) : सामान्य परिचय एवं वर्गीकरण के मूलभूत तत्व

3.2.1 नामकरण (द्‌वि एवं त्रिनाम पद्धति) [Nomenclature (Bio and Trinomial system)]

3.2.1.1 नामकरण कीं द्‌विनाम पद्धति (Binomial system of Nomenclature):

3.2.1.2 नामकरण की त्रिनाम पद्धति (Trinomial Nomenclature)

3.2.2 जगत प्रोटिस्टा एवं एनीमेलिया के विशिष्ट लक्षणों का अध्ययन (Study of Special Characters of kingdom Protista and Animalia)

3.2.3 जगत्‌ एनिमेलिया (Kingdom Animalia)

3.3 अपृष्ठवंशी प्राणियों का वर्गीकरण, संघों के सामान्य लक्षण, वर्गो के नाम, उदाहरण एवं आर्थिक महत्त्व (संक्षिप्त)

3.3.1 संघ-प्रोटोज़ोआ (phylum-protozoa)

3.3.2 संघ - पोरीफेरा (phylum-Porifera)

3.3.3 संघ-सीलेन्टरेटा (phylum-Coelenterata)

3.3.4 संघ-प्लैटीहेल्मिन्थीज (phylum-Platyhelminthes)

3.3.5 संघ-एस्केहेल्मिनथीज (phylum-Aschelminthes)

3.3.6 संघ-एनेलिडा (phylum-Annelida)

3.3.7 संघ-आर्थोपोडा (phylum-Arthropoda)

3.3.8 संघ-मॉलस्का (phylum-Mollusca)

3.3.9 संघ-इकाइनोडर्मेटा (phylum-Echinodermata)

3.3.10 संघ-हेमीकॉर्डेटा (phylum-Hemichordata)

3.4 पृष्ठवंशी प्राणियों का वर्ग स्तर तक वर्गीकरण: वर्गों के सामान्य लक्षण, उदाहरण एव आर्थिक महत्व (संक्षिप्त)

3.4.1 उपसंघ (Sub phylum) - सिफेलोकॉर्डेटा (Cephalochordata)

3.4.2 उपसंघ (Sub phylum): यूरोकॉर्डेटा (Urochordata)

3.4.3 उपसंघ (Sub phylum I-): वर्टीब्रेटा (Vertebrata)

3.4.4 वर्ग -एम्फीबिया (Class -Amphibia)

3.4.5 वर्ग -रेप्टीलिया (Class -Reptilia)
3.4.6 वर्ग-एवीज़ (Class -Aves)
3.4.7 वर्ग-मैमेलिया (Class -Mammalia)
3.5 सारांश (Summary)
3.6 शब्दावली (Glossary)
3.7 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)
3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answer to self assestment Questions)
3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप

- वर्गिकी : सामान्य परिचय एवं वर्गीकरण के मूलभूत तत्व
- अपृष्ठवंशी प्राणियों का वर्गीकरण, संघों के सामान्य लक्षण, वर्गों के नाम, उदाहरण एवं आर्थिक महत्व (संक्षिप्त)
- पृष्ठवंशी प्राणियों का वर्ग स्तर तक वर्गीकरण : वर्गों के सामान्य लक्षण, उदाहरण एवं आर्थिक महत्व (संक्षिप्त) के बारे में जान सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

आज तक पृथ्वी पर प्राणियों की लाखों प्रजातियों की खोज की जा चुकी है तथा इनकी संख्या में नित-प्रतिदिन बढोत्तरी दर्ज की जा रही है। यही नहीं, अत्यधिक संख्या होने के अतिरिक्त जन्तुओं में आवास, वास स्थान, संरचना, जीवन शैली, जीवन चक्र इत्यादि की भी अनेकानेक विषमताएँ एवं भिन्नतायें उपस्थित हैं। ऐसे में इनका अध्ययन जटिल एवं अरुचिकर हो जाता है । इसी को सारगर्भित रख तर्कसंगत बनाने के लिए समस्त प्राणियों को क्रमबद्ध तरीके से व्यवस्थित करने की आवश्यकता महसूस हुई, जहाँ पर इनके बारे में सभी आवश्यक जानकारी एवं लक्षणों को प्रस्तुत किया जा सके। विज्ञान की वह शाखा जिसके अंतर्गत समस्त प्राणियों को नामांकित कर इनके मध्य उपस्थित अंर्तसम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है वर्गिकी अर्थात् टैक्सोनॉमी (Texonomy) कहलाती है। इस प्रकार वर्गिकी, वर्गीकरण का विज्ञान है, जो प्राणियों में पायी जाने वाली समानताओं एवं असमानताओं के आधार पर इनका नामकरण करता है एवं इन्हें निकटता से सम्बन्धित समूहों में व्यवस्थित करता है। नामकरण (Nomenclature) एवं वर्गीकरण (classification), वर्गिकी के दो प्रमुख आयाम हैं। स्वीडन (Sweden) के कार्ल वॉन लिने (Karl Von Linne, 1707 - 1778) को टैक्सोनॉमी के जनक के रूप -न जाना जाता है। सन् 1735 में इनके द्वारा प्रकाशित पुस्तक सिस्टमा नेचुरे (Systema Naturae) में

प्राणियों को नामांकित एवं वर्गीकृत करने की समस्त जानकारी उपलब्ध है। इसी पुस्तक का दसवाँ संस्करण जो सन् 1758 में प्रकाशित हुआ आधुनिक वर्गिकी का आधार है।

3.2 वर्गिकी (Taxonomy): सामान्य परिचय एवं वर्गीकरण के मूलभूत तत्व

वर्गीकरण में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न समूहों को श्रेणी (Category), रेंक (Rank) अथवा टैक्सा (Taxa) कहा जाता है। वर्गीकरण की मूलभूत एवं सबसे छोटी इकाई जाति (species) है। प्राणियों के वे समूह जो आपस में अत्यधिक समानता रखते हैं, लगभग सभी लक्षणों में समान होते हैं तथा आपस में प्रजनन करने में सक्षम होते हैं एक जाति का निर्माण करते हैं। प्राणी समूह को वर्गीकरण के उत्तरोत्तर क्रम में निम्न रूप से प्रदर्शित किया जा सकता है :

Kingdom	(जगत)
Phylum	(संघ)
Class	(वर्ग)
Order	(गण)
Genus	(श्रेणी)
Species	(जाति)

विभिन्न समूहों के मध्य समानता दर्शाने के लिए मध्यस्थ समूहों जैसे अधिसंघ (Superphylum), उपसंघ (Subphylum), उपवर्ग (Subclass) इत्यादि का भी निर्माण किया जाता है।

संसार में पाए जाने वाले समस्त प्राणियों को उचित लक्षणों के आधार पर टैक्सोनॉमिस्ट्स के द्वारा **वैज्ञानिक नाम** (scientific names) दिए गए हैं। यह अत्यावश्यक है, क्योंकि जीव-जन्तुओं के सामान्य नाम (common names) स्थान-स्थान पर भिन्न-भिन्न होते हैं और कई बार तो दो अलग प्रकार के प्राणियों को एक ही नाम से जाना जाता है। ऐसी भ्रामक स्थिति को दूर करने के लिए समस्त प्राणियों के वैज्ञानिकों ने एक ही नाम से पुकारे एवं पहचाने जाने वाली पद्धति को प्रारम्भ किया। उनने यह सुनिश्चित किया कि पूरे संसार में निश्चित प्राणी का एक ही वैज्ञानिक नाम हो जिसके द्वारा उसे पुकारा जाए एवं किसी अन्य प्रकार के जन्तु को यह नाम दुबारा से नहीं दे दिया जाए। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व में मोर को Pavo cristatus, गौरइया को Passer domesticus, मक्खी को Musca domestica तथा मानव को Homo sapiens, के वैज्ञानिक नामों से जाना जाता है। कैरालस लिनेयस (Karolus Linnaeus) ने सर्वप्रथम प्राणियों को नाम देने की अर्थात् नामकरण की द्विनाम पद्धति (Binomial system of nomenclature) प्रारम्भ की।

3.2.1 नामकरण (द्‌वि एवं त्रिनाम पद्धति)

[Nomenclature (Bio and trinomial System]

3.2.1.1 नामकरण की द्‌विनाम पद्धति (Binomial System of Nomenclature):

प्राणियों का नामकरण करने के लिए कैरोलस लिनेयस ने लैटिन (Latin) भाषा का प्रयोग किया। इनके द्‌वारा प्रतिपादित नामकरण की द्‌विनाम पद्धति के अनुरूप प्राणी की प्रत्येक जाति को दो नामों से सम्बोधित किया जाता है, जिसमें प्रथम इसके **श्रेणी का नाम** (Generic name) होता है तथा दूसरा इसकी **जाति** (Species) को इंगित करता है। इस प्रकार तिलचट्टे अर्थात **कॉकरोज** (Cockroach); को Periplaneta americana; केंचुए को Pheretima posthuma एव शेर को Panthera leo के वैज्ञानिक नामों से जाना जाता है। उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि जनेरिक नाम सदैव ही संज्ञा (noun) होती है,-इसीलिए इसका प्रथम अक्षर कैपीटल (Capital) मे लिखा जाता है। जनेरिक नाम सामान्यत विशेषण होता है तथा इसे कभी भी बड़े अक्षर से नहीं लिखा जाता। प्राणियों के वैज्ञानिक नामों को टेढे अक्षरों (italics)में छापा जाता है, जबकि हाथ से लिखते समय इन्हें रेखांकित (underline) कर दिया जाता है। वैज्ञानिक तथ्यों का वर्णन करते समय यह ध्यान दिया जाता है कि स्पीशीज के नाम के बाद उस आदमी का नाम भी लिखा जाए जिसने सर्वप्रथम इसका वर्णन किया तथा किस वर्ष या सन् में यह कार्य किया गया उसका भी ब्यौरा सम्मिलित हो। उदाहरण के लिए मानव के वैज्ञानिक नाम Homo sapiens Linnaeus 1758' से अभिप्राय है कि यहाँ पर Homo श्रेणी का नाम है तथा Sapiens इसकी जाति है। वैज्ञानिक Linnaeus ने सर्वप्रथम सन् 1758 में इस की खोज की।

3.2.1.2 नामकरण की त्रिनाम पद्धति (Trinomial Nomenclature)

वर्गीकरण के दौरान प्राणी की उपजाति (Subspecies) को नामांकित करने के लिए नामकरण की त्रिनाम पद्धति का प्रयोग किया जाता है। उपजाति का उल्लेख सदैव ही जाति के उपरान्त किया जाता है व इसे भी लैटिन भाषा अथवा लैटिन स्वरूप में ही लिखा जाता है। इस प्रकार श्रेणी, जाति एवं उपजाति त्रिनाम पद्धति के प्रमुख घटक हैं। इसे समझने के लिए कौवे (House crow) का उदाहरण लिया जा सकता है। कौवे का वैज्ञानिक नाम Corvus splendens है, परन्तु भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका एवं वर्मा में पाए जाने वाले कौवों में अनेक आकारिकीय लक्षणों (Morphological features) मे भिन्नता देखी जा सकती है। इसी को उजागर करने के लिए इन प्राणियों को उपजाति के स्तर पर विभेदित किया जाता है। अत' भारतीय एव पाकिस्तानी घरेलू कौवों को Corvus splendens insolens नाम दिया गया है; श्रीलंका के कौवे Corvus splendens protegatus कहलाते हैं, जबकि उपजाति स्तर पर बर्मा के कौवों का वैज्ञानिक नाम (Corvus splendens insolens) रखा गया है। उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि भारत, श्रीलंका एवं बर्मा में पाए जाने वाले घरेलू कौवों की उपजातियाँ क्रमश: स्प्लेंडेंस (splendens), **प्रोटीगेटस** (protegatus) रख **इन्सोलेंस** (insolens) हैं।

3.2.2 जगत प्रोटिस्टा एवं एनीमेलिया के विशिष्ट लक्षणों का अध्ययन (Study of Special Characters of kingdom Protista and Animalia)

आर.एच. व्हिटकर (R.H.Whittaker) नामक वैज्ञानिक ने सन् 1969 में पंचजगत् व्यवस्था की परिकल्पना (Five Kingdome Scheme) प्रस्तुत को। इसके अनुरूप इसमें यूकैरियोटिक जीवों जैसे प्रोटोजोन्स (Protozoans), एल्गी (Algae) एवं श्लेष्मिक भुखडियों (Slime molds) को सम्मिलित किया गया है। चूकि भुखडियों का अध्ययन माइकोलाजिस्ट्रस के द्वारा किया जाता है, अत: इन्हें कवक (Fungi) की श्रेणी में रख दिया जाता है, परन्तु फाइलोजेनी की दृष्टि से मोल्ड्स प्रोटिस्टा से अधिक मेल खाते हैं।

प्रोटिस्ट प्राणियों के विशिष्ट लक्षण निम्नलिखित हैं :

1. सभी प्रोटिस्टस में यूकै रियोटिक प्रकार का कोशिकीय संगठन (eukaryotic cell organization) पाया जाता है।
2. प्रोटिस्ट प्राणियों की प्रजातियाँ गमन हेतु कूटपादों (pseudopodia), कशाभ (flazella) या रोमाभ (Cilia) जैसी रचनाओं का उपयोग करती हैं, जबकि अनेक अन्य किस्म के जीवों में गमनांग अनुपस्थित होते हैं। या तो ये विसर्पण (Gliding) के द्वारा गमन करते हैं अथवा इनकी पेशियों (myonemes) में संकुचन एवं शिथिलन के फलस्वरूप ये स्थान परिवर्तित करने में सक्षम होते हैं।
3. प्रोटिस्ट्स में प्रजनन की असीम क्षमता होती है। वातावरण की अनुकूलतम परिस्थितियों में ये एक दिन में कई बार प्रजनन कर संतति में तीव्र गति से वृद्धि लाते हैं। ये दोनों अलैंगिक (asexual) एवं लैंगिक (sexual) विधियों के द्वारा प्रजनन करते हैं।

   अलैंगिक प्रजनन में द्विभाजन (binary fission) एवं बहुविखण्डन (Multiple fission) सबसे सामान्य विधियाँ हैं। लैंगिक प्रजनन सिन्गेमी (syngamy), संयुग्मन (conjugation) एवं आटोगेमी (Autogamy) द्वारा सम्पन्न कराया जाता है।
4. स्वच्छ जलीय एवं परजीवी प्रोटिस्टा में पुटीभवन (encystment) एक महत्वपूर्ण क्रिया है। अतिशीत, सूखा, खाद्य पदार्थों की कमी या समष्टि के आकार में अत्यधिक वृद्धि (over population) के फलस्वरूप ये प्राणी पुटी का खोल बनाकर स्वयं की प्रतिकूल परिस्थितियों से रक्षा करते हैं।
5. प्रोटिस्ट प्राणियों में जीवन चक्र (life cycle) निम्न दो प्रकार का होता है :
   - (i) हेप्लोन्टिक (haplontic) प्रकार : यहाँ प्राणी एक गुणित (haploid) होता है। जीवन चक्र में युग्मनज (zygote) अवस्था ही द्विगुणित (diploicd) होती है।
   - (ii) डिप्लोन्टिक (diplontic) प्रकार : यहाँ प्राणी द्विगुणित होता है। द्विगुणित प्राणी एक गुणित युग्मकों (gametes) का निर्माण करते हैं।
6. फोटोसिन्थेटिक अर्थात् प्रकाश संश्लेशी प्रकार के प्रोटिस्ट्स में एल्गी को सम्मिलित किया गया है। ये हरित लवक (chlorophyll) युक्त सबसे सरल प्रकार के जीव होते हैं।

प्रोटिस्टन एल्गी में डाइनोफ्लेजिलेट्स (dinoflagellates), डाईएटम्स (diatoms) व यूग्लिना सदृश्य कशाभीय जीव प्रमुख उदाहरण हैं।

3.2.3 जगत् एनिमेलिया (Kingdome Animalia)

जगत् एनिमेलिया में पृथ्वी के समस्त प्राणियों को सम्मिलित किया गया है। इसे फिर प्रोटोजोआ (protozoa) एवं मेटाजोआ (metazoa) दो उप जगत' (sub kingdoms) में विभक्त किया गया है, जिनके महत्व पूर्ण लक्षण निम्नलिखित सारणी मे स्पष्ट किए गए हैं :

उपजगत प्रोटोजोआ	उपजगत मेटाज़ोआ
1. इसमें एक कोशिकीय सूक्ष्मजीव सम्मिलित किए गए हैं।	1. यहाँ पर बहुकोशिकीय (multicellular) जीवों को सम्मिलित किया जाता है।
2. जीवों की संरचना सरल प्रकार की होती है तथा इनके संगठन की कोटि जीव द्रव्य (protoplasm) स्तर की ही होती है।	2. जीवों की संरचना जटिल होती है तथा इनका संगठन कोशिकीय, ऊतकीय, अंग अथवा अंग -तंत्र स्तर तक का हो सकता है।
3. अलैंगिक जनन (asexual) अति सामान्य क्रिया होती है, जबकि लैंगिक जनन (sexual) कम ही अवसरों पर देखा जाता है।	3. सभी प्राणी लैंगिक जनन दर्शाते हैं। अलैंगिक जनन कुछ निम्न मेटाज़ोआ आ प्राणियों में ही सीमित रहता है।
4. श्रम का विभाजन (division of labour) बहुत सामान्य प्रक्रिया नहीं है।	4. श्रम का विभाजन अति सामान्य प्रक्रिया है।
5. उदाहरण : अमीबा, पैरामीशियम, यूग्लीना, प्लाज्मोडियम, जिआर्डिया, ट्रिपेनोसोमा इत्यादि।	5. उदाहरण : साइकॉन, हाइड्रा, फीताकृमी, केंचुआ, तारा मछली, मेंढक, मछली, पक्षी इत्यादि।

उपजगत मेटाज़ोआ को फिर पैराज़ोआ(parazoa) एवं यूमैटाज़ोआ (eumetazoa) नामक शाखाओं में विभक्त किया गया है, जिनके प्रमुख लक्षण निम्नलिखित तालिका मे दर्शाए गए हैं :

शाखा-पैराज़ोआ	शाखा-यूमैटाज़ोआ
1. इस शाखा में सम्मिलित प्राणी सामान्यतः छिद्र युक्त (porous) होते हैं।	1. इस शाखा मे सम्मिलित प्राणियों की देह पर छिद्र नहीं पाए जाते हैं।

2. प्राणियों की देह की भीतरी गुहिकाएँ देह गुहाएँ(cavities) कोएनोसाइट कोशिकाओं (chanocytes) द्वारा आस्तरित होती हैं।	2. देह गुहाएँ कोएनोसाइट के द्वारा आस्तरित नही होता है
3. प्राणियों के ऊतक विकसित प्रकार के नहीं होते तथा अंगो, स्पष्ट मुख एवं भोजन नलिका उपस्थित होते हैं।	3. प्राणियों के ऊतक विकसित प्रकार के होते होते तथा इनमें स्पष्ट एवं सुविकसित अग, मुख एव भोजन नलिका उपस्थित होता है
4. प्राणी मुख्य रूप से स्थानबद्ध (ressile)होते है।	4. प्राणी मुख्य रूप से गमन करने में सक्षम होते हैं।
5. जल के प्रवेश एवं विकास हेतु सुविकसित नाल तन्त्र (water canal system) उपस्थित होते हैं।	5. नालतन्त्र अनुपस्थित होते हैं ।
6. उदाहरण : संघ पोरीफेरा (porifera) के सदस्य जैसे साइकॉन, ल्यूकोसोलीनिया यूप्लैफ्टेला इत्यादि।	6. उदाहरण : संघ सीलेन्टरेटा जन्तुओं जैसे हाइड्रा, ओबीलिया इत्यादि से लेकर कशेरूकों (vertebrates) तक के प्राणी।

बोध प्रश्न - 1

1. विज्ञान की वह शाखा जिसके अंतर्गत समस्त प्राणियों को नामांकित कर इनके मध्य उपस्थित अर्न्तसम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है, क्या कहलाती है?

....

....

2. वर्गीकरण में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न समूहों को क्या कहते हैं?

....

....

3. जगत् (Kingdom), संघ (Phylum), वर्ग (Class), गण (Order), श्रेणी (Genus), जाति (Species) जैसे विभिन्न समूहों के मध्य समानता दर्शाने के लिए कौन से मध्यस्थ समूहों इत्यादि का भी निर्माण किया जाता है?

....

....

4. किसने सर्वप्रथम प्राणियों को नाम देने की अर्थात् नामकरण की द्विनाम पद्धति (Bionomiyal system of nominclature) प्रारम्भ की?

....

....

5. किसने वर्गीक्टण व प्राणियों के नामकरण के लिए लैटिन (Latin) भाषा का प्रयोग किया?

....

....

6. किस वैज्ञानिक ने कब पंचजगत् व्यवस्था की परिकल्पना (Five Kingdom Scheme) प्रस्तुत की?

....

....

7. प्रोटिस्ट प्राणियों की प्रजातियाँ गमन हेतु किसका इस्तेमाल करता है?

....

....

8. किस प्राणि-जगत में प्रजनन की असीम क्षमता होती है?

....

....

9. स्वच्छ जलीय एवं परजीवी प्रोटिस्टा में............................... एक महत्वपूर्ण क्रिया है, जिसके फलस्वरूप स्वयं की प्रतिकूल पीरस्थितियो से रक्षा करते हैं।

3.3 अपृष्ठवंशी प्राणियों का वर्गीकरण, संघों के सामान्य लक्षण, वर्गो के नाम, " उदाहरण एवं आर्थिक महत्व (संक्षिप्त)

3.3.1 संघ-प्रोटोज़ोआ (Phylum-protozoa)

समान्य लक्षण (General Characters)

1. प्रोटोज़ोआ संघ के प्राणी अकोशिकीय (acellular) अथवा एक कोशीय (unicellular) होते हैं तथा इन्हें सूक्ष्मदर्शी की सहायता से ही देखा जा सकता है।
2. प्राणियों की आकृति गोलाकार, अण्डाकार, चपटी, लम्बी अथवा अनियमित प्रकार की हो सकती है।
3. प्राणियों की संरचना अत्यंत सरल होती है तथा इनका संगठन जीवद्रव्य स्तर का होता है। एक अथवा अधिक केन्द्रक स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं।
4. ये फल (solitary) अथवा निवही (colorial) प्रकार के हो सकते हैं।
5. इनकी देह नग्न अथवा तनुत्वक (pellicle) से ढँकी हो सकती है।
6. गमन के लिए गमनांग (locomotory) अंगुली सदृश्य कूटपाद (pseudopodia); चाबुक (whip) की भांति कशाभ (flagella); रोम की जैसे रोमाभ (cilia) अथवा अनुपस्थित भी हो सकते हैं।
7. उत्सर्जन (exertion) देह सतह के द्वारा अथवा संकुचनशील रिक्तिका (contractile vacuole) से सम्पन्न कराया जाता है।

8. अलैंगिक जनन (asexual reproduction) द्विविभजन (binary fission) अथवा बहु विभजन (multiple fission) या मुकुलन (budding) विधि से सम्पन्न कराया जाता है, जबकि लैंगिक जनन संयुग्मन (conjugation) या युग्मकों के मिश्रण (fusion of gametes) के द्वारा सम्भव हो पाता है।
9. जीवन चक्र जटिल प्रकार का होता है तथा पीढ़ियों का एकान्तरण (alternation of generation) सामान्य प्रक्रिया होती है। यहाँ लैंगिक एव अलैंगिक प्रावस्था में एकान्तरण पाया जाता है।
10. जीवन के समस्त कार्य एकल कोशिका द्वारा ही सम्पन्न कराए जाते हैं।

वर्गिकरण (Classification)

वर्ग-1 (Class-1) **: फ्लैजलेटा** (Flagellata) या मैस्टीगोफोरा (Mastigophora)

उदाहरण - यूग्लीना (Euglena), ट्रिपेनोसोमा (Trypanosoma), जिआर्डिया (Giardia), ओपेलाइना (Opalina)

वर्ग-2 (Class-2) : राइज़ोपोडा (Rhizopoda) या सार्कोडिना (Sarcodina)

उदाहरण - अमीबा (Amoeba), एण्ट अमीबा (Entamoeba), पॉलीस्टोमेला (Polystomella)

वर्ग - 3 (Class - 3) : सिलिएटा (Ciliata)

उदाहरण - पैरामीशियम (Paramecium), वोर्टीसेला (Vorticella), निक्टोथेरुस (Nyctotherus)

वर्ग - 4 (Class - 4) : स्पोरोज़ोआ (Sporozoa)

उदाहरण - प्लाज्मोडियम (Plasmodium), मोनोसिस्टिस (Monocystis)

आर्थिक महत्व (Economic importance)

प्रोटोजोआ अन प्राणियों के दोनों लाभकारी एवं अहितकारी प्रभाव होते हैं।

A. लाभकारी प्रोटोजोआ (Useful protozoa)

1. कुछ प्रोटोज़ोआ दूषित जल स्रोतों से गन्दगी फैलाने वाले जीवाणुओं का भक्षण कर इन्हें - बनाते हैं।
2. **फोरामिनीफरीडा** (Foraminiferida) एवं **रेडियोलेरिया** (Radiolaria) प्रोटोज़ोआ कवच समुद्रों में विशाल समुद्री पंकों (oceanic ooze) का निर्माण कर देते हैं, जिनका प्रयाग चूना या लाइम के रूप में निर्माण सामग्री एवं छनन तत्वों के रूप में किया जाता है।
3. **पादप प्लवक** (phytoplankton) के रूप में प्रोटोज़ोआ प्राणी परोक्ष रूप से मानव पोषण का स्रोत बनाते हैं। खाद्य शृंखला का ये प्रमुख घटक हैं।
4. अनुसंधान एव विकास में प्रोटोज़ोआ प्राणियों की बड़ी महत्ता है।

B. हानिकारक प्रोटोज़ोआ (Harmful protozoa)

1. अनेक प्रोटोज़ोआ जल को दूषित कर इसे अस्वच्छ बनाते हैं।

2. कुछ प्रोटोज़ोआ मृदा के नाइजाइंग बैक्टीरिया को नष्ट कर जमीन की उर्वरकता को करते हैं।
3. प्रोटोजोआ की बहुत सी जातियों रोमजनक होती हैं। उदाहरण के लिए .' एन्टामीबा हिस्टोलाइटिका (Entamoeba histolytica) पेचिश (amoebic dysentary) लेश्मानिया डोनोवानी (Leishmania donavani) काला अजर, प्लाज्मोडियम (Plasmodium) मलेरिया रोग के कारक हैं।

3.3.2 संघ - पोरीफेरा (Phylum -porifera)

समान्य लक्षण (General Characters)

1. प्राणियों की देह पर असंख्य छिद्र होते हैं, जिन्हें ऑस्टिया (sati) कहते हैं। जल, के द्वारा देह में प्रवेश करता है एव एक बड़े छिद्र ऑस्कुलम (osculum) के द्वारा निकलता है।
2. जीव बहुकोशिकीय (Multicellular) होते हैं एवं इनके संगठन का स्तर द्विस्तरीय (diploblastic) होता है, जिसमें बाहरी एक्टोडर्म (Ectoderm) एवं भीतरी एण्डोडर्म (Endoderm) स्थित होती है।
3. स्पंज स्थानबद्ध (Sessile) जीव हैं तथा सामान्यत: ये समुद्र में ही पाए जाते हैं।
4. स्पजों में अन्तःकंकाल पाया जाता है जौ स्पांजिन तन्तुओं (spongin fibres), कैल्सियमी (calcareous) एवं सिलीकामयी (silicious) कंटिकाओं (spicules) के द्वारा रचित होता
5. स्पंजों की भीतरी गुहा कोएनोसाइट कोशिकाओं (choanocytes) के द्वारा आस्तरित होती हैं।
6. तंत्रिका तंत्र अनुपस्थित होता है जबकि श्वसन एवं उत्सर्जन की क्रियाएँ देह की सतह से सम्पन्न होती हैं।
7. इनमें एस्कॉन (Ascon), सायकॉन (Sycon) एवं ल्यूकॉन (Leucon) प्रकार के नाल तन्त्र (canal system) पाए जाते हैं।
8. जनन दोनों लैंगिक एवं अलैंगिक विधियों के द्वारा होता है। अलैंगिक विधि में जेम्यूल्स (gemmules) प्रमुख रचनाएँ होती हैं। इनमें पुनरुद्भवन (regeneration) की असीम क्षमता पायी जाती है।

वर्गीकरण (Classification)

वर्ग- 1 (Class-1) : कैल्केरिया (Calcarea)

उदाहरण : साइकॉन (syucon), ग्रेन्शिया (Grantia)

वर्ग- 2 (Class-2) : हेक्सेक्टिनेलिडा (Hexactinellida)

उदाहरण : यूप्लैक्टेला (Euplectella)

वर्ग - 3 (Class-3) : डीमोस्पांजिए (Demospongiae)

उदाहरण : स्पांजिला (Spongilla), यूस्पांजिया (Euspongia)

आर्थिक महत्व (Economic Importance)

A. लाभकारी स्पंज (Beneficial Sponges)

1. स्पंज के कंकालों को नहाने, धोने एवं फर्श को रगड़कर साफ करने में काम में लाया जाता है।
2. कुछ स्पंजों, जैसे वीनस का फूल (Venus flower) का प्रयोग सजावटी सामान के रूप में किया जाता है।
3. कुछ क्रस्टेशियन प्राणी स्पंजों का भक्षण करते हैं एवं अनेकों कृमियों, छोटी मछलियों एवं मॉलस्कन प्राणियों के साथ इनमें वास भी बनाते हैं।

B. हानिकारक स्पंज (Harmful Sponges)

1. कुछ ही स्पंज हानिकारक होते हैं। इनकी कुछ प्रजातियाँ अन्य प्राणियों पर वृद्धि कर इनको मार देती हैं। कुछ स्पंज अपने भीतर से विषैले पदार्थ निकालते हैं, जो अन्य प्राणियों के लिए घातक हो सकते हैं।

3.3.3 संघ-सीलेन्टरेटा (Phylum-Coelenterata)

सामान्य लक्षण (General Characters)

1. सभी सीलन्टरेट प्राणी जलीय होते हैं। इनकी देह का संगठन ऊतकीय स्तर (tissue grade) का होता है।
2. ये एकल अथवा समूहों में रहने वाले स्वतन्त्र अथवा सीडेन्टरी (Sedentary) प्राणी होते हैं।
3. ये देह गुहिका विहीन (acoelomate) तथा सम्मिति (symmetry) में अरीय (radial) अथवा बाई रेडियल (biradial) प्रकार के प्राणी हैं।
4. प्राणियों में एक मुख होता है, जो अनेक सीलन्टरेट्स में स्पर्शकों (tentacles) द्वारा घिरा रहता है। स्पर्शकों पर दंश कोशिकाएँ (nematocysts) पायी जाती हैं।
5. देह भित्ती द्विस्तरीय (dibloblastic) होती है। बाहरी एपिडर्मिस एव भीतरी गेस्ट्रोडर्मिस के मध्य जिलेटीन युक्त मीसोग्लिया (mesogloea) पायी जाती है।
6. दो प्रकार के जीवक, पॉलिप (polpy) एवं मेड्यूसा (medusa) उपस्थित।
7. तंत्रिका तंत्र, तंत्रिका जाल (nerve net) के रूप में उपस्थित होता है एव संवेदांगों के रूप में नेत्र बिन्दु (eye spot) एव स्टेटोसिस्ट (statocyst) पाए जाते हैं।
8. श्वसनांग तथा परिसंचरण एवं उत्सर्जन के अंग अनुपस्थित होते हैं।
9. जनन लैंगिक रख अलैंगिक विधियों के द्वारा सम्पन्न कराया जाता है। प्लैन्यूला (Planula) लार्वल अवस्था पायी जाती है।
10. जीवन चक्र में पीढ़ी का एकान्तरण (alternation of generation) पाया जाता है। कुछ जन्तुओं में मेटाजेनिसिस (metagenesis) की क्रिया पायी जाती है, जहाँ अलैंगिक पॉलिप प्रावस्था एवं लैंगिक मेड्यूसा के मध्य एकान्तरण पाया जाता है।

वर्गीकरण (Classification)

वर्ग- 1 (Class-1) : हाइड्रोज़ोआ (Hydrozoa)

उदाहरण : हाइड्रा (Hydra), ओबीलिया (Obelia), फाइसेलिया (Physalia)

वर्ग- 2 (Class-2) : स्काइफोज़ोआ (Scyphozoa)

उदाहरण : ऑरीलिया (Aurelia), पीलेजिया (Pelagia)

वर्ग- 3 (Class-3) : एन्थोज़ोआ (Anthozoa)

उदाहरण : गोर्गोनियम (Gorgonium), एलसायोनियम (Alcyonium) ट्यूबीपोरा (Alcyonium), पेनेट्युला (Pennatula)

आर्थिक महत्त्व (Economic Importance)

1. बहुत पुराने कोरल, प्रवाल भित्तियों (कोरल reefs) का निर्माण करते हैं, जो पैट्रोलियम पदार्थों के भण्डीकरण हेतु उपयुक्त स्थान होते हैं।
2. अनेक स्पंजों, मॉलस्कन एवं इकाइनोडर्म प्राणियों के साथ -साथ ये मछलियों को भी आवास प्रदान करते हैं।
3. कोरेलम रूब्रम (Corallum rubram) जैसे कोरल अत्यन्त सुन्दर एव महंगे होते हैं।
4. चूना, सीमेंट व डामर के निर्माण में कोरल महत्वपूर्ण घटक का कार्य करते हैं। कोराइट जाति के कोरल से निर्माणकारी सामग्री बनायी जाती है।

3.3.4 संघ-प्लैटीहेल्मिन्थीज (Phylum-Platyhelminthes)

सामान्य लक्षण (General Characters)

1. इन जीवों का संगठन अंग स्तर तक का होता है तथा ये त्रिस्तरीय, एसीलोमेट, द्विपार्श्व सम्मित (Bilaterally symmetrical) एवं पृष्ठ अधर सतह से चपटे (dorso-ventrally) प्राणी होते हैं।
2. इनकी परजीवी प्रजातियों में आसंजस अंगों (Adhesive organs) के रूप में शूक (spines), हुक एवं चूषक (suckers) पाए जाते हैं।
3. कंकाल अनुपस्थित होता है एवं अंगों व देह भित्ति के मध्य मीज़नकाइम (mesenchyme) अथवा पेरनकाइमा (parenchyma) भरी रहती है।
4. कुछ जन्तुओं जैसे टीनिया में पाचन तन्त्र अनुपस्थित्त होता है, जबकि अन्य में यह शाखित परन्तु अपूर्ण होता है।
5. उत्सर्जन हेतु प्रोटोनेफ्रिडिया (protonephridia) नामक रचनाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जिनमें ज्वाला कोशिकाओं (flame cells) की प्रमुख भागीदारी होती है। रक्त परिसंचरण एव श्वसन तंत्र अनुपस्थित होते हैं।
6. तंत्रिका तंत्र में एक जोड़ी मस्तिष्क गुच्छक (cerebral ganglia) एवं अनुप्रस्थ तंत्रिकाओं के द्वारा जुड़ी लम्बवत् तंत्रिका रज्जु पाए जाते हैं।
7. स्वतंत्र जीवन का निर्वहन करने वाले प्राणियों में संवेदांग प्रकाश ग्राही एवं रसायन ग्राही प्रकार के होते हैं।
8. प्रजनन जटिल प्रकार का होता है। मुख्यत: ये एकलिंगी (monoecious) प्राणी होते हैं।
9. जीवन चक्र जटिल होता है, जो एक अथवा दो पोषकों (hosts) में पूर्ण होता है।

वर्गीकरण (Classification)

वर्ग- 1 (Class-1) : टरबेलेरिया (Turbellaria)

उदाहरण : प्लेनेरिया (Planaria) or ड्यूगेसिया (Dugesia) बाईपेलियम (Bipalium)

वर्ग- 2 (Class-2) : ट्रीमेटोडा (Trematoda)

उदाहरण : फेसिओला (Fasciola), शिस्टोसोमा (Schistosoma)

वर्ग- 3 (Class -3) : सेस्टोडा (Cestoda)

उदाहरण : इकाइनोकॉकस (Echinococcus), टीनिया (Taenia)

आर्थिक महत्व (Economic Importance)

1. प्लैटीहेल्मिन्थीज संघ के अनेकानेक प्राणी अथवा इनकी लार्वल प्रावस्थाएँ रोगजनक होती हैं। लीवर फ्लूक अपने पोषक में लीवर रॉट (Lever rot) नामक रोग उत्पन्न करती है।
2. टीनिया सोलियम अर्थात् टेप वॉर्म या फीता कृमि की वयस्क प्रावस्था टीनिएसिस (Taeniasis) रोग उत्पन्न करती है, जबकि इसकी सिस्टीसर्कस लार्वल प्रावस्था से सिस्टीसर्कोसिस (Cysticercosis) रोग होता है।
3. शिस्टोसोमा के द्वारा शिस्टोसोमिएसिस (Schistosomiasis) रोग उत्पन्न होता है।

3.3.5 संघ-एस्केहेल्मिनथीज (Phylum- Aschelminthes)

सामान्य लक्षण (General Characters)

1. शरीर का संगठन अंग तन्त्र स्तर का होता है। देह त्रिस्तरीय, अखण्डित एव द्विपार्श्व सम्मित होती है।
2. देह पर स्केलरोप्रोटीन (Scleroprotein) से बनी क्यूटिकल (cuticle) पायी जाती है, जिस पर सिनसियमी (syncytial) एपिडर्मिस का आवरण उपस्थित होता है।
3. श्वसन एवं परिसंचरण तन्त्र अनुपस्थित होते हैं, परन्तु पाचन तंत्र सम्पूर्ण प्रकार का होता है। उत्सर्जन हेतु प्रोटोनेफ्रिडिया उत्तरदायी होते हैं।
4. तंत्रिका तंत्र अनेकों तंत्रिकाओं एव प्रमस्तिष्क गुच्छकों से निर्मित होता है।
5. कूटदेहगुहा (pseudocoelom) उपस्थित होती है।
6. मुख्यत : ये द्विलिंगी (dioecious) प्राणी होते हैं, जिनमें सामान्यत : लार्वल प्रावस्थाएँ अनुपस्थित होती हैं।

   उदाहरण : एस्केरिस (Ascaris), वूचरेरिया (Wuchereria), ट्राइकीनेला (Trichinella), ड्रेकनकुलस (Dracunculus)

आर्थिक महत्व (Economic Importance)

इस संघ के प्राणी मुख्यत : रोगजनक होते हैं तथा इनसे उत्पन्न होने वाले प्रमुख रोग निम्नलिखित हैं:

1. वूचेरेरिया बैक्रोपटाइ या फिलेरिया वर्म एलिफेंटाइटिस (Elephantitis) या हाथी पाँव रोग उत्पन्न करता है।
2. ड्रेकनकुलस मेडिनेन्सिस या अग्नि वर्म (fiery worm) ड्रेकनकूलेसिस (Dracunculasis) या नारू रोग का कारक है।

3. एस्केरिस मेडिनेन्सिस (Ascaris medinensis) एस्केरिएसिस (Ascariasis) रोग उत्पन्न करता है।-

3.3.6 संघ -एनेलिडा (Phylum-Annelida)

सामान्य लक्षण (General Characters)

1. ये द्विपाशर्व सम्मित, सीलोमेट, मेटामेरीकली खण्डित देह युक्त, त्रिस्तरीय प्राणी होते हैं।
2. संगठन का स्तर अंग तंत्र तक विकसित होता है।
3. ये स्वच्छ जलीय अथवा समुद्री या जमीन पर बिल बनाकर रहने वाले जन्तु होते हैं।
4. देह पर क्यूटिकल (cuticle) पायी जाती है तथा देह भित्ती में वृत्ताकार एवं लम्बवत् पेशियाँ उपस्थित होती हैं। गमनांग के रूप में सीटा (setae) पाए जाते हैं।
5. अधरनाल पूर्ण होती है। श्वसन त्वचा अथवा गिल्स के द्वारा सम्पन्न करवाया जाता है।
6. उत्सर्जन हेतु वृक्कक प्रमुख रचनाएँ होती हैं।
7. रक्त परिसंचरण तन्त्र बन्द प्रकार (close type) का होता है।
8. ये उथयलिंगी (hermaphroditic) जीव होते हैं। कई एनेलिड्स में लिंग पृथक् भी होते हैं
9. तंत्रिका तंत्र मस्तिष्क, खण्डीय गुच्छकों एवं अधर तंत्रिका रज्जु का बना होता है।

वर्गिकरण(Classfication)

वर्ग-1 (Class-1): पॉलीकीटा (Polychaeta)

उदाहरण : नीरीज़ (Nereis), एफ्रोडाइट (Aphrodite), कीटोप्टेरस (Chaetoptecrus)

वर्ग-2 (Class-2) : ऑलिगोकीटा (Oligochaeta)

उदाहरण : केंचुआ (Earthworm), ल्युम्ब्रिकस (Lumbricus), ट्यूबीफेक्स (Tubifex)

वर्ग-3 (Class-3) : हीरूडीनिया (Hirudinea)

उदाहरण : जोंक (Leech), ग्लोसीफोनिया (Glossiphonia), पॉन्टोब्डेला (Pountobdella)

आर्थिक महत्व (Economic Importance)

केंचुओं का प्रयौग बहुआयामी है। इन्हें मछली पकड़ने हेतु प्रलोभक (bait) के रूप में काम में लाया जाता है ये बिलकारी प्राणी हैं, अत: खेतों व खलिहानों में मिट्टी खोद-खोदकर ये अपने आवास का निर्माण करते हैं और साथ ही साथ मिट्टी को भोजन के रूप में भी ग्रहण करते रहते हैं। इस तरह यह मैदान की उर्वरकता में वृद्धि करता है। केचुओं का उपयोग चिकित्सा के क्षेत्र में भी देखा गया है।अनुसंधानशालाओं' में इनका विच्छेदन कर अध्ययन किया जाता है। इनके हानिकारक प्रभाव भी हैं। ये अनेक रोगाणुओं के वाहक हैं तथा कई परजीवियों को फैलाने में मध्यस्थ पोषक की भूमिका निभाते है।

3.3.7 संघ-आर्थोपोडा (Phylum-Arthropoda)

सामान्य लक्षण (General Characters)

1. ये सीलोमेट, मेटामेरीकल रूप से खण्डित, त्रिस्तरीय, द्विपार्श्व सम्मित जीव होते हैं जिसमें संगठन अग - तंत्र (organ system) स्तर का होता है।
2. इनमें संधि-युक्त उपांग (jointed appendages) पाए जाते हैं।
3. बाह्य कंकाल के रूप में काइटिन की बनी क्यूटिकल उपस्थित होती है, जिसे समय-समय पर प्राणी देह से हटाता रहता है।
4. आहारनाल पूर्ण होती है, श्वसन त्वचा या गिल्स तथा स्थलीय जन्तुओं में ट्रेकिया या बुक लंग्स (Book Lungs) के द्वारा होता है तथा रक्त परिसंचरण तंत्र खुले प्रकार (Open type) का होता है। वास्तविक देह गुहा हीमोसील (haemocoel) कहलाती है।
5. देह स्पष्ट सिर (head), वक्ष (thorax) एवं उदर (abdomen) में विभक्त होती है । कई बार सिर एवं वक्ष समेकित होकर सिरोवक्ष (cephalothorax) का निर्माण करते हैं।
6. उत्सर्जन ग्रीन ग्रीन ग्रंथियों (Green glands) या मैलपीघी नलिकाओं (mailapighi tables) द्वारा सम्पन्न कराया जाता है।
7. तंत्रिका तंत्र में एक पृष्ठ तंत्रिका वलय व दोहरी अधर तंत्रिका रज्जु होती है।
8. ये सामान्यत : द्विलिंगी होते हैं।

वर्गिकरण(Classfication)

उपसंघ (Subphylum) : चलीसरेटा (Chelicerata)

वर्ग- 1 (Class-1) : मीरोस्टोमेटा (Merostomata)

उदाहरण : लिम्यूलस (Limulus)

वर्ग-2 (Class-2) : अरेक्निडा (Arachnida)

उदाहरण : मकड़ी (Spider), बिच्छू या पेलेम्नियस (Scorpion or Palamnaeus)

वर्ग-3 (Class-3) : पिक्नोगोनीडिया (Pycnogonidia)

उदाहरण : पिक्नोगोनम (Pycnogonum), निम्फम (Nymphum)

उपसंघ (Sub Phylum) : मेण्डीब्यूलेटा (Mandibulata)

वर्ग-4 (Class-4) : क्रस्टेशिया (Crustacea)

उदाहरण : प्रॉन (Prawn), क्रेब (Crab), साइक्लॉप्स (Cyclops),डेफ्निया(Daphnia)

वर्ग-5 (Class-5) : डिप्लोपोडा (Diplopoda)

उदाहरण : जुलूस (Julus) या मिलीपीड (Millipede)

वर्ग-6 (Class-6) : चिलोपोडा (Chilopoda)

उदाहरण : स्कोलोपेन्ड्रा (Scolopendra) या सेन्टीपीड (Centipede)

वर्ग - 7 (Class-7) : सिम्फाइला (Symphyla)

उदाहरण : स्क्यूटीजेरिला (Scutigerella)

वर्ग - 8 (Class-8) : पौरापोडा (Paurapoda)

उदाहरण : पौरोपस (Pauropus)

वर्ग - 9 (Class-9) : इन्सेक्टा (Insecta)

उदाहरण : कॉकरोच या पेरीप्लेनेटा (Periplaneta), मेन्टिस (Mantis), मच्छर (Mosquito), मक्खी या मस्का (Musca), सिल्वर फिश(Silver fish) तितली (butterfly) इत्यादि ।

आर्थिक महत्व (Economic Importance)

कीटों की प्रजातियाँ अति विस्तृत हैं और इसी प्रकार इनके आर्थिक महत्व भी बहुत से हैं । ये दोनों लाभकारी एवं हानिकारक प्रभाव दर्शाती हैं ।

लाभकारी कीटों में मधुमक्खी (Apis) लाक का कीट (Kerria Lacca) व रेशम कीट माँथ (Silk insect) या बॉम्बाइक्स मोराइ (Bombyx mori) प्रमुख हैं, जिनसे क्रमश : शहद, लाक, एवं रेशम प्राप्त होते हैं । वैसे कीट परागण (Pollination) के अतिरिक्त मृत जीवों एवं अपशिष्ट सामग्री का भक्षण करने में भी सहायक होते हैं । अनेकों प्राणियों के प्रिय भोजन भी हैं । कीटों के अनेकानेक उत्पाद चिकित्सा के महत्व के भी हैं ।

अनेकों कीट हमारे लिए हानिकारक भी सिद्ध होते हैं । मच्छरों की अनेकों प्रजातियाँ मानव में मलेरिया एवं पीत ज्वर या यलो फीवर (Yellow fever) फैलाती हैं; मक्खियाँ हैजा, डायरिया, कॉलेरा एव टायफायड जैसे रोग फैलाने में सक्षम हैं; ब्यूबोनिक प्लेग, अफ्रीकन स्लीपिंग सिकनेस इत्यादि कटि जनित रोग हैं । रोग फैलाने के अतिरिक्त अनेक कीटों की प्रजातियाँ पादपों, फलों एव भण्डारित अनाज को खराब कर इन्हें नष्ट कर देती हैं । घरों में पाए जाने वाले कीट जैसे कॉकरोच, मक्खी, मच्छर, टिक्स लाइस रख बीटल्स न केवल हमारी खाद्य वस्तुओं को दूषित बनाते हैं, वरन् इनमें से कई हमारे फर्नीचर, कपड़ों एव कार्पेट तक को नष्ट कर देते हैं । हमारे पालतू जानवरों पर भी कीटों के घातक प्रभाव देखे गए हैं । अनेक कीट जैसे मधुमक्खियाँ, मच्छर, चींटियाँ, खटमल इत्यादि मानव में डंक लगाकर हानिकारक विषैले पदार्थ छोड़ देते हैं, जिनसे एलर्जी, अत्यधिक पीड़ा, सूजन एव जलन उत्पन्न होती है ।

3.3.8 संघ -मॉलस्का (Phylum-Mollusca)

सामान्य लक्षण (General Characters)

1. ये कोमल देह युक्त (soft bodied), त्रिस्तरीय, द्विपार्श्व सम्मित, सीलोमेट प्राणी होते हैं ।
2. इनकी देह शीर्ष (head, प्रावर(mantle), पाद (foot) एव अंतरांग संहति (visceral mass) में विभक्त रहती है ।
3. देह पर एककपाटीय (univalve) अथवा द्विकपाटीय (bivalve), कैल्शियम कार्बोनेट से निर्मित कवच (shell) पाया जाता है । सामान्यत : कवच प्राणी का बाह्य कंकाल बनाता है, कुछ प्राणियों में यह देह के भीतर स्थित होता है ।
4. पाचन तन्त्र सम्पूर्ण होता है एवं पाचन ग्रन्थि के रूप में हिपेटोपेन्क्रियाज़ (hepatopancreas) पाए जाते हैं ।
5. श्वसन फेफड़ों अथवा गिल्स के द्वारा संपन्न कराया जाता है ।

6. रक्त परिसंचरण तन्त्र सामान्यत: बन्द प्रकार का ही होता है । उत्सर्जन युग्मित मेटानेफ्रिडिया (metanephridia) द्वारा होता है ।
7. ये द्विलिंगी अथवा एकलिंगी जीव हैं । ये स्थलीय अथवा जलीय माध्यम दोनों में पाए जाते हैं।

वर्गीकरण (Classification)

वर्ग - 1 (Class-1) : मोनोप्लेकोफोरा (Monoplacophora)

वर्ग- 2 (Class-2) : ऐम्फीन्यूरा (Amphineura)

उदाहरण : काइटन (Chiton), कीटोडर्मा (Chaetoderma)

वर्ग - 3 (Class-3) : स्कैफोपोडा (Scaphopoda)

उदाहरण : डेन्टेलियम (Dentalium)

वर्ग - 4 (Class-4) : गैस्ट्रोपोडा (Gastropoda)

उदाहरण : पाइला (Pila), सायप्रिया (Cyapraea), पटेला (Patella)

वर्ग- 5 (Class-5) : पेलीसायपोडा (Pelecypoda)ए

उदाहरण : माइटिलस (Mytilus), यूनियो (Unio), टेरेडो (Teredo)

आर्थिक महत्त्व (Economic Importance)

समुद्री तटों पर भोजन का यह एक प्रमुख स्रोत है । इसके अलावा इनसे शैल व मोती प्राप्त किये जाते हैं जो कि सजावटी वस्तु व गहनों में अनमोल प्राकृतिक देय है,

3.3.9 संघ -इकाइनोडर्मेटा (Phylum-Echinodermata)

सामान्य लक्षण (General characters)

1. ये पूर्णत: समुद्री (exclusively marine) प्राणी हैं । ये त्रिस्तरीय, सीलोमेट एवं अरीय सम्मित मुख्यत: पंचअरीय सम्मित (pentaradially symmetrical) जीव होते हैं ।
2. देह अखण्डित व तारे सदृश्य होती है । मुख अनुपस्थित होता है ।
3. त्वचा में डर्मिसी प्लेटों का बना अन्तःकंकाल होता है ।
4. जल संवहन तंत्र (water vascular system) का पाया जाना इकाइनोडर्मस की विशेषता है । गमन नाल पादों (tube feet) के द्वारा सम्पन्न होता है ।
5. आहार नाल सीधी अथवा कुण्डलित होती है । उत्सर्जन हेतु कोई विशिष्ट अंग नहीं होता ।
6. परिवहन तन्त्र में रक्तपात्र उपस्थित होते हैं ।
7. श्वसन के लिए डर्मल ब्रैंकिए, श्वसन वृक्ष (respiratory tree), नाल पादों एवं बर्से (bursae) का प्रयोग किया जाता है ।
8. तंत्रिका तंत्र में मस्तिष्क अनुपस्थित होता है तथा संवेदांग भी अल्पविकसित होते हैं ।
9. पुनरुद्भवन (regeneration) की अपूर्व क्षमता पायी जाती है ।

वर्गीकरण (Classification)

वर्ग- 1 (Class-1) : एस्टीरॉयडिया (Asteroidea)

उदाहरण : पेन्टासिरोस (Pentaceros), एस्टीरिआस (Asterias)

वर्ग-2 (Class-2) : ओफियूरॉइडिया (Ophiuroidea)

उदाहरण : ओफियोथ्रिक्स (Ophiothrix)

वर्ग-3 (Class-3) : इकाइनॉइडिये (Echinoidea)

उदाहरण : इकाइनस (Echinus)

वर्ग-4 (Class-4) : होलोथुरॉइडिये (Holothuroidea)

उदाहरण : होलोथूरिया (Holothuria)

वर्ग-5 (Class-5) : क्रिनॉइडिया (Crinoidea)

उदाहरण : एन्टीडॉन (Antedon)

आर्थिक महत्त्व (Economic Importance)

इनकी अभूतपूर्व पुर्नत्पदान (regeneration) क्षमता के कारण प्रयोगशाला में इन पर किया जा रहा शोध कार्य तथा इनसे प्राप्त बहुत सी दवायें महत्वपूर्ण है । सजावटी तन्त्र में भी इसका उपयोग होता है।

3.3.10 संघ-हेमीकॉर्डेटा (Phylum-Hemichordata)

सामान्य लक्षण (General characters)

1. एकल जीवी अथवा समूहों में रहने वाले प्राणी होते हैं । सामान्यत: बिलकारी (tubicolous) और केवल समुद्री जीव होते हैं ।
2. देह कोमल एव कृमिनुमा होती है तथा शुण्ड (proboscis), कॉलर (collar) एवं धड़ (trunk) में विभक्त होती है ।
3. सीलोम, प्रोटोसील (protocoel), मीसोसील (mesocoel) एवं मेटासील (metacoel) में विभक्त होती है ।
4. आहार नाल सीधी अथवा "U" आकार की होती है । परिसंचरण तन्त्र खुले प्रकार का होता है।
5. उत्सर्जन, प्रोबोस्सिस में स्थित एक ग्लोमेरूलस (glomerulus) द्वारा होता है ।
6. तंत्रिका तंत्र आदिम (primitive) प्रकार का होता है ।
7. प्रजनन मुख्यत: लैंगिक प्रकार का होता है तथा निषेचन. बाहय प्रकार का होता है ।

वर्गीकरण (Classification)

वर्ग- 1 (Class-1) : एन्टीरोन्युस्टा (Enterpneusta)

उदाहरण : बैलेनोग्लोसस (Balanoglossus), सैकोग्लोसस (Saccoglossus)

वर्ग- 2 (Class-2) : टैरोब्रैंकिया (Pterobranchia)

उदाहरण : रहब्ड़ोप्लूरा (Rhabdopleura)

बोध प्रश्न - 2

1. किस संघ के प्राणी अकोशिकीय अथवा एक कोशीय होते हैं तथा इन्हें सूक्ष्मदर्शी की सहायता से ही देखा जा सकता है?

....

....

2. किस संघ के प्राणियों में उत्सर्जन देह सतह के द्वारा अथवा संकुचनशील रिक्तिका से सम्पन्न कराया जाता है?

....

....

3. किस संघ के प्राणियों की देह पर असंख्य छिद्र होते हैं, जिन्हें ऑस्टिया (ostia) कहते हैं । जल, ऑस्टिया के द्वारा देह में प्रवेश करता है एव एक बड़े छिद्र ऑस्कुलम (osculum) के द्वारा बाहर निकलता है?

....

....

4. किस संघ के प्राणियों में सभी प्राणी जलीय होते हैं । इनकी देह का संगठन ऊतकीय स्तर का होता है ?

....

....

5. किस संघ के प्राणियों में जीवन चक्र में पीढ़ी का एकान्तरण (alternation of generation) पाया जाता है । कुछ जन्तुओं में मेटाजेनिसिस (metagenesis) की क्रिया पायी जाती है, जहाँ अलैंगिक पालिप प्रावस्था एव लैंगिक मेड्यूसा के मध्य एकान्तरण पाया जाता है?

....

....

6. किस संघ के प्राणियों में इन जीवों का संगठन अंग स्तर तक का होता है तथा ये त्रिस्तरीय, एसीलोमेट, द्विपार्श्व सम्मित एव पृष्ठ अधर सतह से चपटे प्राणी होते हैं?

....

....

7. किस संघ के प्राणियों में प्रजनन जटिल प्रकार का होता है । मुख्यत: ये एकलिंगी (monoecious) प्राणी होते हैं ?

....

....

8. किस संघ के प्राणियों में जीवन चक्र जटिल होता है, जो एक अथवा दो पोषकों (hosts) में पूर्ण होता है?

....

....

9. किस संघ के प्राणियों में शरीर का संगठन अंग तन्त्र स्तर का होता है । देह त्रिस्तरीय, अखण्डित एवं द्विपार्श्व सम्मित होती है तथा परजीवी होते हैं?

....

....

10. किस संघ के प्राणियों में कूटदेहगुहा उपस्थित होती है?

....

....

11. किस संघ के परजीवी प्राणियों में मुख्यत: द्विलिंगी प्राणी होते हैं, जिनमें सामान्यत : लार्वल प्रावस्थाएँ अनुपस्थित होती हैं?

....

....

12. किस संघ के प्राणियों में द्विपार्श्व सम्मित, सीलोमेट, मेटामेरीकली खण्डित देह युक्त, त्रिस्तरीय प्राणी होते हैं?

....

....

13. किस संघ के प्राणियों में देह पर क्यूटिकल पायी जाती है तथा देह भित्ती में वृत्ताकार एवं लम्बवत् पेशियाँ उपस्थित होती हैं । गमनांग के रूप में सीटा पाए जाते हैं ।

....

....

14. किस संघ के प्राणियों में तंत्रिका तंत्र मस्तिष्क, खण्डीय गुच्छकों एवं अधर तंत्रिका रज्जु का बना होता है?

....

....

15. किस संघ के प्राणियों में सीलोमेट, मेटामेरीकल रूप से खण्डित, त्रिस्तरीय, द्विपार्श्व सम्मित जीव होते हैं, जिनमें संगठन अंग-तंत्र (organ system) स्तर का होता है?

....

....

16. संधि-युक्त उपांग पाए जाते हैं?

....

....

17. किस संघ के प्राणियों में सामान्यत: द्विलिंगी होते हैं?

....

....

18. किस संघ के प्राणियों में कोमल देह युक्त (soft bodied), त्रिस्तरीय, द्विपार्श्व सम्मित, सीलोमेट प्राणी होते हैं?

....

....

19. किस संघ के प्राणियों में द्विलिंगी अथवा एकलिंगी जीव हैं । ये स्थलीय अथवा जलीय माध्यम दोनों में पाए जाते हैं?

....

....

20. किस संघ के प्राणियों में पूर्णत: समुद्री प्राणी हैं । ये त्रिस्तरीय, सीलोमेट एव अरीय सम्मित मुख्यत: पंचअरीय सम्मित जीव होते हैं ।

....

....

21. किस संघ के प्राणियों में पुनरुद्भवन (regeneration) की अपूर्व क्षमता पायी जाती है।

....

....

22. किस संघ में एकल जीवी अथवा समूहों में रहने वाले प्राणी होते हैं । सामान्यत: बिलकारी और केवल समुद्री जीव होते हैं ।

....

....

23. किस संघ में प्रजनन मुख्यत: लैंगिक प्रकार का होता है तथा निषेचन बाह्य प्रकार का होता है ।

....

....

3.4 पृष्ठवंशी प्राणियों का वर्ग स्तर तक वर्गीकरण: वर्गों के सामान्य लक्षण, उदाहरण एवं आर्थिक महत्त्व (संक्षिप्त)

PHYLUM-CHORDATA

- Subphylum-1 **Hemichordate**
  - Class-1: Enteropneusta
  - Class-2: Pterobranchia
- Sub-phylun-2 **Cephalochordata**
- Subphylum-3 **Urochordata**
  - Class-1 : Ascidiacea
  - Class-2 : Thaliaceae
  - Class-3 : Larvacea
- Subphylum-4 **Vertebrata**
  - Division-Pisces
    - Class-1 : Placodermi
    - Class-2 : Chondrichthyes
    - Class-3 : Osteichthyes
    - Class-4 : Amphibia
    - Class-5 : Reptilia
    - Class-6 : Aves
    - Class-7 : Mammalia

संघ कॉर्डेटा के तीन सबसे प्रमुख लक्षण हैं:

1. देह की पृष्ठ सतह पर लचीली नलाकार एवं खोखली द्रव से भरी तंत्रिका रज्जु (nerve cord) उपस्थित ।
2. एक पृष्ठ, लम्बवत् ठोस कंकालीय छड़ रूपी पृष्ठ रज्जु (notochord) उपस्थित ।
3. **क्लोम रन्ध्र** (gill slits) ग्रसनी भाग पर युग्मों में उपस्थित ।

संघ कार्डेटा को चार उपसंघों : (1) हेमीकार्डेटा (11) सिफेलोकॉर्डेटा (111) यूरोकॉर्डेटा एवं वर्टीब्रेटा में विभक्त किया गया है ।

3.4.1 उपसंघ (Sub phylum) - सिफेलोकॉर्डेटा (Cephalochordata)

सामान्य लक्षण (General characters)

1. देह में नोटोकॉर्ड (notochord) एव तंत्रिका रज्जु (nerve cord) प्राणी के प्रॉथ (snout) व शीर्ष भाग (cephalic region) में पाए जाते हैं, जो यहाँ जीवन पर्यन्त बने रहते हैं ।
2. ये समुद्री, स्वतंत्र रहने वाले जीव हैं ।
3. ग्रसनीय क्लोम छिद्र बाहर की ओर एट्रियम (atrium) या एट्रिओपोर (atriopare) द्वारा खुलते हैं।
4. देह की अधर सतह पर मेटाप्लूरल वलय (metapoeural folds) उपस्थित होते हैं ।
5. भोजन प्राप्ति हेतु सहायक रचना एण्डोस्टाइल (endostyle) उपस्थित होती है ।

   उदाहरण : ब्रेंकियोस्टोमा (Branchiostoma), एसिमेट्रॉन (Asymmetron)

3.4.2 उपसंघ (Sub-Phylum): यूरोकॉर्डेटा (Urochordata)

सामान्य लक्षण (General Characters)

1. ये समुद्री जीव हैं तथा इनकी देह पर सेल्युलोज से निर्मित ट्यूनिसिन (tunicin) का बना टेस्ट (tast) या ट्यूनिक (tunic) उपस्थित होता है ।
2. ग्रसनी आकार में बड़ी एव छिद्र युक्त होती है।
3. नोटोकॉर्ड सिर्फ लार्वल अवस्था में ही पायी जाती है और यह इसके पुंछ भाग में सीमित होती है।
4. इसके लार्वे में अनेक कॉर्डेट लक्षण उपस्थित हैं, जो वयस्क में लुप्त हो जाते हैं ।

वर्ग- 1 (Ascidiacea)	वर्ग- 2 (Thaliacea)	वर्ग - 3 (Larvacea)
1. टेस्ट स्थायी स्व अपारदर्शी	1. टेस्ट स्थायी एवं पारदर्शी	1. टेस्ट अस्थायी
2. लार्वल अवस्था में पुंछ एवं नोटोकार्ड उपस्थित, जो कायान्तरण में लुप्त हो जाती है ।	2. पुंछ एवं नोटोकॉर्ड लार्वल अवस्था में ही उपस्थित होती है ।	2. पुछ एव नोटोकॉर्ड जीवनपर्यन्त उपस्थित ।
उदाहरण : एसिडिया (Ascidia)	उदाहरण : साल्पा (Salpa)	उदाहरण : ओइकोप्लूरा (Oikopleura)

3.4.3 उप संघ (Sub phylum): वर्टीब्रेटा (Vertebrata)

सामान्य लक्षण (General Characters)

1. कशेरुकी दण्ड (vertebral column), नॉटोकॉर्ड के प्रस्थापित कर देता है ।
2. मस्तिष्क करोटि (cranium) अर्थात् कपाल अस्थियें द्वारा घिर जाता है ।
3. संचरण तन्त्र बन्द प्रकार का होता है एवं उत्सर्जन अंग गुर्दे होते हैं ।
4. संवेदांग जैसे नाक, कान, आँख, त्वचा इत्यादि विकसित प्रकार होते हैं ।
5. नर एवं मादा अलग- अलग प्राणी होते हैं ।

डिविजन पाइसेज (Pisces)

उपसंघ वर्टीब्रेटा के डिविजन पाइसेज (Pisces) को निम्न वर्गों में विभक्त किया गया है :

वर्ग-1 (Class-1) : कॉण्ड्रिकथीज़ (Chondrichthyes)

1. अन्त:कंकाल उपस्थियों अर्थात् कार्टिलेज (Cartilage) से बना होता है ।
2. गिलों पर ऑपरकुलम नहीं पाया जाता है ।
3. पुच्छ विषम पाली (heterocercal) प्रकार की होती है ।
4. देह पर प्लेकॉइड शल्क (placoid scales) पाए जाते हैं ।

   उदाहरण : टॉरपीडो (Torpedo), **स्कोलिओडॉन** (Scoliodon) तथा अन्य शार्क, रे व स्केट मछलियाँ ।

वर्ग- 2 (Class-2) : ऑस्टिचथीज़ (Osteichthyes)

1. अन्त:कंकाल अस्थियों का बना होता है ।
2. सामान्यत: वायु आशय (air sac) उपस्थित होते हैं ।
3. देह पर अस्थिल शल्क (bony scales) जैसे गैनोइड, टीनोइड शल्क इत्यादि पायी जाती हैं।
4. इसके एक गण (order) डिप्नोइ (dipnoi) में फेफड़े वाली मछलियाँ जैसे प्रोटोप्टेरस (Protopterus), लेपीडोसाइरन (Lepidosiren) पायी जाती हैं ।वर्ग में सम्मिलित मछलियों के अन्य उदाहरण : लेबियो (labeo), एमिया (Amia), हिप्पोकैम्पस (Hippocampus)

वर्ग - 3 (Class-3) : प्लेकोडर्मी (Placodermi)

1. इस वर्ग के अंतर्गत जबड़े युक्त लुप्त (extinct) कवच युक्त (armoured) मछलियों को सम्मिलित किया गया है ।
2. देह पृष्ठ- अधर तल (dorso-ventrally) चपटी थी ।
3. युग्मित फिन (Paired fins) पाए जाते हैं ।

उदाहरण : फाइलोलेपिस (Phyllolepis), **बोथरिओलेपिस** (Bothriolepis) **इत्यादि ।**

आर्थिक महत्त्व (Economic Importance)

I. लाभकारी मछलियॉ (Beneficial fish)

1. भोजन के रूप में (As food). मछलियों का पौष्टिक स्तर उच्च प्रकार का है । इनमें भरपूर मात्रा में प्रोटीन, खनिज जैसे फॉस्फोरस, आयोडीन, विटामिन्स है- 8, अमीनो अम्ल इत्यादि पाए जाते हैं । भोजन के रूप में प्रयोग में लायी जाने वाली मछलियों की प्रमुख जातियाँ निम्नलिखित हैं :

   कटला (Catla), **लेबियो** (Labeo), **राजा** (Raja), **हिल्सा** (Hilsa)
2. मनोरंजन / खेल मे मछलियों का महत्त्व (Game fish) : काँटा डालकर मछलियॉ पकड़ना एक प्रकार का खेल है, जो मानव अपने मनोरंजन के लिए सदैव से खेलता आया हैं। ट्यूना (Tuna), ट्राउट (Trout) मछलियाँ प्रमुख game fish हैं ।
3. घर में सजाने के लिए एक्वेरियम में उपयोग (In Aquarium for decoration) : गप्पी(Guppy), मौली (Molly) इत्यादि किस्म की मछलियाँ एक्वेरियम के लिए सर्वाधिक उपयुक्त हैं ।
4. चिकित्सकीय महत्व (Medicinal and other) : मछलियों के चिकित्सकीय महत्व के अतिरिक्त इनका सामान्य जिन्दगी में भी महत्वपूर्ण योगदान है । इनसे कई प्रकार के तेल, लीवर ऑयल, फिश मील (Fish meal), मछली का आटा (Fish flour), मत्स्य खाद (Fish manure) इत्यादि प्राप्त किए जाते हैं । इसके अतिरिक्त कुछ लार्वा का भक्षण करने वाली (Larvivorous) मछलियों जैसे गैम्बूसिया (Gambusia) का प्रयोग मच्छरों के लार्वों को नष्ट करने में किया जाता है ।

II. हानिकारक मछलियाँ (Harmful Fish)

1. **मछलियों की विषैली आक्रामक प्रकृति** (Toxic Fish) : कुछ मछलियाँ जैसे टेट्रॉडॉन (Tetradon) इत्यादि प्राकृतिक रूप से विषैली होती हैं तथा इनके सेवन से आदमी की मृत्यु तक हो जाती है । स्टिंग रे (Sting ray) में दंश पाया जाता है, जो अन्य प्राणियों के लिए घातक हथियार है । शार्क (Shark) मछलियों को अनेक अवसरों पर समुद्र में तैर रहे मानवों पर हमला करते देखा गया है । ये मानव भोजन जैसे लॉब्सटर्स (Lobsters) इत्यादि को तो नष्ट करती ही हैं साथ ही साथ मानव उपकरणों, मछली पकड़ने के जालों को भी क्षतिग्रस्त कर देती हैं । जलीय खाद्य श्रृंखला (Food chain) में मछली का महत्वपूर्ण स्थान है । हानिकारक व विषैले जीवों, ऐल्गी, शैवाल इत्यादि का भोजन करने पर ये तत्व मछली की देह के भाग बन जाते हैं । अन्य प्राणियों द्वारा इन मछलियों का सेवन करने पर ये तत्व मछली की देह से इनके शरीर में पहुँचकर इन्हें भी हानि पहुँचाते हैं।

3.4.4 वर्ग-एम्फीबिया (Class-Amphibia)

1. इस वर्ग में सम्मिलित किए गए प्राणी दोनों जल तथा थल में वास करते हैं । इसीलिए इन्हें उभयचारी (Amphibious) जीव कहते हैं ।
2. त्वचा ग्रन्थिल (glandular) होती है तथा देह पर शल्क (Scales) अनुपस्थित होते हैं ।
3. पाद पाँच अँगुलियों युक्त (pentadactyle) होते हैं ।
4. ये शीत रक्त (cold blooded) वाले प्राणी होते हैं ।
5. हृदय तीन वेश्मों युक्त (three chambered) होता है तथा हृदय के स्थान पर साइनस वीनोसस (Sinus venosus) पाया जाता है ।
6. लार्वावस्था में श्वसन गिल्स के द्वारा तथा वयस्कावस्था में त्वचा द्वारा होता है ।
7. उत्सर्जन मीज़ोनेफ्रिक (mesonephric) वृक्क (kidneys) के द्वारा होता है ।

   उदाहरण : इक्थियोफिस (Ichthyophis), सेलेमेण्डर (Salamander), राना (Rana) अर्थात् मेंढक (Frog), बूफो (Bufo), हायला (Hyla) इत्यादि ।

3.4.5 वर्ग -रेप्टीलिया (Class-Reptilia)

1. देह पर श्रृंगीय (horny) त्वचा पायी जाती है । कुछ प्राणियों में अस्थिमय प्लेट्स उपस्थित होती हैं ।
2. ये **अनियमित तापी** (poikilotharmal) प्राणी होते हैं ।
3. दो जोड़ी पाँवों में पाँच-पाँच अँगुलियाँ पायी जाती हैं ।
4. हृदय अपूर्ण रूप से चार कोष्ठों में विभक्त होता है ।
5. उत्सर्जन मेटानेफ्रिक वृक्क के द्वारा होता है ।
6. निषेचन आन्तरिक होता है । अधिकांश प्राणी अण्डज (Oviborous) व कुछ जरायुज (viviparous) होते हैं ।

7. इनमें भ्रूण झिल्लियाँ (Extra embryonic membranes) अर्थात् एम्निओन (amnion), कोरिओन (chorion) एवं एलेन्टोइस (allantois) पायी जाती हैं ।

   उदाहरण : कीलोन (Chelone), क्रोकोडिलस (Crocodilus), ड्रेको (Draco), हेमीडेक्टाइलस (Hemidactylus), वाइपर (Viper), पायथन (Python) इत्यादि ।

3.4.6 वर्ग-ऐवीज (Class-Aves)

1. ये समतापी (Homeothermic), गर्म रक्त वाले (Warm blooded) प्राणी होते हैं ।
2. देह पर पंख (feathars) पाए जाते हैं । अग्रपाद उड़ने के लिए रूपान्तरित होते हैं । त्वचा पर तेल ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं ।
3. मुख पर दन्त विहीन चोंच (beak) पायी जाती है ।
4. हड्डियाँ खोखली (hollow) होती हैं ।
5. हृदय चार कक्षों युक्त होता है ।
6. उत्सर्जी पदार्थ अर्द्ध ठोस प्रकार (semisolid type) के होते हैं । अवस्कर (Cloaca) पायी जाती है।
7. नेत्र बड़े एवं शक्तिशाली होते हैं ।
8. दायीं अण्डाशय एवं अण्डवाहिनी अनुपस्थित होती है ।
9. अण्डे देने वाले जीव होते हैं ।

   उदाहरण : समस्त पक्षी जैसे कॉर्वस (Corvus), गैलस (Gallus), पेलीकन्स (Pelicans), फॉल्कन्स (Falcons), तोता (Parrot), मैना (Myna), कबूतर (Pigeon) इत्यादि ।

3.4.7 वर्ग -मैमेलिया (Class- Mammalia)

1. ये नियत तापी, गर्म रक्त वाले स्तनी प्राणी होते हैं ।
2. त्वचा रोमिल होती है तथा इस पर अनेक प्रकार की ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं ।
3. दाँत विषमदन्त्री (heterodont), गर्तदन्ती (thecodont) एवं द्विबार दन्ती (diphylodont') प्रकार के होते हैं ।
4. चतुष्पादी जीव होते हैं । बाह्य कर्ण या पित्रा (Pinna) उपस्थित होता है ।
5. हृदय चार कक्षों युक्त होता है । वक्ष एवं उदर के मध्य डायफ्राम (diaphragm) पाया जाता है।
6. वृषण, वृषण -कोष में देह के बाहर उपस्थित होते हैं ।
7. गर्दन में 7 कशेरुक पाए जाते हैं ।
8. पैतृक संरक्षण (Parental care) उच्च स्तर का होता है ।

   उदाहरण : एकिड्ना (Echidna), मैक्रोपस (Macropus) अर्थात् कंगारू (Kangaroo), चूहे, गिलहरी, खरगोश, गोरिल्ला, बिल्ली, कुत्ता, शेर, मानव इत्यादि ।

बोध-प्रश्न - 3

1. संघ कॉर्डेटा के कौनसे तीन सबसे प्रमुख लक्षण हैं?

....

....

2. सिफेलोकॉर्डेतटा के प्राणियों की देह में नोटोकॉर्ड (notochord) एवं तंत्रिक रज्जु (nerve cord) प्राणी के किस भाग में पाए जाते हैं?

....

....

3. यूरोकॉर्डेटा में नोटोकॉर्ड किस अवस्था में पायी जाती है और यह किस भाग में सीमित होती है?

....

....

4. कॉण्ड्रिक्थीज मछलियों में अन्त:कंकाल उपस्थियों अर्थात् कार्टिलेज किसका बना होता है ।

....

....

5. कॉण्ड्रिकथीज में पुच्छ किस प्रकार की होती है?

....

....

6. टॉरपीडो (Torpedo), स्कोलिओडॉन (Scoliodon) तथा अन्य शार्क, रे व स्केट मछलियाँ किस वर्ग की है?

....

....

7. किस वर्ग की मछलियों में अन्तःकंकाल अस्थियों का बना होता है?

....

....

8. किस वर्ग के अंतर्गत जबड़े युक्त लुप्त कवच युक्त मछलियों को सम्मिलित किया गया हे?

....

....

9. प्लेकोडमी वर्ग की मछलियों के उदाहरण बताये ।

....

....

10. किन मछलियों का प्रयोग मच्छरों के लार्वो को नष्ट करने में किया जाता है?

....

....

11. किस वर्ग में सम्मिलित किए गए प्राणी दोनों जल तथा थल में वास करते हैं?

....

....

12. किस वर्ग में सम्मिलित किए गए प्राणी में हृदय तीन वेश्मों युक्त (three chambered) होता है तथा हृदय के स्थान पर क्या पाया जाता है?

....

....

13. किस वर्ग के प्राणी है : - इक्थियोफिस, सेलेमेण्डर, राना अर्थात् मेंढक, बूफो, हायला इत्यादि?

....

....

14. किस वर्ग के प्राणियों में देह पर श्रृंगीय (horny) त्वचा पायी जाती है तथा कुछ प्राणियों में अस्थिमय प्लेट्स उपस्थित होती हैं?

....

....

15. किस वर्ग में निषेचन आन्तरिक होता है? अधिकांश प्राणी अण्डज व कुछ जरायुज होते हैं ।

....

....

16. कीलोन, क्रोकोडिलस, ड्रेको, हेमीडेक्टाइलस, वाइपर, पायथन इत्यादि किस वर्ग के प्राणी हैं?

....

....

17. कौनसे वर्ग का समतापी, गर्म रक्त वाले प्राणी होते हैं जो कि पंख लिये होते हैं?

....

....

18. किस वर्ग के प्राणियों में दाँत विषमदन्त्री (heterodont), गर्तदन्ती (thecodont) एवं द्विबार दन्ती (diphylodont) प्रकार के होते हैं ।

....

....

19. किस वर्ग के प्राणियों में चतुष्पादी जीव होते हैं? बाह्यकर्ण या पिन्ना (pinna) उपस्थित होता है ।

....

....

20. किस वर्ग के प्राणियों में वृषण, वृषण-कोष में देह के बाहर उपस्थित होते हैं?

....

....

21. किस वर्ग के प्राणियों में पैतृक संरक्षण उच्च स्तर का होता है?

....

....

3.5 सारांश (Summary)

- विज्ञान की वह शाखा जिसके अंतर्गत समस्त प्राणियों को नामांकित कर इनके मध्य उपस्थित अंर्तसम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है वर्गिकी अर्थात् टैक्सोनॉमी (Taxonomy) कहलाती है।
- नामकरण (nomenclature) एव वर्गीकरण (classification), वर्गिकी के दो प्रमुख आयाम हैं ।
- वर्गीकरण में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न समूहों को श्रेणी (category), रैंक (rank) अथवा टैक्सा (Taxa) कहा जाता है । वर्गीकरण की मूलभूत एवं सबसे छोटी इकाई जाति (species) है।
- विभिन्न समूहों के मध्य समानता दर्शाने के लिए मध्यस्थ समूहों जैसे अधिसंघ (superphylum), उपसंघ (Subphylum), उपवर्ग (Subclass) इत्यादि का भी निर्माण किया जाता है ।
- कैरोलस लिनेयस के द्वारा प्रतिपादित नामकरण की द्विनाम पद्धति के अनुरूप प्राणी की प्रत्येक जाति को दो नामों से सम्बोधित किया जाता है, जिसमें प्रथम इसके श्रेणी का नाम (generic name) होता है तथा दूसरा इसकी जाति (species) को इंगित करता है ।
- वर्गीकरण के दौरान प्राणी की उपजाति (subspecies) को नामांकित करने के लिए नामकरण की त्रिनाम पद्धति का प्रयोग किया जाता है । उपजाति का उल्लेख सदैव ही जाति के उपरान्त किया जाता है व इसे भी लैटिन भाषा अथवा लैटिन स्वरूप में ही लिखा जाता है । इस प्रकार श्रेणी, जाति एवं उपजाति त्रिनाम पद्धति के प्रमुख घटक हैं ।
- आर. एच. व्हिटकर(R.H. Whittaker) नामक वैज्ञानिक ने सन् 1969 में पंचजगत् व्यवस्था की परिकल्पना (Five kingdom scheme) प्रस्तुत की । इसके अनुरूप इसमें यूकैरियोटिक जीवों जैसे प्रोटोजोन्स (Protozoans), एल्गी (Algae) एव श्लेष्मिक भुखडियों (Slime molds) को सम्मिलित किया गया है ।

- जगत् एनिमेलिया प्रोटोजोआ (protozoa) एव मेटाज़ोआ (metazoa) दो उप जगतों (sub kindoms) में विभक्त किया गया है ।
- उपजगत मेटाज़ोआ को फिर पैराज़ोआ (parazoa) एवं यूमैटाज़ोआ (eumetazoa) नामक शाखाओं में विभक्त किया गया है ।
- प्रोटोज़ोआ (protozoa). अकोशिकीय (acellular) अथवा एक कोशीय (unicellular) होते हैं ।
- जीवन चक्र जटिल प्रकार का होता है तथा पीढियों का एकान्तरण (alteration of generation) सामान्य प्रक्रिया होती है । यहाँ लैंगिक एवं अलैंगिक प्रावस्था में एकान्तरण पाया जाता है ।
- पोरीफेरा (Porifera) : प्राणियों की देह पर असंख्य छिद्र होते हैं, जिन्हें ऑस्टिया (ostia) कहते हैं। जल, ऑस्टिया के द्वारा देह में प्रवेश करता है एव एक बड़े छिद्र ऑस्कुलम (osculum) के द्वारा बाहर निकलता है ।
- सीलेन्टरेटा (Coelenterata) सभी सीलन्टरेट प्राणी जलीय होते हैं । इनकी देह का संगठन ऊतकीय स्तर (tissue grade) का होता है ।
- सीलेन्टरेटा जीवन चक्र में पीढ़ी का एकान्तरण (alternation of generation) पाया जाता है । कुछ जन्तुओं में मेटाजेनिसिस (metagenesis) की क्रिया पायी जाती है, जहाँ अलैंगिक पॉलिप प्रावस्था एवं लैंगिक मेड्यूसा के मध्य एकान्तरण पाया जाता है ।
- प्लैटीहेल्मिन्थीज (Platyhelminthes) : इन जीवों का संगठन अंग स्तर तक का होता है तथा ये त्रिस्तरीय, एसीलोमेट, द्विपार्श्व सम्मित (bilaterally symmetrical) एवं पृष्ठ अधर सतह से चपटे (dorso-ventrally flattened) प्राणी होते हैं ।
- प्रजनन जटिल प्रकार का होता है । मुख्यत: ये एकलिंगी (monoecious) प्राणी होते हैं ।
- जीवन चक्र जटिल होता है, जो एक अथवा दो पोषकों (hosts) में पूर्ण होता है ।
- एस्केहेल्मिनथीज (Aschelminthes) : शरीर का संगठन अंग तंत्र स्तर का होता है । देह त्रिस्तरीय, अखण्डित एवं द्विपार्श्व सम्मित होती है ।
- कूटदेहगुहा (pseudocoelom) उपस्थित होती है ।
- मुख्यत: ये द्विलिंगी (dioecious) प्राणी होते हैं, जिनमें सामान्यत : लार्वल प्रावस्थाएँ अनुपस्थित होती हैं ।
- एनेलिडा (Annelida). ये द्विपार्श्व सम्मित, सीलोमेट, मेटामेरीकली खण्डित देह युक्त, त्रिस्तरीय प्राणी होते हैं ।
- ये उभयलिंगी (hermaphroditic) जीव होते हैं । कई एनेलिड्स में लिंग पृथक् भी होते हैं।
- तंत्रिका तंत्र मस्तिष्क, खण्डीय गुच्छकों एवं अधर तंत्रिका रज्जु का बना होता है ।
- आर्थोपोडा (Arthropoda) : ये सीलोमेट, मेटामेरीकल रूप से खण्डित, त्रिस्तरीय, द्विपार्श्व सम्मित जीव होते हैं, जिनमें संगठन अंग-तंत्र (organ system) स्तर का होता है ।
- इनमें संधि-युक्त उपांग (jointed appendages) पाए जाते हैं ।

- ये सामान्यत: द्विलिंगी होते हैं ।
- मॉलस्का (Mollusca) : ये कोमल देह युक्त (soft bodied), त्रिस्तरीय, द्विपार्श्व सम्मित, सीलोमेट प्राणी होते हैं ।
- ये द्विलिंगी अथवा एकलिंगी जीव हैं । ये स्थलीय अथवा जलीय माध्यम दोनों में पाए जाते हैं ।
- इकाइनोडर्मेटा (Echinodermata) : पूर्णत: समुद्री (exclusively marine) प्राणी हैं । ये त्रिस्तरीय, सीलोमेट एवं अरीय सम्मित मुख्यत: पंचअरीय सम्मित (pentaradially) जीव होते हैं ।
- पुनरुद्भवन (regeneration) की अपूर्व क्षमता पायी जाती है ।
- हेमीकॉर्डेटा (Hemichordata) : एकल जीवी अथवा समूहों में रहने वाले प्राणी होते हैं । सामान्यत: बिलकारी (tubicolous) और केवल समुद्री जीव होते है ।
- प्रजनन मुख्यत: लैंगिक प्रकार का होता है तथा निषेचन बाह्य प्रकार का होता है ।
- संघ कॉर्डेटा के तीन सबसे प्रमुख लक्षण हैं- खोखली द्रव से भरी तंत्रिका रज्जु (nerve cord एक पृष्ठ, छड़ रूपी पृष्ठ रज्जु (notochord), क्लोम रन्ध्र (gill slits) उपस्थित ।
- संघ कार्डेटा को चार उपसंघों : (1) हेमीकार्डेटा (11) सिफेलोकॉर्डेटा (111) यूरोकॉर्डेटा एवं वर्टीब्रेटा में विभक्त किया गया है ।
- सिफेलोकॉर्डेटा (Cephalochordata) : देह में नोटोकॉर्ड (notochord') एवं तंत्रिका रज्जु (nerve cord) प्राणी के प्रॉथ (snout) व शीर्ष भाग (cephalic region) में पाए जाते हैं, जो यहाँ जीवन पर्यन्त बने रहते हैं ।
- यूरोकॉर्डेटा (Urochordata) : नोटोकॉर्ड सिर्फ लार्वल अवस्था में ही पायी जाती है और यह इसके पुंछ भाग में सीमित होती है ।
- वर्टीब्रेटा (Vertebrata) : कशेरुकी दण्ड (vertebral column), नॉटोकॉर्ड के प्रस्थापित कर देता है।
- मस्तिष्क करोटि (cranium) अर्थात् कपाल अस्थियें द्वारा घिर जाता है ।
- नर एवं मादा अलग - अलग प्राणी होते हैं ।
- पाइसेज (Pisces) : उपसंघ वर्टीब्रेटा के डिविजन पाइसेज (Pisces) को निम्न वर्गों में विभक्त किया गया है
- कॉण्ड्रिकथीज़ (Chondrichthyes) : अन्त:कंकाल उपस्थियों अर्थात् कार्टिलेज (Cartilage) से बना होता है ।
- ऑस्टिचथीज़ (Osteichthyes) : अन्त:कंकाल अस्थियों का बना होता है ।
- प्लेकोडर्मी (Placodermi) : इस वर्ग के अंतर्गत जबड़े युक्त लुप्त (extinct) कवच युक्त (armoured) मछलियों को सम्मिलित किया गया है ।
- एम्फीबिया (Amphibia) : वर्ग में सम्मिलित किए गए प्राणी दोनों जल तथा थल में वास करते हैं। इसीलिए इन्हें उभयचारी (amphibious) जीव कहते हैं।

- रेप्टीलिया (Reptilia) : देह पर श्रृंगीय (horny) त्वचा पायी जाती है । कुछ प्राणियों में अस्थिमय प्लेट्स उपस्थित होती हैं ।
- एवीज़ (Aves) : ये समतापी (Homeothermic), गर्म रक्त वाले (Warm blooded) प्राणी होते हैं।
- देह पर पंख (feathars) पाए जाते हैं । अग्रपाद उड़ने के लिए रूपान्तरित होते हैं । त्वचा पर तेल ग्रंथियां पायी जाती हैं ।
- मैमेलिया (Mammalia) : ये नियत तापी, गर्म रक्त वाले स्तनी प्राणी होते हैं ।
- त्वचा रोमिल होती है तथा इस पर अनेक प्रकार की ग्रंथियाँ पायी जाती हैं ।
- वृषण, वृषण -कोष में देह के बाहर उपस्थित होते हैं ।

3.6 शब्दावली (Glossary)

नामकरण	(Nomenclature)
टैक्सा	(Taxa)
प्रोटोज़ोआ	(Protozoa)
अकोशिकीय	(Acellular)
कोशीय	(Unicellular)
पोरीफेरा	(Porifera)
ऑस्टिया	(Ostia)
ऑस्कुलम	(Osculum)
सीलेन्टरेटा	(Coelenterata)
मेटाजेनिसिस	(Metagenesis)
प्लैटीहेल्मिन्थीज	(Platyhelminthes)
एकलिंगी	(Monoecious)
द्विलिंगी	(Dioecious)
कूटदेहगुहा	(Pseudocoelom)
एनेलिडा	(Annelida)
मॉलस्का	(Mollusca)
इकाइनोडर्मेटा	(Echinodermata)
हेमीकॉर्डेटा	(Hemichordata)
सिफेलोकॉर्डेटा	(Cephalochordata)
यूरोकॉर्डेटा	(Urochordata)
वर्टीब्रेटा	(Vertebrata)
पाइसेज	(Pisces)
कॉण्ड्रिकथीज़	(Chondrichthyes)

3.7 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

1. कोहली, रंगा एवं लौरी : प्राणि विविधता तथा उद्विकास, रमेश बुक डिपो, जयपुर
2. पँवार : प्राणि विविधता एवं उद्विकास, कॉलेज बुक सेन्टर, जयपुर

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answer to self assestment Questions)

बोध प्रश्न - 1

1. वर्गिकी अर्थात् टैक्सोनॉमी (Taxonomy)
2. श्रेणी (Category), रैंक (Rank) अथवा टैक्सा (Taxa) कहा जाता है ।
3. अधिसंघ (superphylum), उपसंघ (Subphylum), उपवर्ग (Subclass)
4. कैरालस लिनेयस (Karolus Linnaeus)
5. कैरोलस लिनेयस
6. आर.एच. व्हिटकर (R.H. Whittaker) नामक वैज्ञानिक ने सन 1969 में
7. कूटपादों (pseudopodia), कशाभ (flazella) या रोमाभ (cilia)
8. प्रोटिस्ट्स में
9. पुटीभवन

बोध प्रश्न - 2

1. संघ-प्रोटोज़ोआ
2. प्रोटोजोआ
3. संघ - पोरीफेरा (Phylum-Porifera)
4. संघ-सीलेन्टरेटा (Phylum-Coelenterata)
5. संघ-सीलेन्टरेटा (Phylum- Coelenterata)
6. संघ-प्लैटीहेल्मिन्थीज (Phylum-Platyhelminthes)
7. संघ-प्लैटीहेल्मिन्थीज(Phylum-Platyhelminthes)
8. संघ-प्लैटीहेल्मिन्थीज(Phylum-Platyhelminthes)
9. संघ-एस्केहेल्मिनथीज (Phylum-Aschelminthes)
10. संघ-एस्केहेल्मिनथीज (Phylum-Aschelminthes)
11. संघ -एस्केहेल्मिनथीज (Phylum-Aschelminthes)
12. संघ-एनेलिडा (Phylum-Annelida)
13. संघ-एनेलिडा (Phylum-Annelida)
14. संघ-एनेलिडा (Phylum-Annelida)
15. संघ- आर्थ्रोपोडा (Phylum-Arthropoda)

16. संघ- आर्थ्रोपोडा (Phylum-Arthropoda)
17. संघ- आर्थ्रोपोडा (Phylum-Arthropoda)
18. संघ-मॉलस्का (Phylum-Mollusca)
19. संघ-मॉलस्का (Phylum-Mollusca)
20. संघ-इकाइनोडर्मेटा (Phylum-Echinodermata)
21. संघ-इकाइनोडर्मेटा (Phylum- Echinodermata)
22. संघ-हेमीकॉर्डेटा (Phylum-Hemichordata)
23. संघ-हेमीकॉर्डेटा (Phylum-Hemichordata)

बोध प्रश्न - 3

1. (क)खोखली द्रव से भरी तंत्रिका रज्जु, (ख) छड़ रूपी पृष्ठ रज्जु व (ग) क्लोम रन्ध्र ग्रसनी भाग पर उपस्थित।
2. प्रॉथ व शीर्ष भाग में
3. सिर्फ लार्वल अवस्था में, पुंछ भाग में
4. कॉण्ड्रिकथीज़ (Chondrichthyes)
5. विषम पाली
6. कॉण्ड्रिक्थीस
7. ऑस्टिचथीज़ (Osteichthyes)
8. प्लेकोडर्मी (Placodrmi)
9. फाइलोलेपिस,बोथ्रिओलेपिस
10. गैम्बुसिया
11. वर्ग-एम्फ़ीबिया (Class-Amphibia)
12. साइनस वीनोसस
13. वर्ग-एम्फ़ीबिया (Class-Amphibia)
14. वर्ग-रेप्टीलिया (Class-Reptilia)
15. वर्ग-रेप्टीलिया (Class-Reptilia)
16. वर्ग-रेप्टीलिया (Class-Reptilia)
17. वर्ग-एवीज(Class-Aves)
18. वर्ग-मैमेलिया (Class-Mammalia)
19. वर्ग-मैमेलिया (Class-Mammalia)
20. वर्ग-मैमेलिया (Class-Mammalia)
21. वर्ग-मैमेलिया (Class-Mammalia)

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Questions)

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. संघ-प्रोटोजोआ के मुख्य लक्षण लिखिये तथा इनके सदस्यों का गमनागों के आधार पर वर्गीकरण कीजिये।
2. बहु रूपता किसे कहते हैं? यह किस संघ में पायी जाती है?
3. यूरोकॉर्डेटा का एक उदाहरण लिखिए।
4. पेट्रोमाइजोन किस वर्ग का सदस्य है?
5. मछलियों का अध्ययन जीव विज्ञान की किस शाखा के अन्तर्गत किया जाता है?
6. स्तनपायी वर्ग के 6 प्रमुख लक्षणों को बताओ।
7. संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखो.

   (क) द्विनाम पद्धति

   (ख) त्रिनाम पद्धति

   (ग) पैराजोआ व मैटाजोआ में भेद

   (घ) पैराजोआ व मैटाजोआ में भेद

(ङ) प्रोटोजोआ व पोरीफेरा का आर्थिक महत्त्व

(च) परजीवियों वाले संघ

(छ) एनेलिडा व उसका आर्थिक महत्त्व

(ज) यूरोकॉर्डेटा व उसके वर्ग

(झ) आर्थोपोडा व उसका आर्थिक महत्व

(ञ) पृष्ठवंशी प्राणियों के लक्षण

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. प्रोटोजोआ एवं मेटाजोआ में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
2. पेराज़ोआ एवं यूमैटाज़ोआ में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. फाइलम-पॉरीफेरा के विशिष्ट लक्षण एवं उचित उदाहरण सहित वर्गीकरण कीजिये।
4. फाइलम-मोलस्का के सामान्य लक्षणों का वर्णन करते हुए वर्ग स्तर को वर्गीकृत कीजिये।
5. मछली वर्ग के प्रमुख लक्षण लिखिए।
6. यूरोकॉर्डेटा व सिफेलोकॉर्डेटा में अन्तर लिखिए।
7. पक्षी वर्ग के प्रमुख लक्षण लिखिए।

इकाई 4 : जैव प्रक्रियाएँ

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 पोषण

4.2.1 स्वपोषण (स्व = खुद = पोषण) (Autotrophic Mode of Nutrition)

4.2.2 परपोषण या विषमपोषण (Saprophytes)

4.2.2.1 मृतोपजीवी (Saprophytes)

4.2.2.2 परजीवी (Parasites)

4.2.3 प्राणिसम / जन्तुसम पोषण तथा अवशोषी पोषण (Holozoic Nutrition and Absorptive Nutrition)

4.2.3.1 अन्तग्रहण

4.2.3.2 अवशोषी: फफूंदी (Fungi)

4.2.3.3 पाचन विषमपोषी जीवों में

4.2.4 परजीवी प्राणियों के प्रकार

4.2.4.1 बाह्य परजीवी (Ectoparasite)

4.2.4.2 अन्त परजीवी (Endoparasites)

4.2.5 भोजन के प्रकार के आधार पर विषमपोषियों का वर्गीकरण

4.2.6 विषमपोषी पौधों के प्रकार (Types of Heterotrophic Plants)

4.2.7 प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis)

4.2.7.1 स्वपोषी जीव

4.2.7.2 प्रकाश संश्लेषण के लिए आवश्यक कच्चे पदार्थ

4.2.7.2.1 पर्णहरित (Chlorophyll)

4.2.7.2.2 कार्बन डाइऑक्साइड (Carbon dioxide)

4.2.7.2.3 जल (Water)

4.2.7.3 प्रकाश - संश्लेषण की क्रियाविधि (Mechanism of Photosynthesis)

4.2.7.4 प्रकाश - संश्लेषण को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Photosynthesis)

4.3 श्वसन

4.3.1 श्वसन के प्रकार (Types of Respiration)

4.3.1.1 ऑक्सी श्वसन (Aerobic Respiration)

4.3.1.2 अनॉक्सी श्वसन (Anaerobic respiration)

4.3.2 श्वसन की क्रियाविधि (Mechanism of Respiration)
4.3.2.1 ग्लाइकोलिसिस (Glycolysis)
4.3.2.1 क्रेब्स चक्र (Kerbs cycle)
4.3.3 वातावरण से ऑक्सीजन व कार्बन डाइऑक्साइड का विनिमय (Exchange of CO_2 and O_2 with the Environment)
4.3.4 मनुष्य में श्वसनांग (Respiratory)
4.3.5 मनुष्य में श्वासोच्छ्वास की विधि (Mechanism of Breathing in Man)
4.4 प्राणियों में परिसंचरण
4.4.1 खुला परिवहन तंत्र (Open Circulatory System)
4.4.2 बन्द परिवहन तंत्र (Closed Circulatory System)
4.4.3 परिवहन तन्त्र का प्राणियों में विकास (Development of Transport System in Animals)
4.4.5 स्तनियों में रुधिर परिसंचरण तन्त्र (Blood Vascular System in Mammals) 4.5प्राणियों में उत्सर्जन
4.5.1 वर्ज्यपदार्थ (Excratory Products)
4.5.2 अकशेरुकियों में उत्सर्जन अंग (Excratory Organs of Invertebrates)
4.5.2.1स्पंजो में उत्सर्जन (Excretion in Sponges)
4.5.2.2सीलेन्ट्रेट्स में उत्सर्जन (Excretion in Coelenterates)
4.5.2.3प्लैटीहेल्मिन्थीज में उत्सर्जन (Excretion in Playhelminthes)
4.5.2.4ऐनीलिड्स में उत्सर्जन (Excretion in Annelids)
4.5.3 उत्सर्जन अंग (Excretory Organs)
4.5.4 मनुष्य के उत्सर्जन अंग (Excretory organs of Men)
4.6 प्रजनन
4.6.1 अलैंगिक जनन (Asexual Reproduction)
4.6.1.1 विखण्डन (Fission)
4.6.1.2मुकुलन (Budding)
4.6.2 लैंगिक जनन (Sexual Reproduction)
4.6.3 प्राणियों मे लैंगिक जनन (Sexual Reproduction in Animals)
4.6.4 मानव में जनन तन्त्र (Reproductive system in Human Brings)
4.6.4.1नर जनन अग (Male Reproductive Organs)
4.6.4.2 मादा जनन अग (Female Reproductive Organs)
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 संदर्भ ग्रंथ

4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.11 अभ्यास प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से हम जानेंगे कि जीवधारियों के जो लक्षण होते हैं उनसे सम्बन्धित विभिन्न जैविक क्रियाएँ किस प्रकार से चलती रहती है।

इस इकाई के माध्यम से पोषण, परिसंचरण उत्सर्जन व प्रजनन जैसी जैविक प्रक्रियाओं की कार्यिकी का अध्ययन करेंगे।

4.1 प्रस्तावना

सभी जीवों में कुछ ऐसे विशिष्ट गुण होते हैं जो अजीवित या निर्जीवों में नहीं पाए जाते। किसी भी वस्तु को जिसमें कुछ विशिष्ट जैविक क्रियाएं (उदाहरण - वृद्धि, प्रचलन, श्वसन, पोषण, प्रजनन, आदि) हो रही हों, **सजीव या जीव** (organism) कहते हैं। इन जैविक क्रियाओं के आधार पर ही जीवों को निर्जीवों से अलग कर पाना सम्भव होता है।

उपापचय (Metabolism) : प्रत्येक जीव की कोशिकाओं में होने वाली सभी रासायनिक क्रियाओं को कुल मिलाकर **उपापचय** अथवा **मेटाबोलिज्म** (metabolism) कहते हैं।

उपापचय की क्रिया दो भागों में विभक्त की जाती है :

(i) **उपचय** (Anabolism) : इस क्रिया द्वारा जीवद्रव्य का निर्माण होता है। इसलिए यह क्रिया निर्माणकारी (constructive) क्रिया कहलाती है। इसके द्वारा शरीर की वृद्धि तथा विकास हुए है।

(ii) **अपचय** (Catabolism) : इस क्रिया द्वारा जैव पदार्थों का विघटन होता है, इसलिए इसे **विखण्डनात्मक** (destructive) क्रिया कहते हैं। अपचयन क्रिया के फलस्वरूप **गतिज ऊर्जा** (kinetic energy) अधिक मात्रा में उत्पन्न होती है।

पोषण (Nutrition) :जीवधारियों की कुछ प्रमुख जैविक क्रियाएँ है ऊर्जा एवं वृद्धि को प्राप्त करने के लिए जीव भोजन ग्रहण करते हैं। जीवों द्वारा भोजन प्राप्त करने की प्रक्रिया को पोषण कहते हैं।

श्वसन (Respiration) सभी जीवों में श्वसन की क्रिया होती है। इसके अन्तर्गत जीव, ऑक्सीजन को अपने अन्दर ग्रहण करते है जिसके द्वारा भोजन का ऑक्सीकरण होता है और कार्बन डाइ- ऑक्साइड, जल तथा उत्पन्न होती है। कार्बन डाइ - ऑक्साइड को शरीर के बाहर निकाल दिया जाता है। जीवों के शरीर में इस प्रकार ऊर्जा उत्पन्न करने वाली इस प्रकिया को **श्वसन** (Respiration) कहते है। यह क्रिया जीवों में जीवन-पर्यन्त होती रहती है।

$$\mathrm{C_6H_{12}}O_6 + 6O_2 \quad \rightarrow \quad 6\mathrm{CO_2} + 6H_2 0 + 673\ \mathrm{kcal}$$

ग्लूकोज + ऑक्सीज़न $\rightarrow$ कार्बन डाइ-ऑक्साइड + जल + ऊर्जा

उत्सर्जन (Excretion) : उपापचय की क्रिया के फलस्वरूप ऊर्जा के साथ -साथ कुछ विषैले तथा हानिकारक पदार्थ भी उत्पन्न होते है|उदाहरणार्थ - यूरिया, यूरिक अम्ल, कार्बन डाइ -

ऑक्साइड, आदि। इन अपशिष्ट पदार्थ, **उत्सर्जी उत्पाद** (excretory product) कहते हैं। इन उत्सर्जी उत्पादों को बाहर निकालने की को **उत्सर्जन** कहते हैं।

प्रजनन (Reproduction) : यह जीवों का अत्यधिक महत्वपूर्ण लक्षण है। प्रत्येक जीव अपने ही जैसी सन्तानें उत्पन्न करता है जिससे उसके वंश में वृद्धि होती है। उदाहरणार्थ, पौधों से बीज उत्पन्न होते हैं, जो उगकर वैसे ही पौधे बनाते हैं। इसी प्रकार मनुष्य, हाथी, घोड़ा, जानवर, मेंढक, आदि सभी प्राणी जन्तु अपने जैसे बच्चों को जन्म देते हैं।

4.2 पोषण

जीवों द्वारा भोजन (पोषक तत्वों) को प्राप्त करने के प्रक्रिया को प्रोषण कहते हैं। सभी जीवधारियों को प्रमुख रूप से दो कार्यों के लिये, अपने शरीर के निर्माण के लिए तथा विभिन्न जैविक क्रियाओं के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यह ऊर्जा उन्हें भोजन से प्राप्त होती है जिसमें पोषक तत्व होते हैं।

पोषण की मुख्यत : दो विधियाँ हैं - (अ) **स्वपोषण** (autotrophic), तथा (ब) **परपोषण या विषमपोषण** (heterotrophic)।

4.2.1 स्वपोषण (स्व = खुद +पोषण) (Autotrophic Mode of Nutrition):

अनेक जीवधारी अत्यन्त सरल पदार्थों से अपनी भोजन सामग्री का निर्माण स्वयं करते हैं। इस प्रक्रिया को **स्वपोषण** (autotrophic nutrition) तथा ऐसे जीवधारियों को स्वपोषी (autotrophic) हैं। स्वपोषी जीवधारी ही प्रकृति में भोजन का उत्पादन करते हैं, और उत्पादक (Producers) कहलाते है।

सभी हरे पौधे प्रकाश की उपस्थिति में जल व कार्बन डाइऑक्साइड का उपयोग करके पत्तीयों में उपस्थित पर्णहरित (chlorophyll) अथवा क्लोरोफिल की सहायता से कार्बनिक पदार्थों (काब्रोहाइड्रेट) का संश्लेषण करते हैं। इस प्रक्रिया को **प्रकाश -संश्लेषण** (Photosynthesis) कहते हैं।

पौधे वायुमण्डल से कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) अवशोषित करके उसका हाइड्रोजन द्वारा अपचयन करते हैं, जिससे कि CO_2 अपयचित होकर कार्बोहाइड्रेट में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रक्रिया के लिए जरूरी हाइड्रोजन को पौधे जल (H_2O) से प्राप्त करते हैं। ऊर्जा सूर्य प्रकाश से लेते हैं।

कुछ **जीवाणु**, जिन्हें हरित सल्फर जीवाणु (Green Sulphur bacteria) कहते हैं, जल के बजाए हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2O) से हाइड्रोजन प्राप्त करते हैं।

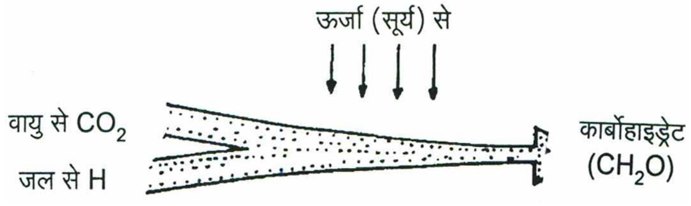

4.2.2 परपोषण या विषमपोषण (Heterotrophic Mode of Nutrition):

अनेक जीवधारी प्रकाश -संश्लेषण द्वारा अपने भोजन का निर्माण करने में असमर्थ होते हैं। अत : ये भोज्य पदार्थों के लिए अन्य स्रोतों (sources) पर निर्भर होते ये **परपोषी या विषमपोषी** (Heterotrophs heteros = विविध) कहलाते हैं। सभी प्राणी व कुछ पौधें भी परपोषी होते हैं। ये भी दो प्रकार के होते हैं:

4.2.2.1 मृतोपजीवी (Saprophytes): मृत तथा क्षय शरीर से भोजन प्राप्त करने वाले जीवधारियों को मृतोपजीवी (Saprophytes) कहते हैं। पोषण की इस विधि को मृतोपजीविता (Saprophytes mode of nutrition) कहते हैं। ये अपना भोजन सड़े -गले पत्तों, पौधों व क्षय होते (decaying) कार्बनिक पदार्थों से ग्रहण करते हैं। सड़ी -गली पत्तियों के ढेर पर उगता कुकुरमुत्ता (सांप की छत्री, मशरूम), डबलरोटी या अचार पर उगती फफूंदी (fungi), दही में उपस्थित जीवाणु, आदि सभी मृतोपजीवी हैं।

4.2.2.2 परजीवी (parasites) : वे जीवधारी अपना पोषण दूसरे जीवधारी से प्राप्त करते हैं इन्हें परजीवी (parasites) कहते हैं। जो जीवधारी पोषण प्रदान करते हैं उन्हें **पोषी** (host) कहते हैं। **मलेरिया परजीवी - प्लाज्मोडियम** (Plasmodium) तथा टेपवर्म व अमरबेल परजीवियों के उदाहरण हैं :

4.2.3 प्राणिसम /जन्तुसम पोषण तथा अवशोषी पोषण (Holozoic Nutrition and Absorptive Nutrition)

जीवधारी अपने स्रोत से भोजन दो अलग - अलग तरीकों से लेते हैं :

4.2.3.1 अन्तग्रहण : जितने भी प्राणी हैं - छोटे से छोटा अमीबा, विशाल हाथी तक, मनुष्य भी अपने भोजन को शरीर के अन्दर ले जाते हैं। हम सभी और अन्य प्राणी भी यहाँ तक कि एककोशिकीय अमीबा भी चीनी अथवा मण्ड के कण को अपने शरीर के अन्दर ग्रहण कर लेता है- अन्तर्ग्रहण (ingestion) । शरीर के अन्दर विकर अथवा एन्जाइम्स इसको तोड़कर ग्लूकोज व फ्रक्टोज में बदलते हैं, इनसे कोशिकाओं को ऊर्जा मिलती है। प्रोटीन, वसा व अन्य बड़े अणु भी शरीर के अन्दर ही तोड़े जाते हैं। इस प्रकार की पोषण विधि को **जन्तुसम या प्राणिसम** (holozoic) पोषण कहते हैं।

4.2.3.2 अवशोषी: फफूंदी (Fungi) अपने स्रोत से पोषण दूसरी प्रक्रिया से प्राप्त करती है। ये चीनी के सम्पर्क में आएं तो ये चीनी का अन्तर्ग्रहण नहीं करती बल्कि एन्जाइम्स स्रावित करती हैं जोकि इनके शरीर से बाहर निकलकर चीनी को सरल अणुओं ग्लूकोज व फ्रक्टोज में तोड़ता है। ये सरल अणु जब इनका शरीर अवशोषित कर लेता है, जहाँ इनसे ऊर्जा उत्पन्न होती है। इस प्रकार की पोषण प्रक्रिया **अवशोषी** (absorptive) कहलाती है।

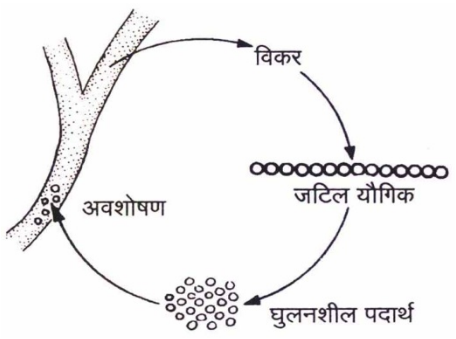

चित्र 4.1: फफूंदी में अवशोषी पोषण

4.2.3.3 पाचन विषमपोषी जीवों में - चाहे प्राणि -सम पोषण हो या अवशोषी पोषण हो - भोजन के जटिल अणुओं को सरल अणुओं में परिवर्तित करना होता है। यह प्रक्रिया अनेक रासायनिक अभिक्रियाओं की सहायता से सम्पन्न होती है जो कि एक क्रमबद्ध श्रृंखला के रूप में कार्य करते हैं और अनेक एंजाइमों द्वारा उत्प्रेरित होती है। इससे जो सरल अणु बनते हैं उनको कोशिकाएं अवशोषित कर लेती हैं। कुछ पदार्थ ऐसे बचते हैं जिनकी आवश्यकता नहीं होती इन्हें **अपशिष्ट पदार्थ** (waste products) कहते है इस प्रकार की पोषण कही जैव प्रक्रिया पाचन कहलाती है। **पाचन** (digestion) कहते हैं। अपशिष्ट पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने की क्रिया को **उत्सर्जन** (excretion) कहते है|

4.2.4 परजीवी प्राणियों के प्रकार

परजीवी दो प्रकार के हैं : (i) बाह्य परजीवी, तथा (ii) अन्त :परजीवी।

4.2.4.1 बाह्य परजीवी (Ectoparasites): बाह्य परजीवी पोषक के शरीर के बाहर ऊपरी सतह पर रहते हैं; जैसे जूं, खटमल।

4.2.4.2 अन्त:परजीवी (Endoparasites) : ये पोषक के शरीर के अन्दर विद्यमान रहते हैं। यदि ये कोशिका के भीतर रहते हैं तो इन्हें अन्त:**कोशिकीय परजीवी** (intracellular parasite) और यदि कोशिका के बाहर ऊतक में रहते हैं, तो इन्हें **अन्तराकोशिकीय परजीवी** (intracellular parasite) कहते हैं। उदाहरण - **प्लाज्मोडियम** (Plasmodium) तथा **एण्ट अमीबा** (Entamoeba) अन्त:परजीवी हैं, इनमें प्लाज्मोडियम, अन्त:कोशिकीय परजीवी तथा एण्टअमीबा अन्तराकोशिकीय परजीवी हैं।

4.2.5 भोजन के प्रकार के आधार पर विषम पोषियों का वर्गीकरण

भोजन के प्रकार के आधार पर विषमपोषी जन्तुओं को अग्रलिखित श्रेणियों में विभक्त किया जाता है : (i) शाकाहारी (ii) मांसाहारी (iii) सर्वाहारी (iv) फलभक्षी (v) रुधिराहारी (vi) मृतभक्षी (vii) स्वजातिभक्षी (viii) विष्ठाभोजी|

(i) **शाकाहारी** (Herbivores) : वे विषमपोषी प्राणी जो केवल पौधों को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं, **शाकाहारी** कहलाते हैं, जैसे - गाय, भैंस, बकरी, खरगोश, घोड़ा, आदि।

(ii) **मांसाहारी** (Carnivores) : वे विषमपोषी जो प्राणियों को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं, **मांसाहारी** प्राणी कहलाते हैं; जैसे छिपकली, शेर, चीता, कुत्ते, भेड़िये, आदि। इनमें से वे मांसाहारी प्राणी जो स्वयं अपना शिकार करने के पश्चात् उनको खाते हैं उन्हें परभक्षी(predaceous) प्राणी कहते हैं, जैसे छिपकली, शेर, आदि।

(iii) **सर्वहारी** (Omnivores) : वे सभी प्राणी जो पौधों तथा प्राणियों दोनों को ही भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं, **सर्वाहारी** प्राणी जन्तु कहलाते हैं, जैसे - कॉकरोच, मनुष्य, सूअर, कौवा, आदि।

(iv) **फलभक्षी** (Frugivores) : वे प्राणी जो केवल फलों को खाकर ही अपना जीवन - निर्वाह करते हैं, **फलभक्षी** प्राणी कहलाते हैं, जैसे - तोता।

(v) **रुधिराहारी** (Sanguivores) : वे प्राणी जो दूसरे प्राणियों के रुधिर को चूस कर उसे भोजन स्वरूप ग्रहण करते हैं, **रुधिराहारी** कहलाते हैं, जैसे -जोंक, या लीच।

(vi) **कीटभक्षी** (Insectivores) : वे प्राणी जो केवल कीटों को खाते हैं, **कीटभक्षी** प्राणी कहलाते हैं, जैसे -मेंढक, टोड, स्पाइनी चींटी-खोर, आदि।

(vii) **मृतभक्षी** (Carrion Enters) : कुछ प्राणियों केवल मृत प्राणियों के मांस को खाकर जीवन- निर्वाह करते है, उन्हें **मृतभक्षी** कहते हैं, जैसे -गिद्ध।

(viii) **स्वजातिभक्षी** (Cannibals) : कुछ प्राणी अपनी ही जाति के जीवों को खाकर जीवन निर्वाह करते हैं, उन्हे **स्वजातिभक्षी** कहते हैं, जैसे -कॉकरोच।

(ix) **विष्टाभोजी** (Caprophagous) : खरगोश, खरहा, आदि अपने ही मल को पुन: खाते हैं और सेलुलोस का पूर्ण पाचन कर पाने में समर्थ होते हैं।

4.2.6 विषम पोषी पौधों के प्रकार (Types of Heterotrophic Plants)

कुछ पौधे पर्णहरित होते हुए भी प्रकाश-संश्लेषण द्वारा अपने भोजन का निर्माण करने में असमर्थ होते हैं। अत: वे भोज्य पदार्थों के लिए अन्य पौधों पर निर्भर रहते हैं। कुछ पौधे आशिक रूप से तथा कुछ पूर्ण रूप से दूसरे पौधों अथवा जीवों पर निर्भर रहते हैं। पोषण विधि के आधार पर इन्हें निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया गया हैं - (क) परजीवी पौधे (Parasitic Plants) (ख) सहजीवी पौधे (Symbiotic Plants) (ग) मृतोपजीवी पौधे (Saprophytic Plants) (घ) कीटभक्षी पौधे (Insectivorous Plants)।

परजीवी पौधे (Parasitic Plants) : ये पौधे अपना भोजन दूसरे पौधे की कोशिकाओं से विशिष्ट अंगों, जिन्हें **चूषकांग** (haustoria) कहते हैं, द्वारा प्राप्त करते हैं। भोजन प्रदान करनें वाले पौधों को **पोषक** (host) कहते हैं तथा भोजन ग्रहण करने वाले पौधों को **परजीवी** (parasite) कहते हैं। परजीवी पौधें पोषक पौधों की कोशिकाओं से चूषकांगों द्वारा जल, खनिज तत्व तथा कार्बनिक यौगिकों का अवशोषण करते हैं। परजीवी जीव निम्न प्रकार के होते हैं:

(a) पूर्ण मूल परजीवी (Total root parasite) : ये पौधें पोषक पौधों की जड़ो पर पूर्ण रूप से निर्भर करते हैं। उदाहरण **- गंठवा** (Orobanche) में पत्तियां नहीं पाई जाती तथा ये

बैंगन, तम्बाकू, शलजम, सरसों, आलू आदि की जड़ों का परजीवी है। **इंद्री** (Balanophora) अधिकतर झाड़ियों की जड़ों पर परजीवी के रूप में रहते हैं। **रेफ्लेशिया** (Rafflasia) का पुष्प सबसे बडा होता है। इसका व्यास लगभग एक मीटर और वजन सात किग्रा होता है। यह **वाइटिस** (Vitis) अंजीर आदि के पौधों पर दक्षिण-पूर्वी एशिया के जंगलों में पाया जाता है।

(b) **आशिक मूल परजीवी** (Partial root parasite): इस वर्ग के पौधें आशिक रूप से अन्य पौधों की जड़ों पर निर्भर करते हैं। ये पोषक की जड़ से जल व खनिज लवण अवशोषित करते है तथा पत्तियों में पर्णहरित की उपस्थिति के कारण भोजन का निर्माण स्वयं करते है। उदाहरण**- चन्दन** (Santalum album)।

(c) **पूर्ण स्तम्भ परजीवी** (Total stem parasite) : ये पौधें स्तम्भ की कोशिकाओं पर पूर्ण रूप से निर्भर रहते हैं। Cuscuta Reflexa (अमरबेल) पोषक पौधों (नींबू बेर करौंदे) की जाइलम तथा फ्लोएम कोशिकाओं में से अकलों द्वारा भोजन तथा जल अवशोषित करता है। यह पीले रंग का पौधा है, जिस पर सफेद रंग के पुष्प लगते हैं। इसके तने पर छोटी-छोटी पत्तियां पाई जाती हैं।

(d) **आशिक स्तम्भ परजीवी** (Partial stem parasite): ये पौधों के तने की कोशिकाओं से जल तथा खनिज लवणों का अवशोषण करके स्वयं भोजन का निर्माण करते हैं। उदाहरण - **विस्कम** (Viscum), ओक, सेब आदि पर तथा **लोरेन्थस** (Loranthus) शीशम, बबूल आदि पर परजीवी होते हैं।

सहजीवी पौधें (Symbiotic Plants) : जब दो पौधें इस प्रकार से सम्बन्धित रहते हैं कि दोनों एक-दूसरे के लिए लाभकारी हों तो इस प्रकार के सम्बन्ध को **सहजीविता** (Symbiosis) कहते हैं तथा इन पौधों को सहजीवी पौधें कहते हैं। उदाहरण - (i) **लाइकेन** (Lichens) (ii) फली वाले पौधों (Legumes) की जड़ों की गांठों में **बैसिलस रेडिसिकोला** (Bacillus radicicola) या **राइजोबियम लेग्यूमिनोसेरम** (Rhizobium Leguminosarum) नामक जीवाणु।

मृतोपजीवी पौधे (Saprophytic plants) : इस वर्ग के पौधे मृत जीवों का विघटन करके उनसे कार्बनिक यौगिकों का अवशोषण करते हैं। उदाहरण **- पोलीपोरस** (Polyporus), **कुकुरमुत्ता** (mushroom) आदि, सड़े -गले पदार्थों से भोजन प्राप्त करते हैं। **राइजोपस** (Rhizopus) **ऐस्पर्जिलम**(Aspergillus), **म्यूकर** (Mucor) नामक कवक गीली डबलरोटी व चमड़े पर निर्भर करते हैं। मृतोपजीवी जीवाणुओं द्वारा ही दूध खट्टा होना, सिरके का निर्माण और दही जमने की प्रक्रिया सम्पन्न होती है।

नीओशिया (Neottia) नामक आर्किड दलदल में उगने के कारण अपने रोमरहित जड़ो द्वारा खनिज पदार्थों का अवशोषण करने में असमर्थ होते है,अत: कवकमूलों(mycorrhiza)द्वारा अवशोषण करते है| यद्यपि नीओशिया मृतोपजीवी है परन्तु कवक के सहयोग में रहने के कारण

सहजीविता का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है| **मोनाट्रैपा**(Monotrapa) भी सहजीवी मृतोपजीवी का एक उदाहरण है|

कीटभक्षी पौधे (Insectivorous Plants) : ये पौधें अपने भोजन का निर्माण स्वयं करते हैं; परन्तु ऐसे स्थान पर उगते हैं जहाँ नाइट्रोजन की कमी होती है। इस कमी को पूरा करने के लिए वे कीटों का भक्षण करते हैं। इन पौधों को **कीटभक्षी पौधे** कहते हैं। इन्हें मांसाहारी (carnivorous) पौधे भी कहा जाता है। उदाहरण -

(i) **ड्रोसेरा** (Drosera) नामक कीटभक्षी पौधे की पत्तियों की सतह पर कुछ रोम पाए जाते हैं, जो मीठे पदार्थों का स्रावण करते हैं। इससे कीट प्रभावित होकर इन पर आकर बैठते हैं। इसके पश्चात् रोम आपस में चिपककर कीट को पत्ती के अन्दर बन्द कर लेते हैं। कीट का पाचन पत्ती द्वारा स्रावित विभिन्न एन्जाइमों (Enzymes) द्वारा किया जाता है।

(ii) **यूट्रीकुलेरिया** (Utricularia) नामक कीटभक्षी पौधें में पत्तियां कुछ भागों में विभाजित होकर छोटी-छोटी थैली समान रचनाओं में रूपान्तरित होकर कीटों का भक्षण करती हैं।

(iii) **नेपेन्थीस** (Nepenthes or Pitcher plant) में पत्तियां घड़ों के आकार में रूपान्तरित होकर कीटों का भक्षण करती हैं तथा विभिन्न पाचक रसों द्वारा इनका पाचन करके नाइट्रोजन प्राप्त करती हैं।

(iv) **डायोनिया** (Dionaea) की पत्तियां रोजेट के आकार में फैली रहती हैं। इन पर रोम भी पाए जाते हैं जो कीटों को पकड़कर इनका भक्षण करते हैं।

बोध प्रश्न - 1 :

1. प्रकृति में उत्पादकों की संज्ञा किन्हे दी गयी है?

……………………………………………………………………………………………

2. पत्तियों मे उपस्थित किस पदार्थ की सहायता से प्रकाश संश्लेषण संभव हो पाता है?

……………………………………………………………………………………………

3. मृतोपजीवी किससे भोजन प्राप्त करते हैं?

……………………………………………………………………………………………

4. अमीबा में किस प्रकार से भोजन ग्रहण किया जाता है?

……………………………………………………………………………………………

5. बाह्य परजीवियों के दो उदाहरण दो?

……………………………………………………………………………………………

6. अन्त :कोशिकय व अन्तरकोशिकी परजीवियों के उदाहरण दो?

……………………………………………………………………………………………

7. जो प्राणी दूसरे प्राणियों के रुधिर को चूस कर उससे भोजन स्वरुप ग्रहण करते हैं क्या कहलाते हे?

……

8. गीली डबलरोटी व चमड़े पर निर्भर जीवों के उदाहरण दो?

……

9. ऐसे जीव का नाम बताओ जो कि यद्यपि मृतोपजीवी है परन्तु सहजीविता का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है?

……

10. किस की कमी की आपूर्ति के लिए पौधे कटिभक्षिता का प्रदर्शन करते है?

……

4.2.7 प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis)

4.2.7.1 स्वपोषी जीव (जैसे हरे पौधे) वातावरण से सरल अणुओं (पानी व कार्बन डाइऑक्साइड) को ग्रहण करके उनसे कार्बनिक पदार्थ (शर्करा) का संश्लेषण करते हैं। इसके लिए आवश्यक ऊर्जा उन्हें सूर्य के प्रकाश (sunglight) से प्राप्त होती है। अत: यह प्रक्रिया **प्रकाश -संश्लेषण** (photosynthesis) कहलाती है।

$$6CO_2 + 12H_2O \xrightarrow[\text{क्लोरोफिल}]{\text{प्रकाश}} C_6H_{12}O_6 + 6O_2$$

कार्बन डाइ - ऑक्साइड जल   क्लोरोफिल   ग्लूकोज ऑक्सीजन

"जीवित कोशिकाओं द्वारा पर्णहरित (क्लोरोफिल) व सूर्य के प्रकाश की सहायता से, वायु से ग्रहण की गई कार्बन डाइऑक्साइड को किसी हाइड्रोजन दाता (जैसे, जल H_2S) की उपस्थिति में अपचयित (reduce) **करके कार्बोहाइड्रेट निर्माण की प्रक्रिया को प्रकाश संश्लेषण** (photosynthesis) **कहते हैं।**

4.2.7.2 प्रकाश -संश्लेषण के लिए आवश्यक कच्चे पदार्थ (Raw materials for photosynthesis):

4.2.7.2.1 पर्णहरित (Chlorophyll) : पत्तियों में हरे रंग का जो वर्णक होता है, उसे पर्णहरिम (क्लोरोफिल Chlorophyll) कहते हैं। प्रकाश -संश्लेषण के लिए क्लोरोफिल अति आवश्यक होता है। इसीलिए जिन कोशिकाओं में क्लोरोफिल होता है, केवल वे ही प्रकाश संश्लेषण कर पाती हैं। छोटे -हरे तनों व फलों में भी प्राय: काफी मात्रा में क्लोरोफिल होता है, परन्तु ज्यों -ज्यों ये पीरपक्व होते जाते हैं, क्लोरोफिल कम होता जाता है। शैवाल जो कि प्राय : पानी में मिलती है, में पूर्ण काया ही प्रकाश -संश्लेषी होती है। कुछ जलमग्र पौधों 'जैसे **हाइड्रिला** में भी पूरी काया प्रकाश -संश्लेषी होती है। पौधों में क्लोरोफिल प्राय : पत्तियों में ही पाया जाता है। इसीलिए पत्तों को **प्रकाश -संश्लेषी** अंग (photosynthesis organs) कहते हैं। क्लोरोफिल नामक कोशिकांगों में क्लोरोफिल स्थित होता है। इसलिए क्लोरोफिल को **प्रकाश -संश्लेषी अंगक** (photosynthesis organelle) कहते है|

4.2.7.2.2 कार्बन डाइऑक्साइड (Carbon डाइऑक्साइड, CO_2): प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया में शर्करा के निर्माण के लिए CO_2 कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त होती है। स्थलीय पौधें इसे वायुमण्डल से लेते हैं, परन्तु जलमग्न पौधों को पानी में घुली कार्बन डाइऑक्साइड पर निर्भर रहना होता है।

4.2.7.2.3 जल (Water): प्रकाश -संश्लेषण की प्रक्रिया के लिए जल भी एक कच्चे माल की भाँति कार्य करता है। पौधों की जड़ें भूमि से पानी को अवशोषित करती हैं और जाइलम द्वारा पत्तियों को पहुँचा देती हैं। जल से ही **हाइड्रोजन** प्राप्त होती है जो कि कार्बन डाइऑक्साइड का अपचयन करती है।

4.2.7.3 प्रकाश -संश्लेषण की क्रियाविधि (Mechanism of Photosynthesis): प्रकाश -संश्लेषण बहुत जटिल जैव -रासायनिक प्रक्रिया है और इसमें अनेक अभिक्रियाएं होती हैं। यद्यपि प्रकाश -संश्लेषण की जटिल प्रक्रिया में CO_2, जल, क्लोरोफिल, प्रकाश के अलावा अनेक विकर (एन्जाइम) तथा रासायनिक पदार्थ भाग लेते हैं, परन्तु दो पदार्थ ऐसे हैं जो अत्यावश्यक हैं - NADP तथा ADP|

NADP (निकोटिनैमाइड ऐडीनिन डाइन्यूक्लियोटाइड फॉस्फेट, Nicotinamide adenine Dinucleotide Phosphate) एक **हाइड्रोजन ग्राही** पदार्थ है जो हाइड्रोजन को ग्रहण करके NADPH_2 में परिवर्तित हो जाता है तथा बाद में CO_2 को H देकर वापस NADP में परिवर्तित हो जाता है।

ADP (Adenosine Disphosphate, ऐडीनोसिन डाइफॉस्फेट) कोशिकाओं में उपस्थित एक ऐसा यौगिक है जो कि ऊर्जा की उपस्थिति में एक फॉस्फेट अणु से संयोग करके ATP (Adenosine triphosphate, ऐडीनोसिन ट्राइफॉस्फेट) में परिवर्तित हो जाता है।

जहाँ किसी भी अभिक्रिया के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है, ATP टूटकर पुन : मैं ADP+P में परिवर्तित हो जाता है और संचित ऊर्जा इस्तेमाल के लिए मुक्त हो जाती है।

ATP ADP+P+ऊर्जा

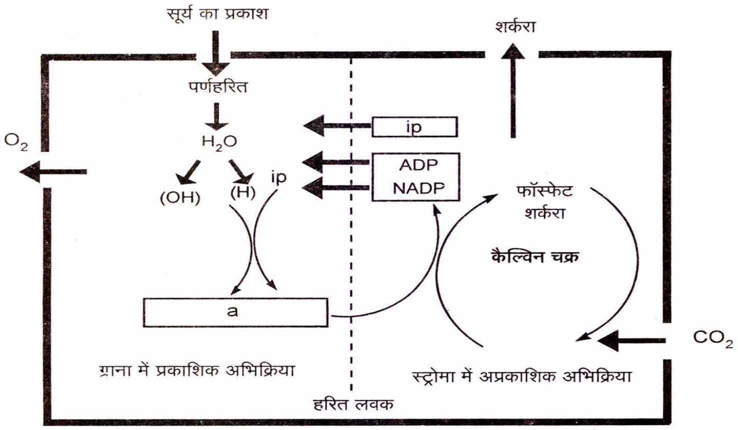

चित्र 4.2: प्रकाश -संश्लेषण की प्रक्रिया का सारांश

इस तरह ATP एक प्रकार से कोशिका में विभिन्न प्रक्रियाओं के बीच ऊर्जा समन्वय स्थापित करता है|

सुविधा की दृष्टि से प्रकाश -संश्लेषण की पूरी प्रक्रिया को हम दो प्रमुख भागों में बाँट सकते हैं-

(अ)**प्रकाशिक अभिक्रिया** (Light Reaction) जिसके लिए प्रकाश आवश्यक है;

(ब)**अप्रकाशिक अभिक्रिया** (Dark Reaction) जिसके लिए प्रकाश आवश्यक नहीं है।

प्रकाशिक अभिक्रिया (Light Reaction) : यह कोशिका के क्लोरोप्लास्ट के **ग्रेना** में होती है तथा इसमें कई कार्य होते हैं।

(i) सूर्य के प्रकाश से पर्णहरित के इलेक्ट्रॉन उत्तेजित होकर अपनी कक्षा छोड़ देते हैं। जब यह इलेक्ट्रॉन इस ऊर्जा को मुक्त करता है तो मैं ADP+P संयुक्त होकर बनाते बनाते हैं। इस प्रकार सूर्य की प्रकाश ऊर्जा रासायनिक ऊर्जा के रूप में अटकाली (trap) हो जाती है।

(ii) उत्तेजित इलेक्ट्रॉनों द्वारा जल के अणुओं का हाइड्रोजन (H^+) व हाइड्रॉक्सिल (OH^-) आयनों में अपघटन हो जाता है-

$$4H_20 \rightarrow 4H^+ + 40H^-$$

(iii) $4H^+$को NADP ग्रहण करके NADPH$_2$ में परिवर्तित हो जाता है ।

$$4H^+ + 2NADP \rightarrow 2NADPH_2$$

(iv) $40H^-$ संघनित होकर पानी व ऑक्सीजन बाते हैं - संघनन

$$40H- \rightarrow 2H_20 + 0_2 \uparrow +4e^-)$$

(v) आक्सीजन वायु मे विमुक्त (release)हो जाती है।इलेक्ट्रॉन वापस क्लोरोफिल में चले जाते हैं। स्पष्ट है कि O_2की विमुक्ति जल से हुई न कि CO_2 से ।

इस प्रकार प्रकाशिक क्रिया से

(i) ATP बनते है

(ii) NADPH_2बनता है;

(iii) विमुक्त होती है ।

अप्रकाशिक अभिक्रिया (Dark Reaction) : यह क्लोरोप्लास्ट के **स्ट्रोमा** में होती है। इस चरण में वायुमण्डल से अवशोषित CO_2 का अपचयन होकर कार्बोहाइड्रेट बनता है।

प्रकाश -संश्लेषण की पूरी क्रिया को संक्षेप में अति सरल रूप में इस प्रकार दिखाया जा सकता है-

$$6CO_2 + 12ATP + 12NADEH \rightarrow C_6H_{12}0_6 + 12ADP + 12NADP$$

4.2.7.4 प्रकाश - संश्लेषण को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Photosynthesis)

1. प्रकाश (Light) :

(i) CO_2 की मात्रा (CO_2 concentration) : सामान्यत : वातावरण में 0.03% CO_2 होती है। इतनी कम मात्रा में होने के कारण यह सीमाकारी होता है। वायुमण्डल में CO_2 की मात्रा सामान्य से 15 - 20 गुना हो जाए, तो प्रकाश -संश्लेषण की दर उच्च प्रकाश तीव्रता पर बढ़ जाती है लेकिन CO_2 की अत्यधिक सान्द्रता हानिकारक भी हो सकती है।

(ii) प्रकाश गुण (Quality of Light) : लाल और नीले प्रकाश में प्रकाश संश्लेषण अधिकतम होता है । पराबैंगनी (ultraviolet), हरी, पीली व अवरक्त (infrared) प्रकाश में यह क्रिया बिल्कुल नहीं होती।

(iii) प्रकाश तीव्रता (Light intensity) : यदि अन्य कारक सीमाकारी (limiting) न हों, तो प्रकाश तीव्रता को 500 फुट कैन्डिल से 3,000 फुट कैन्डिल की ओर बढ़ाने पर प्रकाश -संश्लेषण की दर बढ़ती है।

2. तापमान (Temperature) : लगभग 30 - 35^0C तापक्रम पर प्रकाश - संश्लेषण की दर अधिकतम होती है । 40^0C से ऊपर लवकों व एन्जाइमों में विकृति होने लगती है।

3. जल (Water) : जल की अत्यधिक कमी होने पर रन्ध्र बन्द हो सकते हैं तथा फलस्वरूप CO_2 न मिल पाने से प्रकाश -संश्लेषण में कमी आती है।

4. ऑक्सीजन सान्द्रता (Oxygen concentration) : ऑक्सीजन की अधिकता होने पर (विशेषकर अधिक तापमान पर) 'रुबिस्को ' एन्जाइम की प्रकाश - संश्लेषी क्रियाशीलता घट जाती है|

5. आन्तरिक कारक (Internal factors) : क्लोरोफिल की मात्रा, खनिज लवणों (Mg आदि) की उपलब्धता, जीवद्रव्य में जल की मात्रा, में कमी होने पर प्रकाश -संश्लेषण की प्रक्रिया पर दुष्प्रभाव पड़ता है। प्रकाश - संश्लेषी उत्पाद (जैसे मंड आदि) के संचित होgए पर भी प्रकाश -संश्लेषण की दर घटती है।

1. रात के समय पौधे-संचित स्टार्च को इस्तेमाल करते हैं।
2. छाया में /उषाकाल में/सायंकाल मे ऐसी स्थिति आती है जब श्वसन से निकली CO^2 पौधे के प्रकाश-संश्लेषण के लिए पर्याप्त होती है और पौधा CO^2 व O^2 न तो वातावरण से लेता है, न देता है। इस बिन्दु को **सन्तुलन प्रकाश तीव्रता** (compensation point) कहते हैं।
3. दिन में श्वसन के दौरान निकली CO_2 को पौधे प्रकाश-संश्लेषण के लिए इस्तेमाल कर लेते हैं।
4. रात के समय प्रकाश-संश्लेषण नहीं होता, अत: श्वसन से निकली CO^2 विमुक्त होती रहती है|
5. CO_2 वायुमण्डल से रंध्रों के रास्ते विसरण द्वारा कोशिकाओं मे आती है।
6. प्रकाश-संश्लेषण की दर लाल प्रकाश में सबसे अधिक व हरे प्रकाश में सबसे कम होती है।

बोध प्रश्न - 2 :

1. पौधों में CO_2 का अवशोषण तथा O_2 का निकास किस क्रिया से होता है?
……………………………………………………………………..

2. प्रकाश-संश्लेषण में प्रकाश किस का विखण्डन करता है?
……………………………………………………………

3. प्रकाश-संश्लेषण में उत्पन्न ऑक्सीजन किससे प्राप्त होती है?
……………………………………………………………

4. पुष्पधारी पौधों में शर्करा का स्थानान्तरण किस रूप में होता है?
……………………………………………………………….

5. प्रकाश-संश्लेषण में C $25^0 - 40^0$ का उपयोग कब होता है?
…………………………………………………………….

6. C4 चक्र में C O_2 का प्रथम सम्पर्क किससे होता है?
…………………………………………………………………….

7. कार्बन स्वांगीकरण के लिए ऊर्जा का प्राथमिक स्रोत कौनसा है?
……………………………………………………………………..

8. प्रकाश संश्लेषण के लिए सबसे उपयोगी तरंग लम्बान है।
………………………………………………………………………….

9. प्रकाश संश्लेषण में प्रकाश की आवश्यकता किसके लिए होती है?
……………………………………………………………………………….

4.3 श्वसन

कोई भी जीव भोजन को मुख्यत ऊर्जा प्राप्त करने के लिए लेता है। प्राप्त भोजन से ऊर्जा का निकास दो चरणों में होता है - (i) पहले चरण में जटिल अणुओं का अपघटन करके उनसे सरल अणुओं को प्राप्त किया जाता है। इस क्रिया को पाचन कहते हैं। (ii) दूसरे चरण में भोजन के सरल अणुओं का **ऑक्सीकरण** किया जाता है। वातावरण से प्राप्त ऑक्सीजन से इन सरल अणुओं का ऑक्सीकृत किया जाता है तो कार्बन डाइऑक्साइड व जल बनते हैं तथा ऊर्जा विमुक्त होती है। इस प्रक्रिया को **श्वसन** (respiration) कहते हैं।

श्वसन के दौरान कार्बनिक पदार्थ से ऊर्जा एकदम नहीं निकलती- धीरे - धीरे थोड़ी- थोड़ी मात्रा में चरणबद्ध क्रम में निकलती है जबकि दहन में ऊर्जा एक ही चरण में विमुक्त हो जाती है।

अत: **"श्वसन जैविक कोशिकाओं द्वारा शरीर के सामान्य ताप पर अनेक सुव्यवस्थित चरणों में होने वाली वह जटिल प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत कार्बनिक पदार्थों का जैविक ऑक्सीकरण द्वारा चरणबद्ध अपघटन से ऊर्जा का निर्माण होता है "।**

सारणी 1. श्वसन व दहन में अन्तर

श्वसन (Respiration)	दहन (Combustion)
1. यह एक जैविक क्रिया है जो केवल सजीव	1. यह जैविक क्रिया नहीं है -सजीव कोशिकाओं में

कोशिकाओं में होती है |	नहीं होती।
2. ऊर्जा कई चरणों में विमुक्त होती है।	2. ऊर्जा तत्काल एक ही चरण में मुक्त हो जाती है|
3. यह कई चरणों में सम्पन्न होने वाली, एन्जाइमों द्वारा नियन्त्रित होने वाली जटिल प्रक्रिया है।	3. यह एक साधारण रासायनिक प्रक्रिया है।
4. श्वसन शरीर के सामान्य ताप $25^0 - 40^0$ C पर हो सकता है।	4. दहन अत उच्चताप पर होता है।
5. ऊर्जा का अधिकांश भाग ATP के रूप में संचित हो जाता है।	5. ऊर्जा का अधिकांश भाग उष्मा/प्रकाश के रूप में मुक्त होता है।

श्वसन की प्रकिया से जो ऊर्जा मुक्त होती है वह ADP+P सेATP बनने में काम आती है। दूसरे शब्दों में, कोशिका में उपस्थित ADP के अणु ऊर्जा पाने पर फॉस्फेट वर्ग के साथ संयुक्त होकर ATP के अणु बना लेते हैं। ऊर्जा की जहाँ तथा जब आवश्यकता होती है, ATP टूटकर ADP+P में परिवर्तित हो जाती है व ऊर्जा विमुक्त होती है। इस प्रकार ATP में ही श्वसन की प्रक्रिया से उत्पन्न ऊर्जा संग्रहित होती है।

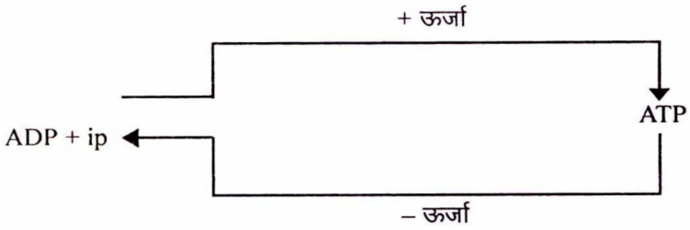

अमीबा व जीवाणुओं से लेकर जटिल प्राणियों व वृक्षों तक की कोशिकाओं में ATP की ऊर्जा-उत्पादक अभिक्रियाओं से ऊर्जा संचित करके ऊर्जा-उपभोगी अभिक्रियाओं को देता है। इसलिए ATP को **ऊर्जा का सार्विक वाह**क (universal substrates) कहते हैं।

श्वसनी पदार्थ (Respiratory substrates) : श्वसन की प्रक्रिया में जो यौगिक ऑक्सीकृत होते हैं, उन्हे **श्वसनी पदार्थ** (Respiratory substrates) कहते हैं। कार्बोहाइड्रेट, वसा प्रोटीन प्रमुख श्वसनी पदार्थ हैं।

कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrates) : अधिकांश कोशिकाओं में कार्बोहाइड्रेट, विशेषकर ग्लूकोज, ही प्रमुख श्वसनी पदार्थ होता है।

वसा (Fats) ऊर्जा के आरक्षित भण्डार (reserves) होते हैं। इनका इस्तेमाल तभी होता है जब कार्बोहाइड्रेट के भण्डार समाप्त हो जाएं। इसी प्रकार प्रोटीनों (Proteins) का श्वसन तभी होता है जब कार्बोहाइड्रेट व वसा का भण्डार समास हो चुकता है।

4.3.1 श्वसन के प्रकार (Types of Respiration)

ऑक्सीजन पर निर्भरता की दृष्टि से श्वसन दो प्रकार का होता है :

4.3.1.1 ऑक्सी श्वसन (Aerobic respiration): इस प्रकार की श्वसन क्रिया में ऑक्सीजन की उपस्थिति अनिवार्य होती है। श्वसनी पदार्थ का पूरा ऑक्सीकरण होता है जिसके फलस्वरुप CO_2 व H^+ बनते हैं तथा काफी मात्रा में ऊर्जा विमुक्त होती है:

$$C_6H_{12}0_6 + 6O_2 \rightarrow 6CO_2 + 6H_2O + 2830kJ \text{ ऊर्जा } (673 \text{ cal})$$

अधिकांश जीवों में ऑक्सी श्वसन ही होता है। इन्हें **ऑक्सीजीव या वायुजीव** (aerobes) कहते है|

4.3.1.2 अनॉक्सी श्वसन (Anaerobic respiration) : जब श्वसन ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में होता है, उसे **अनॉक्सी श्वसन** (Anaerobic respiration) कहते हैं। इसमें श्वसनी पदार्थ का अपूर्ण (incomplete) ऑक्सीकरण होता है। फलस्वरुप **एथिल ऐल्कोहॉल, लैक्टिक अम्ल**, इत्यादि कार्बनिक यौगिक व CO_2 बनते हैं। साथ ही ऊर्जा मुक्त होती है। इस प्रक्रिया में जल नहीं बनता:

$$C_6H_{12}0_6 \rightarrow 2C_2O_5OH + 2CO_2 + \text{ऊर्जा}$$

अनॉक्सी श्वसन प्राय : जीवों में गहराई पर स्थित ऊतकों में, अंकुरित होते बीजों में, व फलों में थोड़े समय के लिए होता है। परन्तु कई सूक्ष्म जीवों जैसे यीस्ट व अनेक जीवाणुओं में यह प्राय : पाया जाता है। ऐसे जीवधारियों को **अनॉक्सीजीव** (anaerobes) कहते हैं।

सारणी 2. ऑक्सी श्वसन व अनॉक्सी श्वसन में अन्तर

ऑक्सी श्वसन (Aerobic respiration)	**अनॉक्सी श्वसन (Anaerobic respiration)**
1. ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है।	ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में होता है।
2. श्वसनी पदार्थ का पूरा ऑक्सीकरण होता है|	श्वसनी पदार्थ का पूरा ऑक्सीकरण नहीं होता।
3. ग्लूकोज के एक अणु से 686 कि. कै. ऊर्जा निकलती है।	ग्लूकोज के एक अणु से केवल 56 कि. कै. ऊर्जा निकलती है।
4. CO_2 व जल अन्तिम उत्पाद होते हैं।	अन्तिम उत्पाद कोई कार्बनिक यौगिक (जैसे, ऐल्कोहॉल, लैक्टिक अम्ल, आदि) होता है।
5. अधिकतर जीवों में यही होता है।	कुछ सूक्ष्मजीवों में तथा कुछ अन्य जीवों में विशेष परिस्थितियों में होता है।

कोशिका का शक्तिगृह : श्वसन की समस्त क्रियाएं कोशिका में होती हैं। अनेक एन्जाइमों की मदद से यह प्रक्रिया पूरी होती है। प्रक्रिया का कुछ भाग जीवद्रव्य में तथा एक महत्वपूर्ण भाग माइटोकॉण्ड्रिया में पूरा होता हैं क्योंकि माइटोकॉण्ड्रिया में ही अधिकांश एन्जाइम पाए जाते हैं जो

कि इस प्रक्रिया को पूरी कर सकते हैं और ऊर्जा विमुक्त कराते हैं। इसलिए माइटोकॉण्ड्रिया को **कोशिका का शक्ति केन्द्र गृह**(power centre/power house) कहते हैं। प्रोकैरियोटी जीवधारियों में माइटोकॉण्ड्रिया नहीं होते और इनमें ये एन्जाइम कोशिका कला पर स्थित होते हैं।

4.3.2 श्वसन की क्रियाविधि (Mechanism of Respiration)

श्वसन की प्रक्रिया सामान्यत : दो पदों में पूरी होती है : (i) ग्लाइकोलिसिस (ii) क्रेब्स चक्र।

4.3.2.1 ग्लाइकोलिसिस (Glycolysis): इस चरण में ग्लूकोज के एक अणु से पाइरुविक अम्ल का निर्माण होता है। इसमें ऑक्सीजन की आवश्यकता नहीं होती। अत: यह चरण ऑक्सी श्वसन व अनॉक्सी श्वसन, दोनों में एक जैसा होता है। यह पूरा चरण कोशिका -द्रव्य में पूरा होता है।

सबसे पहले ग्लूकोज का एक अणु ATP के दो अणुओं को प्राप्त करके **फ्रक्टोज 1, 6 -डाइफॉस्फेट** नामक यौगिक बनाता है जिससे **फॉस्फो ग्लिसरैल्डिहाइड के 2 अणु** प्राप्त होते हैं। फॉस्फोग्लिसरैल्डिहाइड से फॉस्फोग्लिसेरिक अम्ल बनता है जो अन्तत : पाइरुविक अम्ल में बदल जाता है।

ग्लाइकोलिसिस के पूरे चरण में ATP के दो अणु खर्च होते हैं व **चार** ATP के अणु बनते हैं। इस प्रकार इस चरण में दो ATP **के अणुओं का लाभ होता हैं।**

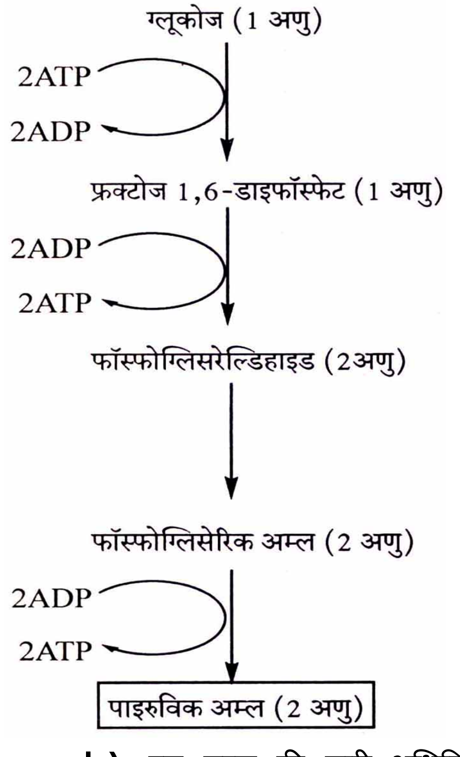

4.3.2.2 क्रेब्स चक्र (Kerbs cycle): इस चरण की सारी अभिक्रियाएं यूकैरियोटी जीवों में माइटोकॉण्ड्रिया में तथा प्रोकैरियोटी जीवों में कोशिका कला पर होती हैं। इन सभी अभिक्रियाओं

का पता सन् 1937 में ब्रिटिश वैज्ञानिक **हैन्स क्रेब्स** (Hans Krebs) ने लगाया था। इसीलिए इस पूरे चक्र को क्रेब्स चक्र कहते हैं।

इस चरण में ग्लाइकोलिसिस से प्राप्त पाइरुविक अम्ल के दोनों अणुओं का ऑक्सीजन की उपस्थिति में पूर्ण ऑक्सीकरण होता है। इस चरण में होने वाले प्रमुख परिवर्तन निम्न प्रकार हैं:

(i) क्रेब्स चक्र में प्रवेश करने से पहले' पाइरुविक अम्ल से CO_2 के एक अणु का तथा दो हाइड्रोजन परमाणुओं का विमोचन होता है। बचा हुआ अणु, **कोएन्जाइम** ए से संयुक्त होकर **ऐसीटाल कोएन्नाइम** A(Acetyl coenzyme A) बनाता है।

(ii) ऐसीटाइल कोएन्जाइम A अब कोशिका में उपस्थित ऑक्जैलो ऐसीटिक अम्ल व जल से क्रिया करके साइट्रिक **अम्ल बनाता** है।

(iii) साइट्रिक अम्ल का क्रेब्स चक्र में धीरे - धीरे कई अभिक्रियाओं के माध्यम से क्रमबद्ध विघटन होता है। इन आभिक्रियाओं के फलस्वरुप कई मध्यवर्ती अम्ल बनते हैं (जैसे **ऑक्जैलोसक्सिनिक अम्ल, अल्फा -कीटोग्लूटेरिक अम्ल, सक्सिनिक अम्ल, फ्यूमेरिक अम्ल, मैलिक अम्ल)** इन परिवर्तनों के दौरान CO_2 के अणु व हाइड्रोजन के 8 परमाणु मुक्त होते हैं।

(iv) अन्त में मैलिक अम्ल का परिवर्तन **ऑक्जैलोग्लिसरिक अम्ल** में हो जाता है। यह पुन : दूसरे पाइरुविक अम्ल के अणु के साथ संयुक्त होकर **क्रेब्स चक्र** में पुन : प्रवेश करता है।

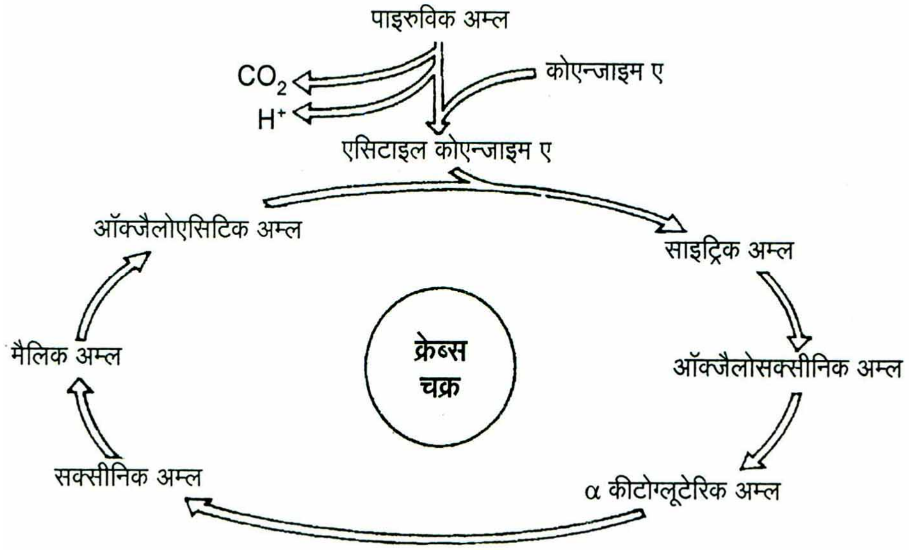

ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में क्रेब्स चक्र की अभिक्रियाएं सम्भव नहीं होती तथा पाइरुविक अम्ल से एथिल ऐल्कोहॉल (या अन्य कोई कार्बनिक पदार्थ) व CO_2 बनते हैं।

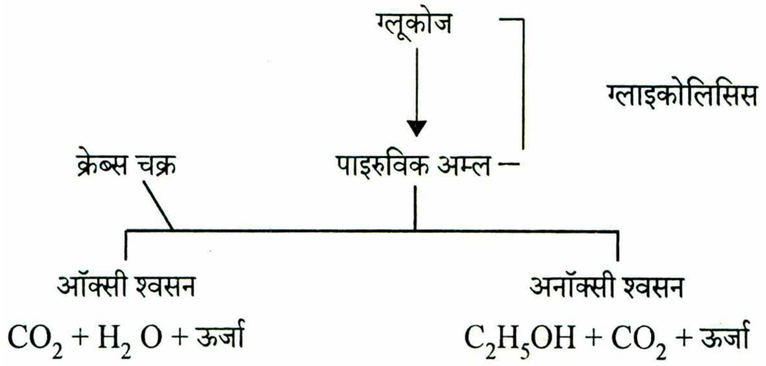

ऊर्जा का उत्पादन (Production of Energy) : पाइरुविक अम्ल के अणु के ऑक्सीकरण से ATP का एक अणु, पाँच अणु NADH के 1 व अणु FADH_2 बनता है। NADH के एक अणु से 3 अणु ATP के व FADH_2 के एक अणु से ATP के 2 अणु प्राप्त होते हैं। इस प्रकार पाइरुविक अम्ल के एक अणु से 1+(3 × 5)+(2 ×1)=1+15+2=18अणु ATP के बनते हैं। चूंकि ग्लूकोज के एक अणु से दो पाइरुविक अस्त के अणु बनते हैं - 2 × 18 = 36 अणु ATP पाइरुविक अम्ल के दो अणुओं से प्राप्त होते हैं। ग्लाइकोलिसिस के दौरान भी 2 ATP अणुओं का लाभ होता है। अत: ग्लूकोज के 1 अणु के श्वसन से 2 + 36 = 38 ATP अणु प्राप्त होते हैं।

4.3.3 वातावरण से ऑक्सीजन व कार्बन डाइऑक्साइड का विनिमय

(Exchange of CO_2 and O_2 with the environment)

श्वसन में श्वसनी पदार्थों का ऑक्सीकरण होता है। इसके लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। जीवधारी यह ऑक्सीजन बाहरी वातावरण से ग्रहण करते हैं। श्वसन में CO_2भी मुक्त होती है। जीवधारी इसCO_2 को शरीर से बाहर निकालते हैं। इस प्रकार वातावरण व जीवधारियों के बीच O_2 व CO_2 का विनिमय होता है।

पानी में डूबे पौधों व सूक्ष्म जीवों में यह विनिमय **विसरण** (diffusion) द्वारा होता है। स्थलीय पौधों की पत्तियों में अनेक **रंध्र** (stomata) होते हैं जिनसे श्वसन में CO_2 बाहर जाती है व O_2 अन्दर आती है, परन्तु जटिल जीवधारियों में इस कार्य के लिए विशेष अंग होते हैं जिन्हें श्वसनांग (breathing organs) कहते हैं। इन जीवधारियों में CO_2 बाहर निकालने व O_2 अन्दर निकालने की एक विशेष प्रक्रिया होती है जिसे **सांस लेना** (श्वासोच्छवास, breathing) कहते हैं।

काफी समय तक प्राणियों द्वारा श्वासोच्छवास (breathing) को ही श्वसन समझा जाता था, परन्तु श्वासोच्छवास व श्वसन में निश्चित अन्तर है।

श्वासोच्छवास तथा श्वसन में अन्तर

श्वासोच्छवास (Breathing)	श्वसन (Respiration)
1. यह केवल एक भौतिक क्रिया है जिसमें	यह क्रिया जैव रासायनिक क्रिया है जिसमें ग्लूकोस का ऑक्सीकरण होता है। इसके फलस्वरुप कार्बन

	शरीर ऑक्सीजन का अन्तर्ग्रहण तथा कार्बन डाइ - ऑक्साइड का बहिक्षेपण करता है।	डाइ - ऑक्साइड तथा ऊर्जा उत्पन्न होती हैं।
2.	यह क्रिया कोशिकाओं के बाहर होती है।	यह क्रिया कोशिकाओं के भीतर होती है।
3.	इस क्रिया में एन्जाइमों की आवश्यकता नहीं होती।	इस क्रिया में एन्जाइमों की आवश्यकता होती है।
4.	इस क्रिया में ऊर्जा उत्पन्न नहीं होती।	इस क्रिया में ऊर्जा उत्पन्न होती है।

श्वासोच्छवास में वायु का संगठन

	नाइट्रोजन	**ऑक्सीजन**	**कार्बन डाइ - ऑक्साइड**	**जल की वाष्प**
अन्दर ली गई वायु	79%	21%	0.03%	**परिवर्तनीय**
बाहर निकाली गई वायु	79%	17%	4%	**संतृप्त**

सांस द्वारा लगभग 400 ml जल प्रतिदिन हमारे शरीर से बाहर निकलता है।

सांस लेने (CO_2 व O_2 विनिमय) की प्रक्रिया विभिन्न जीवधारियों में भिन्न -भिन्न हो सकती है, परन्तु श्वसन की प्रक्रिया सभी जीवधारियों में मूलत : एक समान होती है। अत : श्वसन जीवों में कार्यात्मक एकता का एक अच्छा उदाहरण है।

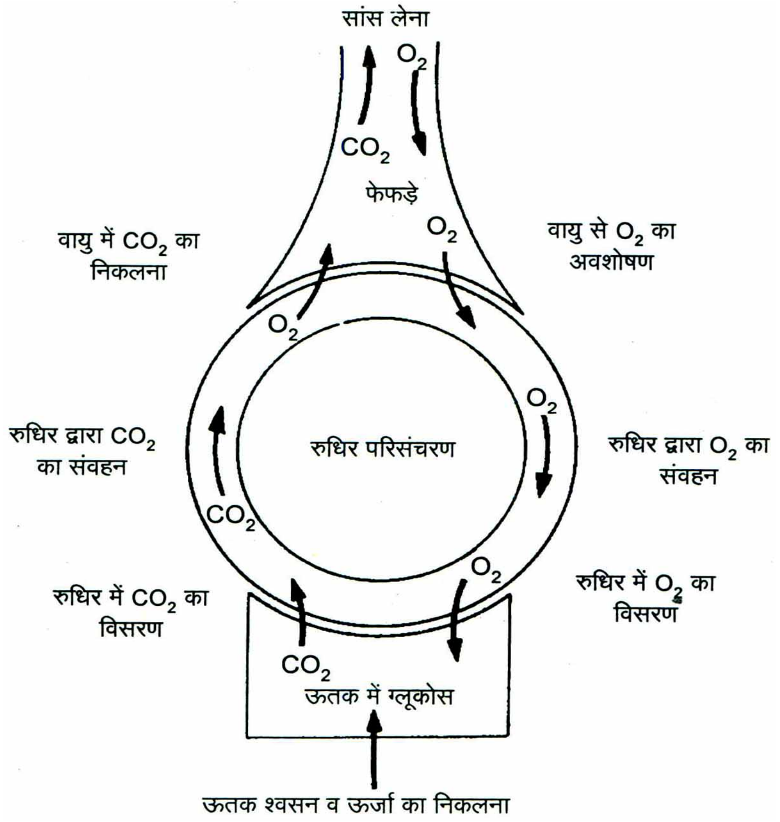

चित्र 4.3: मानव शरीर में श्वासोच्छवास तथा श्वसन

हम जब सांस लेते हैं तो अधिक (O_2 वाली वायु फेफड़े में जाती है जहाँ पर यह रक्त द्वारा अवशोषित कर ली जाती है। यह O_2 युक्त रक्त धमनियों द्वारा पूरे शरीर के विभिन्न ऊतकों की कोशिकाओं तक ऑक्सीजन पहुँचाता है। कोशिकाओं में ऑक्सीजन श्वसनी पदार्थों का ऑक्सीकरण (श्वसन) करती है। इससे CO_2 विमुक्त होती है जो रक्त द्वारा फेफड़ों में लाई जाती है और यहाँ से सास द्वारा बाहर निकाल दी जाती है।

श्वसन (Respiration) व प्रकाश-संश्लेषण (Photosynthesis) में अन्तर : श्वसन को प्रकाश -संश्लेषण के विपरीत माना जाता है। प्रकाश-संश्लेषण में उपचय होता है जबकि श्वसन में अपचय। प्रकाश-संश्लेषण व श्वसन में प्रमुख अन्तर निम्न प्रकार हैं :

प्रकाश-संश्लेषण	श्वसन
1. श्वसन यह **संश्लेषणात्मक** (anabolic) प्रक्रिया है।	यह **विघटनात्मक** (catabolic) प्रक्रिया है।
2. यह केवल पर्णहरित युक्त कोशिकाओं में होती है	यह सभी जीवित कोशिकाओं मे होता है। होती है।
3. यह केवल **प्रकाश** की उपस्थिति में होता है।	इसके लिए प्रकाश आवश्यक नहीं है।
4. यह कोशिका के **क्लोरोप्लास्ट** में होती है।	यह कोशिका द्रव्य व **माइटोकॉण्ड्रिया** में होती
5. इसमें CO_2 **ग्रहण** की जाती है।	इसमें **ऑक्सजीन ग्रहण** की जाती है।
6. इसमें O_2 **विमुक्त** होती है।	इसमें CO_2 विमुक्त होती है।
7. इसमें प्रकाश ऊर्जा का परिवर्तन रासायनिक ऊर्जा में होता है।	इसमें रासायनिक ऊर्जा का उपयोग ATP निर्माण ऊर्जा में होता है।

4.3.4 मनुष्य मे श्वसनांग (Respiratory organs in Man)

श्वसन तंत्र के अन्तर्गत वे सभी अंग आते हैं जिनसे होकर वायु का आदान-प्रदान होता है, जैसे- नासा मार्ग, ग्रसनी, लैरिंक्स या स्वयन्त्र, ट्रेक्रिया, ब्रोंकाई तथा ब्रौंकियोल्स और फेफड़े।

नासिका या नासा मार्ग (Nose or Nasal Passage) : यद्यपि नासिका का मुख्य कार्य सूंघने से सम्बन्धित है फिर भी यह श्वसन नाल के द्वार का कार्य करती है तथा एक **अन्तरनासिका पट्टिका** (internasal septum) द्वारा दो नासिका छिद्रों में विभाजित रहती है। नासिका छिद्र तथा उसके ठीक भीतर रोम या बाल होते हैं। ये धूल के कण या सूक्ष्म जीवों को हमारे शरीर में प्रवेश करने से रोकते हैं। भीतर की गुहा **म्यूकस कला** (mucous membrance) से स्तरित रहती है। यह स्तर लगभग आधा लीटर म्यूकस प्रतिदिन स्रावित करती है। धूल के कण तथा बैक्टीरिया या अन्य सूक्ष्म जीव म्यूकस मे ही चिपक कर फंस जाते हैं। इसके अतिरिक्त, शरीर में प्रवेश करने वाली वायु को भी म्यूकस नम बनाती है। म्यूकस मेम्बेन में **रुधिर केशिकाओं** (blood capillaries) का जाल बिछा रहता है, जो वायु को गरम कर उसे शरीर के ताप के बराबर बना देती है। नासिका **अन्त :नासा छिद्रों** (internal nares) द्वारा ग्रसनी में खुलती है।

मुख द्वारा भी श्वास लेना सम्भव होता है, किन्तु इसमें वायु को स्वच्छ करना, नम बनाना तथा सूक्ष्म जीवों के प्रवेश को रोकना आदि सम्भव नहीं होता। इसलिए मुख से श्वास नहीं लेनी चाहिए।

ग्रसनी (Pharynx) : यह नासा गुहा के ठीक पीछे स्थित होती है। नीचे की ओर यह **मुख ग्रसनी** (oral pharynx) से सम्बन्धित रहती है। इसकी पार्श्व भित्ति में मध्य कर्ण की युसेटेशियन नलिका (Eustachian tube) भी खुलती है।

लैरिंक्स (Larynx) : श्वसन मार्ग का वह भाग जो ग्रसनी को ट्रेकिया से जोड़ता है, उसे **लैरिंक्स** या **स्वर यन्त्र** (voice box) भी कहते हैं। इसका मुख्य कार्य **ध्वनि उत्पादन** (Sound production) है, किन्तु इसके अतिरिक्त खासंने, निगलने, श्वासोच्छवास तथा श्वसन मार्ग की सुरक्षा करने आदि में भी यह यंत्र सहायक होता है। लैरिंक्स के प्रवेश द्वारा पर एक पतला, पत्ती समान कपाट होता है, जिसे **एपिग्लॉटिस** (epiglottis) कहते हैं। इपिग्लॉटिस उपास्थिमय रचना है। जब कुछ भी निगलना होता है तो यह ग्लॉटिस द्वार को बन्द कर देता है जिससे भोजन श्वास नली में प्रवेश नहीं कर पाता। यह क्रिया स्वत : ही होती है। लैरिंक्स की गुहा भी म्यूकस मेम्बेन द्वारा स्तरित रहती है जो **पक्ष्माभी एपीथीलियम** (ciliated epithelium) द्वारा ढकी रहती है।

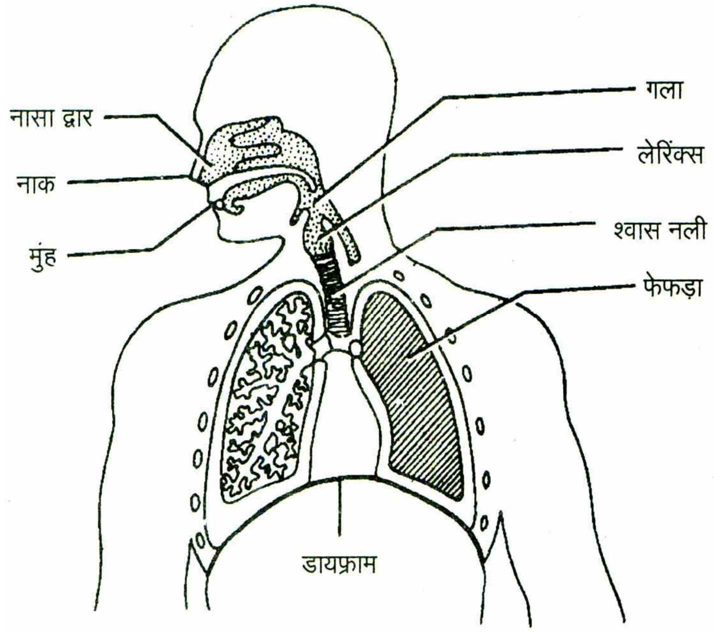

चित्र 4.4 : मानव के श्वसनीय अंग

ट्रेकिया (Traches) : ग्रीवा लैरिंक्स ट्रेकिया से जुड़ा रहता है जो कि लगभग 12 सेमी लम्बी नलिका होती है। ट्रेकिया नली भी भीतर से म्यूकस मेम्बेन तथा पक्ष्माभी एपीथीलियम द्वारा स्तरित रहती है। यह **वक्ष गुहा** (thoracic cavity) प्रवेश करती है। ट्रेकिया, वृक्ष गुहा में एक उल्टे वृक्ष की भांति लटकी रहती है। ट्रेकिया की दोनों प्रमुख शाखाओं को **प्राथमिक ब्रोंकियोल** (primary bronchiole) कहते हैं। दायीं तीन शाखाओं में बंट जाती है जो कि दाय ओर के

फेफड़े में प्रवेश करती है। बायां ब्रोंकियोल केवल दो शाखाओं में विभाजित होता है जो बाएं फेफड़े में प्रवेश करती है। प्रत्येक फेफड़े में रुधिर केशिकाओं का जाल बिछा रहता है। यहाँ पर गैसीय आदान-प्रदान होता है, अर्थात् O_2 रुधिर में चली जाती है और CO_2 बाहर आ जाती है।

फेफड़े (Lungs) : वक्ष गुहा (thoracic cavity) में एक जोड़ी फेफड़े होते हैं। इनका रग लाल होता है और इनकी रचना स्पंज के समान थैले जैसी होती है। इनका आधार डायाफ्राम पर टिका रहता है और शीर्ष ग्रीवा के आधार तक फैला रहता हैं। प्रत्येक फेफड़े में लगभग 300 करोड़ एल्वियोलाई होते हैं जिनकी सतह का क्षेत्रफल लगभग 90 वर्ग मीटर होता है। दायां फेफड़ा बडा और चौड़ा होता है और इसमें तीन **पालियां** (lobes) होती हैं इनको क्रमश: **दायी ऊर्ध्ववर्ती पालि** (right superior lobe), **मध्य पालि** (middle lobe) तथा **दायीं निम्न पालि** (right inferior lobe) कहते हैं। बायां फेफड़ा छोटा होता है और इसमें केवल दो पालि होती हैं - **बायीं ऊर्ध्ववर्ती पालि** (superior lobe) तथा **बायी निम्न पालि** (left inferior lobe)।

प्रत्येक फेफड़ा एक झिल्ली द्वारा घिरा रहता है जिसे **फ़्यूरल मेम्बेन** (pleural membrance) कहते हैं, जिसके मध्य द्रव्य भरा रहता है। यह मेम्बेन फेफड़ों की रक्षा करती है। फेफड़े कुंचनशील होते हैं और यदि हम ट्रेकिया में फूंक मारें तो फेफड़े गुब्बारों के समान फूल जाते हैं।

4.3.5 मनुष्य में श्वासोच्छवास की विधि (Mechanism of Breathing in Man)

इस चरण को **फुफ्फुसी संवातन** (Pulmonary) कहते हैं। यह प्रक्रिया भी दो उपचरणों में पूर्ण होती है: (i) निश्वसन (ii) निश्वसन।

- **(i) निश्वसन** (Inspiration) : फुक्फुस या फेफड़ों में वायु का आना-जाना फुफ्फुस के भीतर वायु के दाव पर निर्भर करता है। जब वातावरणीय वायु दाव फुफ्फुसीय वायु दाव से अधिक होता है तब वायु फुफ्फुस में प्रवेश करती है। इस क्रिया को **निश्वचन** (inspiration) कहते हैं।
- **(ii) उच्छश्वसन** (Expiration) : जब वायु का दाब फुफ्फुस में अधिक हो जाता है और वातावरण में कम होता है तब वायु फुफ्फुस से बाहर वातावरण में आती है। इसे **निःश्वचन** कहते हैं।

निश्वसन के समय डयाफ्राम की **अरीय मांसपेशियां** (radial muscles) तथा **बाहय अन्तरापर्शुक पेशी** (external intercostal muscles) सिकुड़ती हैं, जिससे डायाफ्राम उदर की ओर झुक जाता है और पसलियां या वक्षीय भित्ति बाहर तथा, ऊपर की ओर गति करती है। इस प्रकार वक्षीय गुहा का आयतन बढ़ जाता हैं। वक्षीय गुहा के बढ़ने से फुफ्फुस में वायु की दाब कम हो जाती है, इसलिए वातावरण की वायु, नासिका छिद्रों द्वारा फेफड़ों में प्रवेश करती है। पेशियां जो निश्वचन में सहायक होती हैं उन्हें **निश्वसनीय पेशियां** (inspiratory muscles) कहते हैं।

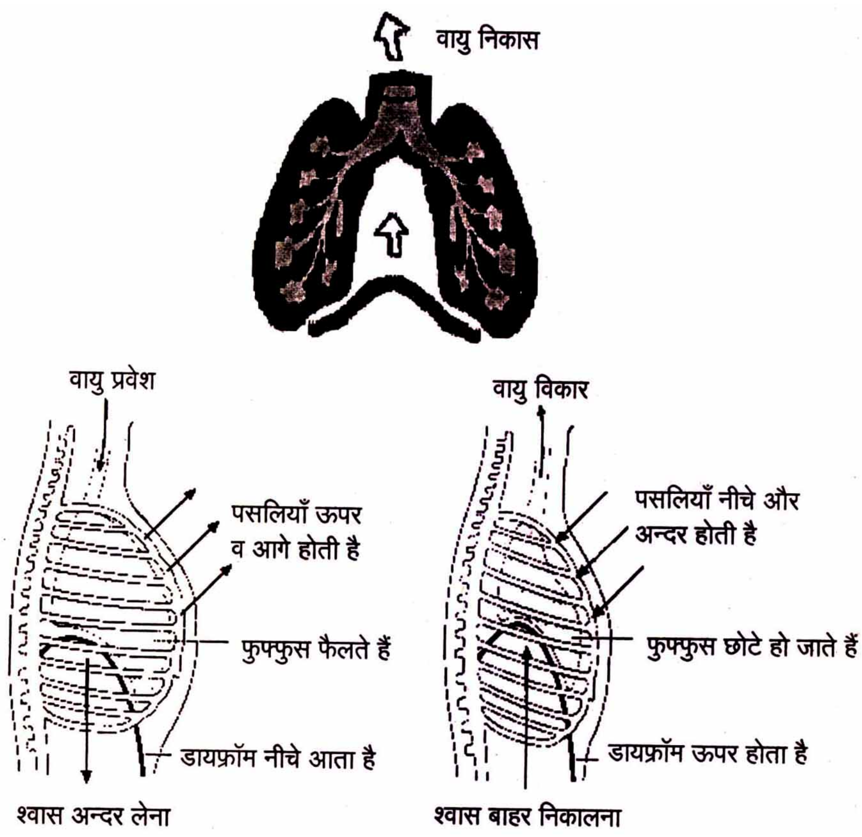

चित्र : मानव में श्वसन

निश्वचन एक निष्क्रिय प्रक्रिया है। इसके अन्तर्गत अरीय पेशियों में तथा अन्तरापर्शुक पेशियों में शिथिलन होती है जिसके फलस्वरुप डायाफ्राम वक्ष की ओर ऊपर उठता है और अन्तरापर्शुक में गति होती है। इसके फलस्वरुप वक्षीय भित्ति या पसलियां भीतर की ओर गति करती है। इससे फुफ्फुसीय वायु दाब अधिक हो जाता है और वायु नासिका छिद्रों से होती हुई बाहर निकल जाती है।

कुछ रोचक तथ्य

1. एक मिनट में जितनी बार निश्वसन तथा उच्छ :श्वसन होता है, उसे श्वसन दर (respiratory) कहते हैं।
2. विश्राम की अवस्था में जितनी कम-से-कम दर में ऊर्जा उत्पादन की आवश्यकता होती है जिससे कोई जीव जीवित रह सके, उसे जीव की आधारिक उपापचयी दर (basal Metabolic Rate) कहते हैं।
3. श्वसनी पदार्थ के उपापचय में जितनी ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है और जितनी कार्बन डाइ-ऑक्साइड का उत्पादन होता है, इसके अनुपात को श्वसन भागफल (Respiratory quotient) कहते हैं। कार्बोहाइड्रेट के लिए इसका अनुपात 1 होता है।

4. सामान्य श्वासोच्छवास के दौरान मनुष्य लगभग 450cm^3 वायु शरीर के भीतर लेता है और बाहर निकालता है। इसे प्रवाही आयतन (TV = Tidal Volume) कहते हैं।
5. बलपूर्वक किए गए नि:श्वसन के पश्चात् भी कुछ वायु फेफड़ों तथा श्वसन मार्ग में बची रह जाती है। इसे अवशोषी आयतन (Residual Volume) कहते हैं। यह लगभग 1,500 cm^3 होता है। O_2:CO_2 = 1
6. ऊँचे पहाड़ों पर ऑक्सीजन की कमी अनुभव होती है, इस स्थिति को अनॉक्सिया या हाइपॉक्सिया (anoxia or hypoxia) कहते हैं।
7. केंचुए, नेरीस, मेंढक, आदि अनेक जन्तुओं में गैसीय विनिमय त्वचा (integument) द्वारा होता है।
8. अनेक कीटों में श्वास नलिकाएं (trachea) होती हैं जो शरीर के बाहर असंख्य छिद्रों (spiracles) द्वारा खुलती हैं।
9. मछलियों में क्लोन द्वारा गैस विनिमय होता है, झींगा मछली में भी।
10. मेंढक में मुख व फेफड़ों द्वारा भी गैस विनिमय होता है।

बोध प्रश्न - 3

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. श्वसन वर्णक का महत्वपूर्ण लक्षण है -
   (अ) O_2 के साथ संयोजित होता है
   (ब) उच्च O_2 की सांद्रता पर समायोजित होता है
   (स) CO_2 के साथ संयोजित होता है
   (द) कोई नहीं
2. स्तनियों में फेफड़ों की उत्पत्ति होती है -
   (अ) एण्डोडर्म से
   (ब) मीजोडर्म से
   (स) एक्टोडर्म से
   (द) सभी से
3. फेफड़ों के ऊपर का आवरण होता है -
   (अ) प्लूरल कला का
   (ब) पैरीटोनियम का
   (स) पैरीकार्डियम का
   (द) पैरीकान्ड्रियम का
4. डायफ्राम से संबंधित तंत्रिका होती है -

(अ) फ्रेनिक

(ब) वेगस

(स) ट्राइजेमिनल

(द) ग्लोसोफॅरिंजियल

5. खरहे में ट्रेकिया की रोमाभी एपीथीलियम का कार्य है -

(अ) श्लेष्म को बाहर धकेलना

(ब) निःश्वसन की वायु को भीतर धकेलना

(स) उच्छ्वसन की वायु को बाहर धकेलना

(द) घ्राण संवेदना ग्रहण करना

6. स्वर रज्जु पाए जाते हैं -

(अ) ग्रसनी में

(ब) ग्लॉटिस में

(स) ब्रोकाई में

(द) लैरिंक्स में

7. प्लाज्मा से उपस्थित श्वसन वर्णक होता है -

(अ) हीमोसाएनिन

(ब) हीमोग्लोबिन

(स) क्लेरोक्रुओरिन्स

(द) हीमोएरिथ्रिन्स

8. कुछ प्राणियों का रुधिर नीला होता है क्योंकि उसमें -

(अ) हीमोग्लोबिन

(ब) एरिथोकुओरिन

(स) हीमोसाएनिन

(द) साइटोक्रोम

9. बाह्य इन्टरकॉस्टल पेशियों के संकुचन से पेशियाँ आ जाती है -

(अ) अंदर

(ब) बाहर

(स) पीछे

(द) इनमें से कोई नहीं

10. हीमोग्लोबिन एवं मायोग्लोबिन में उपस्थित होता है -

(अ) Fe

(ब) Mg

(स) Cu

(द) Me

11. अवायवीय श्वसन में पेशियों में उपस्थित पाइरुविक अम्ल से बनता है -

(अ) लेक्टिक अम्ल

(ब) एसीटल्डीहाइड

(स) एल्कोहल

(द) एसीटाइल CoA

12. क्रैब्स चक्र महत्वपूर्ण है -

(अ) अमीनो अम्ल निर्माण में

(ब) विटामिन निर्माण में

(स) मास निर्माण में

(द) हॉर्मोन्स निर्माण में

13. वायुवीय (ऑक्सीय) श्वसन होता है -

(अ) कोशिका द्रव्य

(ब) माइटोकॉन्ड्रिया

(स) लाइसोसोम्स

(द) राइबोसोम्स

14. ग्लाइकोलाइसिस में अन्तत : -

(अ) प्रोटीन को ग्लूकोज में बदलता है

(ब) ग्लूकोस को फ्रक्टोज में बदलता है

(स) स्टार्च को ग्लूकोज में बदलता है

(द) ग्लूकोज को पिरुविक अम्ल में बदलता है

4.4 प्राणियों में परिसंचरण

प्रोटोजोआ, सीलेन्ट्रेटा तथा प्लैटीहेल्मिन्थीज संघ के जीवों के शरीर में पदार्थों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए विशिष्ट परिवहन तंत्र नहीं होता। इनका शरीर इतना छोटा है कि इसके भीतर पदार्थों को जितनी दूरी तय करनी पड़ती है वह विसरण द्वारा या जीवद्रव्य गति द्वारा ही पूर्ण हो जाती है।

ज्यों-ज्यों प्राणियों का आकार बढ़ता जाता है और संरचना जटिल होती जाती है उतना ही पदार्थो का, शरीर के बाहर और भीतर आवागमन बढ़ता जाता है। पदार्थों को जितनी दूरी तय करनी पड़ती है, वह भी बढ़ती जाती है और विसरण द्वारा परिवहन की पूर्ति नहीं होती। इसीलिए पदार्थों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए परिवहन की आवश्यकता होती है।

प्राणियों में पचे हुए पोषक पदार्थों तथा श्वसनांगों द्वारा वातावरण से ग्रहण की गई ऑक्सीजन को समस्त कोशिकाओं में पहुँचाने के लिए रुधिर परिसंचरण तंत्र होता है। यह तंत्र कोशिकाओं से

कार्बन डाइऑक्साइड को श्वसनांगों में तथा यूरिया, आदि को उत्सर्जन अंगों में पहुँचाता है। शरीर की विभिन्न कोशिकाओं के बीच रासायनिक आदान-प्रदान भी इसी परिसंचरण तंत्र द्वारा होता है। परिसंचरण तंत्र को दो भागों में विभक्त किया जाता है जो निम्नलिखित हैं : (i) रुधिर परिसंचरण तंत्र (Blood Vascular System) (ii) लसीका तंत्र (Lymphatic System)।

प्रत्येक परिवहन तंत्र में तीन विशिष्ट लक्षण होते है :

(i) एक भ्रमण करने वाला द्रव जिसे सामान्यतया **रुधिर या रक्त** (blood) कहते हैं।

(ii) एक संकुचनशील अंग जिसके द्वारा द्रव को समस्त शरीर में भेजा जा सके। यह प्राय: या तो रुधिर वाहिनी हो सकती है या **हृदय** (heart)।

(iii) नलिकाएं जिनमें होकर रुधिर शरीर के प्रत्येक भाग में भ्रमण कर सके। इन्हें प्राय: रुधिर **वाहिनियां** (blood vessels) कहते हैं।

उच्च श्रेणी के अकशेरुकियों तथा कशेरुकियों में दो प्रकार का परिवहन तंत्र होता है : (i) खुला परिवहन तंत्र, तथा (ii) बन्द परिवहन तंत्र।

4.4.1 खुला परिवहन तंत्र (Open Circulatory System)

इस प्रकार के परिवहन तंत्र में रुधिर हृदय द्वारा एक महाधमनी में भेजा जाता है, तो अगणित छोटी- छोटी नलिकाओं - धमनियों (arteries) में विभाजित हो जाती है। ये धमनियां **रुधिर रिक्तिकाओं** (blood spaces) में खुलती हैं जिन्हें सामूहिक रूप से हम **हीमोसील** (haemocoel) कहते हैं। इसके अन्तर्गत रुधिर बहुत ही धीरे-धीरे बहता है और हीमोसील से अनेक सूक्ष्म नलिकाओं, **लघु शिराओं** (venules) द्वारा एकत्रित कर लिया जाता है, और फिर अधिक बडी नलिकाओं, **शिराओं** (veins) में होकर हृदय में पहुँचता है। उदाहरण - अधिकांश आर्थोपोडा संघ के प्राणियों में, सिफैलोपोडा (मोलस्का) के प्राणी तथा टयूनिकेट्स में।

4.4.2 बन्द परिवहन तंत्र (Closed Circulatory System)

इस प्रकार के परवान तन्त्र में रुधिर हृदय द्वारा बल के साथ धमनियों (arteries) में पम्प किया जाता है और फिर यह अनेक सूक्ष्म नलिकाओं, **लघु धमनियों** (arteriole) में पहुँचता है जहाँ से **लघु शिराओं** (venules) द्वारा एकत्रित किया जाता है और फिर शिराओं से होता हुआ यह हृदय में वापस पहुँच जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रुधिर केवल बन्द नलिकाओं में भ्रमण करता है और कहीं भी सीधे ऊतकों के सम्पर्क में नहीं आता, जैसे खुले तन्त्र में रुधिर, रिक्तिकाओं द्वारा ऊतकों के सम्पर्क में आता है।

रुधिर वाहिनियों की रचना तथा कार्य के आधार पर इनका नाम रखा जाता है। ये निम्नलिखित हैं:

(i) शिराएं (veins) : लघु शिराएं आपस में मिलकर शिराएं बनाती हैं। ये रुधिर को ऊतकों से लेकर हृदय की ओर ले जाती है।

(ii) लघु शिरा (venule) : रुधिर केशिकाएं ऊतक के भीतर ही पुन: आपस में जुड़ी रहती हैं और फिर कुछ बड़ी वाहिनियों का निर्माण करती हैं इन्हें **लघु शिरा** कहते हैं। लघु शिराओं द्‌वारा ही रुधिर वापसी की क्रिया प्रारम्भ होती है।

(iii) धमनी (Arteries) : वे रुधिर वाहिनियां जो रुधिर को हृदय से अंगों की ओर ले जाती हैं, धमनी कहलाती हैं।

(iv) धमनिका (Arterioles) : धमनियों की अन्तिम महीन शाखाएं **धमनिका** कहलाती हैं।

(v) रुधिर केशिकाएं (blood Capillaries) : धमनिकाएं अनेक इतनी महीन शाखाओं में बंट जाती हैं जिनको सूक्ष्मदर्शी द्‌वारा ही देखना सम्भव होता है। ये सदैव ऊतकों की कोशिकाओं के बीच में स्थित रहती है और इसी स्थान पर रुधिर तथा केशिकाओं के बीच पदार्थों का आदान-प्रदान होता है।

4.4.3 परिवहन तन्त्र का प्राणियों में विकास (Development of Transport System in Animals)

- **प्रोटोजोआ संघ के प्राणियों में**, जैसे-अमीबा तथा पैरामीशियम (Amoeba and Paramecium) में वास्तव में परिवहन अंग नहीं होते क्योंकि ये अकोशिकीय प्राणी है। इनके शरीर का जीव ' द्रव्य तरल रूप में होता है और शरीर में भ्रमण करता रहता है। इसे **प्रवाही गति** (Streaming movement) कहते हैं। पैरामीशियम में यह साइक्लोसिस या **जीवद्रव्य भ्रमण** (cyclosis) कहलाता है। इसके फलस्वरुप पोषण पदार्थ समस्त शरीर में वितरित होते हैं और वर्ज्य पदार्थ शरीर के बाहर निष्कासित कर दिए जाते हैं।
- **स्पंजों में, जैसे** - ल्यूकोसोलीनिया (Leucosolenia), साइकन (Sycon), आदि में परिवहन तन्त्र, जल धारा भ्रमण के रूप में होता है। इस तन्त्र को स्पंजों में **नाल तन्त्र** (canal system) कहते हैं।

  प्रत्येक स्पंज के शरीर पर अनेक सूक्ष्म छिद्र होते हैं, जिन्हें **ऑस्टिया** (ostia) कहते हैं। सभी ऑस्टिया **अन्तर्वाही नालों** (in current canals) में खुलते हैं। प्रत्येक **अन्तर्वाही नाल प्रोसोपाईल**(prosophyle) छिद्र द्‌वारा अरीय नालों (radial canals) या कशाभिक नालों (flagellated canals) में खुलती है। अरीय नाल फिर स्पंजोसील (spongocoel) में खुलती है। जो एक बड़े छिद्र **ऑस्कूलम** (Asculum) द्‌वारा शरीर के बाहर खुलती है।

  इन नालों में जल ऑस्ट्रिया द्‌वारा प्रवेश करता है। और अन्तर्वाही नाल, अरीय नाल तथा स्पंगोसील में होकर ऑस्कूलम द्‌वारा शरीर के बाहर चला जाता है। इस भ्रमण में स्पंज की कोशिकाएं जल के सम्पर्क में आती हैं और इस जल के द्‌वारा ही पोषण, उत्सर्जन, श्वसन तथा प्रजनन सम्भव होता है।
- **सीलेन्ट्रेटा संघ** के प्राणियों में, जैसे - हाइड्रा में, केवल एक गुहा होती है, जिसे **सीलेन्ट्रॉन** (coelenteron) या **गैस्ट्रोवैस्कूलर गुहा** (gastrovascular cavity) कहते हैं। यह गुहा केवल एक ही छिद्र **मुख** (Mouth) द्‌वारा बाहर की ओर खुलती है। इसकी देह भित्ति में

कुंचन होता है जिसके फलस्वरुप जल धारा सीलेण्ट्रॉन में उत्पन्न होती है, जो पोषण तत्वों, जल तथा घुलित गैसों का परिवहन करती हैं।

- **चपटे कृमियों,** जैसे फेसियोला (Fasciola) की आकृति पत्ती के समान होती है। इनकी देह भित्ति बहुत ही पतली होती है। इनके शरीर कीं सतह से, विसरण द्वारा, पदार्थों का वातावरण के साथ आदान-प्रदान होता है।
- **ऐनीलिडा संघ** के प्राणियों में बन्द प्रकार का परिवहन तन्त्र होता है, जिसके फलस्वरुप रुधिर केवल धमनियों तथा शिराओं में बहता है। इनमें रुधिर कणिकाएं नहीं होती। इनमें एक **पृष्ठ वाहिनी** (dorsal vessel) तथा दूसरी प्रति **पृष्ठ** या अधर **वाहिनी** (ventral vessel) होती है जो पांच जोड़ी कूट हृदय (pseudo hearts) द्वारा 7 - 11 वें खण्डों से सम्बन्धित रहती है। प्रति पृष्ठ वाहिनी वितरण करने वाली वाहिनी है जो रुधिर को विभिन्न भागों में ले जाती है। इसमें रुधिर पीछे की ओर बहता है। ऊतकों तथा अंगों से रुधिर केशिकाओं द्वारा पृष्ठ वाहिनी में लौटता है। अंगों तथा ऊतकों में पदार्थों का आदान-प्रदान रुधिर के साथ होता है। इसका रुधिर लाल होता है क्योंकि इसमें **हीमोग्लोबिन** (haemoglobin) होती हैं। हीमोग्लोबिन रुधिर प्लाज्मा में घुली रहती है। रुधिर गैसों, पोषण पदार्थों तथा वर्ज्य पदार्थों का परिवहन करता है।
- **आर्थोपोडा संघ के प्राणियों** में परिवहन तन्त्र खुले प्रकार का होता है, क्योंकि इनमें रुधिर कोष्ठ या रिक्तिकाएं होती हैं। इनमें गैसों का आदान-प्रदान ट्रेकियल तन्त्र से होता है। गैसीय आदान-प्रदान के लिए रुधिर परिवहन तन्त्र का प्रयोग नहीं किया जाता। इनका रुधिर रंगहीन होता है। यह केवल पोषण पदार्थों तथा वर्ज्य पदार्थों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है।
- सभी **कशेरुकियों** में रुधिर **परिवहन तन्त्र** बन्द प्रकार का होता है। निम्न श्रेणी के कशेरुकियों में हृदय बहुत साधारण केवल एक नलिका के रूप में होता है। इनमें आलिन्द, निलय, आदि नहीं होते। स्कॉलियोडोन मछली में यह नलिका **साइनस वेनोसस** (sinus venosus), **ऐट्रियम** (atrium), **निलय** (ventricle) तथा **कोनस आर्टीरियोसस** (conus arteriosus) में विभक्त रहती है। **एम्फिबिया - मेंढक** के हृदय में तीन वेश्म - दायां आलिन्द तथा बायां आलिन्द तथा निलय होते हैं। इनमें ऑक्सीकृत तथा अनॉक्सीकृत रुधिर मिश्रित हो जाता है। सरीसृपों में भी लगभग यही स्थिति होती है, केवल **रिंकोसिफेलिया** वर्ग के प्राणी, जैसे - मगरमच्छ, घड़ियाल, आदि के हृदय में केवल चार वेश्म होते हैं और- इनमें **ऑक्सीकृत** (oxygenated) तथा **अनॉक्सीकृत** (deoxygenated) रुधिर अलग-अलग वेश्मों में रहता है। ये वेश्म हैं -दायां-बायां आलिन्द तथा दायां-बायां निलय।
- पक्षियों तथा स्तनियों के हृदय में भी चार वेश्म होते हैं-दो आलिन्द तथा दो निलय। इनमें दोनों प्रकार का रुधिर पूर्णतया अलग रहता है। इसलिए दायीं तरफ के रुधिर को हृदय के बायीं ओर के वेश्मों में आने के लिए फुफ्फुस (lungs) से होकर आना पडता है (फुफ्फुसी परिसंचरण- pulmonary circulation) और इसी प्रकार बाईं ओर के रुधिर को दाईं ओर आने के लिए शरीर के विभिन्न अंगों से होकर आना पड़ता है (सिस्टमेटिक परिसंचरण -

systematic circulation)। इस सम्पूर्ण क्रिया को हम **द्विपरिसंचरण** (double circulation) कहते हैं।

4.4.5 स्तनियों में रुधिर परिसंचरण तन्त्र

(Blood Vascular System on)

रुधिर परिसंचरण तन्त्र के अन्तर्गत चार भाग हैं : (i) हृदय, (ii) धमनियां, (iii) शिराएं, (iv) रुधिर।

4.4.5.1 हृदय (Heart)

मानव हृदय गुलाबी रंग का **शंक्वाकार** (conical), खोखला तथा मांसल होता है, जो देहगुहा (coelom) की **वक्ष गुहा** (thoracic cavity) में दोनों फेफड़ों के बीच अघर तल की ओर तथा कुछ बायीं ओर स्थित होता है। **इसका भार लगभग 300 ग्राम होता है।**

बाह्य रचना (External Structure) : हृदय त्रिकोणाकार रचना होती है, इसका चौड़ा भाग सामने तथा पतला और नुकीला भाग पीछे की ओर स्थित होता है। पिछला भाग कुछ बाई ओर भी झुका रहता है। यह **हृदयावरण** (pericardium) नामक थैली में सुरक्षित रहता है। हृदयावरण की भीतरी पेरिटोनियम की **विसरल स्तर** (visceral layer) तथा बाहरी दीवार **पैराइटल स्तर** (parietal layer) से बनी होती है तथा इन दोनों स्तरों के बीच **पेरिकार्डियल द्रव** (pericardial fluid) होता है, जो हृदय की बाहरी आघातों से रक्षा करता है।

मनुष्य के हृदय के अगले भाग में एक **दायां आलिन्द** (right auricle), एक **बाया आलिन्द** (left auricle) तथा हृदय के पिछले भाग में एक **दायां निलय** (right ventricle) तथा एक **बायां निलय** (left ventricle) होता है। स्व तिरछी पट्टी द्वारा विभाजित होकर दायां निलय बाएं निलय से छोटा रह जाता है।

मनुष्य के हृदय में **शिरा कोटर** (sinus venosus) तथा धमनी काण्ड (truncus arteriosus) नहीं पाया जाता, इसलिए **अग्र तथा पश्च महाशिराओं** (precavals and postcavals) द्वारा शरीर के अंगों से लाया अशुद्ध रुधिर दाहिने आलिन्द में आता है। **पल्मोनरी शिराओं** (pulmonary veins) द्वारा फेफडों से लाया गया शुद्ध रक्त सीधे बाएं आलिन्द में आता है। दाएं निलय से **पल्मोनरी एओरटा** (pulmonary aorta) तथा बांए निलय से कैरोटिको सिस्टेमिक एओरटा (carotico systemic aorta) निकलता है।

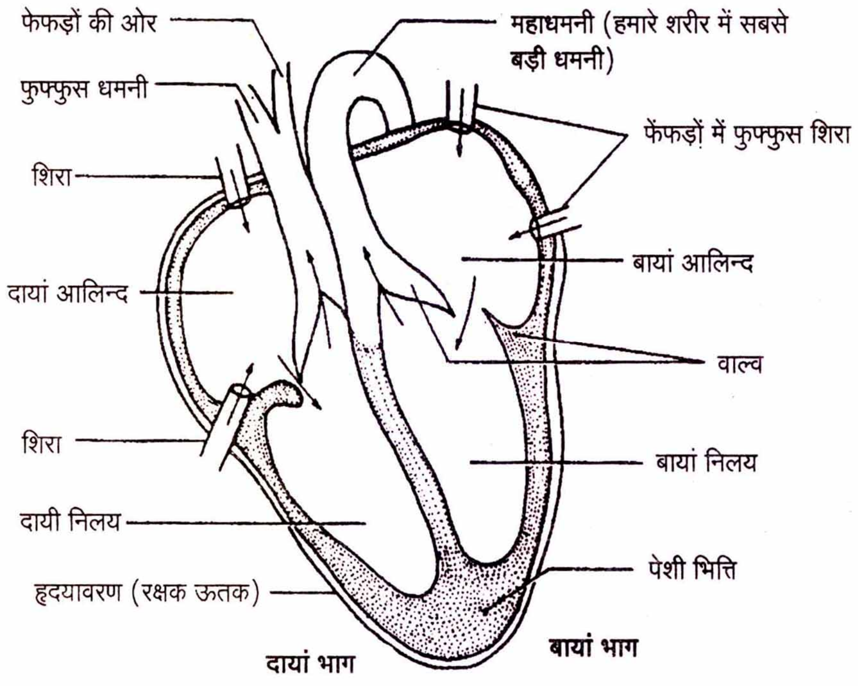

चित्र 4.5: मनुष्य का हृदय व इसके भाग

आन्तरिक रचना (Internal Structure) : आलिन्द की दीवारें निलय की दीवारों की अपेक्षा पतली होती हैं। **अन्तरा आलिन्द पट** (inter-auricular septum) द्वारा आलिन्द दो भागों में बंट जाता है। एक **पश्च महाशिरा** (post caval vein) तथा दोनों **अग्र शिराएं** (fight and left) दाएं आलिन्द में तीन पृथक् छिद्रों द्वारा खुलती हैं।

आलिन्द की भांति निलय भी स्व **अनुदैर्ध्य अन्तरानिलय पट** (inter-ventricular septum) द्वारा दो भागों में विभाजित हो जाता है। दोनों निलय एक -एक **आलिन्द निलय छिद्र** (auriculo-ventricular aperture) द्वारा अपनी-अपनी ओर के आलिन्द से जुड़े रहते हैं। दायां आलिन्द-निलय छिद्र (right auriculo-ventricular aperture) का वाल्व **त्रिवलन** (tricuspid) कहलाता है, क्योंकि यह तीन **पट्टियों** (flaps) का बना होता है। इसी प्रकार बाएं **आलिन्द-निलय छिद्र** (auriculo-ventricular aperture) का वाल्व दो पट्टियों का बना होने के कारण द्विदल **कपाट** (bicuspid or mitral valve) कहलाता है। इन कपाटों की पट्टियां **हृदय रज्जुओं** (chordate tendineae) द्वारा वेन्ट्रिकल की भीतरी दीवार पर स्थित **पेशी स्तम्भों** (columnae corneae) से जुड़ी रहती हैं। ये वाल्व रुधिर को केवल आलिन्द से निलय में ही जाने देते हैं।

दाएं निलय के अगले भाग के बाएं सिरे से **पल्मोनरी चाप** (pulmonary arch) तथा बाएं निलय के अगले भाग के दाहिने सिरे से **कैरोटिको सिस्टेमिक चाप** (semilunar arch) विकसित होती हैं। दोनों चापों के द्वारों पर तीन - तीन ' **अर्द्धचन्द्राकार वाल्व** (semilunar valves) स्थित होते हैं जो रुधिर को केवल निलय से चापों मे ही जाने देते हैं।

दाएं निलय से निकलकर पल्मोनरी चाप बाईं और घूमकर कैरोटिको सिस्टेमिक चाप के प्रति-पृष्ठ तल से होती हुई हृदय के पृष्ठ तल की तरफ, **पल्मोनरी धमनियों** (pulmonary arteries) में बंट जाती है। इसी प्रकार बाएं निलय से निकलकर कैरोटिको सिस्टेमिक चाप, पल्मोनरी चाप के पृष्ठ तल की तरफ से होती हुई हृदय के पृष्ठ तल की तरफ धमनियों में बंट जाती है।

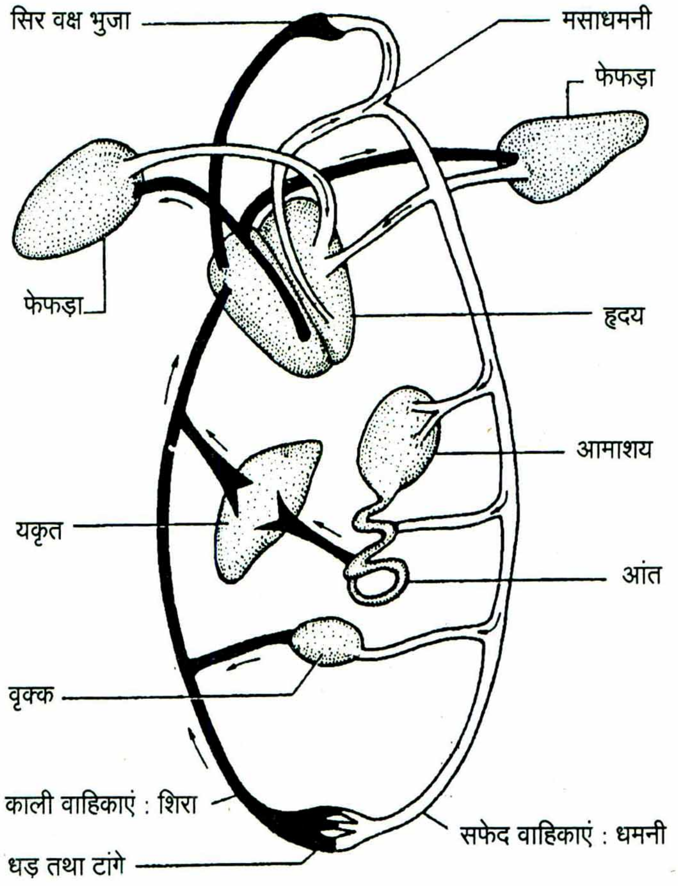

चित्र 4.6: मनुष्य मे द्विगुण रुधिर परिसंचरण

एक **अग्र महाशिरा** (pre-caval) तथा दूसरी **पश्च महाशिरा** (post-caval) दाहिने आलिन्द में खुलती हैं। अग्र महाशिरा शरीर के उस भाग से रुधिर लाती है, जो हृदय के आगे होता है तथा पश्च महाशिरा हृदय के पीछे वाले भाग से रुधिर लाती है। एक **कोरोनरी शिरा** (coronary vein) भी हृदय की भित्ति से रुधिर लाकर दाएं आलिन्द में छोड़ती है। बाएं आलिन्द में चार बड़ी **फुफ्फुस शिराएं** (pulmonary) खुलती हैं जो फेफड़ों से शुद्ध रुधिर लाती हैं।

हृदय की गतिविधि (Working of the Heart) : हृदय की पम्पिंग क्रिया (pumping vein) उसकी पेशीयुक्त भित्तियों के संकुचन पर निर्भर करती है। आलिन्द तथा निलय का बारी - बारी से संकुचन (alternate contraction systole), तथा शिथिलन (relaxation -diastole) कार्य चलता रहता है।

(i) हृदय में संकुचन तथा शिथिलन का कार्य दाएं आलिन्द की भीतरी दीवार पर स्थित **साइनु ऑरिस्यूलर नोड** (sinuaricular-S.A. node) द्वारा प्रारम्भ होता है। संकुचन क्रिया आलिन्द से आरम्भ होती हैं।

(ii) जिस समय दोनों आलिन्द सिकुड़ते हैं, इनका रुधिर अपनी - अपनी तरफ के **आलिन्द - निलय छिद्र** (auriculo-ventricular opening) द्वारा दाएं तथा बाएं निलय में आ जाता है।

(iii) आलिन्द में रुधिर के भरते ही संकुचन केन्द्र अर्थात् **साइनुऑरिक्यूलर नोड** (sinuaricular node) से **संकुचन तरंग** (wave of contraction) उठती है, यह संकुचन तरंग सम्पूर्ण आलिन्द में फैल जाती है। दोनों आलिन्द इसी कारण एक साथ सिकुड़ते हैं।

(iv) आलिन्द में संकुचन समाप्त होने के बाद ये फिर अपनी पहली जैसी दशा में आना प्रारम्भ करते हैं अर्थात् इनमें **शिथिलन** (relaxation) होने लगता है। जैसे -जैसे शिथिलन अधिक होता जाता है, इनमें शिराओं से रुधिर आता है।

(v) निलय में रुधिर भर जाने के बाद इनमें आलिन्द की अपेक्षा अधिक तेजी से संकुचन होता है जिससे इनमें भरे रुधिर पर दबाव पड़ता है। निलय का संकुचन केन्द्र **एट्रिओवेन्ट्रिक्यूलर नोड** (antrioventricular node) नामक रचना होती है, जो **इण्टरऑरिक्यूलर सेप्टम** के करीब दाएं आलिन्द की दीवार पर पाया जाता है। यहां से संकुचन तरंगें चलकर दोनों निलय की दीवारों में फैल जाती हैं, अब दोनों निलय एक साथ सिकुड़ते हैं

(vi) संकुचन के फलस्वरुप निलय में एकत्रित रुधिर पर दबाव पड़ता है। रुधिर के दबाव से आलिन्द निलय छिद्रों पर पाए जाने वाले **त्रिदल** तथा **द्विदल कपाट** (tricuspid and bicuspid valves) खींचकर इन छिद्रों को बन्द कर देते हैं, जिससे रुधिर आलिन्द में वापस नहीं जा सकता है। इस प्रकार दाएं निलय का पूर्ण अशुद्ध रुधिर पल्मोनरी चाप के प्रवेश द्वार पर लगे हुए **अर्द्धचन्द्राकार कपाटों** (semilunar valves) को धकेलता पल्मोनरी चाप में चला जाता है, तथा बाएं निलय का रुधिर कैरोटिको सिस्टेमिक एओरटा में चला जाता है।

(vii) निलय का संकुचन समाप्त होते ही आलिन्द में फिर संकुचन आरम्भ होता है, जिसके कारण फिर रुधिर निलय में आ जाता है।

इस प्रकार आलिन्द तथा निलय का एकान्तर संकुचन तथा शिथिलन होता रहता है।

बोध प्रश्न - 4

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. निलय के प्रकुंचन में -

(अ) रक्त हृदय में प्रवेश करता है

(ब) रक्त हृदय से निकलता है

(स) रक्त निलय से निकलता है

(द) रक्त फुफ्फुसों में प्रवेश करता है

2. सबसे अधिक O_2 वाहित होती है -

(अ) श्वेताणुओं से

(ब) लाल रक्ताणुओं से

(स) रुधिर प्लाज्मा से

(द) थ्रोम्बोसाइट से

3. मानव में हृदय में महाधमनियों की संख्या होती है -

(अ) 3

(ब) 4

(स) 2

(द) 5

4. निम्न में से कौनसी रुधिर वाहिनी में शुद्ध रक्त होता है -

(अ) फुफ्फुस शिरा में

(ब) फुफ्फुस धमनी में

(स) पश्चमहाशिरा में

(द) कैरोटिक शिरा में

5. फेफड़ों के अतिरिक्त शरीर के सभी अंगों में रुधिर पहुँचाने का कार्य करती है

(अ) ग्रीवा धमनी

(ब) अनामी धमनी

(स) दैहिक ग्रीवा महाधमनी

(द) दैहिक धमनी

6. रक्त का थक्का बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं -

(अ) न्यूट्रोफिल

(ब) एरिथ्रोसाइट

(स) थ्रोम्बोसाइट

(द) मोनोसाइट्स

7. लसीका ग्रंथियों का कार्य है -

(अ) रक्त का उत्पादन

(ब) एण्टीबॉडी का निर्माण

(स) जीवाणु नष्ट करना

(द) यूरिया का निष्कासन

8. सीरम होता है -

(अ) श्वेताणु युक्त प्लाज्मा

(ब) लाल रक्ताणु युक्त प्लाज्मा

(स) हीमोग्लोबिन सहित प्लाज्मा

(द) फाइब्रिनोजन रहित प्लाज्मा

9. लाल रक्ताणुओं के क्लंपिग होने की क्रिया को कहते हैं -

(अ) एग्लूटीनेशन

(ब) हीमोलाइसिस

(स) डायपिडेसिस

(द) एरिप्रोपाइसिस

10. प्लाज्मा का रंग होता है -

(अ) रंगहीन

(ब) लाल

(स) नारंगी

(द) पीला

11. रक्त में सबसे ज्यादा मात्रा होती है -

(अ) वसा की

(ब) कार्बोहाइड्रेट की

(स) प्रोटीन की

(द) सभी की

12. लिम्फ का प्रवाह होता है -

(अ) हर दिशा में

(ब) तीन दिशाओं में

(स) दो दिशाओं में

(द) एक दिशा में

13. हीमोग्लोबिन होता है -

(अ) ग्लाइकोप्रोटीन में

(ब) लाइपोप्रोटीन में

(स) मेटेलोप्रोटीन में

(द) क्रोमोप्रोटीन में

4.5 प्राणियों में उत्सर्जन

"प्राणियों की उस कार्य-विधि को जिसके द्‌वारा वह वर्ज्य पदार्थ तथा विषैले पदार्थों को शरीर से बाहर निकालते हैं, उत्सर्जन (excretion**) कहते हैं।** जो अंग उत्सर्जी या वर्ज्य पदार्थों को शरीर से बाहर निकालते हैं उन अंगों को **उत्सर्जी अंग** (excretory organs) कहते हैं।

उत्सर्जन का महत्व (Importance of Excretion)

(i) शरीर में शरीर के द्रव्यों की संरचना, **पी-एच** (pH) मान तथा परासरणी दाब बनाए रखता है। उत्सर्जन द्वारा शरीर में उत्पन्न हानिकारक पदार्थों को शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है।

(ii) **समस्थैतिक** (homoeostasis) या स्थायी आन्तरिक वातावरण बनाए रखता है।

(iii) उत्सर्जी पदार्थों की आवश्यक मात्रा को शरीर में बनाए रखता है।

4.5.1 वर्ज्य पदार्थ (Excratory Products)

प्राणियों के वर्ज्य पदार्थों को हम दो मुख्य श्रेणियों में बांट सकते हैं -

(i) कार्बनिक तथा

(ii) नाइट्रोजनी।

कार्बनिक वर्ज्य पदार्थ (Organic Waste products) : यह मुख्य रूप से CO_2 है। कार्बन डाइ-ऑक्साइड की प्रकृति अम्लीय होती है। यह अगर कोशिकाओं में रह जाए तो अत्यधिक अम्ल के निर्माण के कारण कोशिकाओं के लिए घातक होती है। यह श्वसन क्रिया के अन्तर्गत बनती है

और इसीलिए इसको शरीर के बाहर निकालने की क्रिया श्वसन तन्त्र द्वारा होती है।

नाइट्रोजन वर्ज्य पदार्थ (Nitrogenous Waste Products) : इनमें नाइट्रोजन होती है। इनमें अमोनिया मुख्य है। अमोनिया या इससे सम्बन्धित अन्य नाइट्रोजनी वर्ज्य पदार्थों का निर्माण एवं निष्कासन उत्सर्जन तन्त्र के द्वारा होता है।

उत्सर्जी पदार्थों के आधार पर विभिन्न प्राणियों का वर्गीकरण तीन श्रेणियों में किया जाता है :

(i) **अमोनोटेलिक** (Ammonotelic) : इन प्राणियों में मुख्य उत्सर्जी पदार्थ अमोनिया होती है। उदाहरण-कुछ मछलियां, कुछ क्रस्टेशियन तथा कुछ प्रोटोजोआ।

(ii) **यूरिकोटेलिक** (Uricotelic) : इन प्राणियों में मुख्य उत्सर्जी पदार्थ **यूरिक अम्ल**(uric acid) होता है। उदाहरण-सभी सरीसृप (छिपकलियां तथा सर्प) तथा पक्षी इत्यादि।

(iii) **यूरीओटेलिक** (Ureotelic) : इन प्राणियों में मुख्य उत्सर्जी पदार्थ **यूरिया** (Urea) होता है। उदाहरण -मेंढक, स्तनधारी, इत्यादि।

4.5.2 अकशेरुकियों में उत्सर्जन अंग (Excretory Organs of Invertebrates)

प्रोटोजोआ अथवा **अकोशिकीय** प्राणियों में उत्सर्जन अंग नहीं होते क्योंकि इनमें सभी जैविक क्रियाएं एक कोशिका में ही सम्पन्न होती हैं। इनमें उपापचयी क्रियाओं के फलस्वरुप निर्मित उत्सर्जी पदार्थ विसरण द्वारा प्लाज्मा मेम्ब्रेन से होकर बाहर निष्कासित कर दिए जाते हैं।

4.5.2.1 स्पंजों में उत्सर्जन (Excretion in Sponges) : स्पंजों का शरीर छिद्रयुक्त होता है, और शरीर के भीतर असंख्य सूक्ष्म नलिकाएं होती हैं जो एक बड़ी नलिका द्वारा बाहर खुलती हैं। सूक्ष्म छिद्रों को ऑस्ट्रिया (ostia), **नलिकाओं को नाल** (canal) तथा अन्तिम बाहय द्वार को **ऑस्कूलम** (osculum) कहते हैं। ऑस्ट्रिया में जल धारा इनके शरीर में प्रवेश करती है और सारे शरीर की नालों में भ्रमण करने के पश्चात् ऑस्कूलम द्वारा बाहर चली जाती है।

इस भ्रमण में जल स्पंजों की सभी कोशिकाओं के सम्पर्क में आता है, और इसी समय कोशिकाओं द्वारा उत्सर्जी पदार्थ जल धारा में, विसरण द्वारा छोड़ दिए जाते हैं जो जल धारा के साथ ही शरीर के बाहर निकाल दिए जाते हैं।

4.5.2.2 सीलेन्ट्रेट्स में उत्सर्जन (Excretion in Coelenterates): हाइड्रा सीलेन्ट्रेटा संघ का प्राणी है। सभी सीलेन्ट्रेट्स में केवल एक ही गुहा **सीलेन्ट्रॉन** (coelenteron) होती है जो केवल मुख द्वारा बाहर खुलती है। हाइड्रा की कोशिकाएं उत्सर्जी पदार्थों को सीलेन्ट्रॉन में छोड़ देती हैं, जहाँ से ये पदार्थ जल के साथ मुख के बाहर निकल जाते हैं।

4.5.2.3 प्लैटीहेल्मिन्थीज में उत्सर्जन (Excretion in Playhelminthes) : सभी चपटे कृमियों में अगणित, संकरी शाखित नलिकाएं होती हैं, जो देह भित्ति के छिद्रों द्वारा शरीर के बाहर खुलती हैं। इनके अन्तिम सिरे **ज्वाला कोशिकाओं** (flame cells) में खुलते हैं। प्रत्येक ज्वाला **कोशिका** (flame cell) एक बड़ी कोशिका है, जिसका जीवद्रव्य खोखला होता है। कोशिका की भीतरी सतह पर अनेक पक्ष्माभ होते हैं। आस-पास की कोशिकाओं से उत्सर्जी पदार्थ विसरण द्वारा ज्वाला कोशिकाओं में पहुँचते हैं, जहाँ से ये नलिकाओं में होते हुए देह भित्ति के छिद्रों द्वारा बाहर चले जाते हैं ।

4.5.2.4 ऐनीलिड्स में उत्सर्जन (Excretion in Annelids) : केंचुआ, नेरीस, आदि ऐनीलिडा संघ के प्राणी हैं। इनमें तथा सभी ऐनीलिड्स में अनेक जोड़ी कुण्डलित तथा पक्ष्माभीय नलिकाएं होती हैं जिन्हें **वृक्कक** (nephritis) कहते हैं, जिनके द्वारा उत्सर्जन होता है। ये शरीर के अधिकांश खण्डों में जोड़ी में स्थित होते हैं। प्रत्येक वृक्कक एक पक्ष्माभीय फलन, जिसे **नेफ्रोस्टोम** (nephrostomy) कहते हैं, द्वारा **देह गुहा** (coelom) में खुलता है। प्रत्येक वृक्कक देह गुहा से तथा रुधिर से उत्सर्जी पदार्थ एकत्रित करके आहारनाल द्वारा शरीर के बाहर निकाल देता है।

आर्थ्रोपोडा में उत्सर्जन (Excretion in Arthropoda) **:** आर्थ्रोपोडा संघ के प्राणियों में उत्सर्जन भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है :

(i) पेलिमोन आर्थ्रोपोडा संघ के वर्ग क्रस्टेशिया का प्राणी है, जिसमें उत्सर्जी अग हरित ग्रन्थियाँ (green glands) होती हैं। ये **श्रृंगिका** (antennae) में स्थित होती हैं। प्रत्येक **हरित ग्रन्थि** में एक अन्त्य गोणी (end sac), **भ्रमिका** (labyrinth) तथा **आशय** (bladder) होते हैं। अन्त्य गोणी एक सेम के बीच के आकार की रचना होती है, जिसमें रुधिर रिक्तिकाएँ होती हैं। यहीं पर सर्वप्रथम मूत्र निर्माण होता है जो भ्रमिका की नलिकाओं से होता हुआ आशय में पहुँचता है। आशय एक सूक्ष्म **मूत्र नलिका** (ureter) से जुड़ा रहता है और एक छिद्र द्वारा बाहर खुलता है, जिसे **वृक्क छिद्र** (renal pore) कहते हैं। आशय एक नलिका द्वारा **वृक्क गोणी** (renal sac) से भी जुड़ा रहता है।

(ii) कॉकरोच, आर्थ्रोपोडा संघ के कटि वर्ग का प्राणी है, जिसमें उत्सर्जी अंग **मैलपीघी नलिकाएं** (malpighian tubules) होती हैं। मैलपीघी नलिकाएं धागे के समान सर्पिल तथा कुण्डलित कुन्द नलिकाएं होती हैं। ये **हीमोलिम्फ** (haemolymph) में निलम्बित रहती है। और

आहारनाल में खुलती हैं। हीमोलिम्फ से उत्सर्जी पदार्थ विसरण द्वारा मैलपीघी नलिकाओं में आते हैं और फिर आहारनाल में, जहाँ से ये गुदा द्वारा बाहर निकल जाते हैं।

स्तनियों में उत्सर्जन (Excertion in Mammals) : स्तनियों के प्रमुख उत्सर्जन अंग तथा पदार्थ जो वे शरीर के बाहर निकालते हैं, इस प्रकार हैं :

क्र. स.	**उत्सर्जन अंग**	**उत्सर्जी पदार्थ**
1.	फुफ्फुस	अपशिष्ट गैसें, कार्बन डाइ - ऑक्साइड तथा जल
2.	त्वचा(स्वेद ग्रन्थियाँ)	जल, लवण, नाइट्रोजन युक्त अपशिष्ट पदार्थ
3.	वृक्क	जल, नाइट्रोजन युक्त अपशिष्ट पदार्थ, घुलनशील लवण, औषधियाँ, विष इत्यादि

आहारनाल द्वारा भोजन के पचने के पश्चात् शेष ठोस पदार्थ बाहर निकलते हैं, इन्हें उत्सर्जन न कहकर **मल विसर्जन** (defecation) कहना अधिक उपयुक्त है।

4.5.3 उत्सर्जन अंग (Excratory Organs)

वृक्क (Kidney). वृक्क उत्सर्जन के मुख्य अग होते हैं। वृक्क के बिना मनुष्य, खरगोश, तथा उच्च कोटि के स्तनि प्राणी जीवित नहीं रह सकते। वृक्क शरीर से सभी नाइट्रोजनी उत्सर्जी पदार्थों को बाहर निकालने का कार्य करते हैं।

त्वचा (Skin). त्वचा भी एक उत्सर्जन अंग का कार्य करती है। इसके अन्दर स्वेद ग्रन्थियाँ होती हैं जो रुधिर से पानी, यूरिया, तथा अन्य लवण त्वचा की बाहरी सतह पर निष्कासित कर देती हैं।

फुफ्फुस (Lungs) : फुफ्फुस से कार्बन डाइ-ऑक्साइड निष्कासित होती है।

आंत (Intestine) : आंतों की सबसे अन्दर की परत एपीथीलियमी कोशिकाओं की बनी होती है। ये कोशिकाएं कुछ लवणों का उत्सर्जन करती हैं। ये लवण मल के साथ शरीर के बाहर निकल जाते है।

यकृत (Liver) : यकृत नाइट्रोजनी पदार्थों को निष्कासित करने में सहायक होता है।

स्तनियों में वृक्क, प्रमुख उत्सर्जी, **ऑस्मोरेगुलेटरी** (osmoregulatory) तथा **होम्योस्टेटिक** (homeostatic) अंग हैं। ये उपापचयी अपशिष्ट पदार्थों तथा आवश्यकता से अधिक पदार्थों को निष्कासित करते हैं। शरीर के द्रवों का रासायनिक सघटन बनाए रखते हैं, शरीर में जल की मात्रा का नियमन करते हैं तथा शरीर के द्रवों का **पी-एच** pH) नियन्त्रित रखते हैं। वृक्कों में रुधिर केशिकाओं का जाल बिछा रहता है तथा ये रुधिर के संघटन की स्थायी दशा बनाए रखते हैं।

4.5.4 मनुष्य के उत्सर्जन अंग (Excretory Organs of Man)

मनुष्य के उत्सर्जन अंगों में वृक्क मुख्य है। पुरुषों तथा स्त्रियों दोनों में ही ये उदर गुहा में कशेरुका दंड के दोनों ओर स्थित रहते हैं।

प्रत्येक मानव वृक्क सेम के बीज जैसा 10 सेमी लम्बा तथा 5 सेमी चौड़ा होता है।

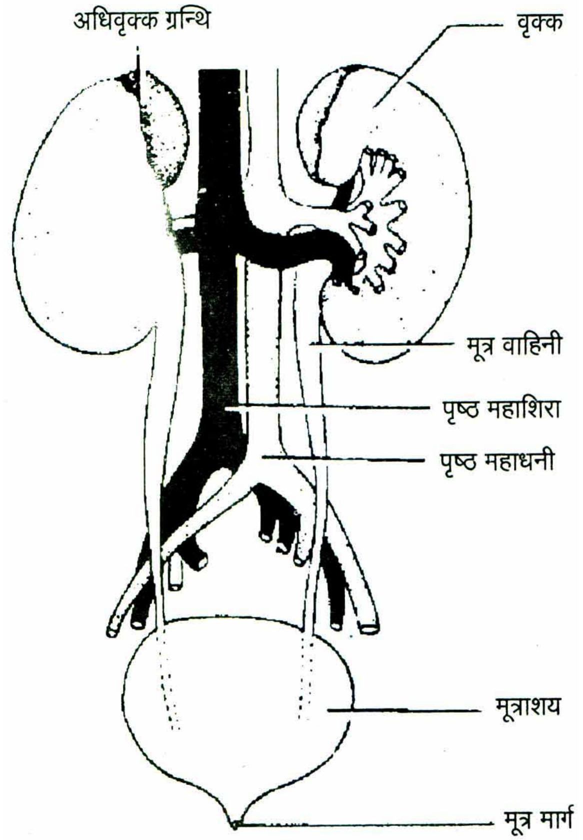

चित्र 4.7: मनुष्य के उत्सर्जन अंगों का अधरतल दृश्य

बाया वृक्क दाहिने वृक्क से कुछ आगे स्थित रहता है।

वृक्क के आधार तल पर आगे की ओर एक गोल **अधिवृक्क ग्रन्थि** (adrenal gland) होती है। केवल एक **रीनल धमनी या वृक्क धमनी** (renal artery) द्वारा रुधिर जाता है तथा केवल एक ही **रीनल शिरा या वृक्क शिरा** (renal vein) द्वारा रुधिर वापस आता है। इसके भीतरी तल के मध्य से मूत्रवाहिनी निकलकर मूत्राशय में खुलती है। मूत्राशय नीचे की ओर एक पेशीय **मूत्र नाल** (urethera) द्वारा जनन-मूत्र छिद्र द्वारा बाहर खुलता है।

प्रत्येक मानव वृक्क में दो भाग होते हैं अन्दर वाले भाग को

मेडयूला (medulla) तथा बाहर वाले भाग को **वल्कुट** अथवा **कॉर्टेक्स** (cortex) कहते हैं। कर्टिक्स में लगभग एक करोड़ **नेफ्रॉन्स** (nephrons) होते हैं। प्रत्येक नेफ़ॉन बोमेन्स कैन्मूल तथा ग्लोमेरूलस का बना होता है। बोमेन्स कैशूल पीछे की ओर वृक्क नलिका में खुलता है। वृक्क नलिका के चारों ओर रुधिर केशिकाओं का जाल होता है। सभी वृक्क नलिकाएं एक केन्द्रीय गुहा में खुलती हैं जिसे **पेल्विस** (pelvis) कहते हैं। पेल्विस मूत्र नली से जुड़ी रहती है। पुरुष में मूत्र तथा शुक्राणु दोनो ही **मूत्र नाल** (urethera) द्वारा बाहर जाते हैं, किन्तु स्त्रियों में मूत्रनाल तथा योनि मार्ग अलग-अलग होते हैं।

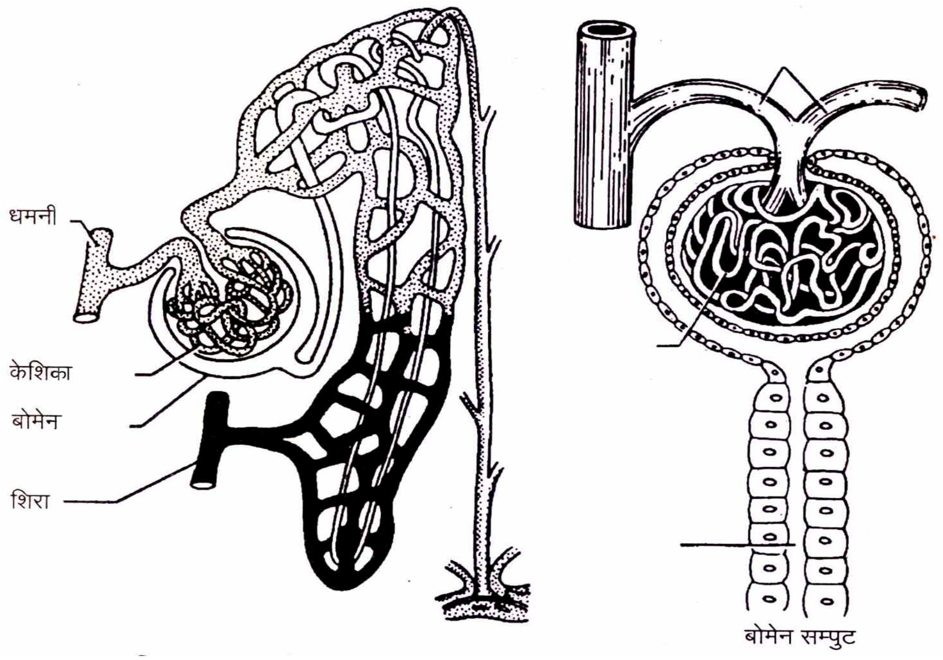

चित्र 4.8: ग्लोमेरूलस, बोमेन्स कैप्सूल तथा वृक्क नलिका

वृक्क नलिकाएं छनने का कार्य करती हैं क्योंकि रुधिर चौड़ी **अभिवाही धमनिका** द्वारा बोमेन्स कैप्सूल में जाता है और फिर संकरी **अपवाही अधमनिका** द्वारा उससे बाहर निकलता है, अत: रुधिर का दबाव ग्लोमेरूलस में बढ़ जाता है जिसके फलस्वरुप रुधिर में घुले सभी पदार्थ छन जाते हैं। छने हुए पदार्थ में लाभकारी एव हानिकारक दोनों ही प्रकार के पदार्थ होते हैं। अब यह द्रव वृक्क नलिका से होकर गुजरता है और वृक्क नलिका की दीवार इनसे लाभदायक पदार्थ जैसे ग्लूकोज आदि को चूस लेती है। इस प्रकार केवल हानिकारक पदार्थ ही संग्रह नलिका तथा वाहिनी में होते हुए मूत्राशय में पहुँच जाते हैं, जहाँ से आवश्यकतानुसार समय-समय पर यह बाहर निकलते रहते हैं

प्रमुख तथ्य

मानव रक्त मे साधारणतया 18 से 38 Mg प्रति 100mi यूरिया होता है।

यूरिक अम्ल (Uric acid) : यह अपेक्षाकृत कम विषैला तथा पानी मे अघुलनशील होता है तथा मनुष्य के मूत्र मे यूरिक अम्ल की मात्र कम लगभग 0.5% पाई जाती है। यह संचित भी किया जा सकता है। इसका उत्सर्जन **अर्द्ध ठोस**(semi solid) रूप मे किया जाता है।

यूरिया का निर्माण अथवा क्रैब्स हैंसेलिट चार (Formation of urea or Krebs-Henseleit cycle): यकृत के भीतर अमोनिया को यूरिया मे बदलने का कार्य किया जाता है। अमोनिया से यूरिया निर्माण को **ऑर्निथीन-आर्जिनिन चक्र** अथवा **क्रैब्स हैंसिलिट चक्र** भी खा जाता है।

मूत्र मे लगभग **95% जल 2% यूरिया 0.05% यूरिक अम्ल** और शेष सोडियम पोटेशियम के लवण एवं **क्लोरीन , सल्फेट ,मैग्निसियम,** इत्यादि आयनिक रूप मे उपस्थितहोते हैं। मूत्र का पीला रंग **यूरोक्रोम** (urochrome) **रंजक** (stain)की उपस्थिति के कारण होता है।

चाय की कैफीन (caffeine) भी डाईयूरेटिक होती है। इसलिए,अधिक चाय पीने से मूत्रलता हो जाता है।

बोध प्रश्न - 5

1. प्रोटोजोआ अथवा अकोशिकीय प्राणियों में उत्सर्जी पदार्थ किसके द्वारा प्लाज्मा मेम्बेन से होकर बाहर निष्कासित कर दिए जाते हैं।
   ....
   ....
2. चपटे कृमियों में उत्सर्जी अंग क्या होते हैं?
   ....
   ....
3. केंचुआ, नेरिस, आदि ऐनीलिडा संघ के प्राणियों में उत्सर्जी अग क्या होते हैं?
   ....
   ....
4. पेलिमोन आर्थ्रोपोडा संघ के वर्ग क्रस्टेशिया में क्या होता है?
   ....
   ....
5. हरित ग्रन्थियाँ कहाँ अवस्थित होती है?
   ....
   ....
6. कॉकरोच, आर्थ्रोपोडा संघ के कीट वर्ग में उत्सर्जी अंग क्या होते हैं?
   ....
   ....
7. ये किसमें निलम्बित रहती है?
   ....
   ....
8. स्तनियों में वृक्क, प्रमुख उत्सर्जी तथा अन्य कैसे अंग है?
   ....
   ....
9. वृक्क के आधार तल पर आगे की ओर एक गोल कौनसी ग्रन्थि होती है?
   ....
   ....
10. अलैंगिक जनन के फलस्वरूप उत्पन्न सन्तानें बिल्कुल कैसी होती हैं?
   ....
   ....

4.6 प्रजनन

अलैंगिक व लैंगिक प्रजनन (Asexual and Sexual Reproduction)

मूलत: जीवधारियों में दो प्रकार से जनन होता है:

(i) **अलैंगिक जनन** (Asexual Reproduction) : जब कोई जीव बिना युग्मक (gametes) उत्पन्न किए जनन करे, तो इसे **अलैंगिक जनन** (asexual reproduction) कहते हैं। अलैंगिक जनन के फलस्वरुप उत्पन्न सन्तानें बिल्कुल अपने जनकों (parents) जैसे होती हैं तथा विभिन्नताओं के उत्पन्न होने की कोई सम्भावना नहीं होती (उत्परिवर्तन-mutation को छोड़कर)।

(ii) **लैंगिक जनन** (Sexual reproduction) : लैंगिक जनन (Sexual reproduction) में दो विभिन्न लक्षणों वाले, परन्तु एक ही जाति के दो सदस्यों द्वारा उत्पन्न युग्मकों के बीच संयुग्मन से नए जीवधारी का जन्म होता है । इनमें दोनों युग्मकों के लक्षणों का मिश्रण होता है । विभिन्न गुणों के मिश्रण से विभिन्न प्रकार के जीव उत्पन्न होते हैं । अतएव, लैंगिक जनन के फलस्वरुप विभिन्नताओं की सम्भावना बढ़ जाती हैं, जो कि जाति की उत्तरजीविता (survival)महत्वपूर्ण होती है।

4.6.1 अलैंगिक जनन (Asexual Reproduction)

अलैंगिक जनन में दो विपरीत लिंगों (नर, मादा) के जीवों की आवश्यकता नहीं होती बल्कि कोई जीवधारी स्वयं ही (बिना दूसरे लिंग के जीवधारी की मदद के) सन्तानों को उत्पन्न करता है जोकि हूबहू उसी की तरह की होती हैं। जीवधारियों में अलैंगिक जनन की विभिन्न विधियों हैं - विखण्डन, मुकुलन, खण्डन, बीजाणु व कायिक।

4.6.1.1 विखण्डन (fission) : इस प्रक्रिया में जीवधारी दो या अधिक समान भागों में विभाजित हो जाता है। यह प्राय : एककोशिकीय जीवधारियों में होता है। विखण्डन की प्रक्रिया प्राय : अनुकूल (favourable) परिस्थितियों में होती है तथा दिन में एक बार नहीं, बल्कि अनेक बार होती है। परिणामस्वरूप, जीवधारी की जनसंख्या में भारी वृद्धि होती है। इस क्रिया में पहले कोशिका का केन्द्रक विभाजित होता है और फिर कोशिका-द्रव्य। चूंकि विभाजन समसूत्री होता है, संतति कोशिकाओं (daugheter cells) के लक्षण वैसे ही होते हैं जैसे कि जनक (parent) कोशिका के।

(a) यदि वे विखण्डन के फलस्वरुप जीवधारी दो भागों में विभाजित हो, तो इसे **द्वि विखण्डन** (Binary fission) कहते हैं। उदाहरण **- अमीबा** (Amoeba) में।

(b) यदि विखण्डन के फलस्वरुप जीवधारी कई भागों में विभाजित हो तो इसे बहुविखण्डन (multiple fission) कहते हैं। उदाहरण **- प्लाज्मोडियम** (Plasmodium - मलेरिया परजीवी)।

(c) कभी-कभी प्रतिकूल परिस्थिति में जीवधारी के आवास में पानी की कमी हो जाती है तो उनकी कोशिकाएं (i) गोलाकार हो जाती हैं, (ii) पानी छोड़ देती हैं, और (iii) अपने चारों

ओर एक मोटी भित्ति बना लेती हैं। इस रचना को **पुटी** (cyst) कहते हैं। पुटी के अन्दर कोशिका बहु विखण्डन करके बहुत सी संतति कोशिकाएं बना लेती हैं। अनुकूल परिस्थितियों के लौटने पर पुटी फट जाती है व संतति कोशिकाएं बाहर निकल आती हैं। **अमीबा** (Ameoba) पुटी निर्माण का एक अच्छा उदाहरण है।

4.6.1.2 मुकुलन (Budding): यह एककोशिकीय जीवों (जैसे यीस्ट) व बहुकोशिकीय जीवधारियों (जैसे हाइड्रा, अजूबा) में दोनों में देखने में मिलती है।

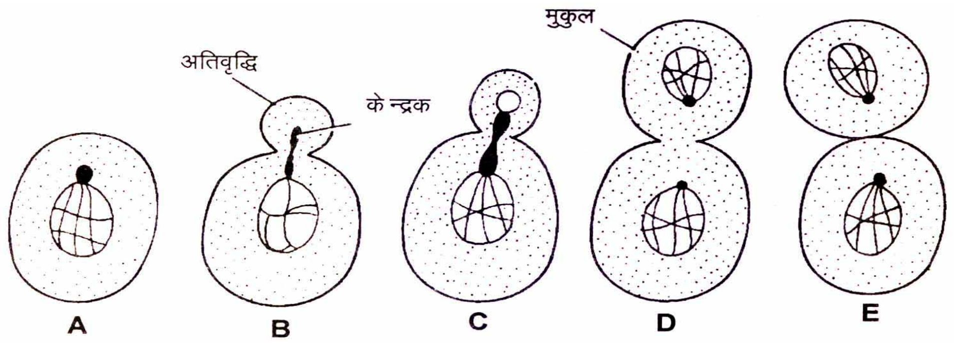

चित्र 4.9 : यीस्ट में मुकुलन की प्रक्रिया

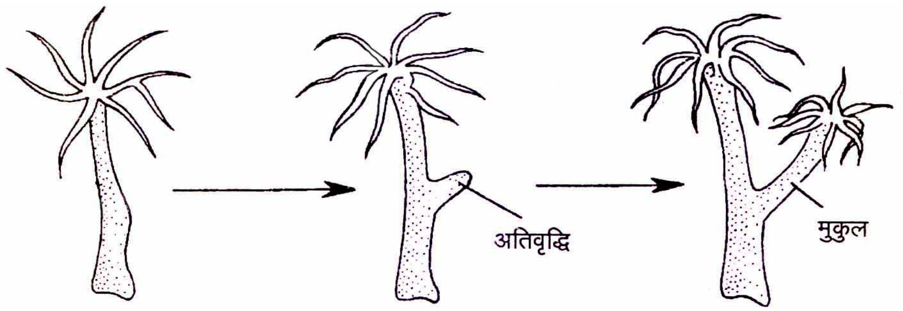

चित्र 4.10: हाइड्रा में मुकुलन द्वारा जनन

एककोशिकीय जीवों जैसे यीस्ट (Yeast) में जनक कोशिका से एक छोटी से बल्बनुमा अतिवृद्धि (Outgrowth) निकलती है। केन्द्रक (nucleus) भी दो भागों में विभक्त हो जाता है

- एक जनक

कोशिका में रहता है व दूसरा अतिवृद्धि में चला जाता है। इस अतिवृद्धि में चला जाता है। इस अतिवृद्धि को मुकुल (bud) कहते हैं। ये मुकुल बाद में बड़ी होकर जनक कोशिका से अलग हो जाती है और स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करती है ।

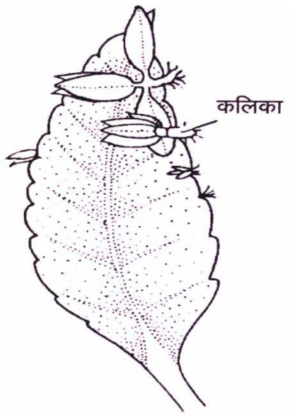

चित्र 4.11 : अजूबा की पत्ती पर कलिकाएँ

बहुकोशिकीय प्राणी हाइड्रा (Hydra) में कोशिकाओं के अनियमित विभाजन से शरीर पर कणिकाएं बन जाती हैं जो कि शरीर से अलग होकर नए हाइड्रा को जन्म देती हैं।

इसी प्रकार कुछ पौधों के शरीर पर अनेक अतिवृद्धियां (outgrowth) बन जाती हैं। इन्हें भी मुकुल (buds) कहते हैं। बाद में ये स्वतन्त्र होकर नए पौधें को जन्म देती हैं, जो कि हूबहू जनक जैसा ही होता है। **अजूबा** (Bryophyllum) की पत्तियां इसका ज्वलंत उदाहरण हैं । इसकी पत्तियों के किनारों पर छोटी -छोटी अपस्थानिक कलिकाएं बनती हैं, जो विकसित होकर सम्पूर्ण (जड़ सहित) छोटे - छोटे पौधों का निर्माण करती हैं । ये कलिकाएं अंतत : अलग होकर नए पौधों को जन्म देती है ।

4.6.2 लैंगिक जनन (Sexual Reproduction)

लैंगिक जनन में एक ही जाति के दो विपरीत लिंगों (Sexes) वाले जीवधारियों - (1) नर (Male) व (11) मादा (female) के योगदान से सन्तान उत्पन्न होती हैं । हम जानते है कि दो विशेष प्रकार की कोशिकाएं, जिन्हें **युग्मक** (gametes) कहते हैं, परस्पर संयुक्त हों । इनमें से एक नर व युग्मक (male gamete) कहलाता है व दूसरा मादा **युग्मक** (Female gametes) कहलाता

है । नर युग्मक प्राय : सक्रिय व छोटा होता है । इसे शुक्राणु (sperm) कहते हैं । इसके विपरीत मादा युग्मक बड़ा व निष्क्रिय होता है, इसे **अण्डाणु** (ovum) कहते हैं । शुक्राणु पैदा करने के लिए नर **जननांग** (male reproductive organs) होते हैं जबकि अण्डाणु पैदा करने के लिए मादा **जननांग** (female reproductive organs) होते हैं ।

- मानव में पुरुष (नर) व स्त्री (मादा) स्पष्टतया भिन्न होते हैं । ऐसे जीवधारियों को **एकलिंगी** (unisexual) कहते हैं । कुत्ते, बिल्ली, घोड़ा, हाथी आदि अन्य अनेक उदाहरण हैं ।
- बहुत सी जीव जातियों में, जैसे **केंचुआ** (earthworm) व हाइड्रा (Hydra) में, एक ही जीवधारी में नर व मादा दोनों प्रकार के जननांग होते हैं और ये नर युग्मक व मादा युग्मक दोनों पैदा करते हैं । ऐसे जीवों को **उभयलिंगी** (hermaphrodite) या द्विलिंगी

(bisexual) कहते हैं । परन्तु अधिकांश द्विलिंगी जीवधारियों में - विशेषकर प्राणियों में - एक समय पर या तो नर युग्मक पैदा होते हैं अथवा मादा युग्मक । इस प्रकार किसी निश्चित समय पर ये या नर की भूमिका निभाते हैं अथवा मादा की । इसलिए द्विलिंगी होते हुए भी इन्हें जनन के समय दो जीवधारियों की आवश्यकता होती हैं एक नर की भूमिका अदा करने के लिए व दूसरा मादा की भूमिका अदा करने के लिए ।

लैंगिक प्रजनन के दौरान नर से प्राप्त शुक्राणु व मादा से प्राप्त अण्डाणु संयुक्त होकर एक युग्मनज (zygote) बनाते हैं जिससे सन्तान का विकास होता है । यद्यपि लैंगिक जनन अनेक एककोशिकीय जीवधारियों जैसे **पैरामीशियम** (Paramecium), शैवालों आदि में भी पाया जाता है, यह बहुकोशिकीय जीवधारियों में बहुत ही सामान्य है ।

4.6.3 प्राणियों में लैंगिक जनन (Sexual Reproduction in Animals)

प्राणियों में लैंगिक जनन में बहुत विविधता पाई जाती है, जैसे कि :

(i) **मोनोसिस्टिस** (Monocystis) नामक एककोशिकीय जीव में नर व मादा आकार व साइज में एकसमान होते हैं ।

(ii) मलेरिया परजीवी, **प्लाज्मोडियम** (Plasmodium) में दोनों (नर व मादा) असमान होते है।

(iii) बहुकोशिकीय जीवों में नर जीव शुक्राणु पैदा करता है जबकि मादा जीव अण्डा उत्पन्न करती है।

(iv) उभयलिंगी जीव जैसे केंचुआ एक समय में शुक्राणु उत्पन्न करते हैं, वे दूसरे समय में अण्डा।

(v) मेंढक में नर व मादा दोनों जीव सम्भोग करते हैं तथा अपने - अपने युग्मकों (शुक्राणों व अण्डों को) पानी में ही छोड़ देते हैं । शुक्राणु द्वारा अण्डों का निषेचन पानी में होता है (शरीर के बाहर) इसलिए ऐसे निषेचन को **बाह्य निषेचन** (external fertilization) कहते हैं ।

(vi) मवेशी, कुत्ते, कीट, मकड़ी, मानव व अनेक अन्य प्राणियों में नर अपने शुक्राणुओं को मादा के शरीर के अन्दर छोड़ते हैं । मादा के अण्डों का निषेचन मादा के शरीर के अन्दर पहुंचकर ये शुक्राणु करते हैं । ऐसे निषेचन को **आन्तरिक निषेचन** (internal fertilization) कहते हैं ।

4.6.4 मानव में जनन तन्त्र (Reproduction system in Human Beings)

मनुष्य एकलिंगी प्राणी है । अर्थात् नर और मादा जनन अंग अलग - अलग प्राणियों में होते हैं । जिन मानव में नर जनन अग होते हैं उन्हें **पुरुष** तथा जिनमें मादा जनन अंग होते हैं उन्हीं **स्त्री** कहते हैं । मनुष्य में **लैंगिक द्विरूपता** (sexual dimorphism) होती है अर्थात् मानव की आकारिकी (बाहरी रचनात्मक लक्षण) देखकर ही पुरुष तथा स्त्री को पहचाना जा सकता है ।

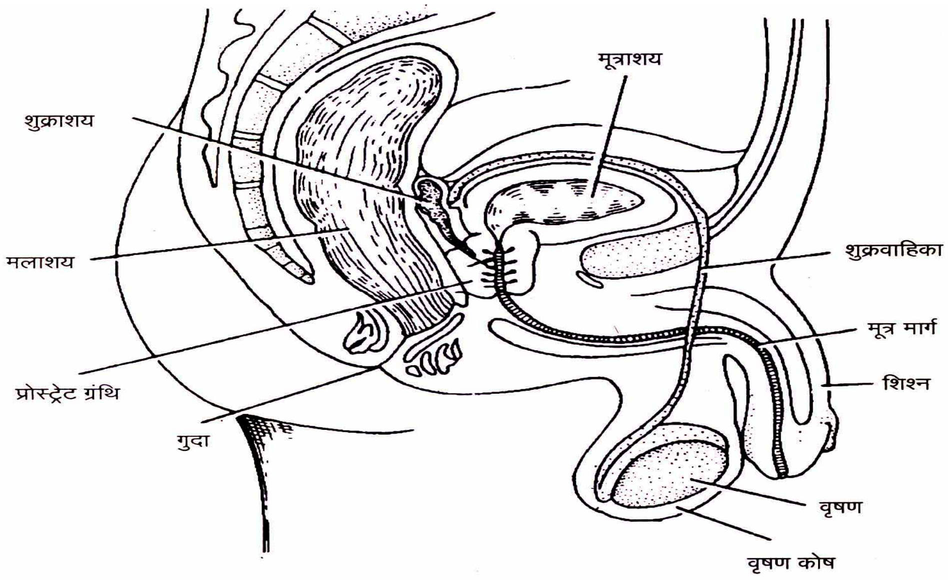

चित्र 4.12: पुरुष के जननांग

4.6.4.1 नर जनन अंग (Male Reproductive Organs)

वृषणों का केवल एक जोड़ा होता है जो उदर गुहा के बाहर त्वचा की बनी थैलियों अर्थात् **वृषण कोषों** (scrotal sacs) में स्थित रहते हैं । ये वृषण कोषों की दीवार से दृढ़ तन्तुओं द्वारा जुड़े रहते हैं।

वृषण से एक पतली, संकरी, लगभग 6 मीटर लम्बी नली निकलती है जिसे शुक्र वाहिनी (Vas deferens) कहते हैं । इसका **निकटस्थ** (proximal) अधिकांश भाग वृषण कोषों के भीतर ही कुण्डलित रहता है और **एपिडिमिस** (epididymis) कहलाता है । इसका शेष दूरस्थ भाग उदर गुहा में प्रवेश करता है और मूत्रनाल में खुलता है ।

मूत्रनाल में ही मूत्राशय खुलता है । मूत्रनाल एक पेशीय, मोटी नली शिश्न के दूरस्थ सिरे पर खुलती है । इस प्रकार पुरुषों में मूत्र तथा शुक्राणु दोनों ही मूत्रनाल द्वारा बाहर निकलते हैं ।

शुक्रवाहिनी जिस स्थान पर मूत्र नाल से मिलती है वहीं पर **शुक्राशय** (seminal vesicle) तथा **प्रोस्टेट ग्रन्थियां** (prostate glands) स्थित होती हैं । शुक्राशय तथा प्रोस्टेट ग्रन्थियां एक क्षारीय द्रव स्रावित करती हैं जिससे शुक्राणु जीवित रह सकें ।

इनके अतिरिक्त काउपर **ग्रन्थियां** (Cowper's glands), **पैरीनियल ग्रन्थियां** (perineal glands) तथा **रेक्टल ग्रन्थियां** (rectal glands) भी होती हैं जिनका स्राव यूरेथ्रा अर्थात् मूत्र मार्ग को चिकना बनाये रखता है तथा विशेष प्रकार की गन्ध उत्पन्न करते हैं ।

वीर्य (Semen) : सम्भोग के समय शिश्न मुख से एक सफेद तरल पदार्थ को ही वीर्य (semen) कहते हैं । वीर्य में **शुक्राणु, म्यूकस** तथा **उपग्रन्थियों** का स्राव होता हैं ।

शुक्राणु के दो भाग होते हैं-सिर तथा पुच्छ । ये अण्ड कोशिकाओं की अपेक्षा संख्या में बहुत अधिक बनते हैं ।

वीर्य के कार्य-

(i) वीर्य एक तरल माध्यम का कार्य करता है जिससे शुक्राणु स्त्री की योनि में सुरक्षित स्थानान्तरित किया जा सके ।

(ii) यह तरल शुक्राणुओं का पोषण करता है ।

(iii) यह क्षारीय होता है इसलिए नर की यूरेथ्रा तथा मादा की योनि में मूत्र की अम्लीयता को कम करता है ।

(iv) उपग्रन्थियों के स्राव से योनि मार्ग चिकना और नम हो जाता है जिससे मैथुन में सुविधा होती है।

पुरुष में यौवनारम्भ (Puberty in Man) : जब नर जननांग अपना कार्य करना प्रारम्भ करते हैं तो इस अवस्था को **यौवनारम्भ** (puberty) कहते हैं । यह सामान्यतया 13 - 16 वर्ष की आयु में होती है । यौवनारम्भ होते ही वृषण **टेस्टोस्टीरोन हॉर्मोन** (Testosterone Hormone) उत्पन्न करने लगते हैं । ये हॉर्मोन वृद्धि तथा गौण लैंगिक अंगों की परिपक्वता का नियमन करता है ।

मानव में **आन्तरिक निषेचन** (internal fertilisation) होता है । आन्तरिक निषेचन मैथुन द्‌वारा ही सम्भव होता है । वीर्य स्खलन, मैथुन की चरम सीमा पर पहुंचने से होता है । इसके पश्चात् शिशन सिकुड़ कर सामान्य स्थिति में आ जाता है । इस प्रकार आन्तरिक निषेचन पूरा होता है ।

मनुष्य में भ्रूण का पोषण **अपरा** (placenta) द्‌वारा होता है । अपरा भ्रूण की नाभि से तथा दूसरी ओर गर्भाशय की दीवार से जुड़ा रहता है । इस प्रकार भ्रूण का पोषण, वृद्धि स्त्री के गर्भाशय में ही सम्पूर्ण होता है ।

1. **कृत्रिम निषेचन** (Artificial Insemination) : जब शुक्राणुओं का नर से मादा में स्थानान्तरण स्वाभाविक रूप से न होकर कृत्रिम विधि से हो तो उस क्रिया को कृत्रिम निषेचन कहते हैं । कृत्रिम निषेचन, प्राय: पशुओं की नस्लों को बढ़िया बनाने के लिए कराया जाता है । यह क्रिया तीन चरणों में पूर्ण होती हैं - (i) अच्छी नस्ल के नर से कृत्रिम विधि द्‌वारा वीर्य (semen) को निकाल कर एकत्रित करना; (ii) एकत्रित किए गए वीर्य का ठीक ढंग से परीक्षण (preservation) तथा संचयन (storage); (iii) वीर्य का सही कृत्रिम ढंग से मादा की योनि में स्थानान्तरण ।

    (i) इन्गुइनल हॉर्निया ऐसा रोग है जिसे आंत वृषण कोषों में उतर जाती है ।

    (ii) शुक्राणु निर्माण एक कभी न समाप्त होने वाली प्रक्रिया है, चाहे स्खलन हो या न हो । यदि शुक्राणु स्खलित नहीं होते हैं तो **वास डिफरेन्स** या **शुक्रवाहिकाओं** द्‌वारा अवशोषित कर लिए जाते हैं ।

    (iii) चमगादड़ में प्रजनन काल में वृषण बड़े होते हैं और वृषण कोषों में आ जाते हैं और प्रजनन के पश्चात् फिर से छोटे होकर गुहा में चले जाते हैं और निष्क्रिय पड़े रहते हैं ।

    (iv) शुक्राणु शरीर के ताप से 2 - 3^0C कम पर बनते हैं । अत: व्हेल कोष ताप-नियामक अंग है जो कि वृषण के ताप को शरीर के ताप से 2 - 3^0C नीचे रखते हैं । जब इनका तापक्रम नीच जाता है तो ये सिकुड़ कर शरीर के पास आ जाते हैं । जब इनका

ताप शरीर के ताप के बराबर होने लगता है तब ये फैल कर फिर लटक जाते हैं । यह क्रिया सदैव होती रहती है ।

2. प्रतिरक्षी की उपस्थिति के कारण माँ का दूध शिशुओं के लिए अति उत्तम होता है, इसलिए स्त्रियों को चाहिए कि वे अपने बच्चों को स्तन से दूध पिलाएं ।
3. चिड़ियों में केवल बायीं अण्डवाहिनी तथा बायां अण्डाशय सक्रिय रहते हैं । दायीं अण्डवाहिनी तथा दायां अण्डाशय नहीं होता ।

4.6.4.2 मादा जनन अंग (Female Reproductive Organs)

मादा जनन तन्त्र निम्नलिखित अंगों से मिल कर बनता है : (i) एक जोड़ी अण्डाशय; (ii) एक जोड़ी अण्डवाहिनयां; (iii) क्लाइटोरिस; (iv) उप-ग्रन्थियां; (a) काउपर ग्रन्थियाँ, (b) पैरिनियल ग्रन्थियां।

स्त्रियों में दोनों अण्डाशय उदर गुहा की पृष्ठ दीवार से **मीसोवेरियम झिल्ली** द्वारा जुड़े रहते हैं । इनकी स्थिति कशेरुक दण्ड के इधर -उधर वृक्कों के लगभग पीछे की ओर होती है । इसकी लम्बाई लगभग 3 सेमी होती है ।

प्रत्येक अण्डाशय से संलग्न एक अण्डवाहिनी होती है । प्रत्येक. अण्डवाहिनी स्वतन्त्रापूर्वक अपनी ही ओर के अण्डाशय से चिपकी **मुखिका** (ostium) द्वारा देहगुहा में खुलती है । जिसके कारण से अण्डे देहगुहा में न गिर कर सीधे अण्डवाहिनी में ही आ जाते हैं । अण्डवाहिनी, आकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न भागों में निम्नलिखित नामों से पुकारी जाती है : (i) अण्डनलिका
(ii) गर्भाशय (iii) योनि ।

दायीं तथा बायीं अण्डवाहिनी बाहर खुलने से पहले एक-दूसरे से संयुक्त होकर एक चौड़ा थैला बनाती हैं जिसे **गर्भाशय** (uterus) कहते हैं । गर्भाशय मांसल होता है और **योनि मार्ग** (vagina) में खुलता है । योनि मार्ग, योनि द्वारा बाहर खुलता है ।

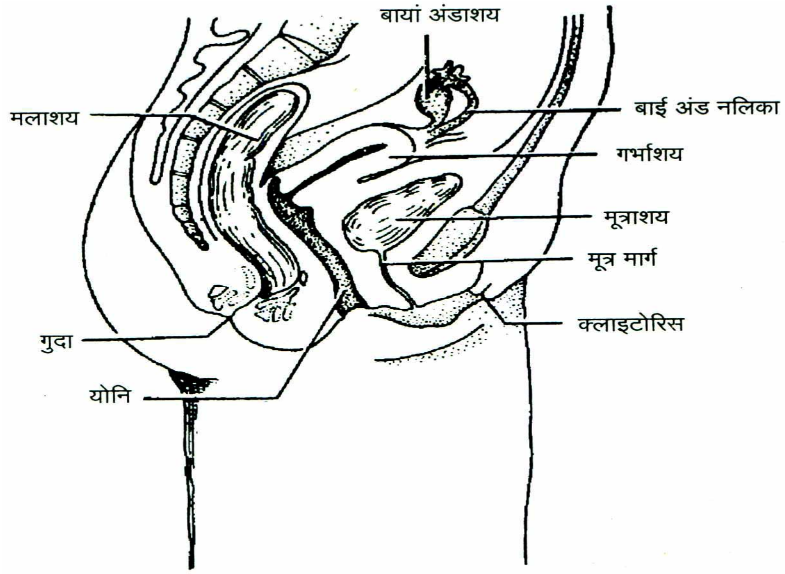

चित्र 4.13 : स्त्री के जननांग

स्त्रियों में यौवनारम्भ (Puberty in Women) : मादाओं में भी जब मादा जनन अंग अपना कार्य करना प्रारम्भ करते हैं तभी यौवनारम्भ होता है । यह सामान्यतया 11 - 14 वर्ष की आयु में होता है । स्त्रियों में एक मादा जनन चक्र होता है जिसकी अवधि लगभग 28 दिन होती है । इन 28 दिनों में स्त्रियों में जनन अंग की रचना तथा कार्यों में अनेक परिवर्तन होते हैं, इसे **आत्तर्व चक्र या रजोधर्म चक्र** (menstrual cycle) कहते हैं ।

रजोधर्म का नियमन **पीयूष ग्रन्थि** द्‌वारा स्रावित हॉर्मोनों द्‌वारा होता है । गर्भ धारण करने के बाद रजोधर्म तथा अण्डोत्सर्ग बन्द हो जाते हैं । प्रसव अर्थात् शिशु पैदा होने के बाद रजोधर्म तथा अण्डोत्सर्ग फिर से शुरू हो जाते हैं ।

स्त्रियों में लगभग 40 वर्ष की आयु में मासिक धर्म (रजोधर्म) अनियमित या समाप्त हो जाता है। इस प्रक्रिया को **रजोवृत्ति** (menopause) कहते हैं । इसके बाद स्त्रियां गर्भधारण नहीं कर सकती हैं क्योंकि इसके बाद स्त्री अण्डे उत्पन्न नहीं कर सकती जबकि पुरुष सारे जीवन शुक्राणु निर्माण कर सकता है ।

मनुष्य में भ्रूण का परिवर्धन स्त्री के शरीर के भीतर होता है तथा **प्रत्यक्ष** (direct) होता है अर्थात् लारवा नहीं पाया जाता है । मनुष्य में निषेचन से जन्म तक लगभग 9 माह 7 दिन लगते हैं । मनुष्य एक **जरायुज** (viviparous) प्राणी है अर्थात् अपने ही समान एक छोटे रूप के (शिशु) को जन्म देता है ।

बोध प्रश्न - 6 :

1. लैंगिक जनन के फलस्वरूप किसकी सम्भावना बढ़ जाती हैं, जो कि जाति की किसके लिये महत्वपूर्ण होती है ।

   ....

   ....
2. अलैंगिक जनन में.............................के जीवों की आवश्यकता नहीं होती ।
3. द्‌विविखण्डन का उदाहरण है ।

   ....

   ....
4. बहु विखण्डन का उदाहरण है।

   ....

   ....
5. मुकुलन (Budding) : एककोशिकीय जीवों .... व बहुकोशिकीय जीवधारियों.................... में देखने में मिलती हे ।
6. इस अतिवृद्धि को क्या कहते हैं?

   ....

   ....
7. अजूबा (Bryophyllum) की पत्तियां किसका ज्वलंत उदाहरण है ?

....

8. एक ही जाति के दो विपरीत लिंगों (sexes) वाले जीवधारियों की दो विशेष प्रकार की कोशिकाएं, जिन्हें................ कहते हैं, परस्पर संयुक्त होने से प्रजनन होता है ।

9. नर युग्मक को.............. कहते हैं व मादा युग्मक को.......... कहते हैं ।

10. उभयलिंगी या द्विलिंगी के उदाहरण दो ।

....

....

11. लैंगिक प्रजनन के दौरान नर से प्राप्त शुक्राणु व मादा से प्राप्त अण्डाणु संयुक्त होकर क्या बनाते हैं?

....

....

12. मादा के अण्डों का निषेचन मादा के शरीर के अन्दर पहुंचकर ये शुक्राणु करते हैं । ऐसे निषेचन को क्या कहते हैं ?

....

....

13. किसका स्राव यूरेथ्रा अर्थात् मूत्र मार्ग को चिकना बनाये रखता है तथा विशेष प्रकार की गन्ध उत्पन्न करते हैं?

....

....

14. मनुष्य में भ्रूण का पोषण किसके द्वारा होता है?

....

....

15. भ्रूण का पोषण, वृद्धि कहाँ सम्पूर्ण होता है?

....

....

16. अण्डे देहगुहा में न गिरकर सीधे अण्डवाहिनी में ही किसके माध्यम से आ जाते हैं?

....

....

17. गर्भाशय कहाँ खुलता है ।

....

....

सारणी 2. कुछ प्राणियों का गर्भकाल (Gestation Period of Some Animals)

क्रमांक	**प्राणी**	**गर्भावधि (दिन)**
1.	मनुष्य	253-266
2.	बन्दर (रीसस)	150-170
3.	सूअर	114
4.	खरगोश	28-30
5.	चूहा	21
6.	भेड़	151
7.	गिलहरी	30-40
8.	बाघ	155
9.	व्हेल	330-365
10.	गधा	365
11.	ऊंट	400
12.	बिल्ली	63
13.	चिम्पांजी	250
14.	गाय	284
15.	डॉगफिश	300
16.	कुत्ता	63
17.	हाथी	624
18.	लोमड़ी	51-63
19.	जिराफ	400-480
20.	गोरिल्ला	270
21.	बकरी	151
22.	घोड़ा	330
23.	कंगारू	40
24.	शेर	105-005

4.7 सारांश

- किसी भी वस्तु को जिसमें कुछ विशिष्ट जैविक क्रियाएं (उदाहरण - वृद्धि, प्रचलन, श्वसन, पोषण, प्रजनन, आदि) हो रही हों, **सजीव** या **जीव** (organism) कहते हैं ।
- **उपापाचय** (Metabolism) : प्रत्येक जीव की कोशिकाओं में होने वाली सभी रासायनिक क्रियाओं को कुल मिलाकर **उपापचय** अथवा **मेटाबोलिज्म** (metabolism) कहते हैं ।
- **जीवों द्वारा भोजन (पोषक तत्वों) को प्राप्त करने के प्रक्रिया को प्रोषण कहते हैं ।** सभी जीवधारियों को प्रमुख रूप से दो कार्यों के लिये, अपने शरीर के निर्माण के लिए तथा

विभिन्न जैविक क्रियाओं के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है । यह ऊर्जा उन्हें भोजन से प्राप्त होती है जिसमें पोषक तत्व होते हैं ।

- **पोषण** की मुख्यत : दो विधियाँ हैं - (अ) स्वपोषण (autotrophic), तथा (ब) **परपोषण** या **विषमपोषण** (heterotrophic) ।
- **स्वपोषण** (स्व = खुद + पोषण) (Autotrophic Mode of Nutrition) : अनेक जीवधारी अत्यन्त सरल पदार्थों से अपनी भोजन सामग्री का निर्माण स्वयं करते हैं । इस प्रक्रिया को स्वपोषण (autotrophic nutrition) तथा ऐसे जीवधारियों को **स्वपोषी** (autotrophs) कहते हैं । स्वपोषी जीवधारी ही प्रकृति में भोजन का उत्पादन करते हैं, और **उत्पादक**(Producers) कहलाते हैं ।
- **परपोषण या विषमपोषण (Heterotrophic Mode of Nutrition) :** अनेक जीवधारी प्रकाश - संश्लेषण द्वारा अपने भोजन का निर्माण करने में असमर्थ होते हैं । अत : ये भोज्य पदार्थों के लिए अन्य स्रोतों (sources) पर निर्भर होते हैं । ये **परपोषी या विषमपोषी** (heterotrophs; heteros = विविध) कहलाते हैं । सभी प्राणी व कुछ पौधें भी परपोषी होते हैं । ये भी दो प्रकार के होते हैं :
- **प्राणिसम / जन्तुसम पोषण तथा अवशोषी पोषण (Holozoic Nutrition and Absorptive Nutrition) :** जीवधारी अपने स्रोत से भोजन दो अलग - अलग तरीकों से लेते हैं : **अन्तग्रहण एवं अवशोषी फफूंदी ।**
- **परजीवी** दो प्रकार के हैं : (i) बाह्य परजीवी, तथा (ii) अन्त: परजीवी ।
  (i) **बाह्य परजीवी** (Ectoparasite) : बाह्य परजीवी पोषक के शरीर के बाहर ऊपरी सतह पर रहते हैं; जैसे जूं, खटमल ।
  (ii) **अन्त:परजीवी** (Endoparasites) : ये पोषक के शरीर के अन्दर विद्यमान रहते हैं ।
- पोषण विधि के आधार पर इन्हें निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया गया हैं - (क) परजीवी पौधे (Parasitic plants) (ख) सहजीवी पौधे (Symbiotic plants) (ग) मृतोपजीवी पौधे (Saprophytic plants) (घ) कीटभक्षी पौधे (Insectivorous plants) ।
- **स्वपोषी जीव** (जैसे हरे पौधे) वातावरण से सरल अणुओं (पानी व कार्बन डाइऑक्साइड) को ग्रहण करके उनसे कार्बनिक पदार्थ (शर्करा) का संश्लेषण करते हैं । इसके लिए आवश्यक ऊर्जा उन्हें सूर्य के प्रकाश (sunlight) से प्राप्त होती है । अत : यह प्रक्रिया **प्रकाश - संश्लेषण** (photosynthesis) कहलाती है ।

$$\underset{\text{कार्बन डाइ - ऑक्साइड जल}}{6CO_2 + 12H_2O} \xrightarrow[\text{क्लोरोफिल}]{\text{प्रकाश}} \underset{\text{ग्लूकोज ऑक्सजीन}}{C_6H_{12}O_6 + 6O_2}$$

- सुविधा की दृष्टि से प्रकाश - संश्लेषण की पूरी प्रक्रिया को हम दो प्रमुख भागों में बाँट सकते हैं- (अ) **प्रकाशिक अभिक्रिया** (Light Reaction) जिसके लिए प्रकाश आवश्यक है; (ब) **अप्रकाशिक अभिक्रिया** (Dark Reaction) जिसके लिए प्रकाश आवश्यक नहीं है ।

- वातावरण से प्राप्त ऑक्सीजन से इन सरल अणुओं का ऑक्सीकृत किया जाता है तो कार्बन डाइऑक्साइड व जल बनते हैं त था ऊर्जा विमुक्त होती है । इस प्रक्रिया को **श्वसन** (respiration) कहते हैं ।
- श्वसन की प्रकिया से जो ऊर्जा मुक्त होती है वह ADP + P से ATP बनने में काम आती है । दूसरे शब्दों में, कोशिका में उपस्थित ADP के अणु ऊर्जा पाने पर फॉस्फेट वर्ग के साथ संयुक्त होकर ATP के अणु बना लेते हैं । ऊर्जा की जहाँ तथा जब आवश्यकता होती है, ATP टूटकर ADP + P में परिवर्तित हो जाती है व ऊर्जा विमुक्त होती है ।
- ऑक्सीजन पर निर्भरता की दृष्टि से श्वसन दो प्रकार का होता है :

  1. ऑक्सी श्वसन (Aerobic respiration) :

  $C_6H_{12}O_6 + 6O_2\ 6CO_2 + 6H_2O$ + 283 kj ऊर्जा (673 cal)

  2. अनॉक्सी श्वसन (Anaerobic respiration) :

  $C_6H_{12}O_6\ 2C_2H_5OH + 2CO_2$ + ऊर्जा
- प्राणियों में पचे हुए पोषक पदार्थों तथा श्वसनांगों द्वारा वातावरण से ग्रहण की गई ऑक्सीजन को समस्त कोशिकाओं में पहुँचाने के लिए रुधिर परिसंचरण तंत्र होता है । यह तंत्र कोशिकाओं से कार्बन डाइऑक्साइड को श्वसनांगों में तथा यूरिया, आदि को उत्सर्जन अंगों में पहुँचाता है । शरीर की विभिन्न कोशिकाओं के बीच रासायनिक आदान - प्रदान भी इसी परिसंचरण तंत्र द्वारा होता है ।
- **परिसंचरण तंत्र** को दो भागों में विभक्त किया जाता है जो निम्नलिखित हैं : (i) रुधिर परिसंचरण तंत्र (Blood Vascular System), (ii) लसीका तंत्र (Lymphatic system)।
- रुधिर परिसंचरण तंत्र के अन्तर्गत चार भाग हैं : (i) हृदय, (ii) धमनियां, (iii) शिराएं, (iv) रुधिर।
- प्राणियों की उस कार्य -विधि को जिसके द्वारा वह वर्ज्य पदार्थ तथा विषैले पदार्थों को शरीर से बाहर निकालते हैं, **उत्सर्जन** (excretion) कहते हैं ।
- प्राणियों के वर्ज्य पदार्थों को हम दो मुख्य श्रेणियों में बांट सकते हैं -

  (i) कार्बनिक तथा (ii) नाइट्रोजनी ।
- उत्सर्जी पदार्थों के आधार पर विभिन्न प्राणियों का वर्गीकरण तीन श्रेणियों में किया जाता है:

  (i) **अमोनोटेलिक** (Ammonotelic) : इन प्राणियों में मुख्य उत्सर्जी पदार्थ अमोनिया होती है । उदाहरण - कुछ मछलियां, कुछ क्रस्टेशियन तथा कुछ प्रोटोजोआ ।

  (ii) **यूरिकोटेलिक** (Uricotelic) : इन प्राणियों में मुख्य उत्सर्जी पदार्थ **यूरिक अम्ल**

  (iii) (uric acid) होता है। उदाहरण- सभी सरीसृप (छिपकलियां तथा सर्प) तथा पक्षी इत्यादि।

  (iv) **यूरीओटेलिक** (Ureotelic) : इन प्राणियों में मुख्य उत्सर्जी पदार्थ **यूरिया** (Urea) होता है । उदाहरण - मेंढक, स्तनधारी, इत्यादि ।

- मूलत : जीवधारियों में दो प्रकार से प्रजनन होता है : **(i) अलैंगिक जनन** (Asexual Reproduction) एवं **(ii) लैंगिक जनन** (Sexual Reproduction) ।
- अलैंगिक प्रजनन में दो विपरीत लिंगों (नर, मादा) के जीवों की आवश्यकता नहीं होती ।

4.8 शब्दावली

विषमपोषण	(Heterotrophic)
स्वपोषण	(Autotrophic)
प्राणिसम	(Holozoic)
बाह्य परजीवी	(Ectoparasites)
अन्त:परजीवी	(Endoparasites)
शाकाहारी	(Herbivores)
मांसाहारी	(ivores)
सर्वहारी	(Omnivores)
फलभक्षी	(Frugivores)
रुधिराहारी	(Sanguivores)
कीटभक्षी	(Insectivores)
मृतभक्षी	(Carrion Enters)
स्वजातिभक्षी	(Cannibals)
विष्टाभोजी	(Caprophagous)
पक्ष्माभी एपीथीलियम	(Ciliated epithelium)
पालियां	(Lobes)
अरीय मांसपेशियां	(Radial muscles)
निश्वसनीय पेशियां	(Inspiratory muscles)
खुला परिवहन तंत्र	(Open Circulatory System)
बन्द परिवहन तंत्र	(Closed Circulatory System)
शिराएं	(Veins)
लघु शिरा	(Venule)
धमनी	(Arteries)
धमनिका	(arterioles)
रुधिर केशिकाएं	(Blood Capillaries)
अन्तर्वाही नालों	(Incurrent canals)
कशाभिक नालों	(Flagellated canals)
शिरा कोटर	(Sinus venosus)

अर्द्धचन्द्राकार कपाटों	(Semilunar valves)
अधिवृक्क ग्रन्थि	(Adernal gland)
मूत्र नाल	(Urethera)
विखण्डन	(Fission)
मुकुलन	(Budding)
उभयलिंगी	(Hermaphordite)
बाह्य निषेचन	(External fertilisation)
परपोषण या विषमपोषण	(Heterotrophic Mode of Nutrition)
बाह्य परजीवी	(Ectoparasite)
अन्त:परजीवी	(Endoparasites)
अनॉक्सी श्वसन	(Anaerobic respiration)
अमोनोटेलिक	(Ammonotelic)
यूरिंकोटेलिक	(Uricotelic)
यूरीओटेलिक	(Ureocotelic)

4.9 संदर्भ ग्रंथ

प्राणि - कार्यिकी एवं जैव -रसायन : डॉ. ए.एल. भाटिया एवं के.एस. कोहली, रमेश बुक डिपो,जयपुर।

शरीर-रचना, क्रियाशास्त्र, स्वास्थ्य शिक्षा, सुरक्षा शिक्षा प्राथमिक चिकित्सा और आहार, ए.एल. भाटिया एवं हेतसिह बघेला, श्रीयांश पब्लिकेशन, जयपुर ।

मानव शरीर और शरीर क्रिया विज्ञान, तातारीनोव, सोवियत प्रकाशन

शरीर प्रद्दीपिका, डॉ. मुकुन्द स्वरूप वर्मा, बिहार हिन्दी ग्रन्ध अकादमी

4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1 :

1. स्वपोषी पादपों
2. पर्णहरिम (क्लोरोफिल)
3. सड़े गले कार्बनिक पदार्थो से
4. प्राणिसम अथवा होलोजोइक
5. जूं, खटमल
6. अन्तराकोशिकी एण्ड -अमीबा अन्त कोशिकीय प्लाज्मोडियम
7. सैंजीवोर्स, रुधिरहारी
8. राइजोपोस, एस्पर्जिलस म्यकर
9. नीओश्यिा
10. नाइट्रोजन की कमी

बोध प्रश्न -2 :

1. प्रकाश संश्लेषण
2. पानी का
3. पानी से
4. सूक्रोस
5. अप्रकाशिक प्रक्रिया में
6. PEP
7. सूर्य का प्रकाश
8. बैंगनी
9. जल के प्रकाशिक अपघटन के लिए

बोध प्रश्न - 3 :

1. ब	2. अ	3. अ	4. अ	5. अ
6. द	7. स	8. स	9. ब	10. अ
11. अ	12. स	13. ब	14. द	

बोध प्रश्न - 4 :

1. ब	2. अ	3. अ	4. अ	5. अ
6. द	7. स	8. स	9. ब	10. अ
11. अ	12. स	13. ब	14. द	

बोध प्रश्न -5 :

1. विसरण द्वारा
2. ज्वाला कोशिका
3. वृक्कक
4. हरित ग्रंथियाँ
5. श्रृंगिका में
6. मैलपीघी नलिकाएं
7. हीमोलिम्फ में
8. ऑस्मोरेगुलेटरी तथा होम्योस्टेटिक अग हैं।
9. अधिवृक्क ग्रन्थि
10. अपने जनकों जैसी

बोध प्रश्न - 6 :

1. लैंगिक जनन के फलस्वरूप विभिन्नताओं की सम्भावना बढ़ जाती हैं, जो कि जाति की उत्तरजीविता (Survival) के लिए महत्वपूर्ण होती है ।
2. दो विपरीत लिंगों (नर, मादा)
3. अमीबा
4. प्लाज्मोडियम
5. जैसे यीस्ट, जैसे हाइड्रा, अजूबा दोनों में
6. मुकुल
7. कलिकायें द्वारा प्रजनन
8. युग्मक
9. शुक्राणु, अण्डाणु
10. केंचुआ व हाइड्रा
11. युग्मजन
12. आंतरिक निषेचन
13. पैरीनियल ग्रन्थियां तथा रेक्टल ग्रन्थियां
14. अपरा
15. स्त्री के गर्भाशय मे
16. अण्डाशय से चिपकी मुखिका द्वारा
17. योनि मार्ग में

4.11 अभ्यास प्रश्न

लघुउत्तरात्मक प्रश्न

1. फुफ्फुस, वृक्क एवं यकृत में रुधिर के संगठन में प्रवेश से पूर्व अथवा उसके निकलने के पश्चात् क्या अंतर मालूम होता है?
2. शरीर में CO_2 कहाँ और कैसे उपन्न होती है?
3. फुफ्फुस तथा ऊतकों में गैसों का विनिमय समझाइये ।
4. मानव हृदय की संरचना का वर्णन कीजिए ।
5. मानव हृदय की कार्यविधि का संक्षिप्त वर्णन कीजिए ।
6. लसीका क्या है? खरहे के लसीका तंत्र का वर्णन कीजिए ।
7. मानव के रक्त की संरचना को संक्षेप में समझाइये ।
8. मानव के नर जननांगों का वर्णन करो ।
9. वीर्य में क्या होता है?
10. वीर्य के कार्यों पर लिखो ।
11. पुरुष में योवनारम्भ कब होता है?
12. अलैंगिक प्रजनन का लेखा-जोखा दो ।
13. मानव में लैंगिक प्रजनन का सविस्तार वर्णन करो ।
14. पुरुष के जननांगों का वर्णन करो ।
15. स्त्रियों के जननांगों का वर्णन करो ।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. मानव के श्वसन अंगों का सचित्र वर्णन कीजिए तथा श्वसन क्रिया विधि समझाइये ।
2. श्वसन सतह की विशेषताओं पर संक्षेप में प्रकाश डालिए ।
3. श्वसन क्रिया से आप क्या समझते हैं? खरहे के शरीर में इसकी कार्यिकी को विस्तृत रूप से समझाइये ।
4. संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए -
   (1) कंठ की उपास्थियाँ
   (2) उच्छ्वसन
   (3) श्वसन व दहन में अन्तर
   (4) ऑक्सी व अनॉक्सी श्वसन में अन्तर
   (5) ग्लाइकोलाइसिस व निश्वसन
   (6) क्रेब्स चक्र
   (7) श्वसन व प्रकाश संश्लेषण में अन्तर
   (8) अकशेरुकियों में उत्सजर्न अंग
   (9) लैंगिक व अलैंगिक प्रजनन में भेद
5. श्वसन कौन-कौन से प्रकार का होता है? समझाइये ।
6. कोशिकीय श्वसन को विस्तारपूर्वक समझाईये ।
7. मानव की धमनी व शिराओं का वर्णन कीजिए ।

8. रक्त की संरचना समझाते हुए उसके कार्यों पर प्रकाश डालिए ।

9. दोहरा परिसंचरण क्या है? समझाइये ।

10. रुधिर एवं इसके अवयवों का वर्णन कीजिए ।

11. परिवहन तन्त्र पर लेख लिखो ।

12. परिवहन तन्त्र का प्राणियों में विकास का लेखा-जोखा दो ।

पोषण

1. जीवों में पायी जाने वाली पोषणों की विधियों पर लेख लिखो ।

2. परपोषण व विषपोषण पर साधारण लेख लिखो ।

3. प्रकाश-संश्लेषण का लेखा-जोखा दो ।

4. टिप्पणियाँ लिखो ।

   (i) प्राणी-सम पोषण

   (ii) परजीवी

   (iii) प्रकाश-संश्लेषण

   (iv) कीट भक्षी पौधे

   (v) प्रकाश-संश्लेषण को प्रभावित करने वाले कारक

इकाई 5 : पारिस्थितिकी एवं जैव विविधता (Biodiversity)

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

- 5.2.1 पारिस्थितिकी
    - 5.2.1.1 पारिस्थितिकी की मुख्य शाखाएँ या प्रविभाजन
    - 5.2.1.2 पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem)
- 5.2.2 खाद्य श्रृंखला
- 5.2.3 जैव मण्डल (Biosphere)
    - 5.2.3.1 जलमण्डल (Hydrosphere)
    - 5.2.3.2 स्थलमण्डल (Lithosphere)
    - 5.2.3.3 वायुमण्डल (Atmosphere)

5.3 प्रदूषण

- 5.3.1 वायु प्रदूषण (Air pollution)
- 5.3.2 जल प्रदूषण (Water pollution)
- 5.3.3 मृदा प्रदूषण (Soil pollution)
- 5.3.4 ध्वनि प्रदूषण (Noise pollution)
- 5.3.5 विकिरण प्रदूषण (Radiation pollution)

5.4 जैव विविधता

- 5.4.1 जैव विविधता का परिमाप (Magnitude of biodiversity)
- 5.4.2 जैवविविधता के स्तर (Levels of Aiodiversity)
- 5.4.3 जैव विविधता पर खतरे (Threats to Biodiversity)
- 5.4.4 राजस्थान में संकटग्रस्त वन्य जीव

5.5 वन्य जीव संरक्षण

- 5.5.1 विलुप्त होती भारतीय प्राणि-जातियाँ
- 5.5.2 विलुप्त होती पादप जातियों

5.6 संरक्षण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय प्रयास

5.7 भारत में जैव विविधता संरक्षण

- 5.7.1 वन्य जीव संरक्षण तथा प्रबन्धन (Wild Life Conservation and Management)

5.8 वन्य जीवों की सुरक्षा हेतु परियोजनायें

5.9 राजस्थान में वन्य जीव संरक्षण

5.10 सारांश

5.11 शब्दावली

5.12 संदर्भ ग्रंथ

5.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.1 उद्देश्य

इस अध्याय के अन्तर्गत या पारिस्थितिकी तथा जैव विविधता से जुड़े निम्नलिखित पहलुओं का अध्ययन करेंगे :

(अ) पारिस्थितिकी एवं जैव मण्डल पारिस्थितिकी तंत्र

(ब) प्रदूषण

(स) जैव विविधता, परिमाप (Magnitude), स्तर, उपयोग एवं जैव विविधता पर खतरे, राजस्थान में संकटग्रस्त जातियों के उदाहरण (Endangered Species) जैव विविधता तप स्थल (Hotspots), जैव विविधता संरक्षण के राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास

(द) भारत में जैव विविधता संरक्षण (राजस्थान के अभ्यारण्य (Sanctuaries) एवं राष्ट्रीय पार्कों (National parks) के विशिष्ट संदर्भ सहित) ।

5.2 प्रस्तावना

कोई भी जीवधारी शून्य में जीवित नहीं रह सकता । सभी प्राणी और वनस्पति किसी न किसी परिवेश में घिरे रहते हैं, जिससे जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त निवास करते हैं । इसी परिवेश को वातावरण कहते हैं, जिसका सीधा प्रभाव जैविक क्रियाओं पर पड़ता है । वातावरण और जीवधारियों में एक जटिल पारस्परिक सम्बन्ध के माध्यम से आवश्यक तत्वों का आदान-प्रदान होता है । एक सजीव दूसरे को भोजन या आवास प्रदान कर सकता है, या एक-दूसरे के लिए उपयोगी अथवा हानिकारक पदार्थ पैदा कर सकता है, अथवा दोनों, भोजन व आवास के लिए संघर्ष कर सकते हैं ।

5.2.1 पारिस्थितिकी

सजीव का उसके जैविक व अजैविक वातावरण के पारस्परिक संबंधों के अध्ययन को ही "पारिस्थितिकी" कहा जाता है । पारिस्थितिकी शब्द सर्वप्रथम टेन्सले ने 1935 में प्रतिपादित किया था । अत : जीव समूह के जीवों के साथ अथवा भौतिक पर्यावरण के साथ पारस्परिक संबंधों के अध्ययन का प्रयास ही पारिस्थितिकी है । यदि वह जीव पादपवर्ग का सदस्य है, तो उस पादप और उसके पर्यावरण के पारस्परिक संबंधों के अध्ययन को 'पादप पारिस्थितिकी' कहा जाता है; जन्तुओं और मनुष्यों के संदर्भ में इस प्रकार के अध्ययन को क्रमश: 'प्राणी-पारिस्थितिकी' एवं मानव पारिस्थितिकी नाम दिया गया है ।

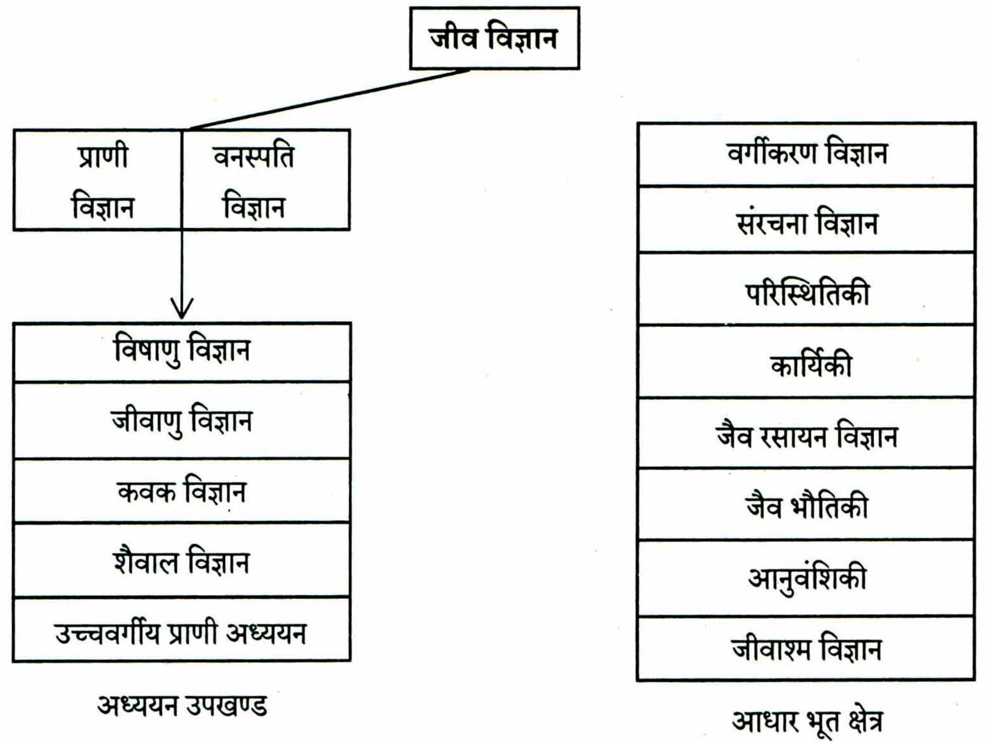

चित्र : जीव विज्ञान के आधारभूत क्षेत्रों में से एक 'पारिस्थितिकी '

इस प्रकार स्पष्ट है कि :

I. पारिस्थितिकी ऐसा विज्ञान है, जिसका लक्ष्य जीवों और उनके पर्यावरण के पारस्परिक संबंधों का शोध एवं अध्ययन करना है;

II. पारिस्थितिकी ऐसा शास्त्र है, जिसमें जीव जगत् की व्याख्या प्राकृतिक घातों -व्याघातों और क्रियाओं के माध्यम से की जाती है ।

III. पारिस्थितिकी ऐसा प्राविधिक विषय है जिसके आधार पर इस भूमण्डल पर मनुष्य के अस्तित्व एवं जीवन को आनन्दमय, निरापद और अति-दीर्घकालीन बनाया जा सकता है ।

IV. पारिस्थितिकी वह शास्त्र है, जो मनुष्य के प्रकृति के साथ समायोजन स्थापित करने और पृथ्वी पर जीवन की रक्षा करने में समर्थ बनाती है ।

5.2.1.1 पारिस्थितिकी की मुख्य शाखाएँ या प्रविभाजन:

पारिस्थितिकी का आरम्भिक विकास दो शाखाओं में सम्पन्न हुआ माना जा सकता है :

1. **व्यष्टि पारिस्थितिकी** (Autecdogy) के अन्तर्गत किसी भी प्राणी या पौधे की एक जाति और उसके वातावरण का अध्ययन किया जाता है । इसके अन्तर्गत व्यष्टिगत जीव या व्यष्टि जाति (Individual Species) के अध्ययन को प्रधानता दी जाती है ।

2. **संपारिस्थितिकी** (Synecology) के अन्तर्गत किसी एक विशेष वातावरण में निवास करने वाले विभिन्न जीव-जन्तुओं और पौधों के समुदायों (जातियों) का सामूहिक अध्ययन किया जाता है ।

5.2.1.2 पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem)

जैविक समुदाय एवं अजैविक वातावरण द्वारा संयुक्त रूप से बने समुच्चय को पारिस्थितिकी तंत्र कहा जाता है ।

ओडम (1963) के अनुसार सामुदायिक आवास के जीवित और भौतिक वातावरण परितन्त्र या पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करते हैं ।

अत: परितन्त्र (Ecosystem) पारिस्थितिकी की वह आधारभूत इकाई है, जिसमें जैविक और अजैविक वातावरण एक-दूसरे पर अपना प्रभाव डालते हुए पारस्परिक अनुक्रिया से ऊर्जा और रासायनिक पदार्थों के निरन्तर प्रवाह से तन्त्र की कार्यात्मक गतिशीलता बनाये रखते हैं ।

परितन्त्र के मूलभूत घटक (Components of Ecosystem) : किसी भी संतुलित में सौर ऊर्जा के अतिरिक्त निम्नांकित मूलभूत घटकों का होना आवश्यक है :

(अ) जैविक घटक (Biotic Components): वनस्पति और प्राणी तन्त्र के जैविक घटक कहलाते हैं । इन्हें निम्न श्रेणियों में बाँटा गया है:

(i) उत्पादक (Producers or Autoteophic Components)

(ii) उपभोक्ता (Consumers)

(iii) विघटक (Decomposers)

(ब) अजैविक घटक (Abiotic Components): समस्त भौतिक और रासायनिक कारक तन्त्र के अजैविक घटक कहलाते हैं, जिन्हें निम्म्न श्रेणियों में दर्शाया जा सकता है:

(i) अकार्बनिक पदार्थ (Inorganic Substance)

(ii) कार्बनिक पदार्थ (Organic Substance)

(iii) भौतिक वातावरण (Physical Climate)

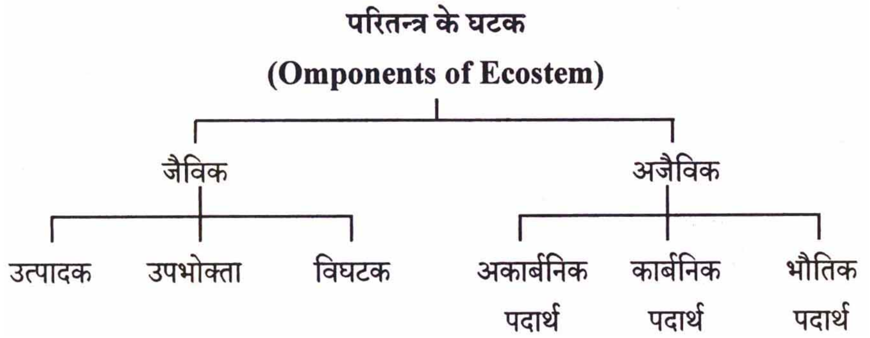

(अ) जैविक घटक (Biotic Components)

(i) उत्पादक या स्वपोषी (Producers) : ये अपने भोजन को स्वयं वातावरण के अकार्बनिक पदार्थों से बनाने में सक्षम होते हैं । ये कार्बन डाइ ऑक्साइड से भोजन निर्माण करते हैं । इस क्रिया को प्रकाश संश्लेषण क्रिया कहते हैं । हरे पौधे मुख्य उत्पादक (producers) हैं।

(ii) उपभोक्ता (Consumers) : उत्पादकों द्वारा उत्पादित भोजन को उपभोक्ता ग्रहण करते हैं । प्रोटोजोअन्स, क्रस्टेशियन्स, मौलस्क आदि जो समुद्र, झील, तालाब आदि की सतह पर तैरने वाले या प्लवी शैवाल का भक्षण करते हैं तथा शाकाहारी प्राणी (Herbivores) जैसे कीट, खरगोश, गाय, भैंस, बकरी आदि प्राथमिक उपभोक्ता की श्रेणी में आते हैं ।

मांसाहारी प्राणी जो शाकाहारी प्राणियों को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं, वे द्वितीयक उपभोक्ता कहलाते हैं । इसी प्रकार द्वितीयक उपभोक्ता को खाने वाले जीव तृतीयक उपभोक्ता कहलाते हैं ।

(iii) विघटक (Decomposers) : ये सूक्ष्म जीव जैसे कवक तथा बैक्टीरिया आदि हैं । ये पौधों तथा प्राणियों के मृत शरीर का विघटन करके अकार्बनिक अवयवों को वातावरण में छोड़ देते हैं । इस प्रकार ये पदार्थों के चक्रीकरण (cycling of matter) में सहायक होते हैं ।

5.2.2 खाद्य शृंखला

किसी भी परितन्त्र में "जीवधारियों की ऐसी श्रृंखला जिसमें एक जीवधारी दूसरे का उपभोग करता है या दूसरे का आहार बनता है, "आहार शृंखला" कहलाती है । "

पौधों द्वारा संगृहीत ऊर्जा समुदाय द्वारा एक क्रम में खाने एवं खाये जाने की श्रृंखला से गुजरती है, जिसे 'आहार श्रृंखला (food chain) कहते हैं । भोजन श्रृंखला का एक साधारण रूप यह है :

हरे पौधे - शाकाहारी - मांसाहारी - बड़े मांसाहारी एवं अन्य उच्च अपमार्जक

खाद्य जाल (food web) : प्रत्येक पारिस्थितिकी तन्त्र में अनेक खाद्य श्रृंखलाओं में भागीदार हो सकते हैं । इनके वजह से अनेक खाद्य श्रृंखलाएँ एक -दूसरे से सम्बद्ध हो जाती हैं और एक प्रकार से इनका जाल (ताना -बाना) बुन जाता है । इसे खाद्य जाल कहते हैं ।

अजैविक घटक (Abiotic Components)

ये घटक निर्जीव होते हैं, अर्थात् इनमें जीवन नहीं होता । ये मुख्यत : दो प्रकार के हैं :

(अ) जलवायुवीय (climatic) तथा (ब) मृदीय (edaphic)

(अ) जलवायुवीय (Climatic): जलवायवीय घटक के अन्तर्गत तापक्रम, प्रकाश, आर्द्रता, वायु, PH (अम्लता), लवणता, खनिज, स्थलाकृति तथा पृष्ठभूमि घटक आते हैं ।

(i) तापक्रम : ताप से सभी जैव -क्रियाएँ प्रभावित होती हैं । ताप सहन शक्ति के आधार पर जन्तुओं को दो प्रकारों में बाँटा जा सकता है :

1. असमतापी (Poikilothermic or cold-blooded)
2. समतापी (Homoeothermic or warm-blooded)

(ii) प्रकाश : सूर्य की रोशनी जीवों की विभिन्न प्रक्रियाओं के सम्पन्न करने में विशेष भूमिका निभाती हैं । जितनी देर कोई भी जीव सूर्य की रोशनी में रहता है, उसे दीप्तिकाल

(photoperiod) कहते हैं। जीवों की प्रकाश के प्रति अनुक्रिया को दीप्तिकालिता (photoperiodism) कहते हैं।

(iii) आर्द्रता (Humidity) आर्द्रता से तात्पर्य है, वातावरण में नमी की मात्रा । आर्द्रता ही पौधों में वाष्पोत्सर्जन तथा जन्तुओं में पसीने की दर निर्धारित करती है । शुष्क क्षेत्रों में नमी के अभाव की पूर्ति के लिए वहाँ के जीवों में अनेक अनुकूलन होते हैं ।

(iv) पवन (Wind) : पवन अधिकांशतया पौधों पर असर डालती है । पवन वेग (velocity of wind) अधिक होने से वाष्पोत्सर्जन क्रिया तेजी से होने लगती है । पवन द्वारा ही परागण (pollination), फलों तथा **बीजों का वितरण** (dispersal) होता है ।

(v) pH मान (pH Value) : अधिकांश जीव निश्चित अनुकूलतम पी- एच में ही सफलतापूर्वक आराम से जीवन व्यतीत कर पाते हैं ।

(vi) लवणता (Salinity) : जल में या मृदा में लवण की मात्रा को लवणता (Salinity) कहते हैं। समुद्री जल में लवण की मात्रा लगभग 3.5% होती है । स्वच्छ जलीय प्राणी (fresh water animals) समुद्री जल में जीवित नहीं रह सकते । केवल कुछ प्राणी जैसे ऐंग्वीला (Anguilla), साल्मन (Salmon) मछलियाँ आदि स्वच्छ और समुद्री जल दोनों में रह सकती हैं । ये भी जीवन -चक्र सम्पूर्ण करने के लिए नदियों से समुद्र में तथा समुद्र से नदियों में प्रवास करती हैं ।

(vii) खनिज (minerals) : खनिजों की उपस्थिति या अनुपस्थिति भी सूक्ष्म जीवों, जन्तुओं एवं पौधों के वितरण में विशेष भूमिका निभाती हैं ।

(viii) स्थलाकृति (Topography) : किसी भी स्थल की आकृति या शक्ल, जैसे पहाड़ी, ढलान आदि जीवों के वितरण पर प्रभाव डालती हैं । स्थलाकृति से पवन गति, जल गति, प्रकाश, लहर आदि पर भी असर होता है ।

(ब) मृदीय (Edaphic) इसके अन्तर्गत मृदा आती है । मृदा (soil) में खनिज, सूक्ष्मजीव आदि विद्यमान रहते हैं । इनके उपस्थिति परितन्त्र के लिए लाभदायक होती हैं ।

5.2.3 जैव मण्डल (Biosphere)

विश्व के समस्त पारिस्थितिक तन्त्रों को मिटाकर जीवमण्डल (biosphere) कहते हैं । पृथ्वी का समस्त भाग जिसमें जीव विद्यमान हैं (जल, स्थल, वातावरण) तथा जीवीय तथा अजीवीय घटक संयुक्त रूप से जीवमण्डल का निर्माण करते हैं । इसमें पृथ्वी के समस्त जीवधारी एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में भौतिक वातावरण से अन्तरक्रिया करते हैं, जिसके फलस्वरूप एक स्थायी स्थिति का तन्त्र बना रहता है।

पृथ्वी के जैवमण्डल को तीन भागों में बाँटा गया है :

(i) जलमण्डल (ii) स्थलमण्डल (iii) वायुमण्डल ।

5.2.3.1 जलमण्डल (Hydrosphere)

पृथ्वी पर उपस्थित सभी जलाशय स्वच्छ जलीय तथा समुद्री जैसे, महासागर, ज्वालामुखी, झील, तालाब, जलधाराएँ, नदियाँ आदि संयुक्त रूप से जलमण्डल का निर्माण करते हैं । पृथ्वी की लगभग 73% सतह जल से ढकी रहती है । जल जैवतन्त्र का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटक है ।

5.2.3.2 स्थलमण्डल (Lithosphere)

स्थलमण्डल, पृथ्वी की ठोस पर्त का बना हुआ है । इसके अन्तर्गत चट्टानें, मृदा, खनिज आते हैं । खनिजों का मुख्य स्रोत स्थल मण्डल है । स्थल मण्डल दो प्रकार के कार्य करता है :

(अ) वह थलीय तथा जलीय सभी जीवों के लिए आवश्यक खनिज मेटाबोलाइदस का मुख्य स्रोत है।

(ब) यह थलीय तथा पौधों के लिए आवश्यक मिट्टी के मुख्य घटक का निर्माण करता है ।

5.2.3.3 वायुमण्डल (Atmosphere)

जलमण्डल तथा स्थलमण्डल गैसों से ढके रहते हैं । इनमें भी जीव विद्‌यमान रहते हैं । इसे वायुमण्डल कहते हैं । ऑक्सीजन, कार्बन-डाई-ऑक्साइड, नाइट्रोजन आदि गैसें जीवों को वायुमण्डल से ही मिलती है, जो जीवों के लिए नितान्त आवश्यक हैं ।

बोध प्रश्न - 1 :

1. पारिस्थितिकी क्या है?

....

....

2. व्यष्टि पारिस्थितिकी तथा संपारिस्थितिकी किसे कहते हैं?

....

....

3. परितन्त्र के मूलभूत घटक कौनसे हैं?

....

....

4. जैविक तथा अजैविक घटक कौन-कौन से हैं?

....

....

5. तीन अजैविक घटकों के उदाहरण दीजिये ।

....

....

6. जैवमण्डल को कितने भागों में बाँटा गया है?

....

....

5.3 प्रदूषण

ये वायु, जल या भूमि (अर्थात् पर्यावरण) के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में होने वाले ऐसे अनचाहे परिवर्तन हैं, जो मनुष्य एवं अन्य जीवधारियों, उनकी जीवन परिस्थितियों, औद्योगिक प्रक्रियाओं तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिए हानिकारक होते हैं। इन्हें ही प्रदूषण कहते हैं।

अन्य शब्दों में : प्राकृतिक साधनों की शुद्धता को प्रभावित करके उनकी जीवन उपयोगिता को नष्ट या कम करने वाले पदार्थ प्रदूषक और ऐसी प्रक्रिया प्रदूषण कहलाती है|

प्रदूषण मुख्यतया निम्नलिखित प्रकार का है : (i) वायु प्रदूषण, (ii) जल प्रदूषण, (iii) मृदा प्रदूषण, (iv) ध्वनि प्रदूषण, (v) नाभिकीय प्रदूषण।

5.3.1 वायु प्रदूषण (Air Pollution)

जल प्रदूषक वायुमण्डल में उपस्थित होते हैं और वायुमण्डल के अवयवों की अनुकूलतम मात्रा में परिवर्तन आ जाता है, तब इसे **वायु प्रदूषण** (Air Pollution) कहते हैं।

वायु प्रदूषण के स्रोत (Sources of Air Pollution) : इसके तीन स्रोत हैं : (a) अचल दहन स्रोत, (b) चलायमान दहन स्रोत, (c) औद्योगिक स्रोत।

अचल दहन स्रोत (Stationary Combustion Sources) : यदि ईंधन को किसी विशेष स्थान पर जलाया जाए तो उसे अचल दहन कहते हैं। जीवाश्मी ईंधन मुख्यतया कोयला तथा पैट्रोलियम हैं। कोयला कार्बन यौगिक है तथा इसमें अदहनकरणीय खनिज, गन्धक तथा नाइट्रोजन भी होते हैं। पैट्रोलियम, हाइड्रोकार्बन, गन्धक तथा नाइट्रोजन से बनता है। जीवाश्मी ईंधन के दहन से **ऑक्साइड्स** (oxides) जैसे : सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2), **सल्फर ट्राइऑक्साइड** (SO_3), **नाइट्रोजन ऑक्साइड** (NO), **नाइट्रोजन डाइऑक्साइड** (NO_2), **कार्बन मोनोक्साइड** (CO), आदि बनते है|

अम्लीय वर्षा : इनमें से SO_3, NO, SO_2 वातावरणीय जल के साथ क्रिया करके **गन्धक का तेजाब** (sulphuric acid) या **सल्फ़्यूरस अम्ल** (sulphurus acid) तथा **नाइट्रिक अम्ल** (nitric acid) का निर्माण करते हैं। वर्षा जल के साथ ये अम्ल भी पृथ्वी पर आ जाते हैं, इसीलिए इसे **अम्ल वर्षा** (acid rain) भी कहते हैं। अम्ल वर्षा से पौधों को हानि होती है। मृदा निक्षालन द्वारा मृदा से पोषण तत्व निकल जाते हैं, मस्त्त प्रजनन रुक जाता है, झीलों तथा तालाब में जीवन कठिनाई पूर्ण हो जाता है। CO बहुत अधिक विषैली गैस है, जो श्वसन में अवरोध पैदा करती है। खनिज के स्लाइड्स के दहन से पारा निकलता है। अधजले हाइड्रोकार्बन अनेक प्रदूषक उत्पादित करते हैं, जो गैसीय या कणिकामयी होते हैं। कणिकामयी प्रदूषक कैंसर रोग उत्पन्न करते हैं, इसीलिए इन्हें **कैंसरजन** (Carcinogen) कहा जाता है।

चलायमान दहन स्रोत (Mobile Combustion Sources) : जब दहन स्रोत चलायमान या गतिशील होता है, जैसे : कार, मोटर, स्कूटर, मोटर साइकिल, बस, हवाई जहाज आदि तब इसे

चलायमान दहन स्रोत (Mobile Combustion Sources) कहते हैं। बड़े शहरों में स्वचालित वाहन प्रदूषण के मुख्य स्रोत हैं। इन स्रोतों के मुख्य प्रदूषक (pollutants) हैं- **कार्बन मोनोक्साइड** (CO-77.2%), **नाइट्रोजन ऑक्साइड** (NO-7.7%), तथा **हाइड्रोकार्बन** (hydrocarbons-13.7%)। इनके अतिरिक्त पैट्रोलियम के दहन से अनेक कणिकीय **लैड यौगिक** (particulate lead particles), जैसे- ट्रेट्राथाइल लैड - Pb(C_2H_3)तथा **टेट्रामिथाइल लैड -** Pb$\left(CH_3\right)_4$ उत्पादित होते हैं। इन यौगिकों से **हीमोग्लाबिन** (haemoglobin) का निर्माण रुक जाता है।

जब स्वचालित वाहनों से नाइट्रोजन ऑक्साइड तथा हाइड्रोकार्बन्स निकलते हैं, तो ये पदार्थ सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में पारस्परिक क्रिया कर नाइट्रोजन डाइऑक्साइड, **ओजोन** (O_3) और एक यौगिक **पैराक्सिल ऐसीटाइल नाइट्रेट** (peroxylacety nitrate-PAN)उत्पादित करते हैं।

ओजोन जन्तुओं के श्वसन तन्त्र को प्रभावित करती है तथा नेत्रों की कला को प्रभावित कर आँसू निकालती है। यह रबड़ के सामान, कपड़ों आदि को हानि पहुँचाती है। PAN विशेषतया पौधों को हानि पहुँचाता है। $(NO_2), O_3$ तथाPAN सामूहिक रूप से प्रकाश-रासायनिक स्मीग Photochemical smog) कहलाते हैं।

औद्योगिक स्रोत (IndustrialSources) : हमारे उद्योग धन्धों से भी वायु प्रदूषण होता है। उद्योगों से गैसें, जैसे, कार्बन मोनोक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड आदि तथा कणिकीय (particulate) पदार्थ आदि निकल कर वायुमण्डल को प्रदूषित करते हैं। कार्बनिक पदार्थों को गरम करने से गैसें उत्पादित होती हैं। क्लोरीन तथा फ़्लोरीन युक्त क्लोरोफ़्लोरीमीथेन (chlorofluoromethane) वातावरण में वायुमण्डल में मिल जाती हैं। मशीनों के चलने से पदार्थों को पीसने, कूटने आदि से, रंगने से तथा छेद करने से ठोस कण या कणिकीय पदार्थ वायुमण्डल में मिलते रहते हैं।

परमाणु परीक्षण (Atomic Experiments) : आज के आधुनिक युग में परमाणु ऊर्जा का विभिन्न रूप में उपयोग किया जाता है। उपयोग करने से पहले इनका परीक्षण किया जाता है, जिससे वायुमण्डल प्रदूषित होता है।

इनके अतिरिक्त ज्वालामुखी फटने पर उसमें से निकलने वाली गैसें भी वायुमण्डल को प्रदूषित करती हैं।

राष्ट्रीय पर्यावरण इन्जीनियरिंग अनुसन्धान संस्थान (National Environmental Engineering Research Institute-NEERI) तीन वायु प्रदूषकों - $SO_{2,}, NO_2$ तथा SPM अर्थात् निलम्बित कणीय पदार्थ (suspended particle) के सम्बन्ध में सूचना ग्रहण करता है। SPM की सबसे अधिक मात्रा अहमदाबाद तथा कानपुर में पायी जाती है। इनके अतिरिक्त कलकत्ता, मुम्बई तथा दिल्ली में कार्बन मोनोक्साइड, हाइड्रोकार्बन, फ्लुओराइड धातु कण, **पीड़कनाशी** (pesticides) सल्फर व नाइट्रोजन के ऑक्साइड आदि मुख्य वायु प्रदूषक हैं। ऐसे शहरों में जहाँ कपड़े के कारखाने हैं, वहाँ की वायु में रुई (cotton) के तन्तु भी पाए जाते हैं।

मनुष्य पर प्रभाव :

(i) ठोस कण जिनकी माप 2 mm से अधिक होती है, नाक के बालों में अटक जाते हैं। सामान्यतया ये बाहन निकाल दिये जाते हैं। इनसे छोटे कण निश्वसन क्रिया द्वारा फेफड़ों की एलूविओलाई में पहुँच जाते हैं। वहाँ पर ये विशिष्ट कोशिकाओं द्वारा अवशोषित कर लिए जाते हैं।

(ii) सल्फर डाइऑक्साइड कोमल ऊतकों द्वारा अवशोषित की जाती है, जिसके कारण आँख, कान, नाक, गला प्रभावित होते हैं और इन्हें हानि होती है।

(iii) SO_3, NO तथाCO रुधिर में पहुँचकर हीमोग्लोबिन से संयुक्त हो जाते हैं, जिसके फलस्वरूप ऑक्सीजन परिवहन में रुकावट होती है।

(iv) NOकी अधिक सान्द्रता से फेफड़ों को हानि होती है।

(v) हाइड्रोकार्बन से कैंसर होने की सम्भावना होती है।

पौधों पर प्रभाव (Effects on Plants) : '

(i) सल्फर डाइऑक्साइड से वनों के पेड़ों पर हानिकारक प्रभाव होता है।

(ii) स्तुओराइड, पत्ती के ऊतकों को हानि पहुँचाते हैं।

(iii) नाइट्रोजन तथा फ़्लुओराइड के ऑक्साइड्स फसल की उत्पादकता को कम करते हैं।

(iv) हाड्ड्रोकार्बन (इथाइलीन) से पत्तियों समय से पहले ही गिर जाती हैं और पुष्पों की पंखुड़ियों मुड़ जाती हैं तथा कलियाँ खिलने से पहले ही झड जाती हैं।

(v) **प्रकाशरासायनिक स्मोग** से पत्तियों का रंग उड़ जाता है।

(vi) वायु प्रदूषण द्वारा पेड़ों पर लाइकेन (licgen) की वृद्धि में अवरोध हो जाता है।

प्राणियों पर प्रभाव (Effect on animals) : वायु प्रदूषण का जन्तुओं पर भी वही प्रभाव होता है, जो कि मनुष्य पर होता है :

(i) नाक, कान, आँख की श्लेष्मिक झिल्ली प्रभावित होती है।

(ii) फ़्लुओराइडों द्वारा अस्थि तथा दाँत का अत्यधिक केल्सीकरण होता है। इस रोग को **फ्लुओरोसिस** (fluorosis) कहते हैं।

(iii) फ़्लुओरोसिस से भार में कमी होती हूँ, दस्त लग जाते हैं और लंगड़ापन हो जाता है।

पदार्थों पर प्रभाव (Effect on Materials) :

(i) प्रकाश रासायनिक स्मोग तथा अम्ल वर्षा, रबड, कपड़ा, धातु, भवनों आदि पर प्रभाव डालती है|

(ii) अम्ल वर्षा से जलाशय तथा मृदा प्रदूषित होते हैं।

(iii) हाइड्रोजन सल्फाइड्स द्वारा चाँदी तथा लैंड के पेन्टों का रंग उड़ जाता है।

(iv) ओजोन, रबड़ की वस्तुओं का ऑक्सीकरण कर देती है।

(v) अम्ल वर्षा तथा हाइड्रोजन सल्फाइड संगमरमर को भी प्रभावित करते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि उद्योगों के अपशिष्ट पदार्थों द्वारा विश्वविख्यात ताजमहल (आगरा) का रंग काला पड़ता जा रहा है।

जलवायु पर प्रभाव (Effect on Climate) : वायु प्रदूषण का जलवायु पर विपरीत प्रभाव होता है|

(i) वनों के नष्ट होने से तथा जीवाश्मी ईंधन के अत्यधिक दहन से वायुमण्डल में कार्बन डाइ ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है। इसी कारण से पृथ्वी का तापक्रम, **"पौधघर प्रभाव"** (Green House Effect) द्वारा बढ़ गया है।

(ii) यदि पृथ्वी का तापक्रम 2-3 ^{0}C बढ़ जाता है तो ग्लेशियर पिघलने लगते हैं, जिससे नदियों में बाढ़ आती है, समुद्र में जल की मात्रा बढ़ने से समुद्र तट के स्थल तथा द्वीपों में पानी चढ़ जाता है।

(iii) तापक्रम बढ़ने से वर्षा क्रम भी अव्यवस्थित हो जाता है।

(iv) अप्रत्यक्ष रूप में फसल, वनस्पति तथा वनों पर इसका प्रतिकूल प्रभाव होता है।

(v) **प्रकाश-रासायनिक स्मोग** के प्रभाव से ओजोन स्तर का विघटन होता है और पृथ्वी पर पराबैंगनी किरणों का विकिरण बढ़ जाता है, जो कि जीवों के लिए बहुत हानिकारक होता है।

(vi) पराबैंगनी किरणों के विकिरण से त्वचीय कैंसर तथा **उत्परिवर्तन** (mutations) उत्पन्न होते है|

नियन्त्रण (Control of Air Pollution) :

(i) प्रकाशरासायनिक स्मोग को दूर करना चाहिए। यह तभी सम्भव होगा जब विद्युत चालित, बैटरी चालित, सूर्य की रोशनी द्वारा चालित आदि स्वचालित वाहनों का आविष्कार किया जाए।

(ii) उद्योगों द्वारा उत्पादित कणिकीय पर स्कर्बस, प्रैसीपिटेटर्स तथा फिल्टर्स आदि द्वारा नियन्त्रण करना चाहिए।

(iii) SO_2 पर नियन्त्रण पाने के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए :

 (a) कम गन्धक वाले ईंधन का उपयोग करना चाहिए। उदाहरण, प्राकृतिक गैस, तेल, नाभिकीय ईंधन आदि।

 (b) ईंधन का उपयोग करने से पहले ही उसमें से गन्धक अलग करना आवश्यक है।

 (c) गैसों का स्कबिंग (scrubbing) करने से SO_2 दूर की जा सकती है।

5.3.2 जल प्रदूषण (Water Pollution)

स्रोत (Sources of Water Pollution) : जल प्रदूषण के मुख्य स्रोत हैं : (i) मानव, (ii) प्रकृति।

मानव द्वारा जल प्रदूषण (Pollution of water caused by man) : जल को मनुष्य निम्न प्रकार से प्रदूषित करताहै :

(i) जल हमारे लिए अति आवश्यक अवयव है। इसकी आवश्यकता लगभग सभी उद्योग- धन्धों में होती है। इसमें रसायन सुगमता से घुल जाते हैं। ठण्डा करने, धोने आदि के लिए भी

जल की आवश्यकता होती है। उद्योगों में प्रयोग के पश्चात् अपशिष्ट जल, जिसमें हानिकारक धातु के कण, रंग तथा अन्य **आविषालु पदार्थ** (toxic substances) घुले रहते हैं, नालों, जलधाराओं, सीरताओ में छोड़ दिया जाता है।

उर्वरक, इस्पात, चीनी, कपड़ा, पेन्दस, रिफाइनरी, ऊर्जा आदि के कारखानों में उत्पादित सभी अपशिष्ट तथा अविषालु पदार्थ जल में छोड़ दिए जाते हैं।

(ii) **सामुदायिक अपशिष्ट पदार्थ** (Community Waste Substances) : जैसे - कूड़ा-करकट, वाहित मल (sewage) आदि मानव द्वारा जल में प्रवाहित कर दिया जाता है। भारत के अब तक केवल आठ शहरों में वाहित मल के **शुद्धिकरण संयन्त्र** (treatment plants) लगाए गए हैं।

(iii) कृषि के आधुनिकीकरण से **उर्वरकों** तथा **कीटनाशकों** का उपयोग अधिक बढ़ गया है। जो जल इन खेतों में बहता है, वह अपने साथ इन अविषालु पदार्थों को भी बहा ले जाता है और इस प्रकार भूमिगत जल भी प्रदूषित हो जाता है।

(iv) खानों से निकला अम्लीय जल भी नदियों तथा समुद्र को प्रदूषित करता है।

(v) जब कीटनाशकों को वायुयान से छिड़का जाता है तब वे वर्षा -जल के साथ भूमि-जल में मिलकर उसे प्रदूषित कर देते हैं।

(vi) साबुन, डिटरजेन्ट आदि के अत्यधिक प्रयोग से भी जल प्रदूषित होता है ।

(vii) नाभिकीय तथा ताप-ऊर्जा संयत्रों में भी उसे ठण्डा करने के लिए जल की अधिक आवश्यकता होती है। यह जल प्रदूषित हो जाता है और मनुष्य इस जल को सीधे ही जलधाराओं में छोड़ देता है। क्योंकि इस जल का तापक्रम भी अधिक होता है, इसलिए जलीय जन्तु तथा पौधे मर जाते हैं।

(viii) वैज्ञानिक अपने प्रयोगों में अनेक रसायनों का प्रयोग करते हैं और बिना शुद्धिकरण के ही उन्हें जल में छोड़ देते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैज्ञानिक भी प्रदूषण फैलाते हैं।

प्रकृति द्वारा जल प्रदूषण (Water Pollution by Nature) : अम्लीय जल वर्षा होने, कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थों के मिलने से, मृदा अपरदन से, खनिजों के लीचिंग से, कार्बनिक पदार्थों के विघटन आदि से प्राकृतिक जल प्रदूषण होता है।

जल प्रदूषण के प्रभाव (Effects of Water Pollution) _

(i) जल में तेल की मिलावट से जलीय जीवों को ऑक्सीजन नहीं मिल पाती, पक्षियों के पंखों में तेल लग जाने से वे उड़ नहीं पाते और मर जाते हैं।

(ii) औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थों में लैड, कैडमियम, पारा, जिंक, लोहा आदि मिला रहता है। इनसे जल नहाने तथा पीने योग्य नहीं रहता।

(iii) **पारा** (Mercury) एक भारी धातु है, जो खाद्य - श्रृंखला में धीरे - धीरे बढ़ता रहता है। यह जल प्रदूषण का मुख्य स्रोत है। खानों, कागज के कारखानों तथा विद्युत संयंत्र बनाने वाली फैक्ट्रीयों से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थ पारे द्वारा जल प्रदूषित करते हैं। पारे से हाथ, पैर, होंठ, जीभ आदि सुन्न हो जाते हैं। इससे बहरापन तथा अन्धापन या पागलपन भी हो जाता है|

(iv) **सुपोषण** (Eutrophication) : जल में पोषण पदार्थ की अधिकता भी जीवों को प्रभावित करती है। यह प्राय: स्थित जल, जैसे - तालाब, झील आदि में होता है। कागज की फैक्टरियों के अपशिष्ट पदार्थ, कसाई खाने का अपशिष्ट पदार्थ, वाहित जल, मल-छू आदि में कार्बनिक पदार्थ अधिक होते हैं। जल में पहुँचकर ये जल की उत्पादकता को बढ़ा देते हैं। इससे जलीय पौधे, शैवाल अधिक वृद्धि करते हैं और जल की सतह को ढक लेते हैं। शैवाल श्वसन क्रिया के लिए जल की अधिकांश ऑक्सीजन अपने उपयोग में लेते हैं और उससे जीवों के लिए ऑक्सीजन की कमी हो जाती है।

नियन्त्रण (Control of Water Pollution) : जल प्रदूषण को रोकने के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए :

(i) अपशिष्ट पदार्थ जिनका दहन नहीं हो सकता या **जैव विघटन** (biodegradation) नहीं हो सकता, उन पदार्थों से निचली भूमि या गड्ढों को भरना चाहिए।

(ii) तालाबों, झीलों तथा जल धाराओं में बैठकर नहाना, कपड़े धोना, साबुन लगाकर नहाना आदि बन्द कर देना चाहिए।

(iii) वाहित मल शुद्धिकरण संयंत्र लगाने चाहिए और वाहित मल का उपचार करने के पश्चात् ही जल में छोड़ना चाहिए।

(iv) पादपनाशक, कीटनाशक, उर्वरकों आदि पदार्थों का केवल आवश्यकतानुसार ही प्रयोग करना चाहिए, अधिक उपयोग नहीं करना चाहिए।

(v) हमें फॉस्फेट की कम मात्रा वाले साबुन या डिटरजेन्ट आदि का प्रयोग करना चाहिए।

(a) अपशिष्ट जल का उपचार दो प्रकार से हो सकता है :

(i) **प्राथमिक उपचार** (Primary treatment) : इस विधि के अन्तर्गत छानना (filtration), अवसादन (sedimentation), प्लवन (floatation) आदि आता है। इस विधि से उतराने वाले कण दूर किए जाते हैं।

(ii) **द्वितीयक उपचार** (Secondary treatment) : इसके अन्तर्गत रोगाणुक (microbial) क्रियाओं द्वारा अपशिष्ट पदार्थों का ऑक्सीकरण होता है। वाहित मल शुद्धिकरण संयंत्र द्वारा कार्बनिक फॉस्फोरस तथा नाइट्रोजन, अकार्बनिक फॉस्फोरस में बदल जाता है, जिसको शैवाल तथा अन्य पौधे अधिक अच्छी तरह उपयोग में लाते हैं।

(b) **उल्टा परासरण** (Reverse Osmosis) : पीने का पानी उपलब्ध कराने के लिए यह सबसे उत्तम विधि है। इस विधि के अन्तर्गत घोल पर दबाव उत्पन्न किया जाता है, जिससे घोल का जल सान्द्रता के विरुद्ध परासरण करने लगता है। इस विधि में ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इस प्रकार शुद्ध तथा पीने योग्य जल प्राप्त होता है।

(c) **जल का पुन :चक्रीकरण** (Recycling of Water) : साधारणतया 50 डेसीबल की ध्वनि कानों को बुरी नहीं लगती, लेकिन 95 डेसीबल की ध्वनि को तेज माना जाता है|

5.3.3 मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)

5.3.3.1 स्रोत (Sources of Soil Pollution):

(i) उर्वरकों तथा कीटनाशक रसायनों के अत्यधिक प्रयोग से मृदा प्रदूषण होता है।

(ii) मृदा में कूड़ा-करकट तथा अपशिष्ट पदार्थ मिलने से मृदा प्रदूषित होती है।

(iii) अम्लीय जल वर्षा तथा खानों से प्राप्त जल, मृदा के मुख्य प्रदूषक हैं। मृदा की लवणता, अधिक फसलें उगाने तथा जल का पूर्ण प्रवाह न होने से अत्यधिक बढ़ जाती है । ग्रीष्म ऋतु में लवण प्राय: निचली स्तरों से ऊपरी सतहों में कैपिलरी क्रिया द्वारा आते हैं। इससे मृदा की उत्पादकता प्रतिकूलतम प्रभावित होती है।

(iv) अस्थियाँ, कागज, सड़ा-गला माँस, सड़ा हुआ भोजन, लोहा, ताँबा, पारा आदि भी मृदा को प्रदूषित करते हैं।

(v) भारी धातुएँ, जैसे- कैडमियम, जिंक, निकल, आर्सेनिक आदि खानों से मृदा में मिल जाते हैं। ये धातुएँ पौधों के लिए हानिकारक तो हैं ही, साथ-साथ ये उपभोक्ताओं के लिए भी हानिकारक होते हैं।

(vi) औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थ जब मिट्टी में छोड़ दिए जाते हैं, तब मृदा प्रदूषण होता है।

(vii) कीटनाशक, जैसे **- डी. डी. टी**. (D.D.T) अधिक हानिकारक पदार्थ है। जब ये उत्पादक से उपभोक्ता के शरीर में पदार्पण करते हैं तब इनकी सान्द्रता बढ़ जाती है, क्योंकि इनका विघटन नहीं होता, इसलिए ये वातावरण में 15 वर्ष तक भी रह सकते हैं।

5.3.3.2 नियन्त्रण (Control of Soil Pollution) : निम्नलिखित विधियों से मृदा प्रदूषण रोका जा सकता है :

(i) भूमि तथा जल में मल - मूत्र विसर्जन पर रोक लगानी चाहिए।

(ii) ठोस पदार्थ जैसे - टिन, ताँबा, लोहा, काँच आदि को मृदा में नहीं दबाना चाहिए।

(iii) ठोस पदार्थों को गलाकर या चक्रीकरण द्वारा नवीन वस्तुएँ बनानी चाहिए।

(iv) उर्वरकों तथा कीटनाशकों का प्रयोग आवश्यकतानुसार ही करना चाहिए। अत्यधिक प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(v) कीटनाशकों के स्थान पर जैव नियन्त्रण विधि अपनानी चाहिए।

(vi) मानव तथा जन्तुओं के मल को ईंधन गैस (जैव गैस -बायो गैस) बनाने में उपयोग करना चाहिए।

(vii) साफ -सुथरे कूड़ेदान शहरों में बनाने चाहिए।

(viii) अपशिष्ट पदार्थों को एकत्रित करने तथा उनके विसर्जन के लिए खोखले, किन्तु बन्द पाइपों का प्रयोग करना चाहिए।

(ix) मृदा अपरदन रोकने के लिए घास तथा छोटे पौधे उगाने चाहिए।

(x) भूमि प्रबन्ध करना चाहिए।

5.3.4 ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution)

जब कभी ध्वनि आवश्यकता से अधिक तेज होती है, तब उसे ध्वनि प्रदूषण कहते हैं। यह प्रदूषण जल तथा वायु प्रदूषण से एकदम भिन्न है, क्योंकि इससे प्रतिकूल प्रभाव तुरन्त होता है और स्थायी हानि हो जाती है।

5.3.4.1 स्रोत (Sources of Noise Pollution):

(i) उद्योगों, जैसे - कपड़ा मिल, इस्पात कारखाने, छापेखानों आदि में अत्यधिक ध्वनि उत्पादित होती है, जिससे इन कारखानों में कार्यरत कर्मचारियों को हानि होती है।

(ii) स्वचालित वाहनों, जैसे कार, बस, मोटर, स्कूटर, ट्रैक्टर, मोटर साइकिल तथा फसल काटने की मशीनों आदि से ध्वनि प्रदूषण होता है।

(iii) लाउडस्पीकर्स, रेडियो, टेलीविजन, वैक्यूम क्लीनर्स, चक्की, मिक्सी, कूलर, एस्वाहस्ट पंखों आदि की तेज ध्वनि से प्रदूषण होता है।

(iv) डायनामाइट विस्फोट, मिलिट्री के या पुलिस कर्मचारियों द्वारा गोलियाँ चलाने के अभ्यास करते समय, हैलिकाप्टर तथा हवाई जहाज आदि के उड़ते या उतरते समय ध्वनि प्रदूषण होता है|

5.3.4.2 प्रभाव (Effects of Noise Pollution):

(i) अधिक तेज ध्वनि से कान का परदा फट जाता है और मनुष्य बहरा हो जाता है।

(ii) ध्वनि प्रदूषण से चिड़चिड़ापन, सिर दर्द, क्रोध आदि आता है।

(iii) अकस्मात तेज ध्वनि का हृदय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। हृदय गति दर बढ़ जाती है, मनुष्य शिथिल हो जाता है, रुधिर नलिकाएँ सिकुड़ जाती हैं, रुधिर दाब में परिवर्तन आ जाता है।

(iv) ध्वनि प्रदूषण से नींद नहीं आती, आराम नही मिलता।

(v) ध्वनि प्रदूषण से भावात्मक विक्षोभ (emotional disturbance) हो जाता है और हृदय, मस्तिष्क, यकृत आदि पर दुष्प्रभाव पड़ता है।

(vi) यदि कोई व्यक्ति 80 - 90db की ध्वनि में 8 घण्टे लगातार रहता है तो उसमें बहरापन प्रारम्भ हो जाता है।

5.3.4.3 प्रदूषण नियन्त्रण (Control of Noise Pollution):

(i) शोर न करने वाली मशीनों का निर्माण करना चाहिए।

(ii) मशीनों का ठीक प्रकार से रख -रखाव करना चाहिए|

(iii) ध्वनि उत्पादन करने वाली मशीनों को ध्वनिरोधी कमरों में ही लगाना चाहिए।

(iv) कारखानों में कार्यरत कर्मचारियों को अपने कानों में रुई लगानी चाहिए।

(v) कारखाने आवास -गृहों से दूर लगाने चाहिए।

(vi) लाउडस्पीकर केवल कुछ ही समय के लिए लगाने चाहिए।

(vii) स्वचालित वाहनों के हॉर्न बजाने पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिए।

(viii) सड़कों के किनारे वृक्ष लगाने चाहिए, जिससे ध्वनि प्रदूषण कम होता है।

5.3.5 विकिरण प्रदूषण (Radiation Pollution)

5.3.5.1 स्रोत (Sources of Radiation Pollution) : आण्विक विखण्डन के फलस्वरूप **प्रोटोन्स** (α -कण), इलेक्ट्रॉन्स (β -कण) तथा **गामा -किरणों** (χ -कण) के स्वत : उत्पन्न होने को विपटनभिक्ता (radioactivity) कहते हैं। प्राकृतिक, सूक्ष्म स्तर के विकिरण के सम्पर्क में हम सदैव रहते हैं, ये कम स्तर के विकिरण के स्रोत हैं। सूर्य तथा स्थलीय विकिरण भूमि में उपस्थित **रेडियम** - 224, **यूरेनियम -** 238, **थोरियम -** 232, **पोटेशियम -** 40, **कार्बन -** 14 आदि से होता है।

प्राकृतिक स्रोतों के अतिरिक्त मानव द्वारा भी विकिरण उत्पन्न किए जाते हैं, जो और अधिक घातक हैं, जैसे - प्लोटिनियम तथा थोरियम का शुद्धिकरण, आण्विक ऊर्जा संयन्त्र, नाभिकीय शस्त्रों का उत्पादन, परीक्षण तथा प्रयोग, नाभिकीय ईंधन तथा रेडियोऐक्टिव आइसोटोप्स का निर्माण आदि।

1945 में अमेरिका ने जापान के दो प्रमुख नगरों **हीरोशिमा** तथा **नागासाकी** पर आण्विक बम गिराए, जिसके फलस्वरूप वहाँ सब कुछ नष्ट हो गया। शायद ही कोई जीव वहाँ जीवित रहा हो। किन्तु इसका प्रभाव आस -पास के शहरों में रहने वाले जीवों पर भी पड़ा। यहाँ तक कि आज लगभग 47 वर्ष बाद भी वहाँ के बच्चों में विकिरण प्रदूषण के लक्षण विद्यमान हैं, क्योंकि नाभिकीय अपशिष्ट में रेडियोऐक्टिव तत्व होते हैं, जो एक हजार वर्ष तक सक्रिय रहते हैं। इसीलिए विश्वास है कि **विकिरण प्रदूषण** सबसे अधिक हानिकारक होता है।

नाभिकीय विस्फोटन, रेडियोऐक्टिव पदार्थों को गैसों तथा सूक्ष्मकणों में परिवर्तित कर देता है। ये छोटे - छोटे कण तथा गैसें वायुमण्डल में मिल जाते हैं। वर्षा के साथ में ये कण पृथ्वी पर आते हैं और मृदा में मिल जाते हैं। मृदा से ये कण पादपों में तथा खाद्य - श्रृंखला से होकर मनुष्य तक पहुँचते हैं।

रेडियोऐक्टिव पदार्थ ($C^{14} I^{125} P^{32}$) आदि का प्रयोग वैज्ञानिक अनुसन्धान में किया जा रहा है। अपशिष्ट जल के साथ ये बहकर नदियों, सागरों में पहुँचते हैं और वहां से खाद्य - श्रृंखला में होकर मनुष्य तक पहुँचते हैं।

5.3.5.2 प्रभाव (Effects of Radiation Pollution):

(i) विकिरण कीं सूक्ष्म मात्रा भी शरीर के अंगों को प्रभावित करती है। अंगों की कार्यक्षमता कम हो जाती है।

(ii) शरीर के साथ विकिरण का अधिक समय के लिए सम्पर्क, कैंसर जैसे रोग उत्पन्न कर देता है। कभी -कभी ये जीनों को भी प्रभावित करते हैं और उत्परिवर्तन उत्पन्न हो जाते हैं।

(iii) अत्यधिक विकिरण प्रदूषण से मृत्यु हो जाती है।

(iv) विकिरण प्रदूषण, भावी पीढ़ियों को भी प्रभावित करते हैं, इसलिए ये सबसे अधिक हानिकारक माने जाते हैं।

भोपाल की विनाशकारी घटना : 3 दिसम्बर, 1984 को भोपाल की **यूनियन कार्बाइड फैक्टरी** (Union Carbide) में (जो उर्वरक बनाती है) दुर्घटना फलस्वरूप **मिथाइल आइसोसायनाइट** (Methyl Isocyanine) का रिसाव हो गया । लगभग 2,50,000 व्यक्ति इससे प्रभावित हुए। लगभग 2,000 व्यक्तियों की मृत्यु हो गई।

चेनोबाइल विनाशकारी घटना : 26 अप्रैल, 1987 को सोवियत रूप में एक नाभिकीय दुर्घटना हुई। इससे ऊर्जा रिएक्टर के अधिक गरम होने से उनके पात्र गल गए और रेडियोएक्टिव पदार्थ वाष्प बनकर वायुमण्डल में विलीन हो गए । वायु वेग के साथ ये पदार्थ पश्चिम यूरोप तक पहुँच गए । इसके फलस्वरूप 30 से अधिक व्यक्तियों की मृत्यु हो गई तथा असंख्य व्यक्ति इन विकिरणों के सम्पर्क में आ गए। सेसा विश्वास है कि इस दुर्घटना के फलस्वरूप अगले लगभग 70 वर्षो में लगभग 6,000 व्यक्तियों की मृत्यु कैंसर रोग से हो सकती है।

5.3.5.3 नियन्त्रण (Control of Radiation Pollution) _

(i) रिएक्टरों से रिसाव, रेडियोऐक्टिव ईंधन तथा आइसोटोपों के परिवहन तथा उपयोग में लापरवाही बरतने आदि पर प्रतिबन्ध होना चाहिए।

(ii) ऊर्जा संयन्त्रों के अपशिष्ट पदार्थों के उपचार पश्चात् ही उनका विसर्जन करना चाहिए।

(iii) आण्विक रिएक्टर की स्थापना मानव आबादी से बहुत दूर करनी चाहिए।

(iv) दुर्घटनाओं से बचने के लिए सुरक्षा सम्बन्धी नियमों का कड़ाई से पालन करना चाहिए।

बोध प्रश्न - 2 :

1. प्रदूषण से आप क्या समझते हैं?

....

....

2. वायु प्रदूषण के मुख्य स्रोत क्या -क्या हैं?

....

....

3. चलाय मान दहन स्रोतों के उदाहरण दीजिए।

....

....

4. पौधघर प्रभाव' (Green house Effect) किसे कहते हैं?

....

....

5. ध्वनि को मापने की इकाई क्या है?

....

....

6. विघटनभिक्ता (Radioactivity) से क्या अभिप्राय है?

....

....

5.4 जैव -विविधता (Biodiversity)

वैज्ञानिकों के अनुसार जैव विविधता शब्द का उपयोग इकोसिस्टम की विविधता. प्रजातियों के बीच वैविध्य तथा जैनेटिक विविधता के लिए किया है, परन्तु इसकी सरलतम परिभाषा हो सकती है, 'विश्व में जीवन के समस्त रूपों का भण्डार ", जिसे हम यह भी कह सकते हैं कि "विश्व में पाये जाने वाले समस्त प्राणियों और पादपों का एक साथ जीवन व्यापन"।

किसी भी आवास में परस्पर सहयोग करते हुए पादपों, प्राणियों व सूक्ष्मजीवों की अनेकानेक जातियों का पाया जाना **जैव-विविधता** कहलाता है। हमारा देश **जैव-विविधता** का एक मुख्य केन्द्र है, जहाँ पर 167 से भी ऊपर मुख्य पादप जातियों और पालतू जानवरों का उद्गम हुआ है। ऐसी कुछ फसलें जो भारत में उत्पन्न हुईं और यहाँ से सारे विश्व में फैलीं वे हैं - चावल, गन्ना, सेम, जूट, आम, नींबू केला, ज्वार-बाजरा, विभिन्न मिर्च, औषधीय एवं आभूषणात्मक पौधे। विश्व में कोई भी देश जैव विविधता का इतना धनी नहीं है, जितना कि हमारा देश।

भारत क्षेत्रफल के अनुसार विश्व का 7वाँ व एशिया का दूसरा बड़ा देश है। इसकी **भूमि सीमा** 15, 200 किमी. एवं समुद्री सीमा 7, 516 किमी. लम्बी है। **भौगोलिक** भौतिक रूप से अपने देश को अपेक्षाकृत सबसे बड़े क्षेत्रों, हिमालय पर्वत श्रृंखला, गंगा के मैदान, दक्षिण स्थलीय के पठार तथा लक्ष्यद्वीप, अण्डमान एवं निकोबार के द्वीप समूहों में विभाजित किया जा सकता है। उत्तर में **हिमालय** में विश्व की सबसे बड़ी चोटियाँ हैं। कंचनजंगा (8586 मी.) नेपाल की सीमा के पास सिक्किम में अवस्थित सबसे बड़ी चोटी है| मुख्य हिमालय के दक्षिण में 3,600 - 4, 600 मी. की ऊँचाई तक फैला छोटा हिमालय है जिसका कश्मीर, प. बंगाल एवं हिमालय के धौला घर द्वारा प्रतिनिधित्व होता है। उत्तरी मैदान पूर्व में आसाम से लेकर पश्चिम में पंजाब तक 2, 400 किमी. की दूरी तक फैले हुए हैं। दक्षिण में ये कच्छ के रन (गुजरात) तक जाते हैं। भारत का **मौसम** एशिया मानसून से प्रभावित होता है जो कि जून और अक्टूबर के बीच दक्षिणी पश्चिमी वर्षा के रूप में, दिसम्बर और फरवरी में उत्तर से सूखी हवा, मार्च से मई सूखे व गर्म मौसम के रूप में होता है। ऐसी भौगोलिक परिस्थियों में भारत में जीवों की विविधता प्रचुर तो होगी ही।

पृथ्वी पर उपस्थित वन्य-जाति आनुवंशिक सामग्री के स्व भण्डार का प्रतिनिधित्व करती है। प्रत्येक जाति **अप्रतिस्थापनीय** (irreplaceable) है, इस कारण अगर वह लुप्त होती है, तो उसे पुन: उत्पन्न करना असम्भव है। इनमें से प्रत्येक उस आनुवंशिक सूचना की भण्डारगृह है, जो

पता नहीं किस रूप में भविष्य में हमारे महत्व की सिद्ध हो सकती है। अत: उसे खोने की स्थिति में हम नहीं हैं।

5.4.1 जैव विविधता का परिमाप (Magnitude of Biodiversity)

वैज्ञानिकों का मत है कि विश्व में जीवों की कुल जातियों की संख्या 1 से 8 करोड़ के मध्य है, इनमें से मात्र 14 लाख जातियों की पहचान की गई है। नई जातियों की खोज, पहचान तथा नामकरण की प्रक्रिया लगभग 250 वर्षों से चल रही है। अभी तक खोजी गई जातियों की संख्या वास्तविक संख्या का मात्र 1590 है। इन जातियों का 61070 कीट है। मात्र 4650 जातियाँ स्तनधारियों की है। एक बड़ी संख्या में पादप जातियाँ (2,70,000) तथा कशेरुकियों की जानकारी प्राप्त है। अभी भी काफी संख्या में जातियों की खोज की जानी बाकी है। जीवाणु (बैक्टीरिया), विषाणु (वाइरस), प्रोटिस्टा आदि समूह के बारे में जानकारी अंश मात्र है ।

उपलब्ध रिपोर्टों से विदित होता है कि प्रतिदिन लगभग 100 रीढ़विहीन जातियाँ जंगल कटने और आवास नष्ट होने के कारण लुप्त हो जाती हैं। स्तनधारियों तथा माँसाहारी प्राणियों की सारी जातियों में सदस्यों की संख्या कम हो रही है। विश्व में पक्षियों की तीन-चौथाई जातियों के सदस्यों की संख्या घटती जा रही है। उभयचर जन्तु व मछलियों की संख्या में कमी आई है|

भारत में स्थिति भी कम चिन्ताजनक नहीं है। भारत में प्राणियों की 65, 000 और वनस्पतियों की 45,000 जातियाँ पाई जाती हैं। इनमें से 1000 से अधिक जन्तु जातियाँ और 20,000 से अधिक पादप जातियाँ लुप्त होने के कगार पर हैं। भारत में पाई जाने वाली 65,000 जन्तु जातियों में से 500 जातियाँ कीट, 400 जातियाँ घोंघे, 200 जातियाँ मछलियाँ, 140 जातियाँ जलचरों, 1200 जातियाँ चिड़ियों, 420 जातियों सरीसृपों, 320 जातियाँ स्तनधारियों व 6500जातियों अपृष्ठवंशी प्राणियों की हैं।

5.4.2 जैवविविधता के स्तर (Levels of Aiodiversity)

जैवमण्डल में अनेकों प्रकार के जीव पाये जाते हैं, जो आपस में जटिल सम्बन्धों द्वारा जुड़े हैं। जैवीय विविधता को तीन क्रमबद्ध स्तरों में विभाजित किया जा सकता है :

(i) आनुवंशिक विभिन्नता

(ii) जातीय विभिन्नता

(iii) सामुदायिक या पारितन्त्र विभिन्नता

जैव विविधता के तीनों स्तर परस्पर संबंधित होते हैं।

5.4.3 जैव विविधता पर खतरे (Threats to Biodiversity)

वन्य जीवों का बड़ी संख्या में विनाश का कारण खाद्य के रूप में माँस, हिंसक जीवों से अपनी सुरक्षा और आखेट के रूप में मनोरंजन है। इसके अलावा जन्तुओं से प्राप्त होने वाले उत्पाद, जैसे- खाल, दाँत, नख, सींग भी वन्य जन्तुओं के विनाश का कारण बने| अग्नि आयुध (fire arms) के आविष्कार के बाद इस विनाश की दर में तेजी से वृद्धि हुई। आखेट (शिकार करना)

एक प्रिय खेल बन गया और अनावश्यक रूप में वन्य प्राणियों को मार डालना एक गम्भीर व खतरनाक सीमा तक पहुँच गया। एक ही साथ अनेक जातियों के विलुप्त होने के कारण मनुष्य की लापरवाही से लगी वन अग्नि है। फर प्राप्ति के लिये अमेरिका में बिसॉन (Bison= जंगली भैंस) के निस्पृह शिकार ने इनकी 1492 में 100 मिलियन आबादी को 1900 में घटाकर मात्र 500 कर दिया। मरिशस के विचित्र पक्षी डोडो (dodo) का अस्तित्व ही मिट गया। लम्बी बड़ी चोंच का तीन फीट ऊँचा यह पक्षी उड़ नहीं पाने से मानव का सहज शिकार बना। माँस के लिये यह पक्षी बड़ी संख्या में मारे जाने लगे।

भारत के कच्छ क्षेत्र में पाये जाने वाले एशियाई वन्य गधे की आबादी कुछ ही वर्षो में घटकर एक हजार से भी कम हो गई।

नेपाल, उत्तर-पश्चिमी बंगाल व असम के दलदली वनों में विचरने वाले एक सींग के गेंडे (राइनोसीरोस) को इसके सींग प्राप्त करने के लिये मार देते हैं। इनकी संख्या लगभग विलुप्तप्राय ही हो गयी थी। काजीरंगा, मनास व जल्दापाडा के आरक्षित वनों व वन्य पशुशरण स्थलियों में इसे संरक्षित कर बचाया जा सका। भारत के कई राज्यों में सामान्यतया मिलने वाला काला बारहसिंगा आखेट का मुख्य लक्ष्य बना। इसकी आबादी तेजी से घटती गयी और कई प्रदेशों में तो यह बहुत ही कम हो गयी। अब इसके आखेट को प्रतिबंधित कर दिया गया है तथा राज्यों के राष्ट्रीय पार्को में इसे संरक्षित करने पर ही इसकी आबादी क्रांतिक स्तर से ऊपर हो गयी है। नर बारहसिंगा को लम्बे, सीधे लेकिन सर्पिल कुण्डलित सींग, काली कत्थई खाल व माँस के लिये मार देते थे। मध्यप्रदेश व राजस्थान में आकर्षक बहुरंगी पंखों वाले मोर की बहुलता थी। इसके पंखों से पंखे व अन्य सजावट की वस्तुएँ बनती हैं। अविवेकपूर्ण संहार ने इसकी आबादी को बहुत कम कर दिया। परिणामतः: कृषि क्षेत्रों व उसके सन्निकट ग्रामों में कीट, छिपकली, चूहे व सर्पो की संख्या अधिक हो गयी और कृषि व मानव दोनों को भारी हानि होने लगी। भारत सरकार ने वन्य पशु ऐक्ट के अन्तर्गत इसके शिकार को प्रतिबंधित कर कड़े दण्ड की व्यवस्था की है। हमारे देश का राष्ट्रीय पक्षी भी मोर ही है।

भारतीय बस्टार्ड बड़े आकार का न उड़ने वाला पक्षी है। इसे गोंडावण भी कहते हैं। यह पश्चिमी राजस्थान, गुजरात व महाराष्ट्र के अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों में झुण्डों में रहने वाला पक्षी है। इसका माँस के शिकार किया जाने लगा और इसकी आबादी मात्र 800 रह गयी। यह एक संकटग्रस्त जाति है। इसके शिकार पर प्रतिबंध लगा दिया गया है| इन राज्यों के राष्ट्रीय पार्को वन पशुशरण स्थलियों में इसका सरंक्षण भी किया जा रहा है। इसके अलावा अनेकों वन्य पशु जैसे, बब्बर शेर, टाइगर, तेंदुआ, कश्मीरी बारहसिंगा, कस्तूरी मृग, गुलाबी सिर की बतख, श्वेत पंखों की वुड बत्तख आदि अनेक वन्य जन्तु ऐसे हैं, जिनको विलुप्त होने से बचाने के लिये राष्ट्रीय पार्को में संरक्षण दिया गया है।

टाइगर प्रोजेक्ट के कार्य के अनुसार राजस्थान में रणथम्भोर के अतिरिक्त सभी क्षेत्रों से बाघ लुप्त हो गये हैं।

5.4.4 राजस्थान मे संकटग्रस्त वन्य जीव

(अ) रणथम्भोर का बाघ

(ब) भरतपुर घाना सेन्चुअरी में स्पूनबिल

(स) सरिस्का (अलवर) वन में पोरकुपाइन

(द) 1992 में उदयपुर झील पिछोला में बहकर आया दुर्लभ पेंगोलिन

भरतपुर घाना सेन्चुअरी में अनेक संकटग्रस्त पक्षी, जातियाँ प्रजनन के लिए प्रतिवर्ष आती हैं। इनमें सूनबिल नामक विचित्र पक्षी देखने योग्य है। अलवर के पास सरिस्का में इसी श्रेणी का पोरक्यूपाइन कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होता है।

प्रवासी पक्षी के अभिगमन मार्ग में पड़ने वाले आवास या प्रवास के आवास नष्ट होने पर, पथ भटक जाते हैं व परभक्षियों का शिकार बन जाते हैं। बाँध में गहरे जल में अण्डजनन (pawning) अवरुद्ध हो जाता है व मछलियों के प्राकृतिक आवास नष्ट हो जाते हैं। विदेशी जातियाँ जो उस स्थान की मूल आवासी नहीं हैं, उन्हें उगाने या आवासित करने पर या तो वातावरण की प्रतिकूलता के कारण वे जीवित नहीं रह पाती हैं और या फिर जीवनयापन व जनन में अत्यधिक सफल होती हैं और उनकी संख्या इतनी अधिक हो जाती हैं कि वे पीड़क (pest) बन जाती हैं, उदाहरण- आस्ट्रेलिया में खरगोश का आवासन। यह अन्य देशज जातियों के लिये खाद्य, स्थान, परभक्षण आदि की नयी परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं और देशज जातियों का अस्तित्व संकटमय हो जाता है।

5.5 वन्य जीव संरक्षण

यथार्थपरक परिभाषा के अनुसार वनों या अपने प्राकृतिक आवासों में पाये जाने वाले अपालित (नॉन-domesticated) जंगली पशु-पक्षियों को वन्य प्राणी कहा जाता है। इसमें पेड -पौधों को भी सम्मिलित कर लेने पर वन्य जीवन (wild life) की संज्ञा दी जाती है। किसी भी पारिस्थितिक तंत्र की कार्य प्रणाली तथा संरचना का अध्ययन करने पर हमें इनका महत्व स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में इन जैविक घटकों की ऊर्जा प्रवाह (energy flow) और खनिज पदार्थों के परिसंचरण में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ये ही तंत्र को स्थायित्व प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त इन वन्य प्राणियों से प्रोटीन, भोजन, फर, चमड़ा तथा अन्य उत्पाद प्राप्त होते हैं। इस आर्थिक लाभों के अतिरिक्त वन्य जीवन हमें सौन्दर्य बोध, आध्यात्मिक चिन्तन का वातावरण तथा मनोरंजन (पर्यटन, आखेट, प्रकृति, वास आदि) प्रदान करते हैं। अनादिकाल से मनुष्य वन्य प्राणियों का शिकार करता आया है। अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये मनुष्य ने कुछ को पालतू बनाया तो कुछ का शिकार किया। उसके प्राकृतिक वास से वनों को काटकर उसके अस्तित्व को संकट में डाल दिया है। आज वनों के साथ-साथ वन्य प्राणियों का भी हत गति से विनाश होता जा रहा है, जिसके फलस्वरूप पारिस्थितिक संतुलन बिगड रहा है।

उक्त दृष्टि से वन्य प्राणियों को भी प्रमुख संसाधन माना जाता है तथा इसके लिए प्रबन्ध की विशेष आवश्यकता है। प्राय: मत्स्य पालन को इससे पृथक् रखा जाता है परन्तु सभी प्राणियों के लिये पारिस्थितिकी सिद्धान्त समान रूप से लागू होते हैं। संरक्षण की दो प्रमुख विचारधाराएँ या विधियाँ प्रस्तुत की गई है :

(i) स्वस्थाने संरक्षण (In situ conservation)

(ii) उत्स्थाने संरक्षण (Ex situ conservation)

(i) **स्वस्थाने संरक्षण** (In situ conservation) : इसके अन्तर्गत जीव - जन्तुओं तथा पौधों का संरक्षण उनके प्राकृतिक वासो में ही या मानव निर्मित कृत्रिम पारिस्थितिकी तंत्र का यथोचित प्रबन्ध करके किया जाता है। सर क्षण की यह विधि अधिक उपादेय है। इसी उद्देश्य से अनेक क्षेत्रों को कानून द्वारा सुरक्षित क्षेत्र (protected areas) घोषित किया जाता है। राष्ट्रीय उद्यान (National parks), अभ्यारण्य (sanctuaries) जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्र (Biosphere reserves), प्राकृतिक स्मारक (natural monuments) आदि इसी उद्देश्य से बनाये गये हैं। पालित जन्तुओं के लिये यह विधि उपयुक्त नहीं है।

(ii) **उत्स्थाने संरक्षण** (Ex situ conservation) : जीवों को उनके मूल स्थान से हटाकर अन्यत्र संरक्षण प्रदान करने की इस विधि को उत्स्थाने संरक्षण कहा जाता है। इसी उद्देश्य से आनुवंशिक संसाधन केन्द्र (genetic resources centres), जन्तु उद्यान (Zoological parks) वनस्पति उद्यान (botanical gardens) की स्थापना की जाती है। जीन बैंक (gene bank) कीं अवधारणा भी इसी पर आधारित है। हमारे देश में भी राष्ट्रीय पादप आनुवांशिकी संसाधन संस्थान (national bureau of plant genetic resources) की स्थापना इसी दृष्टि से की गई है।

5.5.1 विलुप्त होती भारतीय प्राणि -जातियाँ

विलोपन के इस आसन्न खतरे के फलस्वरूप देश में जीवन संरक्षण को पर्याप्त महत्व दिया जाने लगा है। आज तक भारत में अनुमानतः 200 जन्तु जातियाँ विलुप्त हो चुकी है। संकटग्रस्त कुछ जातियों निम्न प्रकार हैं : गैंडा (rhinoceros), नीलगाय (nilgai), गिर सिंह (gir lion), बाघ (tiger), मगरमच्छ (crocodile), सोहन पक्षी या सारंग (bustard) कृष्णसार (black buck), चीतल (chinkola), बारहसिंघा (anteloke), हंसाबर (flamingo), हवासिल (pelican), धूसर बगुला (grey heron), पर्वतीय बटेर (mountain quail) आदि।

5.5.2 विलुप्त होती पादप जातियाँ

वनों को काटने के कारण, अनियंत्रित रूप सेर अधिक चरने के कारण, वनों में आग लगने के कारण एवं प्रदूषण के कारण पौधे नष्ट हो रहे हैं तथा उनके उत्पादों का धीरे - धीरे हास हो रहा है।

वितरण के इतिहास, उनकी गिनती में कमी, उनके आवास स्थान की प्रकृति एवं विभिन्न जातियों (species) के महत्व के आधार पर IUCN (International union of conservation of nature and antural resources) के अनुसार पौधों की 25,000 जातियों में लुप्त होने वाली (threatened species) आपत्तिसूचक स्पीशीज की सम्भावना वाली श्रेणी में रखा गया है। भारत वर्ष में 132 जातियाँ लुप्त हो सकती हैं और 24 जातियाँ पहले ही लुप्त हो चुकी हैं।

ऐसी जातियों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है :

(i) **संकटग्रस्त जातियाँ** (Endangered (E)Species) : वे जातियाँ हैं जिनकी संख्या कम हो गई है तथा उनके निवास स्थान इतने कम हो गये हैं कि इन जातियों के लुप्त होने का खतरा हो गया है। यदि इन जातियों को नष्ट करने वाले कारक इसी प्रकार कार्य करते रहे तो ये जातियाँ नष्ट होने की ओर अग्रसर हो जायेंगी।

(ii) **सुभेद्य जातियाँ** (Vunerable Species(V) : ये वे जातियाँ हैं जो अपने निवास स्थान में काफी संख्या में पायी जाती हैं, परन्तु यदि आने वाले समय में उनके वातावरण में प्रतिकूल परिस्थितियाँ रहती हैं तो वे संकटग्रस्त जातियों की श्रेणी में आ जायेंगी।

(iii) **दुर्लभ जातियों** (rare(R)species) : संसार में इन जातियों की संख्या प्राय: कम होती है, वे कुछ विशेष स्थानों पर ही सीमित रहती हैं अथवा बहुत दूर तक छितरे (scattered) रूप में रहती हैं। ये इस समय संकटग्रस्त या सुभेद्य नहीं है, परन्तु भविष्य में उनके ऐसा होने का खतरा है।

5.6 संरक्षण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय प्रयास

जैव विविधता के संरक्षण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय स्तर पर कार्य योजनाएँ बनाई गई हैं। विश्व स्तर पर वन्य जीवों के संरक्षण हेतु यूरोप के सम्पन्न व्यक्तियों द्वारा "वर्ल्ड वाईल्ड फंड (WWF) " की स्थापना की गई। इसकी एक शाखा भारत में दिल्ली में है।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संगठन (IUCN), राष्ट्रसंघ पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) तथा प्रकृति के अन्तर्राष्ट्रीय फण्ड (WWF) का मत है कि समस्त राष्ट्रों में पर्यावरण कानूनों की ऐसी समग्र प्रणाली बनाई जानी चाहिए कि मानव अधिकार भी सुरक्षित रहें और भावी पीढ़ियों के हितों पर भी आँच न आये। इस प्रणाली के अन्तर्गत स्थानीय परम्परागत तरीकों को मान्यता देते हुए भूमि की उत्पादकता व विविधता की भी सुरक्षा की जानी चाहिए।

भारत सरकार ने 'वन्य जीव संरक्षण अधिनियम ' 1887 से लागू किया| स्वतंत्रता के पश्चात् वर्ष 1952 में भारत सरकार ने वन्य जीवन संरक्षण हेतु **" भारतीय वन्य जीवन बोर्ड (IBWL) "** की स्थापना की और उसके द्वारा उनकी सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय पार्क, वन्य अभ्यारण आदि बनाये गये।

वन्य जीव (सुरक्षा) अधिनियम (1972) में संशोधित किया गया। इसके अनुसार उन प्रजातियों के व्यापार व शिकार पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है, जिनका अस्तित्व खतरे में है तथा उनसे प्राप्त चीजों के व्यापार पर भी पाबन्दी लगा दी गई है। भारत में बाघों की गिरती आबादी को दृष्टि में रखकर उनके संरक्षण के उद्देश्य से IBWL की संस्तुति पर अप्रैल, 1973 से **बाघ परियोजना** project tiger) का शुभारम्भ (कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान से) किया गया और सारे देश में 28,017 वर्ग किमी. क्षेत्र के अन्दर 14 राज्यों में 18 बाघ सुरक्षित क्षेत्र बनाये गये हैं। वर्ष 2002 तक देश में 89 राष्ट्रीय उद्यान तथा 492 अभ्यारण्य स्थापित किये गये हैं। यह देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग चार प्रतिशत है। देश में 13 प्रमुख चिड़ियाघर हैं| मैसूर के चिड़ियाघर में सबसे अधिक 87 जातियों के 518 वन्य जीव रहते हैं। दुर्लभ प्राणियों की खालों

के अवैध व्यापार को रोकने के लिए भारत ने 1976 में "कन्वेशन ऑफ इंटरनेशनल ट्रेड इन एन्डेंजर्ड स्पीशीज ऑफ वाइल्ड फौना एण्ड फ्लोरा" समझौते पर हस्ताक्षर किये और इसी के तहत 1976 में साँपों की कच्ची खालों के व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा था।

संरक्षण परियोजनायें : इस विशिष्ट पारिस्थितिक तंत्र की सुरक्षा तथा आनुवांशिकी विविधता बनाये रखने के उद्देश्य से 13 जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्र (biosphere reserves) की स्थापना की योजना है। जिनमें से 7 नीलगिरि (कर्नाटक), नन्दादेवी (उत्तर प्रदेश), नाक्रेक (मेघालय), ग्रेट निकोबार (अण्डमान निकोबार द्वीप समूह), मानस (असम), सुन्दरवन (पश्चिमी बंगाल) तथा मन्नार की खाड़ी (तमिलनाडु) की स्थापना की जा चुकी है। इन जैव मण्डल आरक्षित क्षेत्रों में राष्ट्रीय उद्यान जैसे मौजूदा संरक्षित क्षेत्रों को शामिल नहीं किया जाता है। जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्र का उद्देश्य पर्यावरण प्रणालियों की आनुवांशिकी विशिष्टताओं को सुरक्षित रखना है। शेष सात जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्र हैं, नामदाफा (अरुणाचल प्रदेश), उत्तराखण्ड (उत्तरप्रदेश), थार रेगिस्तान (राजस्थान), कच्छ का छोटा रन (गुजरात), उत्तरी अण्डमान द्वीप (अण्डमान निकोबार द्वीप), कान्हा (मध्यप्रदेश) तथा काजीरंगा (आसाम)| यह कार्यक्रम वर्ष 1973 से यूनेस्को (Unesco) ने विश्व स्तर पर आरम्भ किया है। संकटापन्न प्रजातियों की सुरक्षा के लिए आरम्भ परियोजनाओं में 'बाघ परियोजना' सफल रही है। इसी तरह 1972 से गुजरात में आरम्भ गिर शेर अभ्यारण्य परियोजना (1,412 वर्ग किमी.) से एशियाई शेरों (Panthera lion persica) की संख्या में स्थिरता आई है। इस पशु विहार को अब राष्ट्रीय उद्यान घोषित कर दिया गया है। इसी तरह घड़ियालों और मगरमच्छों की खाल की बढ़ती माँग के कारण इसकी संकटापन्न प्रजातियों को घड़ियाल प्रजनन परियोजना (उड़ीसा) के अन्तर्गत बचा लिया गया है।FAO(Food and Agriculture Organisation) की संस्तुति पर वर्ष 1975 से आरम्भ इस पीरयोजना के अन्तर्गत 16 केन्द्र विभिन्न राज्यों में खोले गये हैं, इन्हीं में से एक राजस्थान के कोटा जिले में स्थापित किया गया है। यह परियोजना भी काफी सफल रही है। हंगुल या कश्मीरी मृग, कस्तूरी मृग तथा ब्रा-एण्टलार्ड मृग या थामिन के लिए भी तीन अलग-अलग परियोजनाएँ प्रारम्भ की गई है। हिमालयी कस्तूरी मृग परियोजना केदारनाथ अभ्यारण्य में शुरु की गई है। ब्रा-एण्टलार्ड मृग परियोजना मणिपुर के केबल लाजो पार्क में है। इसी तरह 600 प्रजातियों के भारतीय आर्किड के हो रहे अवैध व्यापार ने इनके लिए भी संकट उत्पन्न कर दिया है। खासी हिल, सिक्किम को इसी दृष्टि से संरक्षित क्षेत्र घोषित किया गया है। वनों की रक्षा के लिए हिमालय क्षेत्र का चिपको आन्दोलन तथा कर्नाटक का एप्पिकों आन्दोलन बहुत सफल हुए हैं। इन्हीं परियोजनाओं से अर्जित उपलब्धियों, वन्य जीव संरक्षण जन चेतना पैदा करने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में ' 'वन्य प्राणी सप्ताह " मनाया जाता है।

जैव विविधता संरक्षण कानून : वर्तमान में जैव विविधता संरक्षण के प्रति भारत सरकार की चिन्ता विभिन्न पर्यावरण कानूनों के रूप में व्यक्त होती हैं। इनमें प्रमुख हैं :

(i) भारतीय वन अधिनियम 1927;

(ii) वन्य जीवन सुरक्षा अधिनियम 1972 (1991 में संशोधित);

(iii) पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम 1986;

(iv) वन संरक्षण अधिनियम 1980 (1988 में संशोधित); जल (प्रदूषण रोकथाम एवं नियन्त्रण) अधिनियम 1974 (1988 में संशोधित);

(v) वायु (प्रदूषण रोकथाम व नियन्त्रण)अधिनियम 1981(1988 में संशोधित);

(vi) तटीय नियमन क्षेत्र अधिसूचना 1991।

बोध प्रश्न - 3

1. जैव विविधता से क्या अभिप्राय है?

....

....

2. जैव विविधता को कितने स्तरों में विभाजित किया गया है?

....

....

3. भारत में संकटग्रस्त प्राणि-प्रजाति के पाँच उदाहरण दीजिए।

....

....

4. संकटग्रस्त जातियाँ (endangered species) से क्या तात्पर्य है?

....

....

5. जैव विविधता संरक्षण हेतु बनाई गई अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के दो उदाहरण दीजिए।

....

....

5.7 भारत मे जैव विविधता संरक्षण

पारिस्थितिक दृष्टि से वन्य जीवों की उपयोगिता अत्यन्त महत्व की है। मानव गतिविधियों के फलस्वरूप प्रकृति के पारिस्थितिक तंत्र में होने वाले परिवर्तनों के अध्ययन में वन्य जीवों से युक्त **अविक्षुब्ध** (un-disturbed) आवास स्थलों का तुलनात्मक अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराता वन्य जीवों के हनन पर रोक के बावजूद भी विश्व भर में अनेक प्राणी तथा पादप जाति तेजी से विलुप्त होने की अवस्था की ओर बढ़ रही हैं। इसका मुख्य कारण यह भी है कि वन्य प्राणियों का अनियन्त्रित शिकार (सभी जगहों पर रोक दिया गया है) व वनों का विनाश है। वनों के विनाश के कारण वन्य प्राणियों के आवास-स्थान कम होते जा रहे हैं। सुरक्षित तथा अनुकूल आवास -स्थलों के अभाव में वन्य प्राणी तेजी से नष्ट होते जा रहे हैं। आँकड़े दर्शाते हैं कि विश्व में आगामी 20 वर्षों में प्रत्येक दस में से एक पार्थिव (दुर्लभ) प्रजाति लुप्त होने जा रही है। पेड -पौधों की कोई 25, 000 प्रजातियाँ तथा कशेरुकियाँ (जैसे मछलियाँ,

जल प्राणी, रेंगने वाले प्राणी, पक्षी और स्तनपायी प्राणियों की 9,000 से भी ज्यादा प्रजातियाँ या उपजातियाँ गायब होने के कगार पर हैं।

'रेड डाटा बुक' (Red Data Book) नामक पुस्तक में विश्व में विलुप्ति का खतरा झेल रहे जन्तु तथा पक्षियों की सूची में 600 जातियों (स्पेशीज़) के नाम दिये गये हैं। इनमें से कई जातियों हैं, जिसके सदस्यों की संख्या 100से नीचे है तथा कुछ की तो संख्या सिर्फ 10 ही है। इससे इन स्पीशीज के अस्तित्व के सम्भावित खतरे का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है|

हमारे देश में **'जूलॉजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया'** और ' बॉटेनीकल सर्वे ऑफ इण्डिया ' ने भी विलोप की आशंका से त्रस्त जीव -जन्तुओं और वनस्पतियों की सूची तैयार की है। हमारे देश में स्तनधारी प्राणियों की 350 और पक्षियों की 1224 जातियाँ हैं। इनमें से **पक्षियों की 69 जातियों और स्तनधारी प्राणियों की 53 जातियाँ** चिन्ता का विषय है। कुछ समय पूर्व लाल सिर वाली बतख (Pink headed duck) हुआ करती थीं, फिर इसका कुछ पता नहीं। इसी तरह पहाड़ी बटेर (Mountain Quail) भी अंग्रेज शिकारियों की हवस का शिकार होकर विलुप्त हो गया।

अफ्रीकी चीता (Cheeta), **श्याम गैंडा** (Black rhino), **अफ्रीकी सिंह** (African lion) **गोरिल्ला** तथा **रूसी ध्रुवीय भालू** (Polar bear) एवं **साइबेरिया का सारस** (Siberian crane) इत्यादि विलुप्त हो रहे प्राणियों की गिनती में आते हैं।

भारतीय जैविक विविधता का यदि विश्व की विविधता के सन्दर्भ में आकलन किया जावे तो हम देखते हैं कि पक्षियों व मत्स्य की विभिन्न जातियाँ यहाँ विश्व की तुलना में 10% से भी अधिक पायी जाती है।

1994 की IUCN की रेड सूची के अनुसार भारत में पायी जाने वाली 172 प्रजातियाँ विशेष संरक्षण के योग्य हैं। इनमें संकटापन्न व विरल (दुर्लभ) प्राणी क्रमशः स्तनपायी व पक्षी वर्ग के हैं। संवेदनशील व विरल श्रेणियों की संख्या सर्वाधिक है।

सारणी

	संकटपन्न	**संवेदनशील**	**विरल(दुर्लभ)**	**अनिश्चित**	**सूचनाअपर्याप्त**	**कुल**
स्तनपायी (Mammals)	13	20	2	5	13	53
पक्षी (Birds)	6	20	25	13	5	69
सरीसृप (Reptiles)	6	6	4	5	2	23
उभयचारी (Amphibians)	0	0	0	3	0	3
मत्स्य (Fishes)	0	0	2	0	0	2
अकशेरूकी (Invertebrates)	1	3	12	2	4	22
Total	26	49	45	28	24	172

यद्यपि आजकल हमारे देश में वन्य प्राणियों के संरक्षण को पर्याप्त महत्व दिया जाने लगा है, पर कुछ वर्ष पूर्व तक इसकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था। यह एक दु:खद तथ्य है कि ईसा सम्वत् के प्रारम्भ से अब तक भारत में लगभग 200 जन्तु तथा पक्षी जातियाँ नष्ट हो चुकी हैं। अभी भी लगभग 250 अन्य जातियाँ विनाश के कगार पर हैं। विलुप्त होने के खतरे से घिरे कुछ प्रमुख प्राणी हैं - **कृष्ण सार** (Black buck), **चिंकारा** (Chinkara), **भेड़िया** (Wolf), **अनूपमृग** (Swamp deer), **नीलगाय** (Nilgai), **भारतीय कुरंग**, **बारहसिंगा** (Antelope), **बाघ** (Tiger), **गेंडा** (Rhinoceros), **गिर सिंह** (Gir lion), **मगर** (Crocodile), **हंसावर** (Flamingo), **हवासिल** (Pilican), **सारंग** (Bustard), **श्वेत सारस** (White crane) **धूसर बगुला** (Grey heron)तथा **पर्वतीय बटेर** (Mountain quail)।

5.7.1 वन्य जीव संरक्षण तथा प्रबन्ध

(Wild Life Conservation and Management)

वन्य जीवों की संख्या में निरंतर हास एक राष्ट्रीय चिन्ता का प्रश्न बन गया है, क्योंकि वन्य जीवों की कई दुर्लभ प्रजातियाँ लुप्त होती जा रही हैं।

भारत सरकार व राज्य सरकारें वन्य जीवों की विभिन्न तौर -तरीकों से सुरक्षा प्रदान करने में प्रयत्नशील हैं। वन्य जीवों के संरक्षण के लिये जनसमर्थन लेने और जन आन्दोलन बनाने हेतु एक अक्टूबर से सात अक्टूबर तक प्रतिवर्ष वन्य जीव सप्ताह का आयोजन सारे राष्ट्र में किया जाता है, जिससे वन्य जीव के प्रति न केवल जनरुचि विकसित हो बल्कि विविध पक्षों को उजागर किया जा सके।

हमारे देश में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा वन्य प्राणी संरक्षण की दिशा में किये जा रहे प्रयासों में से कुछ निम्नानुसार हैं

1. वन्य प्राणियों तथा उनके आवासों को संरक्षण देने के उद्देश्य से देश भर में सितम्बर 2002 तक लगभग 492 **अभयारण्य** (Sanctuaries) तथा 89 **नेशनल पार्क** स्थापित किये गये थे|
2. वन्य प्राणी संरक्षण अधिनियम 1972 लागू किया जा चुका है।
3. वन्य प्राणियों से सम्बन्धित शोध को प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से द्विपक्षीय तथा बहुपक्षीय आधार पर वन्यप्राणी संरक्षण के अनेक कार्यक्रम देश में चल रहे हैं। इस दिशा में **'मानव एवं जीवमण्डल '** (Man and Biosphere) नामक एक कार्यक्रम 1973 से यूनेस्को ने विश्व स्तर पर शुरु किया है। 1985 तक लगभग 65 राष्ट्रों में 243 से अधिक बायोस्फियर बनाये गये हैं। भारत में 13 **बायोस्फियर** (जैवमण्डल) आरक्षित क्षेत्र हैं।

वन्य जीवों के अनुरक्षण के कुछ बहुप्रचलित उपाय निम्नलिखित हैं.

(i) आखेट की संख्या को कानून द्वारा प्रतिबन्धित करना

(ii) कृत्रिम संग्रहण

(iii) आवास स्थल का सुधार ।

(i) **प्रतिबन्धित आखेट** (Restricted Hunting) : किसी समुदाय को अधिक बड़ा या अत्यधिक छोटा होने से रोकने के लिए रक्षण कानून बनाये जाने चाहिए। उन वनों तथा वन - स्थलों में जहाँ मानव की गतिविधियों द्वारा प्राकृतिक सन्तुलन में परिवर्तन हुआ है, वहाँ अतिबाहुल्य वाली प्रजाति की संख्या को घटाने या नियन्त्रित करने के लिए जागरुक प्रयत्न करने होते हैं, ताकि वन्य जन्तुओं के लिए वनस्पति तथा आवास का रक्षण किया जा सके।

(ii) **कृत्रिम संग्रहण** (Artificial Stocking):इसमें कोई संशय नहीं है कि जिस जाति के लुप्त होने का खतरा हो उनके कृत्रिम संग्रहण की आवश्यकता रहती है। अनुभवों ने यह दर्शाया है कि किसी क्षेत्र में जन्तुओं का कृत्रिम रूप से संग्रहण तभी प्रभावशाली सिद्ध होता है जबकि उनका यह पुनर्स्थापन नये क्षेत्र में हो अथवा उस क्षेत्र में हो जहाँ से पहले उन्हें नष्ट कर दिया गया हो।

(iii) **आवास स्थल का सुधार** (Habital Improvement) वन्य प्राणियों के प्रबन्ध में उपर्युक्त आवास स्थलों के निर्माण तथा अनुरक्षण को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती है। प्रत्येक आवास स्थलों की स्व निश्चित धारणा क्षमता होती है, जिसका निर्धारण उपलब्ध भोजन, आचरण, जल तथा अन्य जीवनावश्यक वस्तुओं द्वारा होता है। प्रत्येक प्रजाति की आवास स्थल सम्बन्धी आवश्यकताएँ भिन्न- भिन्न होती हैं। इस कारण आवास स्थल सुधार कार्यक्रम प्रारम्भ करने के पूर्व प्रजाति विशेष की वास्तविक आवास स्थल सम्बन्धी आवश्यकताओं का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया जाना चाहिए।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि वन्य जीव संरक्षण तथा प्रबन्ध के लिए प्रत्येक प्रजाति की परिस्थिति के सम्पूर्ण ज्ञान की आधारभूत आवश्यकता है। प्रजाति विशेष की आहारी आदतें, जनन, आवास स्थलीय आवश्यकताएँ, समष्टि आकार तथा उतार-चढ़ाव एव अन्य प्रजाति से सम्बन्ध इत्यादि से सम्बन्धित पारिस्थितिक ज्ञान से वन्य प्राणी प्रबन्ध में बहुत सहायता मिलती है। वन्य प्राणी साधनों का प्रबन्ध यथार्थ में अनुप्रयुक्त पारिस्थितिकी का क्षेत्र है।

1. **राष्ट्रीय उद्यान** (National Park) : **आवास परिरक्षण** (habital preservation) के अन्तर्गत प्राकृतिक पारिस्थितिक तन्त्रों एवं पारिस्थितिकी संसाधनों की बहुमुखी रक्षा के लिए विविध प्रकार के पारिस्थितिकीय संसाधनों वाले विस्तृत क्षेत्रों को आरक्षित कर दिया जाता है। इस तरह के **प्रकृति प्रारक्षण** (nature reserve) को **राष्ट्रीय उद्यान** (National Park) कहा जाता है। ऐसे राष्ट्रीय उद्यानों की बाहरी प्राणियों एव मनुष्यों के प्रभावों से पूर्ण रक्षा की जाती है।

2. **अभ्यारण्य** (Sanctuaries): **सामूहिक संरक्षण** (assemblage protection) के अन्तर्गत एक ही आवास में पौधों एवं प्राणियों की कई जातियों का साथ-साथ परिरक्षण एवं संरक्षण किया जाता है। इस कार्य हेतु ऐसे आवासों का चयन किया जाता है कि उनकी पर्यावरणीय दशायें इस प्रकार की हों कि उनमें बाहर से भारी संख्या में प्राणी खासकर प्रवासी पक्षी आ सके। कई देशों ने इस प्रकार के **पक्षी विहारों** (bird sanctuaries) की स्थापना तथा

विकास किया है। इन पक्षी विहारों में प्राणियों को स्वच्छ पर्यावरणीय दशायें उपलब्ध करायी जाती हैं।

उदाहरण के लिए संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के **वनमुर्गी विहारों** (wildfowl refuges) में **बत्तख, हंस** (goose) तथा जल-पक्षी की कई जातियों के लिए आदर्श स्थानों तथा घोंसला बनाने के लिए अनुकूल स्थानों को उपलब्ध कराया जाता है। भारत दिल्ली चिड़ियाघर एवं भरतपुर पक्षी बिहार में दूरस्थ स्थानों (यथा-साइबेरिया) से आने वाली प्रवासी पक्षियों के लिये स्थान तथा खाद्य पदार्थों के लिए भरपूर व्यवस्था की जाती है तथा आखेट या किसी भी प्रकार के मानवीय कार्यों से उनकी पूर्णतया रक्षा की जाती है; संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में उच्च पर्वतीय प्रारक्षणों (high mountain reserves) में **अल्पाइन पौधों** की जातियों की रक्षा की जाती है आदि|

3. **जैवमण्डल प्रारक्षण** (Biosphere Reserve) : जीवमण्डल प्रारक्षण का कार्यक्रम, UNESCO के मनुष्य तथा जीवमण्डल कार्यक्रम (MAB-Man and Biosphere programme) के अन्तर्गत आता है। जीवमण्डल प्रारक्षण की संकल्पना का सामान्य तात्पर्य है प्राकृतिक आवासों (habitats) तथा उनमें पाये जाने वाले पौधों एवं प्राणियों की रक्षा तथा संरक्षण। जीवमण्डल प्रारक्षण के तीन प्रमुख उद्देश्य हैं :

(i) संरक्षणात्मक भूमिका (conservation role): वंशाण्वीय संसाधनों (genepool) तथा प्राकृतिक पारिस्थितिक तन्त्रों का संरक्षण एवं जैविक विविधता का अनुरक्षण (maintenance of biological diversity)।

(ii) शोध सम्बन्धी भूमिका : MAB कार्यक्रम के तहत शोध एवं अध्ययन के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सुनिश्चित एवं निर्धारित शोध क्षेत्रों की स्थापना करना, विभिन्न शोध क्षेत्रों के बीच विभिन्न सूचनाओं का आदान - प्रदान करना, विभिन्न कार्यक्रमों को मॉनीटर करना एवं संरक्षण से सम्बन्धित प्रशिक्षण प्रदान करना; तथा

(iii) विकासीय भूमिका : पर्यावरण संरक्षण एवं भूमि संसाधन के विकास के मध्य सम्बन्ध स्थापित करना।

इस प्रकार भारत में निम्न तीन श्रेणियों में संरक्षित क्षेत्रों में निम्न अन्तर है :

राष्ट्रीय उद्यान (National Parks)	**अभयारण्य (Sanctuary)**	**जैवमण्डल आरक्षित प्रदेश (Biosphere Reserves)**
1. यह मुख्य रूप से समस्त मिली - जु ली वन्य जीवों (wild animals) के संरक्षण के लिए होता है।	यह बहुधा विशिष्ट या प्रजाति के संरक्षण के लिये निर्धारित होता है।	इस क्षेत्र में पूरा पारितन्त्र (ecosystem) समाहित होता है।
2. भारत में इसका क्षेत्र आयाम बहुधा सीमित होता है।	जबकि इसका क्षेत्र राष्ट्रीय उद्यान की अपेक्षा अधिक व्यापक होता है।	इसका क्षेत्र प्रसार बहुधा सर्वाधिक व्यापक होता है।

3. इसमें पर्यटन की अनुमति होती है।	इसमें भी पर्यटन की अनुमति होती है।	सामान्यत: पर्यटन की अनुमति नही मिलती।
4. इसका शोध व वैज्ञानिक प्रबन्धीकरण बहुधा नहीं होता।	इसमें भी नहीं होता।	इसमें वैज्ञानिक व शोधीय प्रबन्धीकरण होता है।
5. अभी तक इसमें व्याप्त प्राणियों के जीन पूल व उसके संरक्षण पर ध्यान नहीं दिया या है।	इस क्षेत्र में भी बहुधा जीन पूल संरक्षण पर ध्यान नहीं दिया गया है।	इसमें बहुधा जीन पूल संरक्षण का ध्यान दिया गया है।

5.8 वन्य जीवों की सुरक्षा हेतु परियोजनायें

विभिन्न वन्य जीवों की घटती संख्या पर चतुर्दिक बढ़ती चिन्ता को देखकर केन्द्र सरकार के लिए यह जरूरी हो गया कि वह दुर्लभ जंगली जीवों को बचाने के लिए कारगर उपाय करें। इस दिशा में सरकार ने विभिन्न जीवों के संरक्षण के लिए परियोजनायें बनायी हैं। कुछ योजनायें निम्नवत् हैं :

1. **बाघ परियोजना (प्रोजेक्ट टाइगर) :** भारत में बाघों की आबादी तेजी से कम होने के कारण 1970 में **भारतीय वन्य प्राणी बोर्ड** ने भारत में बाघों की आबादी के संरक्षण हेतु एक कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने के लिए 'बाघ परियोजना ' का आविर्भाव किया।

इस शताब्दी के प्रारम्भ में हमारे देश में लगभग 40 हजार बाघ थे, जिनकी संख्या 1972 तक घटकर केवल 1827 रह गयी। इस संख्या में आयी कमी से चिन्तित होकर भारत सरकार ने सन् 1973 में **वर्ल्ड वाइल्ड फण्ड फॉर नेचर तथा इन्टरनेशनल यूनियन फॉर कन्नरवेशन ऑफ नेचर एण्ड नेचुरल रिसोर्सेज** (IUCN) के सहयोग से **बाघ परियोजना** (project tiger) नामक एक महत्वाकांक्षी परियोजना प्रारम्भ की। इसके अन्तर्गत सन् 1973 में देश के नौ राज्यों में कुल 13017 किलोमीटर क्षेत्र अधिगृहीत किया गया, जिसमें कुल 208 बाघ थे। कुछ समय पूर्व किये गये सर्वेक्षण के अनुसार देश में कुल 3015 शेर हैं, जिसमें 711 विशेष रूप से संरक्षित वनों में हैं। यद्यपि बाघ परियोजना से बाघों की संख्या में कुछ वृद्धि हुई है, लेकिन फिर भी इसे और प्रभावशाली बनाये जाने की आवश्यकता है।

बाघ परियोजना यानी **'प्रोजेक्ट टाइगर'**भारत में पशु संरक्षण प्रयासों की पहली परियोजना है, जिसके अन्तर्गत इस समय देश के 23 राष्ट्रीय उद्यान इसके अतिरिक्त **'बाघ रक्षा मंच '** भी बनाया गया है, जिसका एक अन्तरिम सचिवालय नई दिल्ली में बनाया गया है। इसके अतिरिक्त **'बाघ रक्षा सेल '** भी स्थापित किया गया है, जिसका उद्देश्य बाघ के संरक्षण के बारे में सभी आवश्यक सूचना प्राप्त करना है। वन्य जीव संरक्षण के लिए भारत में **'वन्य जीवन सलाहकार बोर्ड'** भी कार्यरत है।

2. **गिरि सिंह अभयारण्य योजना :** एशियाई सिंह, जो कभी भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी और मध्य क्षेत्रों में पाया जाता था, अब मात्र गुजरात के गिर वन तक ही सीमित है। इस जाति का वह अन्तिम आवास बचा है, जिसमें करीब 200 सिंह रह रहे हैं।

3. **हिमालय कस्तूरी** (Musk Deer) परियोजना : कस्तूरी मृग (मोस्कम मोस्किफेरक), जो कभी सम्पूर्ण हिमालय क्षेत्र में पाया जाता था, सुगंध और दवा बनाने के काम आने वाली **'कस्तूरी '** (जो बेहद महंगी होती है) प्राप्त करने के लिए मनुष्य का शिकार बना।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति और प्राकृतिक संसाधन संरक्षण संघ (आई. यू सी. एन.) के संकटग्रस्त हिरण कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत सरकार के सहयोग से एक संरक्षण परियोजना उत्तर प्रदेश के **'केदारनाथ अभयारण्य '** में आरम्भ की गयी है।

4. **मणिपुर थामिन (ब्रो ऐन्दलर हिरण) परियोजना :** एक और सर्वाधिक सकटग्रस्त मृग प्रजाति, जिसके गिने-चुने सदस्य ही बच गये थे, **थामिन मृग** या **ब्रो ऐन्टलर हिरण (सेरवस एल्डाइड एल्डाई)** है। यह विश्व के अत्यन्त दुर्लभ स्तनधारियों में से स्व है, जो मणिपुर राज्य के लोकटक झील के दक्षिण-पूर्वी भार **'केबुल लमजोआ '** में पाया जाता है।

5. **मगर प्रजनन परियोजना :** भारत में पायी जाने वाली मगरमच्छ की ये तीन जातियाँ 1970 के दशक के पूर्वार्द्ध में अत्यन्त दुर्लभ हो गयी थी। भारत सरकार ने **संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएन डी पी.)** की सहायता से 1975 में उडीसा में मगर प्रजनन तथा प्रबन्ध की परियोजना आरम्भ की।

6. **हाथी परियोजना :** देश में हाथियों की संख्या में आयी कमी को दृष्टिगत रखते हुए भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने 1991 - 92 में हाथी परियोजना का शुभारम्भ किया था। हाथी परियोजना का उद्देश्य उजड़े और नष्ट हुए प्राकृतिक आवासों को फिर से ठीक करना, उनके आवागमन के मार्गों का निर्माण, मनुष्य के हस्तक्षेप को रोकना तथा हथियारों के आवागमन व उसकी आबादी बढ़ाने के विषय में जानकारी एकत्र करना था।

5.9 राजस्थान में वन्य जीव संरक्षण

राजस्थान : राजस्थान राज्य (कुल क्षेत्र 3, 42, 239 वर्ग कि मी.) में 31, 130 वर्ग कि मी. क्षेत्र वन विभाग के अधीन है। इसमें से 60, 506 वर्ग कि मी. वन (राज्य के क्षेत्रफल का 10.12%क्षेत्र एव 15, 492 वर्ग किलोमीटर भूमि **राष्ट्रीय उद्यान केवलादेव भरतपुर, रणथम्भौर सवाई माधोपुर** को सभी प्रकार के व्यवधानों से मुक्त रक्षित वन के रूप में रखा गया है। रणथम्भौर **राष्ट्रीय उद्यान सवाई माधोपुर** के अन्दर रह रहे आवासियों को अन्यत्र बसाया जा चुका है।

राजस्थान में वन्य जीवों का संरक्षण एक ऐतिहासिक परम्परा है। **पश्चिमी राजस्थान में विश्नोई सम्प्रदाय** के लोग अपनी धार्मिक मान्यताओं के कारण न तो स्वयं ही वन्य जीवों का शिकार करते हैं- और न अन्य लोगों को अपने क्षेत्र में शिकार करने देते हैं। इस कारण विश्नोई बाहुल्य गाँव वन्य जीवों के वास्तविक अभयारण्य होते हैं। रजवाड़ों के समय वन्य जीवों का शिकार करने के अधिकार केवल राज-परिवार के सदस्यों या उनके अतिथियों को ही होते थे। कहने का

तात्पर्य यह है कि प्राचीनकाल से ही राजस्थान राज्य में वन्य जीवों एव वनों को बहुत महत्व दिया जा रहा है।

सरिस्का अभयारण्य तथा मरु उद्यान, जैसलमेर को राष्ट्रीय उद्यान घोषित करने की उद्घोषणाएँ राज्य सरकार द्वारा जारी की गयी है। राज्य सरकार द्वारा आदेश प्रसारित कर वन्य जीव अभयारण्यों से लकड़ी, बाँस, छोटी पैदावार व अन्य सभी प्रकार की वन उपज के विकास पर रोक लगा दी गई है। इस महत्त्वपूर्ण कदम से वन्य जीवों को खाद्य वनस्पति व चारा उपलब्ध होने तथा प्रजनन एवं स्वच्छन्द विचरण में सुविधा उपलब्ध हुई है।

वन्य जीवों की सुरक्षा के लिए राजस्थान में शिकार पर रोक लगायी गयी है। अवैध शिकार रोकने के लिए राज्य में वन्य जीव सुरक्षा हेतु उडनदस्ते बनाये गये हैं। इन सुरक्षा दस्तों के अलावा वन्य जीव संवर्द्धन एवं संरक्षण के लिए **दो राष्ट्रीय उद्यान, 22 अभयारण्य एवं 32 शिकार निषिद्ध क्षेत्र** घोषित किये हुए हैं। वन्य जीवों की सुरक्षा के लिए प्रदेश में सन् 1955 में राजस्थान वन्य जीव मण्डल की स्थापना हुई। यह बोर्ड वन्य जीवों की सुरक्षा तथा उनकी समुचित **अभिवृद्धि** के लिए सरकार को सुझाव देता है। वन्य जीवों को बचाने के लिए 1972 में **वन्य जीव संरक्षण अधिनियम** लाया गया, जिसका मुख्य उद्देश्य पर्यावरण सरक्षण व आने वाली पीढ़ी के लिए प्रकृति की इस सुन्दर धरोहर को बचाना है।

बोध प्रश्न - 4

1. रेड डाटा बुक (Red data बूक) क्या है?

....

....

2. भारत में कितने अभ्यारण्य तथा राष्ट्रीय उद्यान (National Park)है?

....

....

3. वन्य प्राणी संरक्षण अधिनियम कब लागू किया गया?

....

....

4. भारत में कितने बायोस्फीयर हैं?

....

....

5. वन्यजीवों की सुरक्षा हेतु 3 मुख्य परियोजनाओं के नाम दीजिये।

....

....

6. बाघ परियोजना की शुरुआत कब हुई?

....

....

7. IUCN का पूरा नाम बताइये।

....
....

5.10 सारांश

- सजीव का उसके जैविक व अजैविक वातावरण के पारस्परिक सम्बन्धों के अध्ययन को ही 'पारिस्थितिकी ' कहते हैं।
- पारिस्थितिकी शब्द सर्वप्रथम टेन्सले ने 1935 में प्रतिपादित किया था।
- प्रत्येक इकोसिस्टम में जीविय व अजीविय घटक होते हैं।
- जीवीय या जैविक घटक में प्राथमिक उत्पादक, उपभोक्ता व अपघटक होते हैं। उपभोक्ता तीन प्रकार के होते हैं:(i) प्राथमिक उपभोक्ता (ii) द्वितीयक उपभोक्ता (iii) तृतीयक उपभोक्ता।
- अजीवीय या अजैविक घटक में खनिज पदार्थ, कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थ, जल, गैस एवं ऊर्जा होते हैं।
- पारिस्थितिकी अध्ययन को सरल बनाने और इसकी सूक्ष्मता समझने के उद्देश्य से मुख्यत : दो शाखाओं में विभाजित किया गया है : (i) व्यष्टि पारिस्थितिकी (ii) संपारिस्थितिकी
- विश्व के समस्त पारिस्थिकी तन्त्रों को मिलाकर जीवमण्डल (Biosphae) कहते हैं।
- पृथ्वी के जैवमण्डल को तीन भागों में बाँटा गया है (i) जलमण्डल (ii) स्थलमण्डल (iii) वायुमण्डल
- मनुष्य की क्रियाओं के फलस्वरूप ऊर्जा स्रोत, विकिरण स्तर, रासायनिक व भौतिक तत्वों तथा जीवों में परोक्ष या अपरोक्ष परिवर्तन 'पर्यावरण प्रदूषण ' कहलाता है।
- प्रदूषण मुख्यतया निम्नलिखित प्रकार का है (i) वायु प्रदूषण (ii) जल प्रदूषण (iii) मृदा प्रदूषण (iv) ध्वनि प्रदूषण (v) नाभिकीय प्रदूषण।
- जब प्रदूषक वायुमण्डल में उपस्थित होते हैं और वायुमण्डल के अवयवों की अनुकूलतम मात्रा में परिवर्तन आ जाता है, तब इसे वायु प्रदूषण कहते हैं।
- वायुप्रदूषण के स्रोत हैं. (i) अचल दोहन स्रोत (ii) चलायमान दहन स्रोत (iii) औद्योगिक स्रोत।
- जल प्रदूषण के मुख्य स्रोत हैं:(i) मानव (ii) प्रकृति।
- शोर की तीव्रता मापने की इकाई 'डेसीबल ' कहलाती है।
- साधारणतया 50 डी. बी. की ध्वनि कानों को बुरी नहीं लगती, लेकिन 95 डी. बी. की ध्वनि को तेज माना जाता है।
- जैवविविधता शब्द का उपयोग, इकोसिस्टम की विविधता, प्रजातियों के बीच वैविध्य तथा जैनेटिक विविधता के लिए किया गया है।
- विलुप्त जातियों की संख्या से स्पष्ट संकेत है कि हम विनाश की ओर बढ़ रहे हैं।

- जैव विविधता के संरक्षण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय कार्य योजनायें बनानी चाहिए। जैव विविधता संरक्षण हेतु भारत में समय-समय पर अनेक कानून बने हैं।
- जैव विविधता पर प्रभाव डालने वाला एक विशेष पहलू है, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार। इस सम्बन्ध में साइट्स नामक व्यापार संधि अति महत्त्वपूर्ण है।
- वन्य जीव संरक्षण की दो प्रमुख विचारधारायें या विधियाँ हैं : (i) स्वस्थाने संरक्षण (Insitu Conservation), (ii) उत्स्थाने संरक्षण (Exsitu Conservation)

5.11 शब्दावली

प्रदूषक (Pollutant) : पर्यावरण में मिलाया गया गैसीय, द्रवीय या ठोस पदार्थ, जो मनुष्य के लिए हानिकारक है।

पारिस्थितिकी (Ecology) : जीव का वातावरण के सम्बन्ध में अध्ययन।

पारिस्थितिकी तन्त्र (Ecosystem) जैविक समुदाय व अजैविक वातावरण के विभिन्न कारकों का पारस्परिक सम्बन्ध।

उत्पादक (Producess) : वे प्राकृतिक जीव, जो सौर ऊर्जा और खनिज पदार्थो की सहायता से जीव क्रियाओं के लिए ऊर्जा उत्पन्न करते हैं।

उपभोक्ता (Consumers) : उत्पादकों द्वारा उत्पादित भोजन को उपभोक्ता ग्रहण करते हैं।

जैवमण्डल (Biosphere) : जीव की सम्पूर्ण सृष्टि को जैवमण्डल कहते हैं।

विघटक (Decomposers). प्राकृतिक व्यवस्था के अनुरूप जीवों के मृत शरीर को विघटित करके मूलभूत तत्वों को फिर से उद्गम स्रोतों में वापस भेजने का कार्य करने वाले सूक्ष्मजीव ।

जैव विविधता (Biosphere) : इकोसिस्टम की विविधता, प्रजातियों के बीच वैविध्य तथा जैनेटिक विविधता के लिए जैव विविधता शब्द का उपयोग किया जाता है।

5.12 संदर्भ ग्रंथ

पर्यावरणीय जैविकी : डॉ. ए. एल. भाटिया, डॉ. के. एस. कोहली एवं डॉ. मोहन स्वरूप, रमेश बुक डिपो, जयपुर, 2007

जीव विज्ञान (प्राणी विज्ञान) : डॉ. ए. एल. भाटिया, डी. डी पी. जारोली, डी. शेखर वर्मा, एम. पी. गाँधी, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, 2003

बायोलॉजी : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT), 2003

प्रतियोगिता साहित्य सिरीज, सामान्य विज्ञान : डॉ. सरदार सिंह, डॉ. एम. यू चराया, डॉ. ए. के. गोस्वामी, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, 2000

5.13 बोथ प्रश्नों के उत्तर अभ्यास

बोध प्रश्न - 1

1. सजीव का उसके जैविक व अजैविक वातावरण के पारस्परिक संबंधों के अध्ययन को ही “पारिस्थितिकी" कहा जाता है।

2. व्यष्टि पारिस्थितिकी के अन्तर्गत किसी भी प्राणी या पौधे की स्व जाति और उसके वातावरण का अध्ययन किया जाता है।
   संपारिस्थितिकी के अन्तर्गत किसी एक विशेष वातावरण में निवास करने वाले विभिन्न जीव - जन्तुओं और पौधों के समुदायों (जातियों) का सामूहिक अध्ययन किया जाता है।
3. जैविक घटक : 'उत्पादक, उपभोक्ता एवं विघटक (Decomposers)
4. परितन्त्र के मूलभूत घटक : अजैविक घटक : अकार्बनिक पदार्थ, कार्बनिक पदार्थ एवं भौतिक वातावरण।
5. पवन, pH मान, लवणता, प्रकाश, मृद्दीय, खनिज
6. पृथ्वी के जैवमण्डल को तीन भागों में बाँटा गया है : (i) जलमण्डल (ii) स्थल मण्डल (iii) वायुमण्डल।

बोध प्रश्न - 2

1. ये वायु, जल या भूमि (अर्थात् पर्यावरण) के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में होने वाले ऐसे अनचाहे परिवर्तन हैं, जो मनुष्य एवं अन्य जीवधारियों, उनकी जीवन परिस्थितियों, औद्योगिक प्रक्रियाओं तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिए हानिकारक होते हैं।
2. वायु प्रदूषण के स्रोत : इसके तीन स्रोत हैं : (a) अचल दहन स्रोत, (b) चलायमान दहन स्रोत, (c) औद्योगिक स्रोत।
3. कार, मोटर, स्कूटर, मोटर साइकिल, बस, हवाई जहाज आदि।
4. वनों के नष्ट होने से तथा जीवाश्मी ईंधन के अत्यधिक दहन से वायुमण्डल में कार्बन डाइ ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है। इसी कारण से पृथ्वी का तापक्रम, "पौधघर प्रभाव " (Green House Effect) द्वारा बढ़ गया है।
5. डेसिबल (dB) इसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक ग्राहम बैल के नाम पर दिया गया है।
6. आण्विक विखण्डन के फलस्वरूप प्रोटोन्स (α -कण), इलेक्ट्रॉन्स (β -कण) तथा गामा - किरणों (χ -कण) के स्वत : उत्पन्न होने को विपटनभिक्ता (radioactivity)कहते हैं।

बोध प्रश्न - 3 :

1. किसी भी आवास में परस्पर सहयोग करते हुए पादपों, प्राणियों व सूक्ष्मजीवों की अनेकानेक जातियों का पाया जाना जैव -विविधता कहलाता है।
2. जैवीय विविधता को तीन क्रमबद्ध स्तरों में विभाजित किया जा सकता है : (i) आनुवंशिक विभिन्नता, (ii) जातीय विभिन्नता, (iii) सामुदायिक या पारितन्त्र विभिन्नता।
3. गैंडा (rhinoceros), नीलगाय (nilgai), गिर सिंह (gir lion), बाघ (tiger), मगरमच्छ (crocodile), सोहन पक्षी या सारंग (bustard) कृष्णसार (black buck), चीतल (chinkola), बारहसिंघा (anteloke), हंसाबर (flamingo), हवासिल (pelican), धूसर बगुला (grey heron), पर्वतीय बटेर (mountain quail) आदि।
4. संकटग्रस्त जातियाँ : वे जातियाँ हैं जिनकी संख्या कम हो गई है तथा उनके निवास स्थान इतने कम हो गये हैं कि इन जातियों के लुप्त होने का खतरा हो गया है।

बोधप्रश्न - 4

1. 'रईड डाटा बुक ' (Red Data Book) नामक पुस्तक में विश्व में विलुप्ति का खतरा झेल रहे जन्तु तथा पक्षियों की सूची में 600 जातियों (स्पीशीज) के नाम दिये गये हैं।
2. वर्ष 2002 तक देश में 89 राष्ट्रीय उद्यान तथा 492 अभ्यारण्य स्थापित किये गये हैं।
3. वन्य प्राणी संरक्षण अधिनियम 1972 लागू किया जा चुका है।
4. भारत में 13 बायोस्फियर (जैवमण्डल) आरक्षित क्षेत्र हैं।
5. बाघ पीरयोजना (प्रोजेक्ट टाइगर), 2. गिरि सिंह अभयारण्य योजना एवं 3. हिमालय कस्तूरी 1973 में
6. इन्टरनेशनल यूनियन फॉर कन्जरवेशन ऑफ नेचर एण्ड नेचुरल रिसोर्सेज (IUCN)

5.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. इकोसिस्टम शब्द सर्वप्रथम किसने प्रतिपादित किया था?
   (अ) वीवर एवं क्लीमेंट्स
   (ब) आर. मिश्रा
   (स) टेन्सले
   (द) ओडम
2. इकोसिस्टम में क्या महत्वपूर्ण है?
   (अ) पदार्थों का चक्रीकरण (ब) ऊर्जा का प्रवाह (स) उपयुक्त दोनों
   (द) जैविक घटक
3. इकोसिस्टम के मुख्य दो घटक हैं :
   (अ) पौधे तथा जन्तु
   (ब) साड़ी तथा वृत्त
   (स) जैविक तथा अजैविक
   (द) उपरोक्त सभी
4. जीवित घटकों में सम्मिलित है :
   (अ) केवल उत्पादक
   (ब) केवल उपभोक्ता
   (स) केवल अपघटक
   (द) उपर्युक्त सभी
5. इकोसिस्टम में मनुष्य की क्या स्थिति है?
   (अ) मनुष्य का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है
   (ब) मनुष्य इसमें आवश्यक हो सकता है
   (स) मनुष्य इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है

(द) उपर्युक्त कोई भी कथन सत्य नहीं है.

6. वे कारक, जो पृथ्वी की सतह से सम्बन्धित हैं, कहलाते हैं :

(अ) मृदीयकारक

(ब) स्थलाकृतिक कारक

(स) जलवायवीय कारक

(द) जैविक कारक

प्रदूषण

7. व्यवसायिक शहरो मे श्वसनरोग अधिकता से होते हैं, इनका कारण है :

(अ) धुआँ

(ब) शोर

(स) रेडियोधर्मीपदार्थ

(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

8. जलप्रदूषण का क्या कारण है :

(अ) कीटाणुनाशक पदार्थों का खेतों में छिड़काव

(ब) धुआँ

(स) स्वत:चालित निर्वातक

(द) हवाई जहाज

9. वायुप्रदूषण मुख्य रूप से किससे होता है?

(अ) कीटाणुनाशक दवाइयों के द्वारा

(ब) धुएँ के कारण

(स) कारखानों के अपशिष्ट उत्पाद

(द) शोर

10. प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सकता है :

(अ) सीवेज के उपचार के द्वारा

(ब) विद्युत चालित वाहनों द्वारा

(स) परमाणु बम को रोककर

(द) उपर्युक्त सभी

11. शहरी एवं औद्योगिक क्षेत्रों की सडकों पर वृक्ष लगाने का एक कारण है :

(अ) मनुष्यों की तेज धूप से रक्षा होती है

(ब) इनसे लकड़ी प्राप्त होती है

(स) ये देखने में सुन्दर लगते हैं

(द) ध्वनि तथा वायु प्रदूषण को रोकते हैं

12. प्रदूषणकारी पदार्थ वह रसायन है, जो परिवर्तन करता है :

(अ) किसी स्थान की प्राकृतिक वनस्पति में

(ब) वातावरण के प्राकृतिक सन्तुलन में

(स) प्राकृतिक भू-रसायनिक चक्रों में

(द) किसी स्थान के जंगली पौधों में

जैवविविधता

13. ऐसी पुस्तक जिसमें विलुप्ति का खतरा झेल रहे वन्य जीवों की सूची है, कहलाती है :

(अ) बाइबल

(ब) रेड डाटा बुक

(स) यजुर्वेद

(द) अथर्ववेद

14. निम्न में से किसको पारिस्थितिकीय संतुलन का सूचक माना गया है?

(अ) हिरण

(ब) बाघ

(स) हाथी

(द) चिंकारा

15. भारत में विरल श्रेणी के प्राणियों की संख्या किस वर्ग की सर्वाधिक है?

(अ) स्तनपायी

(ब) पक्षी

(स) मत्स

(द) अकशेरूकी

16. राजस्थान का राज्य पक्षी कौन सा है?

(अ) धूसर तीतर

(ब) सारस क्रोंच

(स) नीलकंठ'

(द) गोडावण

17. निम्न में विभिन्न राज्य एवं विभिन्न राज्यों के पशुओं को दर्शाया है। नीचे दिये कूट की सहायता से सही सुमेलित करिये :

राज्य	**राज्य के पशु**
(I) असम	(i) गीलगाय
(II) हरियाणा	(ii) चिंकारा
(III) मणिपुर	(iii) गैंडा
(IV) राजस्थान	(iv) वामिन मृग

कूट :

	I	II	III	IV
(अ)	(i)	(ii)	(iii)	(iv)
(ब)	(ii)	(i)	(iii)	(iv)
(स)	(iii)	(iv)	(i)	(ii)
(द)	(iii)	(i)	(iv)	(ii)

18. भारतीय हाथी कहाँ का राज्य प्राणी है?
    (अ) आसाम
    (ब) पश्चिम बंगाल
    (स) केरल
    (द) सिक्किम
19. WWF का पूर्ण नाम क्या है?
    (अ) World Wild -life fund
    (ब) World Wilde -fund
    (स) World Wild - fund
    (द) World Wild - fund for nature
20. सिंह अब किस राज्य में ही सीमित हैं?
    (अ) राजस्थान
    (ब) गुजरात
    (स) बंगाल
    (द) उत्तर प्रदेश
21. बाघ परियोजना कहाँ से और कब शुरु की गयी?
    (अ) उत्तर प्रदेश - 1973
    (ब) राजस्थान - 1970
    (स) बंगाल - 1950
    (द) मणिपुर - 1977
22. भारत में बाघ संरक्षित क्षेत्र सर्वाधिक संख्या में कहाँ हैं?
    (अ) उत्तर प्रदेश
    (ब) मध्य प्रदेश
    (स) राजस्थान
    (द) बंगाल

लधुत्तरात्मक प्रश्न :

1. इकोसिस्टम क्या है? इसके विभिन्न घटकों के नाम दीजिए।
2. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।
    (अ) खाद्य श्रृंखला

(ब) खाद्य जाल

(स) इकोसिस्टम

(द) जैवमण्डल

3. उत्पादक तथा उपभोक्ता में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
4. पारिस्थितिकी की दो मुख्य शाखाएँ कौनसी हैं? संक्षेप में बताइये।
5. जैविक तथा अजैविक घटकों के नाम दीजिए।
6. जैवमण्डल किसे कहते हैं? इसे कितनी भागों में बाँटा गया है?
7. प्रदूषण से आप क्या समझते हैं? वायु प्रदूषण नियंत्रक के उपाय बताइये।
8. आज के वातावरण में हाने वाले प्रदूषण के विभिन्न कारकों का उल्लेख कीजिए। उनमें से किसी एक का विवरण दीजिए।
9. निम्नलिखित पर संक्षेप में टिप्पणियाँ लिखिए :

   (अ) वायु प्रदूषण

   (ब) रेडियोधर्मी प्रदूषण

   (स) अपमार्जक

10. जल प्रदूषण के कारणों पर प्रकाश डालिए तथा नियंत्रण के उपाय बताइये।
11. वायु प्रदूषण का वृक्षों तथा मनुष्यों पर क्या प्रभाव पड़ता है?
12. विश्व स्तर पर जैव विविधता के क्षेत्र में गिरावट के प्रमाण प्रस्तुत कीजिए।
13. .IUCN,WWF तथा UNEP से क्या अभिप्राय है?
14. राजस्थान की संकटग्रस्त जातियों के उदाहरण दीजिए।
15. जैव विविधता से क्या अभिप्राय है?
16. राजस्थान के अभ्यारण्य तथा नेशनल पार्कों के उदाहरण दीजिए।
17. वन्य जीव संरक्षण की विधियों को समझाइए।
18. भारत में कितने राष्ट्रीय उद्यान तथा अभ्यारण्य हैं?
19. राष्ट्रीय उद्यान, अभ्यारण्य तथा जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्र में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
20. बाघ परियोजना पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न :

1. इकोसिस्टम (पारिस्थितिकी तन्त्र) से आप क्या समझते हैं? इसके विभिन्न घटकों का वर्णन कीजिए।
2. जैवमण्डल किसे कहते हैं? विभिन्न जैवमण्डल का वर्णन कीजिए।
3. वातावरणीय प्रदूषण से आप क्या समझते हैं? यह कितने प्रकार का होता है? जल प्रदूषण का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
4. वातावरणी प्रदूषकों पर निबंध लिखिए।
5. मनुष्य जीवन पर विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों के प्रभावों का उल्लेख करते हुए प्रदूषण नियंत्रण की विभिन्न विधियों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

6. विकिरण प्रदूषण से आप क्या समझते हैं? प्रदूषण के कारकों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
7. वन्य प्राणियों के प्रबन्धीकरण के विभिन्न प्रयासों पर सविस्तार चर्चा कीजिए।
8. अभ्यारण्य रक्षण से आप क्या समझते हैं? अभ्यारण्य विनाश से होने वाली हानियों का अनुमान लगाइए।
9. राज्य स्तर पर किए जा रहे वन्य जीवन संरक्षणों पर सविस्तार चर्चा कीजिए।
10. वन्य जीवों की सुरक्षा हेतु बनाई गई पीरयोजनाओ पर प्रकाश डालिए।

अभ्यासार्थ वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (स)	2. (स)	3. (स)	4. (द)	5 (स)
6. (ब)	7. (अ)	8. ()	9 (ब)	10 (द)
11. (द)	12 (ब)	13. (ब)	14. (ब)	15. (ब)
16. (द)	17. (द)	18. (ब)	19. (द)	20. (ब)
21. (अ)	22. (ब)			

इकाई 6 : पादप ऊतक एवं आवृतबीजियों की औतिकी (Plant tissues and Histology of Angiosperms)

इकाई संरचना

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 पादप ऊतक

6.2.1 विभज्योतक ऊतक

A. प्राथमिक विभज्योतक

B. द्वितीयक विभज्योतक

6.2.2 स्थायी ऊतक

A. सरल ऊतक

B. जटिल ऊतक

C. स्रावी ऊतक

6.3 ऊतक तन्त्र

6.3.1. भरण ऊतक तन्त्र

6.3.2. संवहन ऊतक तन्त्र

6.4. आवृत बीजियों की आन्तरिक संरचना

6.4.1 जड़ की आंतरिक संरचना

6.4.2 तने की आंतरिक संरचना

6.4.3 पर्ण की आंतरिक संरचना

6.5 द्वितीयक वृद्धि

6.5.1 मूल में द्वितीयक वृद्धि

6.5.2 तने में द्वितीयक वृद्धि

6.5.3 वार्षिक वलय एवं आयु

6.6 सारांश

6.7 शब्दावली

6.8 संदर्भ ग्रन्थ

6.9 बौध प्रश्नों के उत्तर

6.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई का उद्देश्य आवृतबीजी पादपों के विभिन्न अंगो का निर्माण करने वाले कोशिका समूह अथवा ऊतकों की प्रकृति एवं कार्य के बारे में जानकारी देना है। इसके अतिरिक्त आंतरिक संरचनाओं की विविधता से अवगत कराना है। इकाई के अन्तिम भाग में जड़ एवं तने की द्वितीयक वृद्धि की कार्य प्रणाली से अवगत करवाना तथा वार्षिक वलयों के निर्माण एवं वृक्ष की आयु में सम्बन्ध से अवगत करवाना है।

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

आवृतबीजी पादपों का शरीर प्राय: पाँच प्रमुख भागों - जड़, तना, पत्ती, पुष्प एवं बीज व फल में विभेदित होता है। पादप के सभी अंगों के मिलने से शरीर के विभिन्न तन्त्रों का निर्माण होता है। कोशिका का समूह जो विशिष्ट कार्य करता है, ऊतक कहलाता है। ऊतकों के समूह मिलकर एक पादप अंग का निर्माण करते हैं तथा सभी अंग सामूहिक रूप से पादप शरीर का अभिन्न भाग होते हैं। पादप अंगों में विभिन्न प्रकार के ऊतक विभिन्न प्रकार से व्यवस्थित होते हैं, जो विशिष्ट कार्य का निष्पादन करते हैं। ऊतकीय अध्ययन को **औतिकी** (histology) कहा जाता है। ऊतक शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम **ग्रियू** (Grew) द्वारा किया गया था।

किसी अग की आंतरिक संरचना का अध्ययन उस अंग के विभिन्न तलों में काट काटकर सूक्ष्मदर्शी की सहायता से किया जाता है। पौधों की आंतरिक संरचना के अध्ययन को **आंतरिक** (anatomy) कहा जाता है।

6.2 ऊतक (Tissues)

बहुकोशिकीय जीवों में कोशिकाएं सम्मिलित रूप से विभिन्न प्रकार के ऊतकों का निर्माण करती है। ऊतक कोशिकाओं का वह समूह होता है, जिसकी प्रत्येक कोशिका कार्य में अन्य कोशिकाओं का सहयोग करती है। अर्थात् कोशिकाओं का वह समूह जो विशिष्ट प्रकार का कार्य करता है, ऊतक कहलाता है।

संरचनात्मक एव क्रियात्मक दृष्टि से ऊतक मूल रूप से दो प्रकार के होते हैं- **विभज्योत्तकी** (meristematic) एवं **स्थायी** (permanent)।

6.2.1 विभज्योत्तकी-ऊतक (Meristematic)

विभज्योत्तकी ऊतकों की कोशिकाएं विभाजनशील अथवा विभाजन क्षमता युक्त होती हैं तथा नई कोशिकाएं बनाती हैं। इस ऊतक की कोशिकाएं आकार में छोटी, गोलाकार, अण्डाकार या बहुभुजी व लगभग समव्यासी (isodiametric) प्रकार की होती है। इन कोशिकाओं मे सघन, रिक्तिका रहित अथवा छोटी रिक्तिकाओ युक्त जीवद्रव्य तथा एक बडा स्पष्ट केन्द्रक होता है। इनकी कोशिका भित्ति पतली समांगी (homogenous) अथवा स्थूलन रहित होती है। इस ऊतक की कोशिकाएं प्राय: विभाजनशील अवस्था मे रहती है अथवा इन में विभाजन क्षमता बनी रहती है।

स्रोत के आधार पर विभज्योत्तकी ऊतक - **प्राथमिक विभज्योत्तक** (primary meristem) अथवा **द्वितीयक विभज्योत्तक** (secondary meristem) कहलाते हैं।

A. **प्राथमिक विभज्योत्तक** (primary meristem) : पौधों में प्राथमिक विभज्योतक की उत्पत्ति प्रांकुर अथवा प्ररोह शीर्ष एवं मूलांकूर अथवा मूल शीर्ष से होती है। प्राथमिक विभज्योत्तक कोशिकाओं के शीर्ष से दूर हो जाने तथा चारों ओर से स्थायी ऊतकों से घिर जाने पर भी इनकी विभाजन क्षमता नष्ट नहीं होती है।

स्थिति के आधार पर प्राथमिक विभज्योत्तक निम्न तीन प्रकार का होता है : -

(ii) **शीर्षस्थ विभज्योत्तक** (Apical meristem). ये ऊतक स्तम्भ तथा मूल के वृद्धि करते हुए शीर्षों पर स्थित होते हैं। सभी प्राथमिक ऊतक (विभज्योत्तक एवं स्थायी) का निर्माण सर्व प्रथम इन्हीं से होता है। शीर्षस्थ विभज्योत्तक की क्रियाशीलता से पौधे की लम्बाई में वृद्धि होती है।

(iii) **अन्तर्वेशी विभज्योत्तक** (intercalary meristem) : ये स्थायी ऊतकों के बीच में निर्मित हो जाने पर शीर्षस्थ विभज्योत्तक से पृथक् हो जाते हैं। वास्तव में यह पीछे छूट गया शीर्षस्थ विभज्योतक होता है। अन्तर्वेशी विभज्योत्तक तने के पर्व के आधार पर तथा पर्णाधार में स्थित होते हैं, तथा इन अंगों की लम्बाई में वृद्धि के लिए उत्तरदायी होते हैं।

(iv) **पार्श्वीय विभज्योत्तक** (Lateral Meristem) : ये स्तम्भ अक्ष के समानान्तर पार्श्व (laterally) में स्थित होते हैं। तने के संवहन पूल में स्थित कैम्बियम (cambium) इसका प्रमुख उदाहरण है। इसकी सक्रियता से द्वितीयक स्थायी ऊतक (द्वितीयक जाइलम एवं द्वितीयक फलोयम) बनते हैं, जिनसे स्तम्भ की मोटाई में वृद्धि होती है।

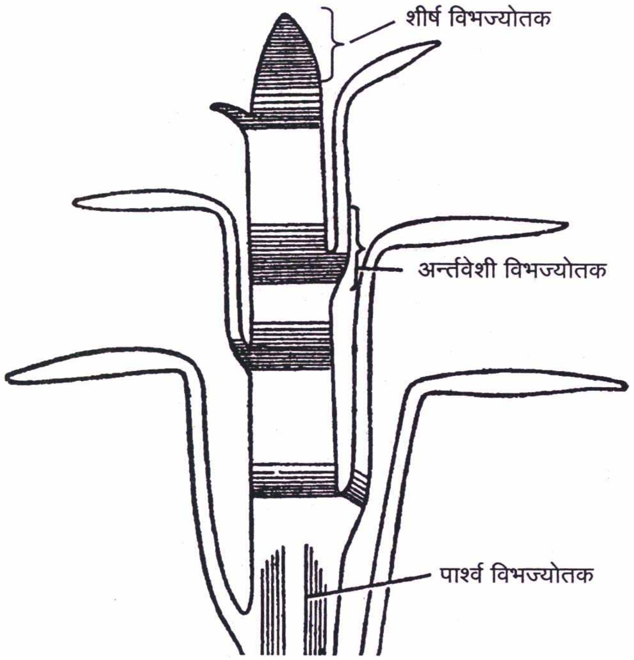

चित्र 6.1 : अक्ष का उदग्र काट विभज्योतकों की स्थिति दर्शाते हुए

B. **द्वितीयक विभज्योतक** (sacondary meristem) : इस विभज्योत्तक का विकास देरी से पादप के वृद्धिकाल की किसी अवस्था में अविभज्योत्तकी अथवा स्थायी ऊतक से होता है। स्थायी ऊतकों की कुछ कोशिकाएं आवश्यकतानुसार विभाजन की क्षमता पुन:प्राप्त कर

भज्योत्तकी बन जाती है, जिसे द्वितीयक विभज्योत्तक कहते हैं। ये स्थिति में सदैव पार्श्वीय (lateral in position) होती हैं। द्वितीयक विभज्योत्तक मूल तथा स्तम्भ (अक्ष) की मोटाई में वृद्धि करते हैं। कार्क एधा (corl cambium) तथा अन्तरापूलीय एधा (interfascicular cambium) इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

6.2.2 स्थायी ऊतक (Permanent tissue)

स्थायी ऊतकों की कोशिकाओं में प्राय : विभाजन क्षमता पूर्णत : समाप्त हो चुकी होती है तथा विभेदन के फलस्वरूप ये निश्चित आकार ग्रहण कर विशिष्ट कार्य करती हैं। इनकी कोशिकाएँ जीवित या मृत, पतली भित्तियुक्त अथवा मोटी भित्ति की तथा विभिन्न आकार की हो सकती हैं। स्थायी ऊतक प्राथमिक अथवा द्वितीयक उत्पत्ति के हो सकते हैं। प्राथमिक विभज्योत्तक द्वारा प्राथमिक स्थायी ऊतक तथा द्वितीयक विभज्योत्तक द्वारा द्वितीयक स्थायी ऊतक बनते हैं। स्थायी ऊतक निम्न तीन प्रकार के होते हैं - (i) सरल ऊतक, (ii) जटिल ऊतक रख (iii) स्रावी ऊतक।

A. **सरल ऊतक** (Simple tissue) : यह ऊतक समांगी कोशिकाओं अर्थात् एक ही प्रकार की कोशिकाओं द्वारा निर्मित होते हैं। इसे निम्न तीन प्रकारों में विभक्त किया जाता हैं -

(i) **मृदूतक** (Parenchyma) : मृदूतक की कोशिकाएँ पतली भित्तियुक्त, समव्यासीय तथा जीवित होती हैं। इनकी भित्ति पतली सेल्यूलोज, हैमीसैल्यूलोज व पैक्टिक युक्त होती है तथा कोशिकाओं के मध्य अन्तरकोशिकी अवकाश पाये जाते हैं। मृदूतक सामान्यतः पादप के कोमल तथा मांसल भागों में मिलते है तथा इनका मुख्य कार्य खाद्य संग्रह करना होता है।

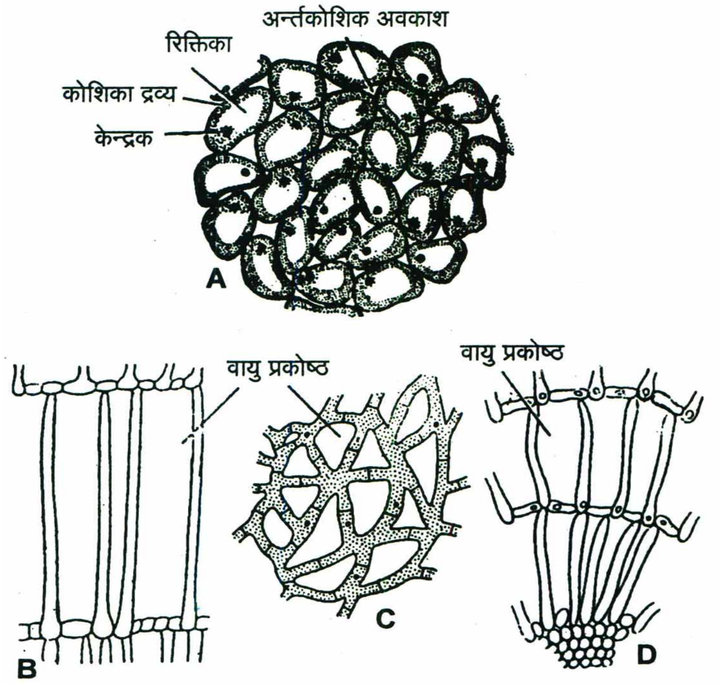

चित्र 6.2: विभिन्न प्रकार के मृदूतक

मृदूतक निम्न प्रकार के होते हैं-

(a) हरित मृदूतक (Chorenchyma) : यह पादप के हरे भागों में पाया जाता है। इन मृदूतक में हरित लवक पाए जाते हैं। अत : इनका मुख्य कार्य प्रकाश संश्लेषण है।

(b) वायुमृदूतक (Aerenchyma) : इस मृदूतक के मध्य बड़े अन्तरकोशिक स्थान पाए जाते हैं। इसका मुख्य कार्य जलीय पौधों में प्लावकता प्रदान करना है।

(c) छड़ मृदूतक (Prosenchyma) : इनकी कोशिकाएँ लम्बी छड़नुमा तथा मोटी भित्ति युक्त होती है। यह स्तम्भ को यांत्रिक दृढ़ता प्रदान करता है।

(d) तारक मृदूतक (Stellate parenchyma) : कुछ जलीय पौधों की पत्तियों के पर्ण-मध्योतक में तारेनुमा आकृति की कोशिकाएँ पाई जाती है, जो यान्त्रिक दृढ़ता प्रदान करती है।

(ii) स्थूलकोण ऊतक (Collenchyma) : इस ऊतक की कोशिकाएँ जीवित तथा अन्तराकोशिक अवकाश रहित तथा तिरछी अन्त:भित्ति वाली होती है। इन कोशिकाओं में अन्तरकोशिकी स्थल के सामने वाले कोणों पर कोशिका भित्ति अधिक मोटी तथा मध्य भाग में अपेक्षाकृत पतली होती है। भित्ति की यह मोटाई सेस्यूलोज व पेक्टिन के निक्षेपण के कारण होती है। इन कोशिकाओं में कभी-कभी हरित लवक भी उत्पन्न हो जाते है। इसका मुख्य कार्य कोमल अंगों को लचीलापन व दृढ़ता प्रदान करना है।

स्थूलकोण ऊतक प्राय: तीन प्रकार के होते हैं -

(a) स्तरित (Lamellar) : इसमें स्थूलन स्पर्श रेखीय भित्तियों पर होता है। यह सूरजमुखी तने का बाहरी वल्कुट बनाता है।

(b) कोणीय (Angular) : इनमें स्थूलन कोशिकाओं के कोणों तक ही सीमित होता है। यह तने के परिधिय भाग में उभारों के नीचे पाया जाता है।

(c) नलिकाकार (Tubular) : इनमें निक्षेपण केवल भित्तियों के अन्तरकोशिक स्थानों को घेरे हुए भाग में पाया जाता है। यह भी सामान्यत : तने के बाहरी वल्कुट में पाया जाता है।

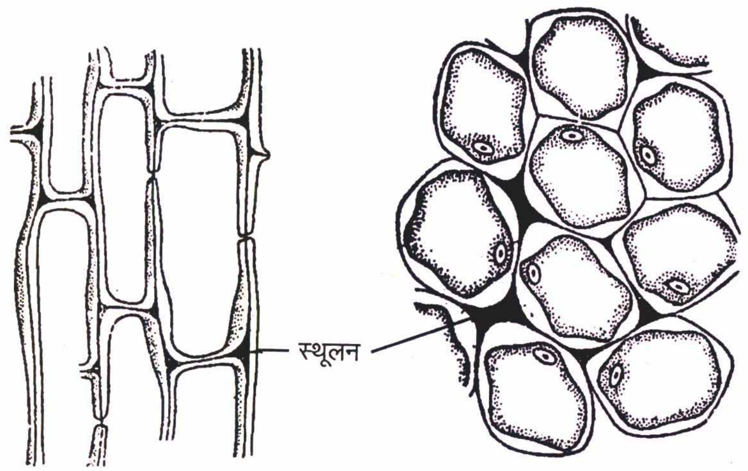

चित्र 6.3 : स्थूलकोणोतक : A. अनुदैध्र्य काट, B. अनुप्रस्थ काट

(iii) दृढ़ोतक (Sclerenchyma) : इस ऊतक की कोशिकाएँ प्राय: लम्बी, संकरी एवं नुकीले सिरों वाली होती है। इनकी कोशिका भित्तियां अत्यधिक मोटी एवं गर्त युक्त होती है। ये कोशिकाएँ मृत होती है तथा इनका मुख्य कार्य पादप को बलकृत शक्ति व दृढ़ता प्रदान करना है। इनकी लम्बाई 1-8 मी.मी तक होती है परन्तु कुछ एन्जियोस्पर्म पौधों में 550मी.मी. (फ्लेक्स तन्तु) तक होती है। कभी-कभी दृढ़ ऊतक की कोशिकाएँ समव्यासी होती है तथा इनकी कोशिका भित्ति इतनी अधिक मोटी हो जाती हैं कि कोशिका गुहा लगभग बन्द हो जाती है। इस प्रकार की कोशिकाओं को दृढ़-कोशिका (stone cells) कहते हैं। इनका कार्य पादप भागों को दृढ़ता प्रदान करना है। दृढकोशिकाएँ अष्ठिल बीजों व अष्ठिल फलों में पाई जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ तनों व पत्तियों में भी पाई जाती है।

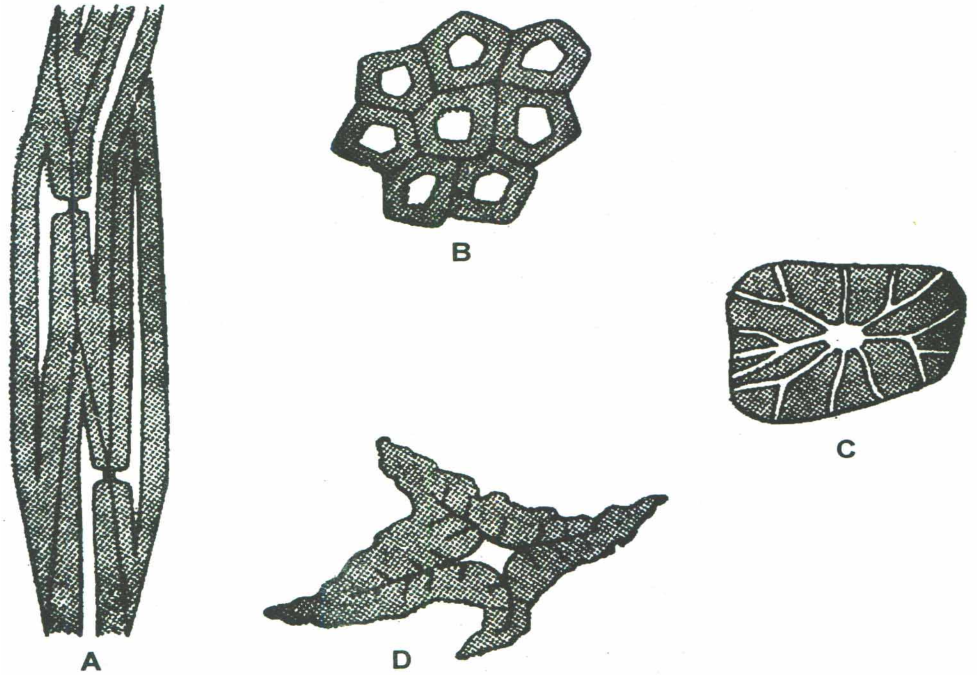

चित्र 6.4 : दृढ़ ऊतक : A. तन्तु का अनुदैर्ध्य काट; B. तन्तु का अनुप्रस्थ काट; C. दृढ़ कोशिका का काट; D. सम्पूर्ण दृढ़ कोशिका

B. जटिल ऊतक (Complex tissue) : जटिल ऊतक में एक से अधिक प्रकार की कोशिकाएँ होती है तथा ये सभी मिलकर एक इकाई की तरह कार्य करती है। जटिल ऊतक दो प्रकार के होते है। जाइलम तथा फ्लोयम। जाइलम, जल तथा घुलित लवणों का संवहन करती है। जबकि फ्लोयम मुख्यतया खाद्य पदार्थों का संवहन करता है। जाइलम तथा फ्लोयम चूंकि संवहन का कार्य करते हैं इसलिए इन्हें संवहन ऊतक भी कहते है।

(i) जाइलम (Xylem) : यह मुख्यत: चार प्रकार की कोशिकाओं-वाहिनिकाओं (tracheids), वाहिकाओं (vassels), **जाइलम तन्तु** (xylem fibres) तथा **जाश्लम मृदूतक** (xylem parenchyma) से बना होता है।

(a) वाहिनिकाएँ (Tracheids) : ये लम्बी, नलिकाकार, बडी गुहायुक्त कोशिकाएँ होती हैं जिनके सिरे क्रमश: संकरे होते है तथा सिरों पर एक दूसरे से जुडी रहती हैं। अनुप्रस्थ काट में ये बहुभुजाकार, वर्गाकार अथवा गोलाकार दिखाई देती है। परिपक्व अवस्था में ये कोशिकाएँ मृत होती है। इनकी कोशिका भित्तिया लिग्निन के निक्षेपण के कारण अत्यधिक मोटी होती है। भित्तियो में स्थूलन वलयाकार (annular), सर्पिल (spiral), सोपानवत (scalaraiform), जालिकावत (reticulated), अथवा गर्तीय (pitted) हो सकता है। गर्त साधारण अथवा परिवेशित प्रकार के होते हैं। इनका मुख्य कार्य जल परिवहन होता है तथा भित्तियों के लिग्निन युक्त होने के कारण बलकृत ऊतक का भी कार्य करती है।

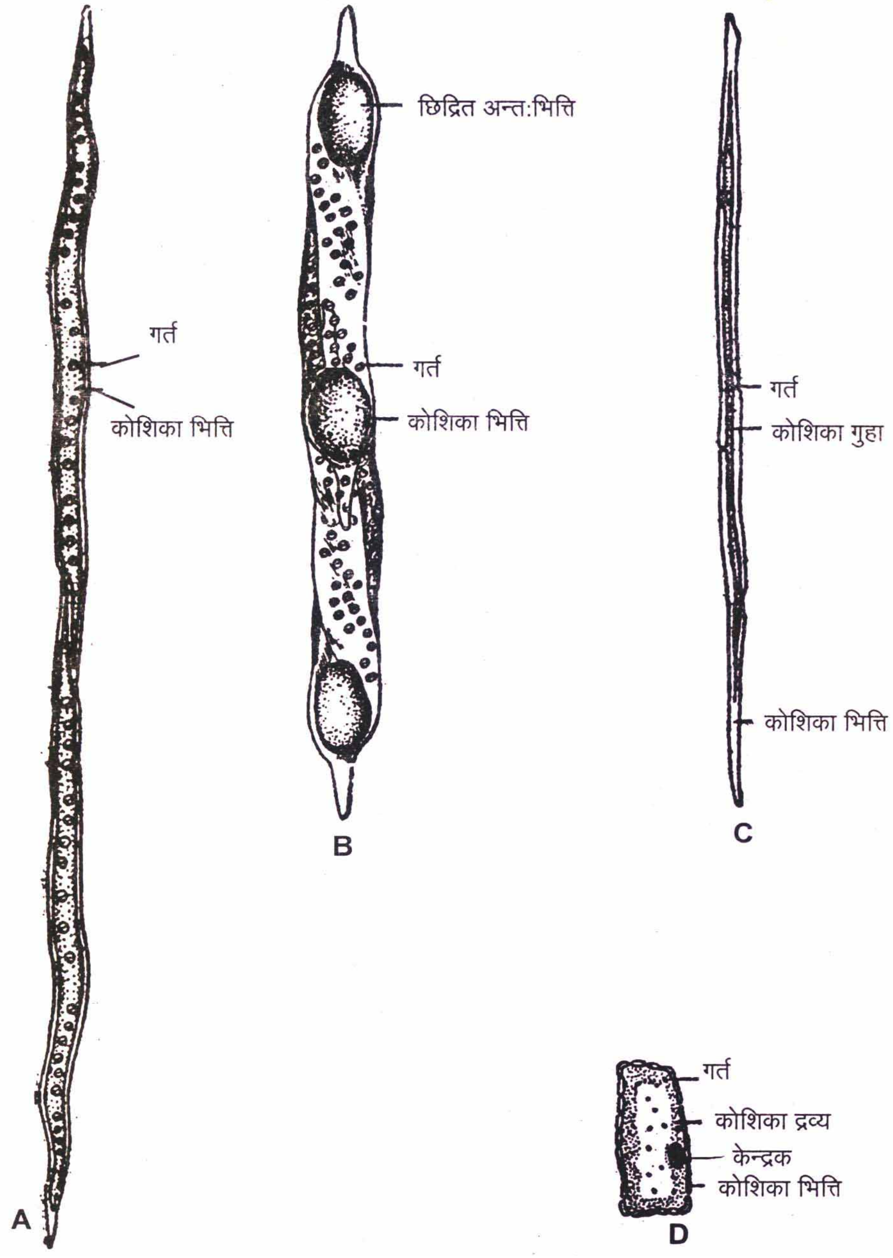

चित्र 6.5 : जाइलम के विभिन्न घटक :

A. वाहिनिकाएँ B. वाहिकाएँ; C. जाइलमतन्तु D. जाइलम मृदूतक

(b) वाहिकाएँ (Vessels) : ये एक कोशिका संरचनाएँ न होकर लम्बी, बेलनाकार कोशिकाओं या वाहिका तत्वों की बनी होती है। वाहिका तत्व अनुदैर्ध्य पंक्ति में सिरों से जुड़ी रहती है तथा संयुक्त अनुप्रस्थ भित्ति आंशिक या पूर्ण रूप से नष्ट हो जाती है। इस प्रकार वाहिकाएँ चोड़ी गुहा वाली लम्बी उदग्र नलिकाएँ होती है जो अनेक इकाइयों से बनी होती है। वयस्क वाहिकाएँ मृत होती है तथा इनकी भित्ति मोटी व गर्तयुक्त होती है। इनका कार्य भी जल परिवहन का होता है। वाहिकाएँ केवल आवृतबीजीयों की काष्ठ में उपस्थित होती है। टेरिडोफाइटा तथा अनावृत बीजी पादपों में इनका अभाव होता है।

(c) जाइलम तन्तु (Xylem fibres) : ये साधारण दृढ़ ऊतक तन्तु होते हैं जो जाइलम में पाए जाते हैं। ये पतले, नुकीले सिरों युक्त अत्यधिक मोटी भित्ति की संकीर्ण गुहायुक्त कोशिकाएँ होती हैं। ये कोशिकाएँ मृत होती हैं तथा जाइलम ऊतक को बलकृत शक्ति प्रदान करती है।

(d) जाइलम मृदूतक (Xylem parenchyma) : जाइलम की अन्य कोशिकाओं के साथ मृदूतकी कोशिकाएँ भी होती है। इन्हें काष्ठ मृदूतक कहते है। ये कोशिकाएँ अन्य मृदूतक कोशिकाओं के समान सजीव रख पतली भित्ति युक्त होती है। ये समान्यत: संग्रह कोशिकाओं का कार्य करती है और प्रत्यक्ष रूप से जल संवहन में सहायक होती है। कुछ मृदूतक कोशिकाएँ जाइलम के निश्चित क्षेत्रों में पाई जाती है। एवं मज्जा रश्मि बनाती है। इन्हें रश्मि कोशिकाएँ (ray cells) कहते है।

(ii) फ्लोयम (Phloem) : यह ऊतक भी चार प्रकार की कोशिकाओं चालनी नलिका (sieve tube),सहकोशिकाएँ (companion cells), फ्लोयम मृदूतक (phloem parenchyma) एवं फ्लोयम तन्तु (fibres) का बना होता है।

(a) चालनी नलिका (Sieve tube) : चालनी नलिका वाहिका के समान लम्बी पंक्ति में जुड़ी हुई कोशिकाओं (चालनी कोशिकाओं) से बनती है। ये कोशिकाएँ पतली जीवित, लम्बी तथा अधिक व्यास वाली होती है तथा इनकी अनुप्रस्थ भित्ति में अनेक छोटे-छोटे छिद्र होते है, जिसके फलस्वरूप यह चालनी के समान दिखाई देती है। इस छिद्र युक्त अनुप्रस्थ भित्ति को **चालनी पट्टिका** (sieve plate) कहते है। अनावृतबीजीयों में चालनी पट्टिका त्रिज्य व स्पर्शरेखीय भित्ति पर होते है। चालनी नलिका कोशिकाओं में जीवद्रव्य सक्रीय होता है, परन्तु परिपक्व अवस्था में केन्द्रक अनुपस्थित होता है। चालनी नलिका खाद्य संवहन के लिए उत्तरदायी होती है तथा वृद्धि काल में सक्रिय कार्य करती है। वृद्धिकाल के अन्त में चालनी पट्ट पर केलोस (callose) का जमाव हो जाता है जो छिद्रों को बन्द कर देता है, परन्तु बसन्त ऋतु (वृद्धि काल) में यह घुल जाता है, जिससे छिद्र खुल जाते है।

(b) सहकोशिकाएँ (Companian cells) : यह कोशिकाएँ टेरिडोफाइटा तथा अनावृतबीजी पादपों में अनुपस्थित होती है। ये चालनी नलिका कोशिकाओं की तुलना में छोटी संकीर्ण तथा केन्द्रक युक्त होती है। सहकोशिका प्रत्येक चालनी कोशिका के साथ पार्श्व दिशा में स्थित होती है। चालनी तथा सहकोशिकाओं के जीवद्रव्य का सम्पर्क प्लाज्मोडेस्मेटा द्वारा होता है। इनका कार्य भोज्य पदार्थ के संहवन में सहायता तथा चालनी कोशिकाओं की क्रियाओं पर नियंत्रण करना है।

(c) फ्लोयम मृदूतक (phioem parenchyma) : एकबीजपत्री पादपों के अतिरिक्त सभी पादपों के फ्लोयम में मृदूतक कोशिकाएँ पाई जाती है जिन्हें फ्लोयम या वास्ट मृदूतक कहते है। ये चालनी नलिका व सहकोशिका के साथ पाई जाती है। ये कोशिकाएँ पहली भित्ति युक्त तथा लम्बी या बेलनाकार होती है। इनका कार्य भोजन का संचय तथा संवहन में सहायता करना है। फ्लोयम ऊतक में ये क्रमानुसार परतों में व्यवस्थित होकर फ्लोयम रश्मि (phloem fibres) का निर्माण भी करती है।

(d) फ्लोयम तन्तु (phloem fibres) : ये दृढ़ ऊतक तन्तु है, जो फ्तोयम में उपस्थित होने के कारण फ्लोयम तन्तु या लिब्रिफार्म तन्तु कहलाते है। इनकी कोशिकाएँ लम्बी, निर्जीव तथा नुकीले सिरे वाली होती है। इनकी भित्ति लिग्निन युक्त तथा गर्तमय होती है। इनका कार्य यान्त्रिक दृढ़ता प्रदान करना है। प्राथमिक फ्लोयम में प्राय: इनका अभाव होता है परन्तु द्वितीयक फ्लोयम में सदैव पाये जाते है।

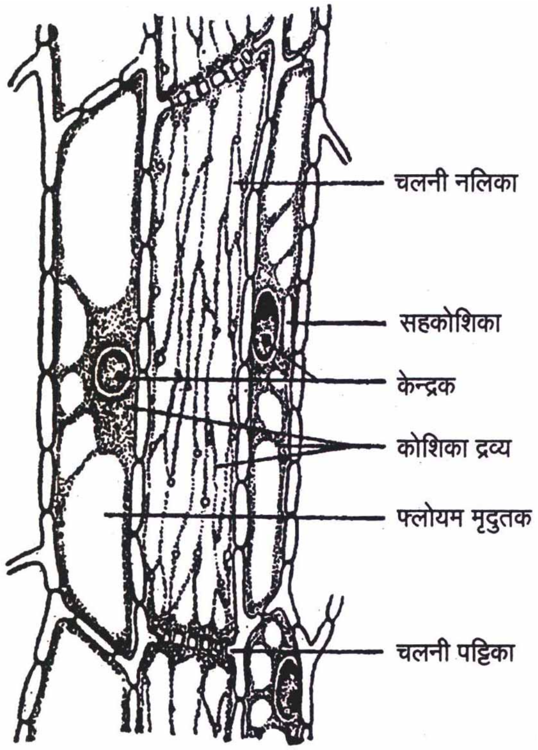

चित्र 6.6 : अनुदैधर्य काट में फ्लोएम के घटक

C. **स्रावी ऊतक** (Secretory tissues) : स्रावी ऊतक सभी पादपों में नहीं पाए जाते है। यह ऊतक विशेष अथवा स्रवण कार्य के लिए रूपान्तरित होते है। यह मुख्यत : रेजीन, गोंद, तेल, लेटेक्स इत्यादि का स्रवण करते है। ये मुख्यत : दो प्रकार के होते है - रबरक्षीर ऊतक एवं ग्रन्थिल ऊतक।

(i) **रबरक्षीर ऊतक** (Laticiferous) : इनमें सफेद या पीले रंग का गाढ़ा तरल पदार्थ भरा रहता है, जिसे रबरक्षीर (latex) कहते है। रबरक्षीर में प्रोटीन, शर्करा, श्लेष्म, एल्केलायड तथा रबर इत्यादि अपशिष्ट पदार्थ होते है। यह पदार्थ पतली भित्ति युक्त बहुकेन्द्रकी, शाखित नलिकाओं अथवा कोशिकाओं में भरा होता है। संरचना के आधार पर यह ऊतक दो प्रकार का होता है।

(a) **लेटेक्स कोशिकाएँ** (Latex vessels) : ये एक कोशिक, लम्बी, शाखित एवं बहुकेन्द्रक संरचनाएँ होती है। लेटेक्स कोशिकाएँ मृदूतकी कोशिकाओं के मध्य फैली रहती है तथा आपस में संयुक्त नहीं होती हैं। ये कोशिकाएँ केलोट्रोपिस (Calotropis) तथा यूफोर्बिया (Euphorbia) आदि पादपों में मिलती है।

(b) **लेटेक्स वाहिकाएँ** (Latex vessels) : इनका निर्माण लेटेक्स कोशिकाओं के मध्य की भित्ति के घुल जाने तथा कोशिकाओं की शाखाओं के संयुक्त हो जाने से होता है। यह मृदूतकी कोशिकाओं के मध्य एक जाल सा बना लेती है। अफीम, सत्यानाशी तथा कम्पोजिटी कुल के सदस्यों में लेटेक्स वाहिकाएँ उपस्थित होती है।

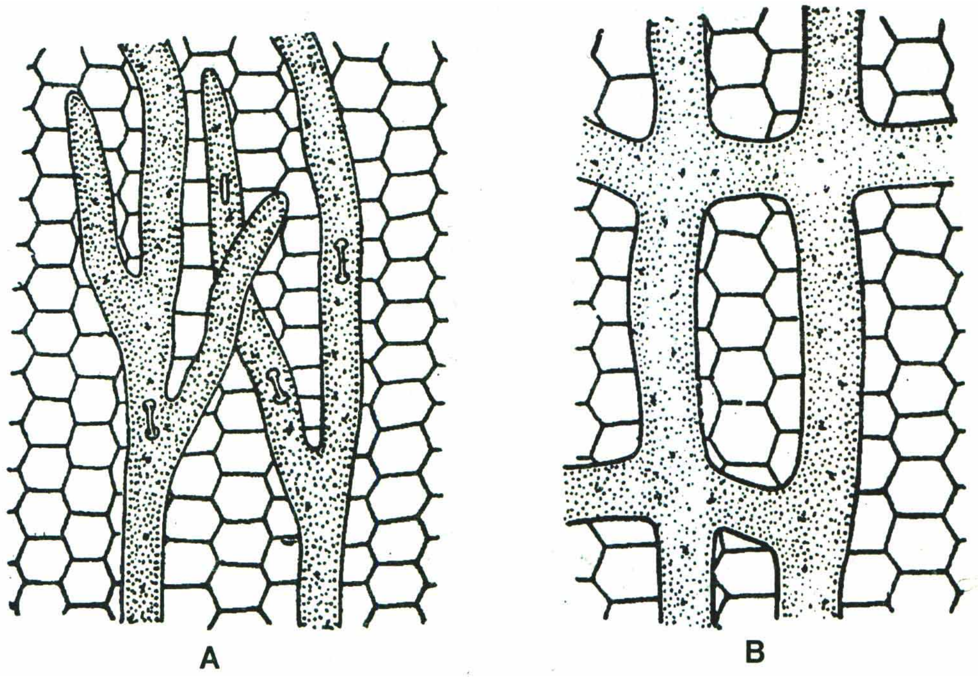

चित्र 6.7: रबरक्षीर ऊतक: A. लेटेक्स कोशिकाएं; B. लेटेक्स वाहिकाएं

(ii) ग्रन्थिल ऊतक (Glandular tissue) : ये पृथक कोशिकाओं का कोशिका समूह के रूप में मिलते है जिन्हें ग्रन्थि कहते हैं। ये मुख्यत: गोंद, तेल या पाचक एन्जाइम्स का स्त्रवण करते हैं। ग्रन्थियाँ स्थिति में आंतरिक अथवा बाह्य हो सकती है-

(a) आंतरिक ग्रन्थियाँ (Internal glands) : ये ऊतकों के मध्य स्थित होती हैं तथा इनका स्राव विशेष कोशिकाओं या गुहाओं में रहता है।

(b) बाह्य ग्रन्धियाँ (External glands) : ये ग्रन्धियाँ सतही अथवा अधिचर्म में स्थित होती है तथा इनका स्राव अंग की सतह पर होता है। उदाहरण - जल रन्ध्र, पुष्प की मकरन्द ग्रन्थि तथा तम्बाकू के सतही रोम आदि। जल रन्ध्र, नमी में उगने वाले शाकीय पौधों में पत्ती के किनारों पर शिरा के अन्त में स्थित होते हैं। ये शीर्ष पर एक छिद्र द्वारा खुलते हैं तथा छिद्र दो द्वार कोशिकाओं द्वारा घिरा रहता है। द्वार कोशिकाओं में गति नहीं होती है तथा ये छिद्र हमेशा खुले रहते हैं। जल रन्ध्र के ठीक नीचे एक वायु गुहा होती है। गुहा में अर्न्तकोशिक अवकाश युक्त मृदूतकी कोशिकाएँ होती हैं जिन्हें एपिथेम (epithem) कहते है। एपिथेम में वाहिनिकाओं के अन्तिम सिरे खुलते है। जलरन्ध्र से जल बूदों के रूप में बाहर निकलता है तथा इस क्रिया को बिन्दुस्राव (Guttation) कहते है।

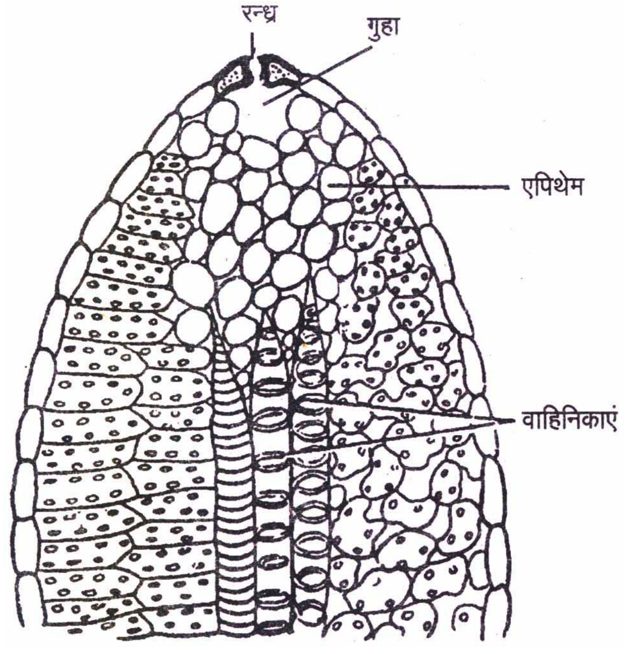

चित्र 6.8: जलरन्ध अनुदैर्ध्य काट में

6.3 ऊतक तंत्र (Tissue system)

पादप शरीर के ऊतक जो विशिष्ट कार्य के लिए क्रम से व्यवस्थित रहते हैं ऊतक तंत्र कहलाते हैं। ऊतक तंत्र निम्न प्रकार के होते हैं -

6.3.1 अधिचर्म ऊतक तंत्र (Epidermal tissue system)

इसे त्वचीय ऊतक तंत्र भी कहते है। इसके द्वारा पादप शरीर की बाह्य त्वचा या अधिचर्म बनती है। इस तन्त्र का परिवर्धन बाह्यत्वचाजन (dermatogen) से होता है। पादप शरीर के भागों में सामान्यत: अधिचर्म का एक स्तर पाया जाता है किन्तु कुछ पादपों में यह द्विस्तरीय से बहुस्तरीय तक होती है। सामान्यत: इन कोशिकाओं में हरितलवक अनुपस्थित होते हैं। यह सरंक्षी आवरण का कार्य करती है तथा इससे विभिन्न संरचनाएँ उत्पन्न होती हैं जैसे-रोम तथा रन्ध्र।

रन्ध्र : ये अधिचर्म पर पाये जाने वाले सूक्ष्म छिद्र होते हैं, जो दो द्वार कोशिकाओं से निर्मित होते हैं। द्वार कोशिकाएँ प्राय : दो से छ: सहायक कोशिकाओं द्वारा घिरी रहती है। रन्ध्रों का कार्य रन्ध्रीय वाष्पोत्सर्जन तथा गैसीय विनिमय करना है।

रोम : अधिचर्म पर पाई जाने वाली अतिवृद्धियों को रोम या त्वचा रोम कहते है। ये अतिवृद्धिया चिरस्थायी या अल्पकालिक होती है। रोम एक कोशिक अथवा बहुकोशिक हो सकते हैं तथा बहुकोशिक रोम शाखित अथवा अशाखित प्रकार के होते है।

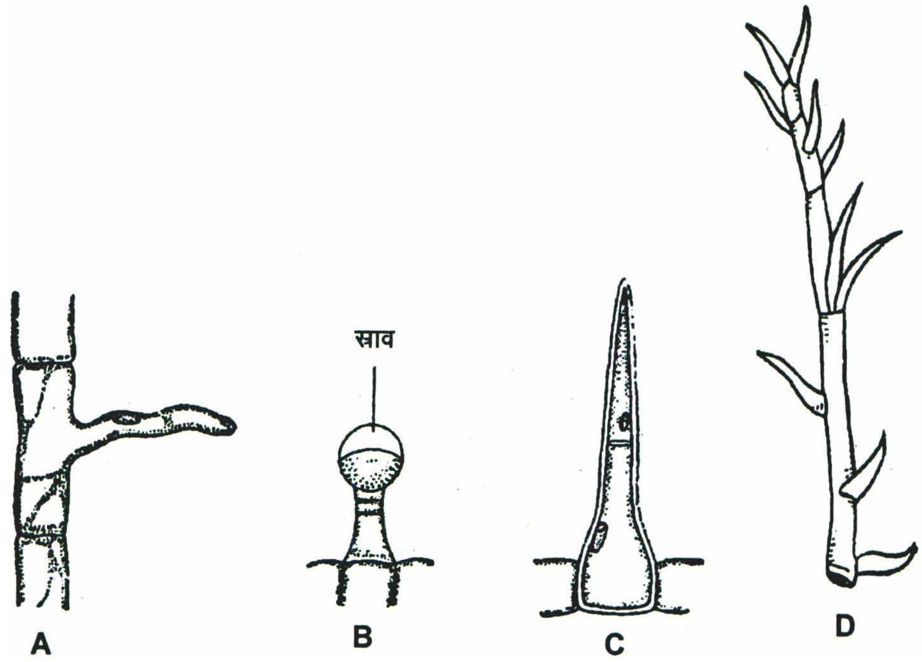

चित्र 6.9: अधिचर्म रोम :

6.3.2 भरण ऊतक तंत्र (Ground tissue system)

भरण ऊतक का विभेदन भरण विभज्योतक (ground meristem) से होता है। वल्कुट, अन्तश्चर्म, परिरम्भ, मज्जा व मज्जा रश्मि भरण ऊतक के घटक है।

(i) वल्कुट (Cortex) : यह अधिचर्म के नीचे स्थित भाग है जो अन्दर की ओर अन्तश्चर्म द्वारा सीमित रहता है। इसकी कोशिकाएँ प्राय: पतली भित्ति युक्त, मृदूतकी, अन्तरकोशिका अवकाश युक्त अथवा स्थल रहित होती है। कभी कभी बाह्य परतें स्थूलकोणोतक या

दृढ़ोतक से बनी होती है जिसे अधश्चर्म (hypodermis) कहते हैं। एक बीजपत्री तनों में संवहन पूल बिखरे हुए होने के कारण वल्कुट, अन्तश्चर्म, परिरम्भ व मज्जा का स्पष्ट विभेदन नहीं होता है, परन्तु अधिचर्म के नीचे वल्कुट की कुछ परतें दृढ़ोतकी अधश्चर्म (hypodermis) बनाती है। वल्कुट का मुख्य कार्य संवहन ऊतकों का सरंक्षण, खाद्य संग्रहण तथा यदाकदा प्रकाश संश्लेषण करना है।

(ii) अन्तश्चर्म (Endodermis) : वल्कुट की सबसे भीतरी परत अन्तश्चर्म कहलाती है। इसकी कोशिकाएँ मृदूतकी, वर्गाकार या बैरल के आकार की दिखाई देती है। इनमें प्राय: मंड कण उपस्थित होते हैं, इसलिए इसे मन्द- आच्छद (starch sheath) भी कहते हैं। तने में यह परत स्पष्ट या अस्पष्ट होती है, परन्तु जड़ में स्पष्ट परत के रूप में होती है। अन्तश्चर्म की कोशिकाओं की बाहय स्पर्श रेखीय भित्ति पतली जबकि भीतरी स्पर्श रेखीय तथा अरीय भित्ति मोटी होती हैं। कभी-कभी इनमें मोटाई निव्यित पट्टी के आकार में होती है, जिसे **कैस्पेरियन पट्टीकायें** (casparian strips) कहते हैं। जाइलम के प्रोटोजाइलम के सम्मुख अन्तश्चर्म कोशिकाएँ पतली भित्ति की होती है जिन्हें मार्ग कोशिकाएँ (passage cells) कहते है। मार्ग कोशिकाओं से होकर जल व खनिज जाइलम तक पहुँचते है।

(iii) परिरम्भ (Pericyle) : यह अन्तश्चर्म के भीतर की ओर तथा संवहन पूलों के बाहर की ओर कोशिकाओं की एक या अधिक परतों के रूप में होती है। परिरम्भ मृदूतकी अथवा आशिक मृदूतकी तथा आशिक दृढ़ोतकी अथवा पूर्णतया दृढ़ोतकी होती है। संचयन, स्राव तथा बलकृत शक्ति प्रदान करना परिरम्भ के मुख्य कार्य है। इसके अतिरिक्त पार्श्व पूलों की उत्पत्ति तथा उत्तरोतर कैम्बियम वलयों का निर्माण भी परिरम्भ से होता है।

(iv) मज्जा एवं मज्जा रश्मि (Pith and medullary). मज्जा पादप अक्ष का केन्द्रिय भाग होता है, यह भाग मृदूतकी तथा अन्तराकोशिक अवकाश युक्त होता है। यदाकदा मज्जा दृढ़ोतकी कोशिकाओं से बनी होती है। द्विबीजपत्री जड़ों में मज्जा छोटी जबकि एक बीजपत्री मूल में व्यापक होती है। द्विबीजपत्री तनों में मज्जा का संवहन पूलों के मध्य प्रसार मज्जा रश्मिया (medullar) कहलाती हैं। मज्जा का प्रमुख कार्य खाद्य संचय परन्तु दृढ़ोतकी स्थिति में बलकृत शक्ति प्रदान करना है। मज्जा रश्मियां केन्द्र से परिधि की ओर भोज्य पदार्थों का संवहन तथा द्वितीयक वृद्धि के समय अन्तरापुलीय कैम्बियम का निर्माण करती है।

6.3.3 संवहन ऊतक तंत्र (Vascular tissue system)

जाइलम व फ्लोयम को सम्मिलित रूप से संवहन ऊतक तंत्र कहते हैं तथा ये शीर्ष विभज्योतक के प्रोकेम्बियल स्ट्रैंण्ड से परिवर्धित होते हैं। प्राकेम्बियम से बनने वाली सभी कोशिकाएँ एक साथ जाइलम व पलोयम में विभेदित नहीं होती है। सर्वप्रथम विभेदित कोशिकाओं को **प्रोटोजाइलम** (protoxylem) तथा **प्रोटोफ्लोयम** (protophloem) कहते है, जबकि बाद में परिवर्धित जाइलम व फ्लोयम को क्रमश : **मेटाजाइलम** (metaxylem) व **मेटाफ्लोयम** (metaphloem) कहते है।

जड़ों में जाइलम कोशिकाओं का विभेदन बाहर से प्रारम्भ होकर भीतर की ओर होता है। अर्थात् प्रोटोजाइलम बाहर कि ओर स्थित होता है। इस प्रकार का संवहन पूल **बाह्य आदिदारूक** (exarch) कहलाता है। इसके विपरीत तने में जाइलम का परिवर्धन भीतर से बाहर की ओर होता है अर्थात् प्रोटोजाइलम अक्ष के केन्द्र की ओर स्थित होता है। इस प्रकार का संवहन पूल **अन्त:आदिदारूक** (endarch) कहलाता है। किन्हीं पादपों में जाइलम का विभेदन प्रोकेम्बियम के मध्य से प्रारम्भ होता है, जिसके फलस्वरूप प्रोटोजाइलम चारों ओर से मेटाजाइलम से घिरा रहता है। ऐसी अवस्था को **मध्यादिदारूक** (mesarch) कहते है।

पादपों में जाइलम व फ्लोयम के विन्यास के आधार पर विभिन्न प्रकार के संवहन पूल पाए जाते हैं -

(i) **अरीय पूल** (Radial bundle) : जब जाइलम व फ्लोयम अक्ष की विभिन्न त्रिज्याओं पर एकान्तर क्रम में व्यवस्थित हों तो अरीय पूल कहलाते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था जड़ में पाई जाती है।

(ii) **संयुक्त पूल** (conjoint bundales) : जब जाइलम व फ्लोयम संयुक्त होकर एक पूल बनाते हैं, संयुक्त पूल कहलाते हैं। यह दो प्रकार का होता है।

(a) **संपार्श्विक** (collateral) : इसमें जाइलम तथा फ्लोयम एक ही त्रिज्या पर स्थित होते है। जाइलम भीतर की ओर तथा फ्लोयम बाहर की ओर स्थित होता है। यदि जाइलम व फ्लोयम के मध्य कैम्बियम उपस्थित हो तो इसे **वर्धीपूल** (open bundle) कहते हैं और यदि कैम्बियम अनुपस्थित हो तो अवर्धीपूल (closed bundle) कहते हैं। कुछ पादपों जैसे कुकुरवीटा के तने में जाइलम के दोनों ओर (भीतरी एवं बाहरी) फ्लोयम उपस्थित होता हैं, ऐसे पूल उभयफ्लोयमी पूल (bicollateral) कहलाते है।

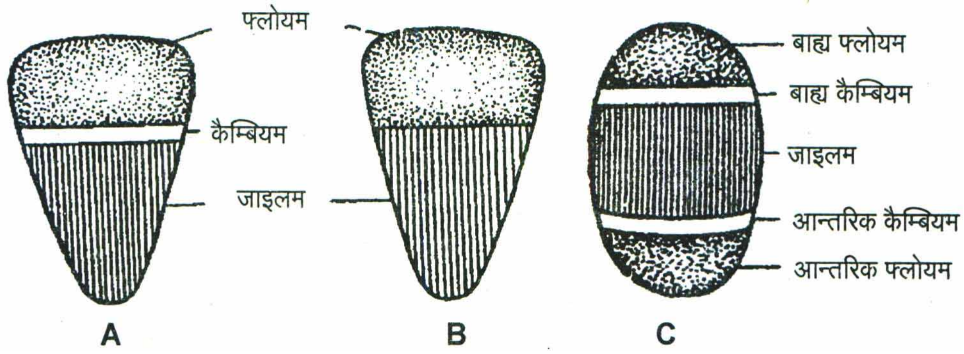

चित्र 6.10 : संयुक्त संपार्श्विक पूल : A. वर्धीपूल; B. अवर्धीपूल् C. उभयफ्लोयमी

(b) **सकेन्द्री** (concentric) : इस प्रकार के संवहन पूलों में जाइलम अथवा फ्लोयम में से एक केन्द्रीय कोर बनाता है तथा रूस इसे चारों ओर से परिबद्ध किये रहता है। जाइलम, फ्लोयम द्वारा परिबद्ध रहता है, तो यह **जाइलम केन्द्री पूल** (amphicribal) कहलाता है। इसके विपरीत यदि फ्लोयम, जाइलम द्वारा परिबद्ध रहता है तो यह **फ्लोयम केन्द्री पूल** (amphivasal) कहलाता है।

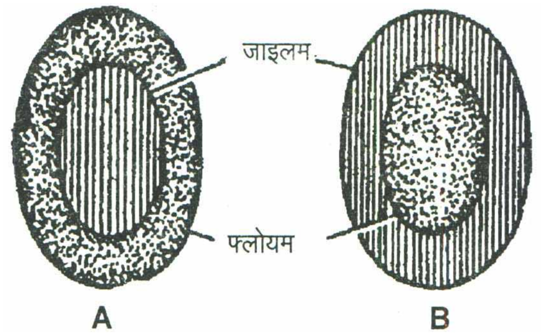

चित्र 6.11: संकेन्द्री पूल: A. जाइलम केन्द्री; B. फ्लोयम केन्द्री

6.4 आवृतबीजीयों की आंतरिक संरचना (Internal structure of Angiosperms)

6.4.1 जड़ (Root)

जड़ की आंतरिक संरचना में दिखाई देने वाले विशिष्ट लक्षण हैं -

(i) इनकी बाह्य त्वचा मूलीय त्वचा (epiblema) अथवा रोमधारक परत (piliferous layer) कहलाती है, तथा इस पर पाए जाने वाले रोम एक कोशिक होते हैं।

(ii) संवहन पूल अरीय (fadial) होते है।

(iii) प्रोटोजाइलम सदैव परिधि की ओर अर्थात् बहिरादिदारूक (exarch) होता है।

A. द्विबीजपत्री जड़ (Dicot root)

द्विबीजपत्री मूल की प्राथमिक संरचना में तीन मुख्य भाग दिखाई देते हैं - (i) अधिचर्म या मूलीय त्वचा, (ii) वल्कुट तथा (iii) रम्भ।

मूलीय त्वचा (Epiblema). प्रोटोडर्म प्राय: शीघ्र ही नष्ट हो जाती है जिसके फलस्वरूप जड़ की बाहय परत भरण विभज्योतक की बाह्य कोशिका परत से विभेदित होती हैं, इसलिए इसे मूलीय त्वचा कहते हैं। इसकी कोशिकाएँ मृदूतकी व पतली भित्ति युक्त, क्यूटीन रहित होती हैं। इस परत में रन्ध्र अनुपस्थित होते हैं। मूलीय त्वचा की अनेक कोशिकाओं से पतली, नलिकाकार अतिवृद्धि विकसित होती है जिन्हे मूल रोम (root hair) कहते है। मूल रोमों की उपस्थिति के कारण इसे रोमिल परत भी कहते हैं। मूलीय त्वचा का कार्य भूमि से जल व खनिज लवणों का अवशोषण करना है।

वल्कुट (Cortex): यह मूलीय त्वचा के नीचे स्थित बहुस्तरीय क्षेत्र होता है। इसकी कोशिकाएँ मृदूतकी तथा अन्तराकोशिकीय अवकाशों युक्त होती है। इन कोशिकाओं में अवर्णीलवक (leucoplast) पाए जाते हैं, जबकि वायवीय जड़ों में हरितलवक पाए जाते हैं। वल्कुट की सबसे भीतरी परत **अन्तश्चर्म** (endofermis) कहलाती है। अन्तश्चर्म कोशिकाएँ, एक दूसरे से सटे हुए व्यवस्थित होती है तथा इनकी अरीय व आंतरिक स्पर्शरेखीय भित्तियों पर सुबेरिन या लिग्निन की स्थूलन पट्टी पाई जाती है। जिसे **कैस्पेरी पट्टी** (casparian strip)कहते हैं। प्रोटोजाइलम के

सामने स्थित कोशिकाओं में कैस्पेरी पट्टी नहीं होती है। इन्हें **पथ कोशिकाएँ** (passage cells) कहते हैं।

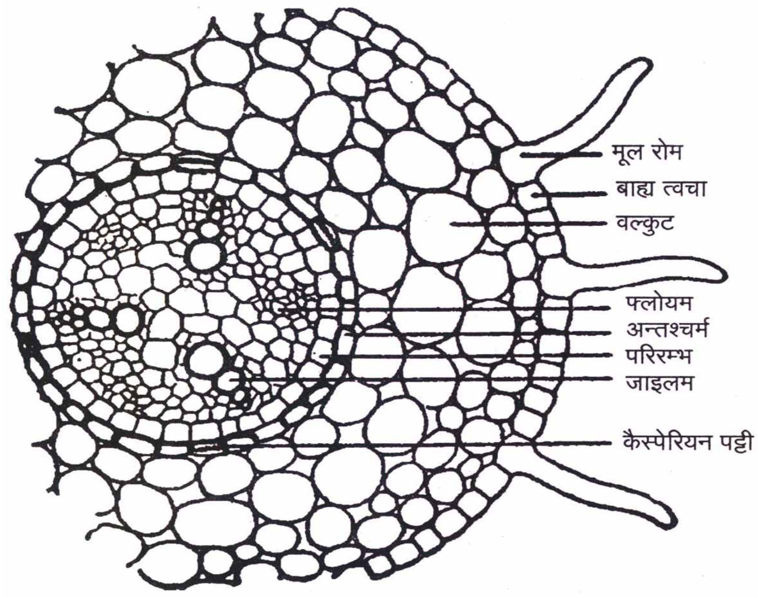

चित्र 6.12: द्विबीजपत्री तरुण मूल का अनुप्रस्थ काट

रम्भ (Stele): इसके अन्तर्गत परिरम्भ, संवहनपूल तथा मज्जा आते हैं। अन्तश्चर्म के भीतर की ओर पतली **भित्ति** की मृदूतकी कोशिकाओं की एक **परत परिरम्भ** (pericycle) बनाती है। परिरम्भ संवहन पूलों को परिबद्ध किये रहती है। **संवहन पूल** अरीय (radial) होते है अर्थात् जाइलम व फ्लोयम समूह पृथक्-पृथक् एक दूसरे के एकान्तर विभिन्न त्रिज्या पर स्थित होते हैं। इन प्रत्येक समूह की संख्या 2-6 तक होती है। जाइलम समूह की संख्या के आधार पर द्विबीजपत्री मूल द्वि-आदिदारूक (diarch) दो जाइलम समूह), **त्रिआदिदारूक** (triarch; तीन जाइलम समूह), चर्तुआदिदारूक (tetrach; चार जाइलम समूह) व पचादिदारूक (pentarch; पाँच जाइलम समूह) कहलाती है। जाइलम समूहों की संख्या 5 से अधिक होने पर **बहु आदिदारूक** polyarch) कहते हैं। प्रोटोजाइलम सदैव परिधि की ओर अर्थात् बहिरादिदारुक (exarch) होता है।

केन्द्रीय भाग में मज्जा उपस्थित होती है। जिसका विस्तार अत्यंत कम होता है। मज्जा मृदूतकी कोशिकाओं की बनी होती है जिनके मध्य अर्न्तकोशिक अवकाश उपस्थित होते हैं। द्वितीयक वृद्धि के पश्चात् मज्जा पूर्णत: विलुप्त हो जाती है।

B. एक बीजपत्री जड़ (Monocot root)

एक बीजपत्री जड़ की आंतरिक संरचना मौलिक रूप से द्विबीजपत्री जड़ के समान ही होती है।

मूलीय त्वचा (Epiblema) : यह सबसे बाह्य पतली भित्ति की कोशिकाओं की परत है। इसकी कुछ कोशिकाओं से एक कोशिक मूल रोम विकसित होते है।

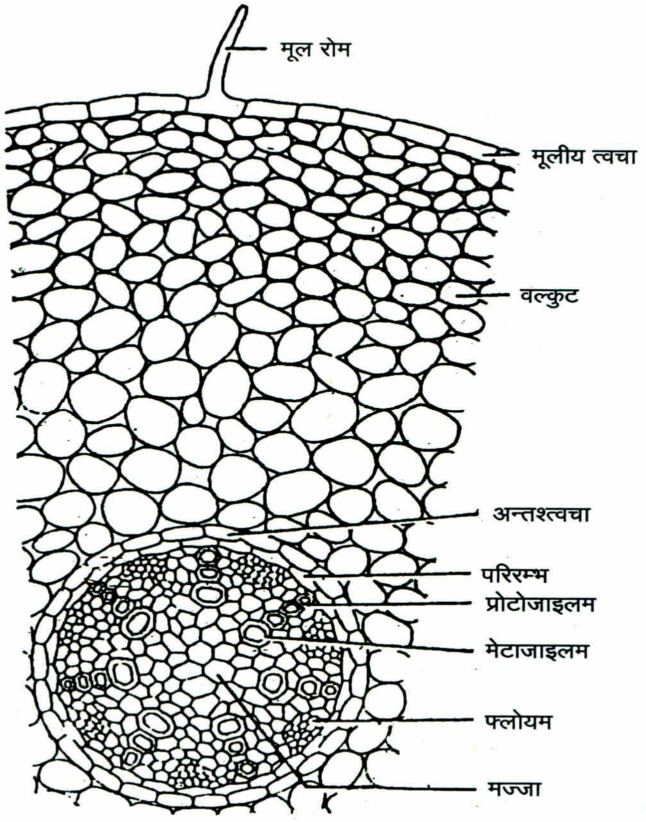

चित्र 6.13: एकबीजपत्री जड़ का अनुप्रस्थ सेक्शन

वल्कुट (Cortex) : यह मृदूतकी कोशिकाओं के अनेक स्तरों से बना होता है। वल्कुटी कोशिकाओं के मध्य अन्तरकोशिक अवकाश उपस्थित होते हैं।

अन्तश्त्वचा (Endodermis) : यह वल्कुट एवं संवहन ऊतक के बीच एक निश्चित वलय बनाती है। इसकी कोशिकाऐं आपस में सटी हुई होती है अर्थात् इनके मध्य अन्तरकोशिक अवकाश अनुपस्थित होते हैं। इन कोशिकाओं की स्पर्श रेखीय भित्तियों पर कैस्पेरी पट्टियाँ पायी जाती है। प्रोटोजाइलम के सम्मुख **पथ कोशिकाऐं** (passage cells) स्थित होती है।

परिरम्भ (Pericycle) : यह अन्तश्त्वचा के अन्दर की ओर स्थित होती है। परिरम्भ एक या अधिक मृदूतकी कोशिका परतों से बनी होती है।

संवहन ऊतक (Vascular tissue) : संवहन पूल अरीय (radial), बहिरादिदारूक (exarch) तथा बहुआदिदारूक (polyarch) होते हैं। जाइलम व फ्लोयम समूह एकान्तर क्रम में व्यवस्थित होते हैं, तथा इनकी संख्या प्रत्येक 6 से अधिक होती है।

मज्जा (Pith) : अक्ष के मध्य भाग में मृदूतकी कोशिकाओं की मज्जा होती है। मज्जा कोशिकाओं के मध्य अन्तरकोशिक अवकाश पायें जाते हैं। एकबीजपत्री मूल में मज्जा द्विबीजपत्री मूल की तुलना में अधिक विस्तारित होती है।

6.4.2 तना (Stem)

तने की आंतरिक संरचना जड़ की तुलना में अधिक जटिल होती है, तने की आंतरिक संरचना में दिखाई देने वाले विशिष्ट लक्षण हैं -

(i) बाह्य त्वचा पर एक कोशिक अथवा बहुकोशिक रोम पाये जाते हैं।

(ii) संवहन पूल संयुक्त, बहीपोषवाही यदाकदा उभयफ्लोयमी अथवा संकेन्द्री होते हैं।

(iii) प्रोटोजाइलम सदैव अन्तादिदारूक (endarch)होते हैं।

A. द्विबीजपत्री तना (Dicot stem)

द्विबीजपत्री तने की आंतरिक संरचना में बाहयत्वचा, विभेदित वल्कुट तथा संवहन पूलों की वलय उपस्थित होती है।

बाहयत्वचा (Epidermis) : यह सबसे बाहय परत है, इस परत की कोशिकाओं में क्लोरोप्लास्ट अनुपस्थित होते हैं। युवा तने की बाहय त्वचा में प्राय : बहुकोशिक रोम तथा रुन्ध्र उपस्थित होते हैं। बाहय त्वचा प्राय: पतली या मोटी क्यूटीकल द्वारा ढ़की रहती है।

वल्कुट (Cortex) : बाहय त्वचा के नीचे स्थित क्षेत्र वल्कुट कहलाता है। वल्कुट की बाहय कुछ कोशिका स्तर दृढ़ोतक अथवा स्थूलकोणोतक से बने होते हैं। इनमें कोशिका भित्तियों मोटी तथा अर्न्तकोशिक अवकाश अनुपस्थित होते हैं। इस भाग को **अधश्चर्म** (hypodermis) भी कहते हैं। अधश्चर्म के नीचे स्थित भाग मृदूतकी कोशिकाओं से बना होता है। इस क्षेत्र की कोशिकाओं के मध्य अन्तरकोशिक अवकाश उपस्थित होते हैं।

वल्कुट की सबसे भीतरी परत **अन्तश्त्वचा** (endodermis) कहलाती है। अन्तश्त्वचा की कोशिकाएँ स्पर्शरेखीय दिशा में दिर्घित होती है, तथा इन कोशिकाओं में कैस्पेरीयन **पट्टियाँ** (casparian strips) नहीं होती है। इस कोशिकाओं में मंद कण बहुतायत से उपस्थित होते हैं, इसलिए इसे **मंद आच्छद** (starch sheath) भी कहते हैं।

चित्र 6.14 : सूरजमुखी (Sunflower) के तने का अनुप्रस्थ सेक्शन:

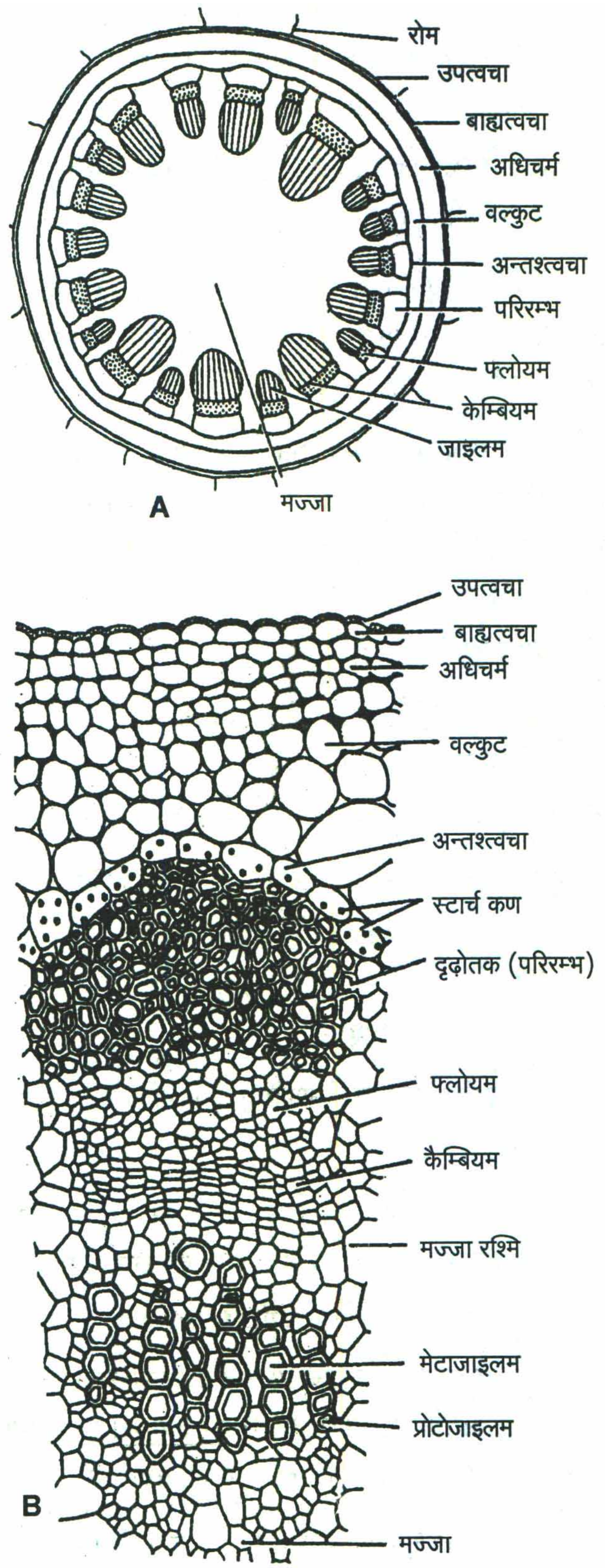

चित्र 6.14 : सूरजमुखी (Sunflower) के तने का अनुप्रस्थ सेक्शन:

A. आरेख; B. कोशिकीय भाग

परिरम्भ (Pericycle) यह अन्तश्त्वचा के नीचे तथा संवहन पूलों के ऊपर स्थित होती है। अन्तश्त्वचा सतत् अथवा असतत् परत के रूप में हो सकती है। इसके अतिरिक्त यह एक स्तरीय या बहुस्तरीय तथा मृदूतकी अथवा दृढ़ोतकी कोशिकाओं से बनी होती है। सूरजमुखी में यह असतत् बहुस्तरीय तथा दृढ़ोतकी होती है।

संवहन पूल (Vacular bundles) : संवहन पूल एक वलय में उपस्थित होते हैं। प्रत्येक संवहन पूल संयुक्त (conjoint), बहि पोषवाही (collateral), अन्तादिदारूक (endarch) एवं वर्धी (open) प्रकार का होता है। यदा कदा उभयपोषवाही अथवा सकेन्द्री हो सकते हैं।

फ्लोयम संवहन पूल के बाहरी ओर स्थित होता है, जबकि जाइलम अन्दर की ओर स्थित होता है, फ्लोयम तथा जाइलम के मध्य कैम्बियम की परतें उपस्थित होती हैं। जाइलम की वाहिकाएं बड़ी गुहाओं के रूप में अरीय पंक्तियों में पाई जाती है। प्रोटोजाइलम अक्ष के केन्द्र की ओर स्थित होता है।

मज्जा (pith): यह संवहन पूलों से केन्द्र तक फैला हुआ विस्तृत क्षेत्र होता है। इसकी कोशिकाएँ प्राय: मृदूतकी पतली भित्ति युक्त तथा अन्तरकोशिक अवकाशों युक्त होती है। मज्जा का प्रसार संवहन पूलों के बीच परिरम्भ तक मज्जा रश्मियों के रूप में होता है।

B. एक बीजपत्री तना (Monocot stem)

एकबीजपत्री तने की आंतरिक संरचना में निम्न सरंचनाएँ पाई जाती है -

बाहय त्वचा (Epidermis) _ यह कोशिकाओं की एक पंक्ति से बनी सबसे बाहर की परत होती है। इसकी बाहरी भित्ति पर मोटी उपत्वचा तथा कभी-कभी रन्ध्र भी उपस्थित होते हैं।

भरण ऊतक (Ground tissue) : यह बाहय त्वचा से लेकर केन्द्र तक फैला हुआ विस्तृत भाग है। बाहय त्वचा के नीचे स्थित 2-3 परतें दृढ़ोतकी कोशिकाओं के होते है, जिसे अधश्त्वचा कहते है। अधश्त्वचा के नीचे केन्द्र तक फैला विस्तृत भाग मृदूतकीय कोशिकाओं से बना होता है। इसमें वल्कुट, अन्तश्त्वचा, परिरम्भ एवं मज्जा का विभेदन नहीं होता है।

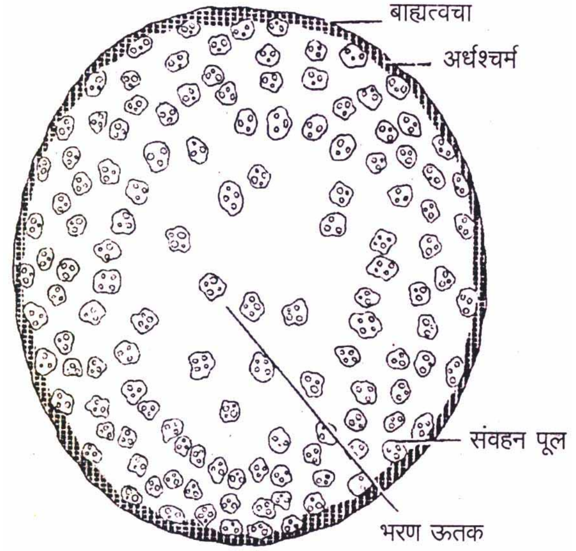

चित्र 6.15 A : मक्का के तनेका अनुप्रस्थकाट : आरेख

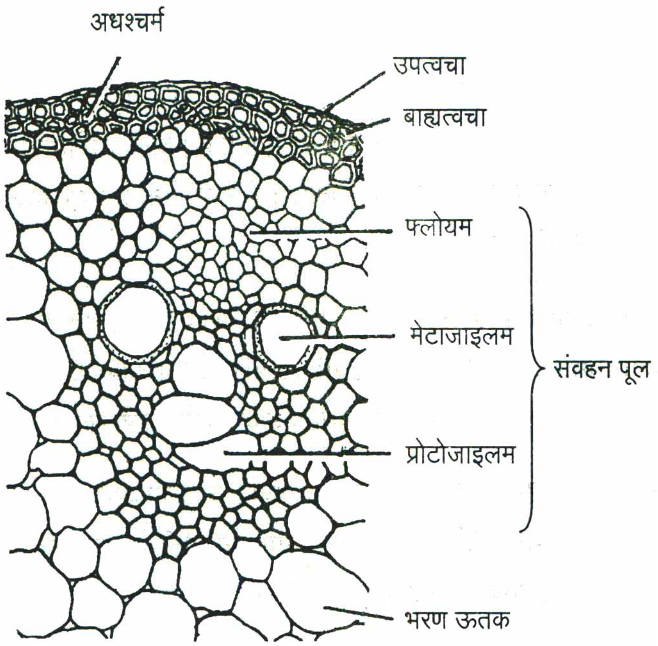

चित्र 6.15 B : मक्का के ताने का अनुप्रस्थ काट : कोशिकीय भाग

संवहन पूल (Vacular Bundles) : अनेक संवहन पूल भरण ऊतक में बिखरे रहते हैं। परिधि की ओर स्थित संवहन पूल, केन्द्र की ओर स्थित संवहन पूलों की अपेक्षा छोटे होते हैं। प्रत्येक संवहन पूल संयुक्त (conjoint). बहिपोषवाही (collateral) तथा अवर्धी (closed) होता है। प्रत्येक संवहन पूल के चारों ओर दृढ़ोतकी पूलाच्छद (bundle sheath) पाई जाती है। संवहन पूल में कैम्बियम का अभाव होता है। प्रोटोजाइलम अन्तादिदारुक (endarch) होता है।

6.4.3 पत्ती (Leaf)

पत्तियाँ सामान्यत: चपटी संरचनाएँ हैं। अत: इनकी सतह सूर्य के प्रकाश की ओर फैली रहती है। इनकी आंतरिक संरचना भी इस प्रकार की होती है कि प्रकाश संश्लेषण की क्रिया सुलभता से हो सके ।

पत्तियों को आंतरिक संरचना के आधार पर सामान्यत: दो वर्गों में रखा जाता है- पृष्ठाधारी (dorsovertral) तथा समदिपार्श्विक (isobilateral)। पृष्ठाधरी पत्तियाँ द्विबीजपत्रियों में तथा समद्विपार्श्विक पत्तियाँ एक बीजपत्रियों में पाई जती है।

A. पृष्ठाधरी पत्ती (Dorsoventral leaf)

यहाँ एक प्रारूपिक पृष्ठाधरी पत्ती के रूप में आम की पत्ती की संरचना का वर्णन दिया जा रहा है। इसकी आंतरिक संरचना निम्म प्रकार है-

बाह्यत्वचा (Epidermis) : ऊपरी व नीचे की सतहें क्रमश: ऊपरी व निचली बाह्यत्वचायें बनाती है। दोनों बाह्यत्वचायें प्राय: एक कोशिकीय परत होती है। ऊपरी बाह्य त्वचा मोटी

क्यूटिकल द्वारा जबकि निचली बाह्यत्वचा पतली क्यूटिकल द्वारा ढ़की रहती है। उपरी बाह्यत्वचा में रन्ध्र अनुपस्थित होते है जबकि निचली बाह्यत्वचा में अनेक रन्ध्र पाये जाते हैं।

पर्णमध्योतक (Mesophyll) : यह ऊतक दोनों बाह्य त्वचाओं के मध्य स्थित होता है। पर्ण मध्योतक **खम्भ ऊतक** (palisade) तथा **स्पंजी ऊतक** (spongy tissue) में विभेदित होता है। खम्भ ऊतक उपरी बाह्य त्वचा के ठीक नीचे 2-3 परतों के रूप में होता है। इसकी कोशिकाएँ लम्बी तथा क्लोरोप्लास्ट युक्त होती है। खम्भ, ऊतक के नीचे निचली बाह्य त्वचा तक स्पंजी ऊतक फैला रहता है। इसकी कोशिकाएँ छोटे, बड़े अन्र्तकोशिक अवकाशों (वायु कोश) युक्त एवं सघन क्लोरोप्लास्ट युक्त होती है। कुछ वायु अवकाश निचली बाह्य त्वचा के रन्ध्रों में खुलते है, जिन्हें अधोरन्ध्री कोष्ठ (sub-sromatal chamber) कहा जाता है।

संवहन पूल (Vacular bandules) : प्रत्येक संवहन पूल में उपरीबाह्य त्वचा की ओर (abaxial) जाइलम तथा निचली बाह्यत्वचा की ओर (abaxial) फ्लोयम स्थित होता है। संवहन पूल के चारों ओर मृदूत्तकी पूल आच्छद होता है। मध्य शिरा में स्थित संवहन पूल आकार में बड़ा होता है, तथा इसकी पूल अच्छद उपरी व निचली बाह्यत्वचा की ओर विस्तारित रहती है। प्रोटोजाइलम उपरी बाह्यत्वचा की ओर स्थित होता है।

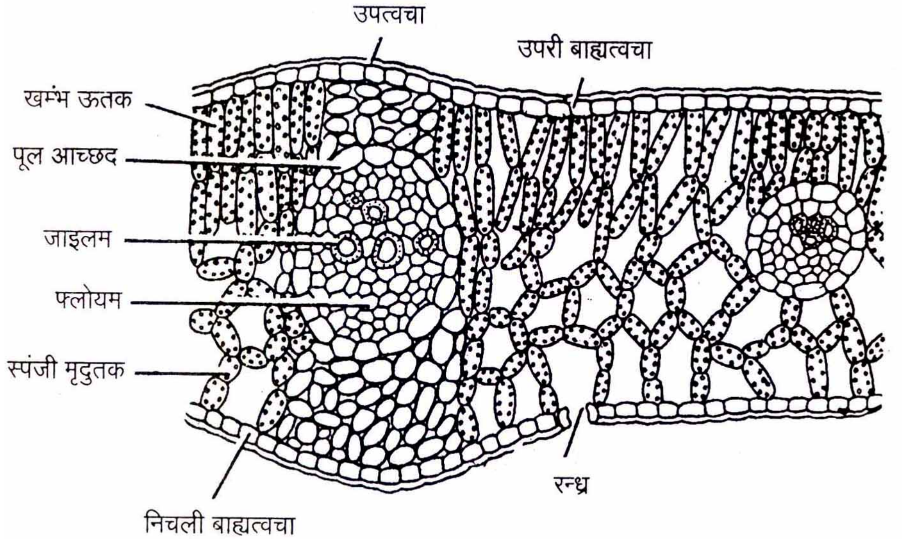

चित्र 6.16 : आम (Mango) की पत्ती का अनुप्रस्थ सेक्शन (एक भाग कोशिकीय)

B. समद्विपार्श्विक पत्ती (Isobilateral leaf)

यहाँ एक प्रारूपिक समद्विपार्श्विक पत्ती के रूप में मक्का की पत्ती की आंतरिक संरचना का वर्णन किया जा रहा है। इसके अनुप्रस्थ काट में निम्न संरचनाएँ दिखाई देती है-

बाह्यत्वचा (Epidermis) : ऊपरी व निचली सतहों पर क्रमश: ऊपरी व निचली बाह्यत्वचा होती है। दोनों बाह्यत्वचाओं पर क्यूटिकल की परत पाई जाती है। रन्ध्र भी दोनों उपत्वचाओं में उपस्थित होते है। ऊपरी बाह्य त्वचा में कुछ कोशिकाएँ आकार में बडी तथा रंगहीन होती है, इन्हें बुलिफार्म अथवा मोटर कोशिकाएँ (bulliform or motor cells) कहते हैं।

पर्णमध्योतक (Mesophyll) : यह ऊतक दोनों बाह्यत्वचाओं के मध्य उपस्थित होता है। सम्पूर्ण क्षेत्र केवल स्पंजी मृदूत्तक द्वारा बना होता है। स्पंजी मृदूतक की कोशिकाओं में क्लोरोप्लास्ट प्रचुर मात्रा में पाए जाते है तथा इनके मध्य अन्तरकोशिक अवकाश उपस्थित होते है।

संवहन पूल (Vacular bundles) : संवहन पूल समानान्तर पंक्तियों में विन्यासित होते है। तथा आमाप में भिन्नता दर्शातें हैं। प्रत्येक संवहन पूल मृदूत्तकी पूल आच्छद द्वारा घिरा रहता है। पूल आच्छद कोशिकाओं में क्लोरोप्लास्ट एवं मंड कण उपस्थित होते हैं। बड़े पूलों के ऊपर तथा नीचे दोनों ओर दृढ़ोतकी कोशिका समूह उपस्थित होते है, जो बाह्यत्वचा तक फैले रहते है। जाइलम ऊपरी बाह्यत्वचा की ओर तथा फ्लोयम निचली बाह्य त्वचा की ओर स्थित होता है।

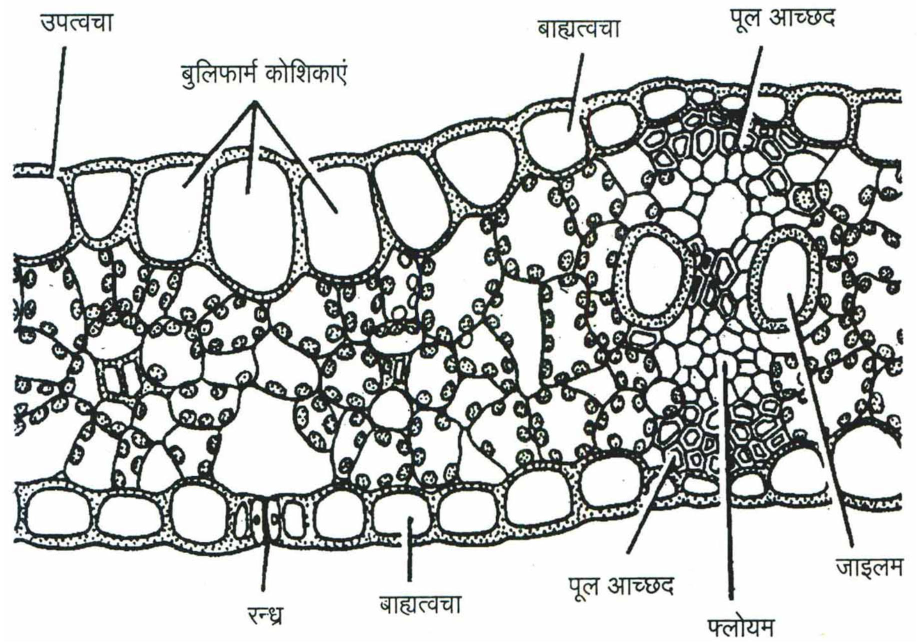

चित्र 6.17: मक्का (Maize) की पत्ती का अनुप्रस्थ सेक्शन (एक भाग कोशिकीय)

6.5 द्वितीयक वृद्धि (Secondary growth)

द्विबीजपत्री जड़ तथा तनों में द्वितीय वृद्धि पाई जाती है। द्वितीयक वृद्धि के कारण मुख्य अक्ष, शाखाओं तथा जड़ों की मोटाई उतरोतर बढ़त् जी है। यह द्वितीयक वृद्धि पौधे में जीवन पर्यन्त होती रहती है। द्वितीयक वृद्धि संवहनी कैम्बियम के भाजन के फलस्वरूप होती है, जिससे द्वितीयक ऊतकों (द्वितीयक जाइलम तथा द्वितीयक फ्लोयम) का निर्माण होता है। एक बीजपत्रियो में संवहन कैम्बियम के अभाव के कारण द्वितीयक वृद्धि का अभाव होता है।

6.5.1 द्विबीजपत्री जड़ में द्वितीयक वृद्धि (Secondary growth in dicot root)

जड़ में प्रारम्भिक कैम्बियम अनुपस्थित होती है। द्वितीयक वृद्धि के समय भरण ऊतक की कोशिकाएँ जो फ्लोयम समूह के भीतर की ओर स्थित होती है, विभज्योतकी होकर कैम्बियम पट्टिकाएँ बनाती है। परिरम्भ की प्रोटोजाइलम के सामने स्थित कोशिकाएँ भी विभज्योतकी होकर

कैम्बियम पट्टिकाएँ बनाती है। ये दोनों प्रकार की पट्टिकाएँ परस्पर संयुक्त होकर एक पूर्ण तरंगित कैम्बियम वलय का निर्माण करती है। कुछ समय पश्चात् वृद्धि के साथ-साथ यह वलय गोलाकार हो जाती है। फ्लोयम पूल के अन्दर की ओर स्थित कैम्बियम भाग पहले सक्रिय होकर विभाजन करता है। कैम्बियम के अन्दर की ओर बनने वाली कोशिकाओं की मात्रा बाहर की ओर बनने वाली कोशिकाओं की मात्रा से अधिक होती है। इस कारण कैम्बियम व फ्लोयम बाहर धकेल दिए जाते हैं।

कैम्बियम द्वारा अन्दर की ओर बनने वाली कोशिकाएँ द्वितीयक जाइलम तथा बाहर की ओर बनने वाली कोशिकाएँ द्वितीयक फ्लोयम में परिवर्तित होती है। इस प्रकार द्वितीयक जाइलम का क्षेत्र, द्वितीयक फ्लोयम के क्षेत्र की तुलना में काफी अधिक होता है। द्वितीयक ऊतकों के निर्माण के कारण प्राथमिक जाइलम उत्तरोतर अक्ष के केन्द्रीय भाग में धकेल दिया जाता है तथा फ्लोयम के समूह भी द्वितीयक ऊतकों के दबाव से कुचल जाते है। भूमिगत भाग होने के कारण कैम्बियम की सक्रियता वातावरण कारकों द्वारा प्रभावित नहीं होती, इसलिए वार्षिक वलयों का निर्माण नहीं होता है।

संवहनी कैम्बियम द्वारा होने वाली द्वितीयक वृद्धि के साथ-साथ रम्भ बाह्य क्षेत्र में (परिरम्भ) कॉर्क कैम्बियम का निर्माण होता है। कॉर्क कैम्बियम बाहर की ओर कॉर्क तथा भीतर की द्वितीयक वल्कुट बनाती हैं। कॉर्क के बाहर की ओर स्थित सभी ऊतक मृत होकर छाल बनाते हैं।

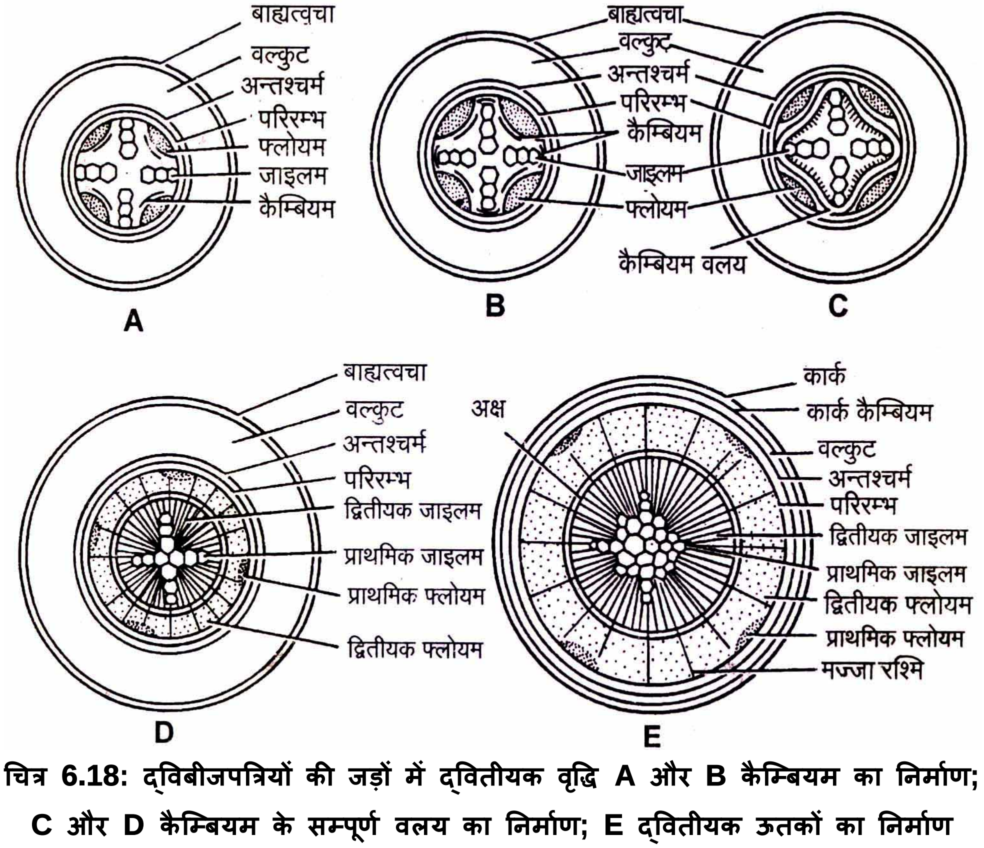

चित्र 6.18: द्विबीजपत्रियों की जड़ों में द्वितीयक वृद्धि A और B कैम्बियम का निर्माण; C और D कैम्बियम के सम्पूर्ण वलय का निर्माण; E द्वितीयक ऊतकों का निर्माण

6.5.2 द्विबीजपत्री तने में द्वितीयक वृद्धि (Secondary growth in dicot stem)

द्वितीयक वृद्धि के प्रथम चरण में संवहनी कैम्बियम वलय का निर्माण होता है। संवहन पूलों का कैम्बियम अर्थात् **पूलीय कैम्बियम** (fascicular cambium) सक्रिय होकर विभाजनशील हो जाता है। इसी समय संवहन पूलों के मध्य की मज्जा रश्मि कोशिकाएँ जो पूलीय कैम्बियम की सीध में होती है विभज्योतकी होकर **अन्तरपूलीय कैम्बियम** (interfascicular) पट्टियों का निर्माण करती है। पूलीय तथा अन्तरपूलीय कैम्बियम पार्श्व में संयुक्त होकर एक पूर्ण घेरा बनाती है, जिसे **संवहन कैम्बियम** (vacular cambium) कहते है।

चित्र 6.19: द्विबीजपत्रियो के तने में द्वितीयक वृद्धि : A. संवहन पूल में कैम्बियम; B. कैम्बियम के वलय का निर्माण; C. प्र

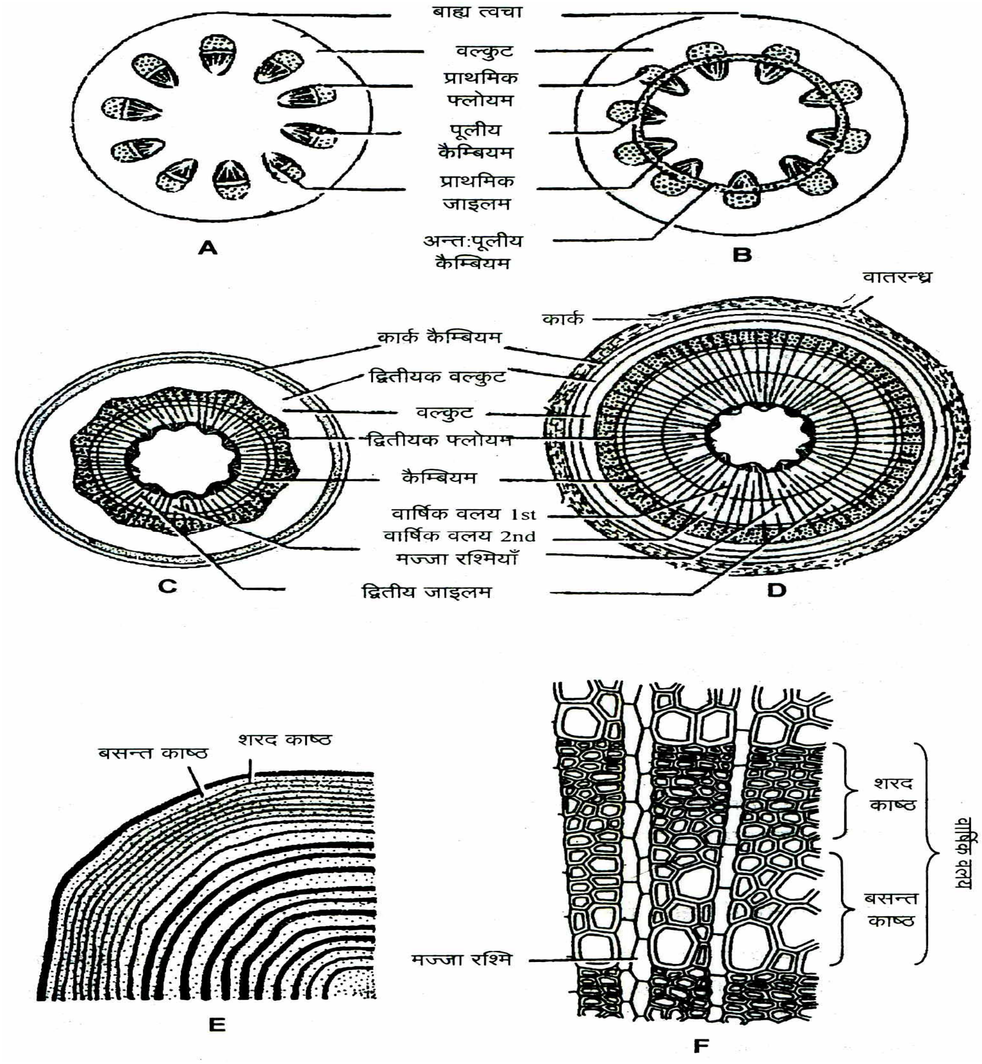

थम

वर्ष; D. द्वितीयक वर्ष में द्वितीयक वृद्धि;

E. वार्षिक वलय; F. शरद काष्ठ और बसन्त काष्ठ

कैम्बियम की कोशिकाएँ स्पर्श रेखीय विभाजनों द्वारा दोनों तरफ (बाहर व भीतर) कोशिकाएँ बनाती है। बाहर की तरफ बनने वाली कोशिकाएँ फ्लोयम कोशिकाओं में पीरवर्धित हो जाती है, जिसे द्वितीयक फ्लोयम (secondary phloem) कहते है। वे कोशिकाएँ जो अन्दर की तरफ बनती है। द्वितीयक जाइलम (secondary xylem) में विभेदित हो जाती हैं। सामान्यत : द्वितीयक जाइलम की मात्रा द्वितीयक फ्लोयम से काफी अधिक होती है अर्थात् कैम्बियम अन्दर की जोर अधिक मात्रा में कोशिकाएँ बनाती है। इस प्रकार कैम्बियम की सक्रियता से द्वितीयक फ्लोयम व द्वितीयक जाइलम का एक पूर्ण सिलिण्डर बन जाता है, जिसमें द्वितीयक फ्लोयम बाहर की ओर तथा द्वितीयक, जाइलम भीतर की ओर स्थित होता है। किन्हीं-किन्हीं स्थानों पर कैम्बियम द्वारा बनी पुत्री कोशिकाएँ जाइलम व फ्लोयम कोशिकाएँ बनाने के बजाय मृदूत्तक में परिवर्तित हो जाती है। ये कोशिकाएँ अनुप्रस्थ काट में त्रिज्यीय पंक्तियों में विन्यासित रहती हैं, तथा सम्पूर्ण द्वितीयक संवहन सिलिण्डर में फैली रहती है। इन्हें द्वितीयक मज्जा रश्मियां कहते हैं। द्वितीयक जाइलम के दबाव से प्राथतिक जाइलम धीरे-धीरे मज्जा की ओर खिसकता जाता है तथा अन्तत : मज्जा सहित यह नष्ट हो जाता है। प्राथमिक फ्लोयम भी इसी प्रकार बाहर को धकेल दिया जाता है, तथा धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है।

6.5.3 वार्षिक वलय एवं आयु (Annual rings and age)

द्वितीयक जाइलम ओर फ्लोयम का निर्माण ऋतुओं से प्रभावित होता है। शीतोष्ण (temperate) क्षेत्रों में पाए जाने वाले काष्ठिय पौधों की मोटाई में वृद्धि केवल बसन्त (spring) तथा शरद (autumn) ऋतुओं में होती है। इन ऋतुओं में बनने वाला द्वितीयक जाइलम या काष्ठ (wood) एक दूसरे से स्पष्ट भिन्नता दर्शाता है। बसन्त ऋतु में काष्ठ, अधिक मात्रा में बनती है। तथा बड़ी वाहिकाओं युक्त होती है। जबकि शरद ऋतु में काष्ठ कम मात्रा में बनती है तथा संकरी वाहिकाओं युक्त होती है। इस प्रकार प्रत्येक वर्ष की काष्ठ में **बसन्त काष्ठ** (spring wood) या अग्र काष्ठ (early wood) तथा **शरद काष्ठ** (autumn wood) या पश्च काष्ठ (late wood) एकान्तर क्रम में दिखाई देती हैं। किसी एक वर्ष में बनी बसन्त ओर शरद काष्ठ के वलयों को एक साथ मिलाकर **वार्षिक वलय** (annual ring) कहा जाता है। अत: प्रत्येक वार्षिक वलय एक वर्ष की वृद्धि को दर्शाता है।

इस प्रकार किसी वृक्ष के मुख्य स्तम्भ के काट में पाए जाने वाले वार्षिक वलयों को गिनकर पौधै की आयु का पता किया जा सकता है। इस अध्ययन को **वृक्ष कालानुक्रम** (Dendrochronology) कहते हैं।

बोध प्रश्न

1. मज्जा' व वल्कुट मुख्यत : किंसेके बने होते हैं-
   (i) हीरत ऊतक
   (ii) मृदूतक
   (iii) स्थूलकोणोतक
   (iv) दृढ़ोतक

2. पथ कोशिका किस ऊतक में पाई जाती है-

(i) अधिचर्म

(ii) जाइलम

(iii) अन्तश्चर्म

(iv) परिरम्भ

3. किन रचनाओं से जल का बून्दों के रूप में स्रवण होता है-

(i) वातरन्ध्र

(ii) जलरन्ध्र

(iii) सरन्ध्र

(iv) पर्ण क्षत चिन्ह

4. संयुक्त; संपार्श्विक एवं अवर्धी संवहन पूल पाया जाता है-

(i) एकबीजपत्री मूल में

(ii) एकबीजपत्री तने में

(iii) द्विबीजपत्री मूल में

(iv) द्विबीजपत्री तने में

5. निम्न के लिए एक शब्द बताइयें-

(i) पत्ती के किनारे पर पाए जाने वाले छिद्र जो कभी बन्द नहीं होतें।

....

(ii) स्तम्भ की अधिचर्म पर उपस्थित छिद्र जो गैसों का विनिमय करते हैं।

....

(iii) जिसके सवहन पूल में फ्लोयमका दो पृथक समूहों में पाया जाना।

....

6.6 सारांश (Conclusion)

कोशिकाओं का वह समूह जिनमें कोशिकाएँ विभाजनशील हों या विभाजन क्षमता युक्त होती है। विभज्योतकी ऊतक कहलाता है। ये कोशिकाएँ गोलाकार, अन्डाकार या बहुभुजी तथा पतली भित्ति युक्त होती है। विभज्योतकी ऊतकों के विभाजन तथा विभेदन से स्थायी ऊतकों का निर्माण होता है। स्थायी ऊतक की कोशिकाओं में विभाजन की क्षमता पूर्णतया या कुछ समय के लिए समाप्त हो जाती है। सरल स्थायी ऊतक क्रमश मृदूतक, स्थूलकोणोतक या दृढ़ोतक प्रकार का होता है। दृढ़ ऊतक की कोशिकाएं मृत होती है जबकि मृदूतक व स्थूलकोणोतक की कोशिकाएँ जीवित होती है। जटिल ऊतक में एक से अधिक प्रकार की कोशिकाएँ होती है, जो इकाई की तरह कार्य करती है। जाइलम व फ्लोयम जटिल ऊतक है जो पौधे की केन्द्रीय अक्ष बनाते हैं। जाइलम क्रमश: वाहिकाओं, वाहिनिकाओ, जाइलम तन्तु एवं जाइलम मृदूतक से बना होता है, तथा मुख्यत: जल संवहन एवं यान्त्रिक दृढ़ता प्रदान करने का कार्य करता है। फ्लोयम क्रमश: चलनी नलिकाओं सहकोशिकाओं, फ्लोयम तन्तु एवं फ्लोयम मृदूतक का बना होता है।

यह भोजन परिवहन का कार्य करता है। कुछ पादपों में स्रावी ऊतक पाया जाता है, जो तेल, रेजीन, गोंद आदि का स्रवव करता है।

पादप शरीर के ऊतक विशिष्ट कार्य के लिए क्रम में व्यवस्थित होकर पादप शरीर की रचना करते हैं। यह तीन प्रकार के होते हैं। अधिचर्म ऊतक तन्त्र पादप की बाह्य त्वचा का निर्माण करते हैं, तथा इससे रोम व छिद्र भी उत्पन्न होते हैं। भरण ऊतक तन्त्र वल्कुट, अन्तश्चर्म परिरम्भ व मज्जा का निर्माण करते हैं संवहन ऊतक जाइलम व फ्लोयम से मिलकर बनता है, जो संवहन का कार्य करता है।

द्विबीजपत्री मूल व द्विबीजपत्री तने में द्वितीयक विभज्योतक (कैम्बियम) की सक्रियता से द्वितीयक ऊतकों का निर्माण होता है जिसे द्वितीयक वृद्धि कहते हैं। एक बीजपत्रियों में कैम्बियम का निर्माण नहीं होता इसलिए द्वितीयक वृद्धि नहीं पाई जाती है। प्राय: बहुवर्षी पादपों के तने में द्वितीयक वृद्धि के फलस्वरूप बने द्वितीयक जाइलम में विभिन्न मोटाई की सकेन्द्रीत परतें या वलय बनती है। इन वलयों को वार्षिक या वृद्धि वलय कहते हैं। अधिक आयु वाले वृक्षों के तने की अनुप्रस्थ काट में इन वलयों को स्पष्ट देखा जा सकता है। प्रत्येक वलय एक वर्ष की वृद्धि को दर्शाता है। इस प्रकार मुख्य स्तम्भ की काट में वलयों को गिनकर पौधे की आयु पता की जा सकती है। इस अध्ययन को वृक्ष कालानुक्रम (Dendrachronology) कहते हैं।

6.7 शब्दावली (Terminology)

विभज्योतक (Meristem) : वह ऊतक जिसकी कोशिकाएँ विभाजनशील रहती है अथवा विभाजन की क्षमता युक्त होती है।

चलनी पट्टी (Sieve plate) : चलनी कोशिका की अनुप्रस्थ भित्ति जो छिद्रित होती है।

क्यूटिकल (Cuticle) : बाह्यत्वचा पर उपस्थित मोमीय पदार्थ क्यूटिन की परत जो जल के लिए अप्रवेश्य होती है।

लेटेक्स (Latex) : यह दूध के समान सफेद या पीला गाढ़ा पादप स्राव होता है।

जलरन्ध्र (Hydathode) : पर्ण उपान्त पर पाए जाने वाले छिद्र जो कभी बन्द नहीं होतें तथा जल को बून्द के रूप में बाहर निकलते हैं।

बिन्दूस्राव (Guttation): जल का तरल बूंदों के रूप मे बाहर निकलने की क्रिया।

बाह्यदिदारूक (Exarch) : जाइलम में प्रोटोजाइलम बाहर अथवा परिधि की ओर स्थित होता है।

अन्तादिदारूक (Endarch) : जाइलम में प्रोटोजाइलम केन्द्र की ओर स्थित होता है।

मज्जा रश्मि (Medullary rays) : मज्जा का संवहन पूलों के बीच (अन्तरपूलीय क्षेत्र) में प्रसार मज्जा रश्मि कहलाता है।

6.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. वनस्पति शास्त्र : नाथावत, शर्मा साहनी - रमेश बुक डिपो, जयपुर
2. परिचयात्मक वनस्पति विज्ञान : बैन्द्रे, कुमार - रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ

3. Plant Anatony : Esau, K. Wiley Eastern Limited, New Delhi
4. Plant Anatony : Cutter, E.G.-Award Arnold, London

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (ii) मृदूतक
2. (iii) अंतश्चर्म
3. (ii) जलरंध्र
4. (ii) एक बीजपत्री तने में
5. (i) जलरंध्र
   (ii) सरन्ध्र
   (iii) उभयफलोयमी

6.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. ऊतक किसे कहते है? सरल एवं जटिल ऊतकों का वर्णन कीजिये।
2. ऊतक तन्त्र से क्या तात्पर्य हैं? विभिन्न ऊतक तन्त्रों का वर्णन कीजिये।
3. द्विबीजपत्री तने की आंतरिक संरचना का वर्णन कीजिये तथा एकबीजपत्री तने से विभेद बताइये।
4. द्वितीयक वृद्धि क्या है? द्विबीजपत्री मूल में द्वितीयक वृद्धि का सचित्र वर्णन कीजिये।
5. निम्न पर टिप्पणी लिखिये :
   (a) विभज्योतकी ऊतक
   (b) स्रावी ऊतक
   (c) संवहन ऊतक
   (d) वार्षिकी वलय

इकाई 7 : पादपों का वर्गीकरण एवं अध्ययन

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 वर्गीकरण का इतिहास

7.3 पादपों का नामकरण

7.4 वर्गीकरण की पद्धतियाँ

7.5 विभिन्न प्रचलित वर्गीकरणों की रूपरेखा

7.6 'मोनेरा' के सामान्य लक्षण

7.7 'प्रोटिस्टा' के सामान्य लक्षण

7.8 शैवाल के सामान्य लक्षण

7.9 'ब्रायोफाइटा' के सामान्य लक्षण

7.10 'टेरिडोफाइटा' के सामान्य लक्षण

7.11 अनावृतबीजी (जिम्नोस्पर्म) के सामान्य लक्षण

7.12 आवृतबीजी (एन्जियोस्पर्म) के सामान्य लक्षण

7.13 साराश

7.14 शब्दावली

7.15 संदर्भ ग्रंथ

7.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.17 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य पाठकों को पौधों के नामकरण व वर्गीकरण की आवश्यकता व महत्व से परिचित करना है। यह सत्य है कि प्राचीन काल से ही पौधों का अध्ययन व वर्गीकरण किया जाता रहा है तथा कालान्तर में इस वर्गीकरण का आधार अलग-अलग रहा है। पौधों की संरचना के विस्तृत ज्ञान के आधार पर अब ऐसा वर्गीकरण प्रस्तावित किया गया है जिसमें पौधों की विकास से सम्बन्धित आनुवंशिक समानताओं को अधिक महत्व दिया गया है।

7.1 प्रस्तावना

वनस्पति विज्ञान की वह शाखा जिसमें पौधों की पहचान, नामकरण तथा वर्गीकरण के बारे में अध्ययन किया जाता है, **पादप वर्गिकी** (Plant taxonomy) कहलाती है। विश्व में चार लाख से भी अधिक प्रकार के पौधे पाये जाते है तथा कितने ही ऐसे पौधे हैं जिन्हें पहचानना" अभी शेष है। इन सब पौधों का अलग-अलग अध्ययन करना हमारे लिए कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव है। पौधों के अध्ययन को आसान बनाने की दृष्टि से आदिकाल से ही मनुष्य ने पौधों में पाई जाने वाली समानता व भिन्नता के आधार पर समूहों में बांटना प्रारम्भ किया। समानता

व भिन्नता के आधार पर जीवों को समूहों में बाँटने की क्रिया ही **वर्गीकरण** (Classification) कहलाती है।

7.2 वर्गीकरण का इतिहास (History of classification)

पौधों का प्रारम्भिक वर्गीकरण इनके आर्थिक उपयोग के आधार पर किया गया था जैसे अनाज तथा धान्य प्रदान करने वाले पौधे, औषधीय पौधे, रेशे प्रदान करने वाले पौधे, आदि। ऐसे वर्गीकरण इसलिए अधूरे माने गये क्योंकि इनके पीछे कोई भी वैज्ञानिक आधार नहीं था।

थियोफ्रेस्टस (Theophrastus,372-287 B.C) ने सर्वप्रथम पौधों की संरचना के लक्षणों के आधार पर एक वर्षी (Annual), **द्विवर्षी** (Biennial) तथा **वर्षानुवर्षी** (Perennal), शाक (Herbs), **उपक्षुप** (Under shrubs) **क्षुप** या **झाड़ी** (Shrubs) व **वृक्ष** (Trees) आदि में वर्गीकृत किया। यही सबसे पहला वर्गीकरण था। थियोप्रेस्टस को ही वनस्पति विज्ञान का जनक माना जाता है।

केरोलस लिनिएस (Carolus Linnaeus) ने अठारहवीं शताब्दी में पुष्पीय गुणों विशेषतः **पुमँग** (Androecium) के लक्षणों के आधार पर सभी पादपों को 24 वर्गो (Coherts) में विभाजित किया। यह वर्गीकरण अत्यन्त सरल था अत: उस समय काफी प्रचलित हुआ।

लिनिएस द्वारा प्रस्तावित वर्गीकरण पुँकेसरों (stamens) की संख्या (number) परिमाप (size) व संलग्रता पर आधारित है। लैंगिक लक्षणों के आधार पर किया गया यह वर्गीकरण **लैंगिक वर्गीकरण** (Sexual classification) भी कहलाता है। लिनिएस ने पौधों को 24 वर्गो में विभाजित किया। द्विपद नाम पद्धति को स्थापित करने व लैंगिक लक्षणों (sexual characters) के आधार पर प्रस्तावित इस वर्गीकरण के फलस्वरूप ही लिनिएस को **वर्गिकी विज्ञान का जनक** (Father of Taxonomy) माना जाता है।

केरोलस लिनिएस के वर्गीकरण की रूपरेखा

वर्ग 1	एकपुंकेसरी (Monandria)	पुंकेसर एक
वर्ग 2	द्विपुंकेसरी (Diandria)	पुंकेसर दो
वर्ग 3	त्रिपुंकेसरी (Triandria)	पुंकेसर तीन
वर्ग 4	चतु :पुंकेसरी (Tetrandria)	पुंकेसर चार
वर्ग 5	पंचपुंकेसरी (Pentandria)	पुंकेसर पाँच
वर्ग 6	षटपुंकेसरी(Hexandria)	पुंकेसर छः
वर्ग 7	सप्तपुंकेसरी (Heptandria)	पुंकेसर सात
वर्ग 8	अष्ठपुंकेसरी (Octandria)	पुंकेसरआठ
वर्ग 9	नवपुंकेसरी (Enneandria)	पुंकेसर नौ
वर्ग 10	दशपुंकेसरी (Decandria)	पुंकेसर दस
वर्ग11	द्वादशपुंकेसरी) (Dodecandria)	पुंकेसर 11 से 19
वर्ग 12	विंशपुंकेसरी (Icosandria)	पुंकेसर20 अथवा अधिक दलपुंज से संलग्न
वर्ग 13	बहु पुंकेसरे (Polyandria)	पुंकेसर असंख्य

वर्ग 14	द्विद्विक्रमी (didynamia)	पुंकेसर द्विदीर्घी
वर्ग 15	चर्तुद्विक्रमी (Tetradynania)	पुंकेसर चतुर्दीर्घी
वर्ग 16	एक सलांगी (Monadelphia)	पुंकेसर एकसंघी
वर्ग 17	द्विसलांगी (Diadelphia)	पुंकेसर द्विसंघी
वर्ग 18	बहु सलांगी (Polyadelphia)	पुंकेसर बहु संघं
वर्ग 19	संपरागशयी (Syngenesia)	पुंकेसर युक्तकोषी
वर्ग 20	पुंजायांगी (Gynanadria)	पुंकेसर जायांग से संलग्न
वर्ग 21	एकाश्रयी (Monoecia)	पुंकेसर लिंगाश्रयी
वर्ग 22	द्वियाश्रयी (Dioecia)	एकलिंगाश्रयी
वर्ग 23	बहु समांगी (Polygamia)	पुष्प सर्वालिंगी
वर्ग 24	अप्रत्यक्ष लिंगी (Cryptogamia)	पुष्प विहिन या छिपे पुष्पी पादप

चार्ल्स डार्विन (Charles Darwin) द्वारा प्रतिपादित विकास के सिद्धान्त (Doctrine of descent) ने जीवशास्त्र (Biology) के प्रति वैज्ञानिकों की विचारधारा में बहुत बड़ा परिवर्तन कर दिया । इस सिद्धान्त के आधार पर पहले के सारे वर्गीकरण कृत्रिम माने गये तथा इन्हें अमान्य कर दिया गया । पौधों की संरचना, लैंगिक जननांगों के लक्षण व आनुवंशिक लक्षणों में समरूपता को समानता व सन्निकटता का आधार मान कर पौधों के वर्गीकरण प्रस्तावित किए जाने का क्रम प्रारम्भ हुआ ।

7.3 पादपों का नामकरण (Nomenclature of plants)

अठारहवीं शताब्दी के मध्य से पहले पादपों के नाम प्राय : अनेक शब्दों के बने हुए होते थे तथा एक ही पौधे को स्थानीय आधार पर भिन्न -भिन्न नामों से जाना जाता था । इस पद्धति में अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ता था । अत: यह आवश्यक समझा गया कि प्रत्येक पौधे का एक वैज्ञानिक नाम हो जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्य हों । **बाहिन** (Bauhin) ने यद्यपि इस दिशा में सर्वप्रथम पहल की थी किन्तु **लिनिएस** (Linnaeus) ने इसे पूर्णत: स्थापित किया । इस पद्धति के अनुसार प्रत्येक पौधे का वैज्ञानिक नाम दो शब्दों का बना होता है । इसमें प्रथम शब्द उसके वंश (Genus) तथा दूसरा शब्द इसकी विशेष जाति (species) का बोध कराता है । पौधे के नाम का दूसरा शब्द ही जातीय विशेषक (specific epithet) कहलाता है । उदाहरण के लिए **ब्रेसिका केम्पोस्ट्रिस** (Brassica Campestris) सरसों का वनस्पतिक नाम है । इसमें ब्रेसिका वंशीय नाम (Generic name) है तथा केम्पोस्ट्रिस जातीय विशेषक (specific epithet) हैं । ब्रेसिका वंश में अनेक जातियाँ है । जैसे **ब्रासिका जान्सिया** (Brassica Juncea) - राई, **ब्रैसिका एल्बा** (Brassica alba) सफेद सरसों, **ब्रैसिका रापा** (Brassica rapa) शलजम आदि । इस प्रकार दोनों शब्दों को मिलाकर ही किसी विशेष पौधे का नामकरण किया जाता है । नामकरण की इस प्रणाली को **द्विपदनाम पद्धति** (Binomial nomenclature) कहते हैं । पौधों के इन वैज्ञानिक नामों के दोनों भागों के शब्दों को लेटिन

भाषा में लिखा जाता है । वंशीय नाम का प्रथम अक्षर Capital से तथा जातीय विशेषक का प्रथम अक्षर Small letter से लिखा जाता है । इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय वनस्पति नामकरण की संहिता (International code of botanical nomenclature) के सिद्धान्त व नियमों के अनुरूप स्वीकृत नामों को विभिन्न देशों के वनस्पति शास्त्री उपयोग में लेते हैं ।

7.4 वर्गीकरण की पद्धतियाँ

विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरणों को मुख्यत : तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है।

(अ) **कृत्रिम प्रणाली (Artificial system) :** ऐसे वर्गीकरण जिनमें पौधों में एक या कुछ ही लक्षणों में समानता के आधार पर समूह व उपसमूह बनाये जाते हैं, कृत्रिम वर्गीकरण कहलाते हैं । ऐसे वर्गीकरण में किसी एक लक्षण में समानता होने पर, वास्तव में असम्बन्धित पौधों को भी एक समूह में रख दिया जाता है । इस प्रकार के वर्गीकरण भले ही प्राचीन काल में उपयोगी व मान्य रहे है, किन्तु अब इसका कोई महत्व नहीं है । थियोप्रेस्टस के समय से लेकर लिनियस द्वारा प्रस्तावित सभी वर्गीकरण कृत्रिम वर्गीकरण की श्रेणी में आते हैं ।

(ब) **प्राकृतिक प्रणाली (Natural system) :** ऐसे वर्गीकरण में पौधों की कायिक व जनन संरचनाओं के सभी लक्षणों को आधार बनाया जाता है । अधिक से अधिक लक्षणों में समानता दर्शाने वाले पौधों को एक समूह में वर्गीकृत किया जाता है । लिनियस काल के पश्चात् प्रस्तावित अधिकांश वर्गीकरण इस श्रेणी के हैं ।

(स) **जातिवृतीय प्रणाली (Phylogenetic system) :** ऐसे वर्गीकरण में पौधों की संरचना में समानता के साथ इनके आनुवंशिक सम्बन्धों, विकास एवं पूर्वजीय (Parental) समानता को प्रमुख आधार बनाया जाता है । ऐसे वर्गीकरण में पौधों के विकास तथा जातिवृत (Phylogeny) अर्थात वे किस प्रकार के पूर्वजों से उत्पन्न हुए है, पर विशेष ध्यान दिया जाता है । पौधों के सम्पूर्ण ज्ञान के अभाव में एक पूर्ण व सर्वमान्य जातिवृतीय वर्गीकरण अभी भी उपलब्ध नहीं है । अत: प्रचलित वर्गीकरण प्राकृतिक लक्षणों व जातिवृतीय लक्षणों को मिलाकर किए गये हैं ।

7.5 विभिन्न प्रचलित वर्गीकरणों की रूपरेखा

ए. डबल्यू. इकलर (A.W. Eichler 1839-1887) ने सभी पादपों का विस्तृत वर्गीकरण प्रस्तुत किया । इस वर्गीकरण की संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार है :

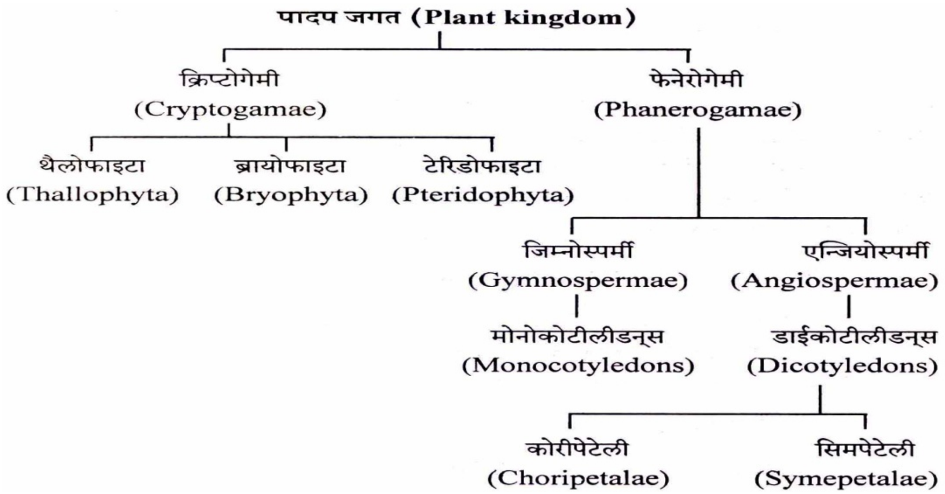

ओसवाल्ड टिप्पो (Oswald tippo) ने 1942 में पादप जगत का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया।

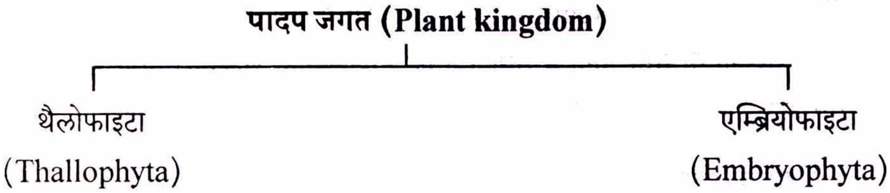

उपजगत थैलोफाइटा को निम्न 10 फाइलम में विभक्त किया गया ।

उपजगत थैलोफाइटा को निम्न 10 फाइलम में विभक्त किया गया ।

1. साइनोफाइटा (Cyanophyta)	उ. नॉस्टाक (Nostoc)
2. युग्लिनोफाइटा (Euglenophyta)	उ. युग्लिना (Euglena)
3. क्लोरोफाइटा (Chlorophyta)	उ. यूलोथ्रिक्स(Ulothrix),क्लेमाइडोमोनास
4. क्राइसोफाइटा (Chrysophyta)	उ. डायेटम्स (Diatoms)
5. पाइरोफाइटा (Pyrrophyta)	उ. डाइनोफ्लैजिलेट्स (ianoflagellates)
6. फियोफाइटा (Phaeophyta)	उ. एक्टोकार्पस (Ectocarpus)
7. रोडोफाइटा (Rhodophyta)	उ. पोलीसाइफोनिया (Polysiphonia)
8. शाइजोमाइकोफाइटा (Schizomycophyta)	उ. जीवाणु (bacteria)
9. मिक्सोमाइकोफाइटा (Myxomycophyta)	उ. स्लाइम मोल्डस (Slimemolds)
10. यूमाइकोफाइटा (Eumycophyta)	उ. वास्तविक कवक उ. म्यूकर (Mucor) ऐल्बूगो (Albugo)

इस वर्गीकरण का प्रमुख आधार पौधों में पुष्प की अनुपस्थिती व उपस्थिति बीज निर्माण अभाव व बीज निर्माण होना, फल की अनुपस्थिति व फल का उपस्थित होना, बीजपत्रों की संख्या एक या दो होना तथा पुष्प में दल पत्रों का स्वतंत्र (प्रथक) व संयुक्त होना जैसे लक्षण है । इस

वर्गीकरण का महत्व इस बात से स्वत: ही स्पष्ट हो जाता है कि इसमें प्रयुक्त अनकानेक शब्द व श्रेणियों वर्तमान में भी मान्य है । यह वर्गीकरण प्राकृतिक वर्गीकरण माना जाता है ।

उपजगत एम्ब्रियोफाइटा को निम्न दो फाइलम में विभाजित किया ।

1. **ब्रायोफाइटा या ऐट्रेकिएटा** (Bryophyta or Atracheata) - इन पौधों में लैंगिक जनन क उपरान्त भ्रूण विकसित होता है तथा भ्रूण के परिवर्धन से उत्पन्न द्विगुणित पादप संरचना में संवहन उत्तक अनुपस्थित होते है यह फाइलम तीन क्लासों (Classes) में विभक्त है ।
   (a) **मसाई** (Musci) - उ. फ्यूनेरिया (Funaria), स्फेगनम (Sphagnum)
   (b) **हेपेटिसी** (Hepaticae) - उ. रिक्सिया (Riccia), मार्केन्शिया (Marchantia)
   (c) **एन्थ्रोसिरोटी** (Anthrocerotae) उ. ऐन्थोसिरोस (Anthoceros)
2. **ट्रेकियोफाइटा (Tracheophyta) -** इन पौधों में भ्रूण के परिवर्धन में निर्मित द्विगुणित पादप संरचना के सभी भागों में संवहन उत्तक (Vascular tissue) पाया जाता है । इसमें चार उपफाइलम (Subphylum) हैं ।
   (a) साइलोप्सिडा (psilopsida) - पर्ण रहित, मूलरहित पौधे - उ. साइलोटम (Psilotum), राइनिया (Rhynia) - राइनिया एक जीवाश्म (Fossil) है ।

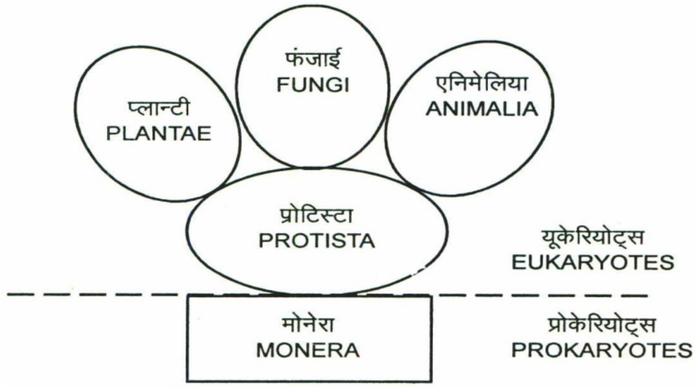

चित्र 1

वीटेकर द्वारा प्रस्तावित पाँच जगत

आर.एच.वीटेकर (R.H. Whittaker, 1969) ने समस्त जीवों को निम्न पाँच जगतों (Kingdoms) में विभाजित किया है ।

1. **मोनेरा** (Monera) - प्रोकेरियोटिक (Prokaryotic) कोशिकीय संरचना वाले सभी जीव । उदाहरण - जीवाणु (Bacteria), नीलहरित शैवाल या साएनोबेक्टर (Blue green algae or cyanobacter), माइकोप्लाज्मा (Mycoplasma).
2. **प्रोटिस्टा** (Protista) - यूकोरियोटिक (Eukaryotic) कोशिकीय संरचना वाले एक कोशीय अथवा अति सरल संरचना वाले ऐसे मण्डलीय (Colonial) या बहुकोशीय (Multicellular) जीव जिनमें श्रम विभाजन (Division of labour) व उत्तक विभेदन (Tissue differentiation) पूर्णत: अनुपस्थित होता है ।

उदाहरण - प्रोटोजोआ (protozoa) कुछ शैवाल (Some algae) जैसे यूग्लिना (Euglena) डाएट्म्स (Diatoms) आदि ।

3. **प्लान्टी** (Plantae) - इनमें यूकेरियोटिक (Eukaryotic) कोशिका के चारों और सैलूलोस (Cellulose) की कोशिका भित्ति (Cell wall) होती है । ये क्लोरोप्लास्ट युक्त होते हैं तथा प्रकाश संश्लेषण द्वारा अपने भोजन का निर्माण स्वयं करते हैं । अर्थात् स्वयंपोषी (Autotroph), प्रकाश संश्नेषी (Phototrophs) होते है ।

   उदाहरण - अधिकांश शैवाल, ब्रायोफाईट्स (Bryophytes) टेरिडोफाइट्स (Pteridophytes), जिम्नोस्पमर्स (Gymnosperms) व एन्जियोस्पर्मस (Angiosperms)

4. **फन्जाई** (Fungi) - इन जीवों का शरीर प्राय: माइसीलियम या कवक जाल का बना होता है । इनमें काइटिन (Chitin) की बनी कोशिका भित्ति पाई जाती है । ये यूकेरियोटिक होते है । इनमें लवक (plastids) अनुपस्थित होते हैं । अत: प्रकाश संश्लेषण नहीं होता है । अत: ये परपोषित (Hetero trophic) प्रकार का पोषण दर्शाते है । परजीवी (Parasite) के रूप में अन्य जीवों से अथवा मृतोपजीवी (Saprophyte) के रूप में पौधों व जन्तुओं से प्राप्त मृत कार्बनिक पदार्थो से पोषण अवशोषित (Absorb) करते है ।

5. **एनिमेलिया** (Animalia) - यूकेरियोटिक कोशिकीय संरचना वाले बहुकोशीय (Multicellular) जीव जिनमें कोशिकाभित्ती व लवक पूर्णत: अनुपस्थित होते है । ये परिपोषित (Heterotrophic) प्रकार का पोषण दर्शाते है ।

   सभी जन्तु अर्न्तग्रहण (Ingestion) विधि से भोजन ग्रहण करते है । इन को मेटाजोअन्स (Metazoans) भी कहते है ।

   उदाहरण - सभी बहुकोशिकीय जन्तु (All multicellular animals)

जीवों के उपरोक्त वर्गीकरण का आधार, कोशिकीय संरचना व इसकी जटिलता (Cell structure & its complexity), शरीर की जटिलता व विभेदन (Complexity of body and differentiation) तथा पोषण विधि (Mode of nutrition) जैसे लक्षण है । यह वर्गीकरण सजीवों में जातिवृत सम्बन्धों (Phylogenetic relations) को स्पष्ट करने में सहायक है तथा वर्तमान में सर्वाधिक मान्य वर्गीकरण है ।

कुछ वैज्ञानिकों ने जीवधारियों को 6 जगतों में विभक्त किया है । इस वर्गीकरण के अनुसार वीटेकर (Whittaker) द्वारा मान्य मोनेरा (Monera) को यूबैक्टीरिया (Eubacteria) व आरकिबैक्टीरिया जगतों (Archeabacteria) में विभाजित कर 6 जगत बनाये गये हैं ।

1990 में कार्ल वूज (carl Woese) ने विभिन्न कोशिकाओं की आनुवंशिक संरचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन कर यह ज्ञात किया कि ये 6 जगत आपस में किस प्रकार सम्बन्धित हैं । इनमें राइबोसोमल आर. एन. ए. (Ribosomal RNA) की जीन अनुक्रम (Gene sequence) के आधार पर 6 जगतों को 3 मुख्य वर्गो में पुन: स्थापित (Rearrange) कर इन्हें डोमेन

(Domain) का नाम दिया ।

1. बैक्टीरिया (Bacteria)
2. आरकि (Archae)
3. यूकेरिया (Eukarya)

कुछ अन्य वैज्ञानिकों ने जीव -जगत को निम्न सात जगतों में विभाजित किया है ।

1. **आरकिबैक्टीरिया** (Archaebacteria)
2. **यूबैक्टीरिया** (Eubacteria)
3. **प्रोटिस्टा** (Protista)
4. **स्लाइम मोल्ड्स** (Slime molds)
5. **फन्जाई** (fungi)
6. **प्लान्टी** (Plantae)
7. **ऐनिमेलिया** (Animalia)

7.6 मोनेरा (Monera) के सामान्य लक्षण

ऐसे समस्त जीव जिनकी कोशिका 'प्रोकेरियोटिक' (Prokaryotic) प्रकार की होती है, आधुनिक वर्गीकरण प्रणाली में मोनेरा के अन्तर्गत रखे गये है । इनमें सुस्पष्ट केन्द्रक (Well defined nucleus) का अभाव होता है । अर्थात आनुवांशिक पदार्थ केन्द्रक झिल्ली (Nuclear membrane) द्वारा घिरा नहीं होता है । साथ ही इनमें प्लाज्मा झिल्ली बद्ध कोशिकांग (माइटोकॉन्ड्रिया, गॉल्जीकाय लाइसोसोम आदि) अनुपस्थित होते है । मोनेरा में वर्गीकृत जीवों की कोशिका अगुणित (Haploid) होती है तथा कोशिकाएँ केवल असूत्री विभाजन (Amitotic Division) द्वारा विभाजित होती है । इनमें समसूत्री एवं अर्द्धसूत्री विभाजन (Mitotic & Meiotic division) का पूर्णत: अभाव होता है । कोशिका द्रव में राइबोसोम्स (Ribosomes) 70s प्रकार के होते है । जिन जीवों में कोशिका भित्ती पाई जाती है उनमें यह पेप्टाइडोग्लाइकेन (Peptidoglycan) की बनी होती है । मोनेरा जगत के जीव प्राय: एक कोशीय (Unicellular) होते है, अथवा इनमें आकारीय रूप से बहुत ही कम विभेदन (Differentiation) पाया जाता है । इस जगत में आर्कीया (Archaea), जीवाणु, नीलहरित शैवाल अथवा सायनोजीवाणु (Blue green algae or Cyanobacteria) तथा माइको प्लाज्मा (Mycoplasma) आदि सम्मिलित किये गये है ।

7.7 प्रोटिस्टा (Protista) के सामान्य लक्षण

ऐसे समस्त जीव जिनकी कोशिका में सुस्पष्ट केन्द्रक (Well defined) पाया जाता है अर्थात जिनमें आनुवांशिक पदार्थ केन्द्रक झिल्ली (Nuclear membrane) द्वारा घिरा रहता है तथा जिनका शरीर प्राय: एक कोशीय होता है अथवा बहुकोशीय किन्तु सरल संरचना युक्त होता है, प्रोटिस्टा के अन्तर्गत वर्गीकृत किये गये है । इनमें प्लाज्मा झिल्ली बद्ध कोशिकांग

(माइटोकॉन्ड्रिया, गॉल्जीकाय, लाइसोसोम आदि) पाये जाते हैं । कोशिका द्रव में 80s प्रकार के राइबोसोम्स (Ribosomes) पाये जाते है । इनकी कोशिका समसूत्री एवं अर्द्धसूत्री विभाजन (Mitotic & Meiotic division) दर्शाती है । 'यूकेरियोटिक' (Eukaryotic) कोशिका संगठन वाले इन जीवों में अलैंगिक व लैंगिक जनन (Asexual & sexual reproduction) पाया जाता है । विकास की दृष्टि से इनकी उत्पत्ति मोनेरा (Monera) श्रेणी के जीवों से हुई मानी जाती है । सरल प्रकार की शैवाल, प्रोटोजोआ (Protozoa) व कवक (Fungi) प्रोटिस्टा में सम्मिलित किये गये है ।

7.8 शैवाल के सामान्य लक्षण (General Characters of Algae)

1. पादप शरीर सूकाय (Thalloid) होता है, अर्थात जड़, तना व पत्तियों का विभेदन नहीं होता है।
2. ये एक कोशीय (क्लेमाइड़ोमोनास - Chlamydomonas) कोलोनियल (वॉल्वोक्स - volvox) तन्तुवत बहुकोशीय (यूलोथ्रिक्स Ulothrix, एक्टोकारपस Ectocarpus) अथवा जटिल (फ्यूकस - Fucus, पाली साइफोनिया (Polysiphonia) प्रकार के होते है ।
3. कोशिकायें पर्णहरित युक्त होती है । क्लोरोफिल 'a' के साथ अनेक शैवालों में क्लोरोफिल 'b' पाया जाता है । कुछ में क्लोरोफिल 'b' के स्थान पर क्लोरोफिल 'c' या 'd' पाया जाता है ।
4. प्रकाश संश्लेषण द्वारा अपना भोजन स्वयं बनाते है ।
5. कोशिका भित्ती सामान्यत : सेलुलोस (Cellulose) की बनी होती है ।
6. आरक्षित भोजन स्टार्च के रूप में संग्रहित किया जाता है ।
7. अधिकांश शैवाल जलीय होते हैं तथा अलवणीय जल (Fresh water) या लवणीय जल (Marine water) या अत्यधिक आर्द्रता युक्त स्थल पर पाये जाते है ।
8. मुख्य पादप प्राय: अगुणित (Haploid) युग्मकोद्भिद् (Gametophyte) होता है ।
9. अनुकूल अवस्था में कायिक जनन तथा अलैंगिक जनन द्वारा संख्या में वृद्धि करते हैं ।अलैंगिक जनन चलबीजाणुओं (Zoospores) या अचल बीजाणुओं (Aplanospores) द्वारा सम्पन्न होता है । बीजाणु निर्माण समसूत्री विभाजन द्वारा होता है ।
10. लैंगिक जनन समयुग्मकी (Isogamous), असमयुग्मकी (Anisogamous) अथवा विषम युग्मकी (Oogamous) प्रकार का होता है ।
11. जननांग सामान्यत: एककोशीय होते हैं । बहुकोशीय अवस्था में जनन कोशिकाओं के चारों और बन्ध्य आवरण (sterile jacket) अनुपस्थित होता है ।
12. युग्मक (Zygote) भ्रूण (Embryo) मे परिवर्धित नहीं होता है ।
13. जीवनचक्र सामान्यत: हेप्लोबायोन्टिक (Haplobiontic) होता है ।
14. पीढ़ी एकान्तरण (Alternation of generation) स्पष्ट नहीं होता है ।

विशेष :

- अलवणीय जलीय (Fresh water) - युलोथ्रिक्स (Ulothrix), स्पाइरोगाइरा (Spirogyra)
- लवणीय या समुद्रीय जलीय (Marine) - एक्टोकार्पस (Ectocarpus), पॉली साइफोनिया (Polysiphonia) ।
- बर्फ में पाई जाने वाले - क्लेमाइडोमोनास (Chlamydomonas)
- अधिपादपी (Epiphyte) - ऊडोगोनियम (Oedogonium)
- सहजीवी - लाइकेन (Lichens) में विभिन्न कवकों के साथ संयुक्त अनेक जातियाँ
- परजीवी (Parasite) - सेफेल्यूरोस (Cephaleuros)
- सबसे बडी शैवाल - मेक्रोसिस्टिस (Macrocystis)
- प्रोटीन समृद्ध (Protein rich) क्लोरेला (Chlorella) स्पाइरूलाइना (Spirulina)
- अगार - अगार प्रदान करने वाले - जेलीडियम की जाति (Gelidium Sp.)
- आयोडिन प्रदान करने वाले - लेमिनेरिया की जाति (Laminaria Sp.)
- प्रतिजैविक प्रदान करने वाले - क्लोरेला की जाति (Chlorella Sp.)
- डायटमी मृतिका (Diatomaceous earth) का निर्माण डायटमस् (Diatoms) की कोशिका भित्ति पर पाये जाने वाले सिलिका (Silica) से होता है। यह उच्चताप की भट्टियों में, ध्वनि रोधक इमारतों तथा चीनी (Sugar) उद्योग में उपयोग में ली जाती है।

7.9 ब्रायोफाइटा के सामान्य लक्षण (General characters of Bryophyta)

1. इस श्रेणी के पौधे पादप जगत के **उभयचारी** (Amphibians of plant kingdom) या **असंवहनी एम्ब्रियोफाइट्स** (Non vascular embryophytes) कहलाते है ।
2. पादप मुख्यत: आर्द्र, नम व छायादार स्थानों पर पाये जाते है ।
3. क्लोरोफिल युक्त स्वपोषी होते है ।
4. मुख्यपादप युग्मोद्भिद् (Gametophyte) होता है । यह पादप शरीर अनेक जातियों में माँसल, चपटा, सूकायक (Thalloid) व यकृत की भांति पालियुक्त (रिक्तियाँ Riccia) होता है । अनेक जातियों में पादप मूलाभास (Rhizoids), अक्ष (Axis) तथा पर्णो (Leaves) में विभेदित (उ. फ्यूनेरिया Funaria) होता है ।
5. जड़ों का पूर्णतया अभाव होता है । इसके स्थान पर मूलाभास (Rhizoids) पाये जाते है जो एक कोशीय अशाखित अथवा बहुकोशीय व शाखित प्रकार के हो सकते है । इनके द्वारा पौधे - अधोस्तर (Substratum) पर स्थिर रहते है । ये भूमि से जल व लवणों का अवशोषण करने में सहायक होते है ।
6. पादप शरीर बहुकोशीय होता है तथा आन्तरिक उत्तक विभेदन पाया जाता है ।

7. लिग्निन युक्त (Lignified) कोशिकाओं तथा संवहन उत्तक अर्थात जायलम (Xylem) व फ्लोयम (Phloem) का पूर्ण अभाव होता है ।
8. युग्मोद्भिद पादप में विभिन्न प्रकार का कायिक जनन होता है जैसे विखण्डन (Fragmentation), जेमी निर्माण (Gemmae formation) व प्रथम जन्तु (Protonema) निर्माण आदि । इसके परिणाम स्वरूप पौधे सघन वृद्धि दर्शाते हैं ।
9. लैंगिक जनन विषययुग्मकी (Oogamous) प्रकार का होता है । नरजननांग **एन्थ्रिडिया** (Antheridia) व मादाजननांग **आर्किगोनिया** (Archegonia) कहलाते हैं । ये बहुकोशीय होते हैं । युग्मक कोशिकायें बन्ध्य आवरण (Sterile jacket) से घिरी होती हैं ।
10. आर्किगोनियम प्लास्क (Flask) के आकार का होता है । इसमें एक गोल व अचल (नॉन-motile) अण्ड (Oopshere=egg) निर्मित होता है ।
11. निषेचन के लिए जल की आवश्यकता होती हे ।
12. नरयुग्मक व अण्ड के सामुज्य (Fusion) से द्विगुणित युग्मनज (Diploid zygote) बनता है। इसे निषिक्ताण्ड (Oospore) कहते है ।
13. निषिक्ताण्ड समसूत्री विभाजन (Mitotic division) द्वारा भ्रूण (Embryo) का निर्माण करता है ।
14. भ्रूण से बीजाणुद्भिद् (Sporophyte) विकसित होता है जिसे **स्पोरोगोनियम** (sporogonium) कहते है ।
15. बीजाणुद्भिद् पूर्ण रूप से (जैसे रिक्सिया - Riccia) अथवा आंशिक रूप से (जैसे फ्यूनेरिया व अन्य माँस Funaria and other mosses व एन्थेसिरोस (Anthoceros) आदि में युग्मकोद्भिद् पर निर्भर रहता है ।
16. सामान्यतः बीजाणुद्भिद् **पाद** (Foot), **सीटा** (Seta) व **कैप्सूल** (Capsule) में विभेदित होता है। रिक्सिया में यह केवल कैप्सूल का बना होता है तथा ऐन्थोसिरोस में पाद व कैप्सूल ही पाया जाता है, सीटा अनुपस्थित होता है ।
17. कैप्सूल में बीजाणुमातृ कोशिकाओं (Spore mother cells) के अर्द्धसूत्री (mitotic) विभाजन द्वारा बीजाणुओं (Spores) का निर्माण होता है ।
18. सभी बीजाणु समान प्रकार के होते है । अतः ब्रायोफाइट्स **समबीजाणुक** (Homosporous) होते है ।
19. अनुकूल परिस्थितियों में बीजाणु अंकुरित हो नयी युग्मकोद्भिद् संतति को जन्म देते है
20. इस प्रकार ब्रायोफाइटा के सदस्यों में निश्चित प्रकार का पीढी एकान्तरण (Alternation of generation) पाया जाता है ।

विशेष-

- जलीय आवास वाले (Aquatic) - रिक्सिया फ्लूटेन्स (Riccia fluitans) व रिक्सिया आबूएन्सिस (Riccia abuensis)
- मृतोपजीवी (Saprophytic) - बक्सबॉमिया एफिल्ला (Buxbaumia aphylla)

- सबसे बड़ा ब्रायोफाइट - डॉसोनिया जाति (Dawsonia sps) लगभग 40 - 50 से.मी. लम्बा । सामान्यत: ब्रायोफाइट्स आकार में छोटे होत है क्योंकि इनमें संवहन उत्तक का अभाव होता है ।
- उपयोगी ब्रायोफाइट - स्फेगनम (Sphagnum) में जल का बहुत अधिक अवशोषण होता है। अत: दूसरे पौधों पर इसे लपेट कर पौधों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा जाता है । इसे घावों की ड्रेसिंग करने के काम में भी लाया जाता है । स्फेगम से प्राप्त 'पीट' (Peat) ईंधन के रूप में भी प्रयोग में ली जाती है ।

7.10 टेरिडोफाइटा के सामान्य लक्षण (General Characters of Pteriodophyta)

1. इस श्रेणी के पौधों को **संवहनी क्रिप्टोगेम्स** (Vascular cryptogams) भी कहते है ।
2. मुख्य पादप द्विगुणित बीजाणुद्भिद् (Sporophyte) होता है तथा जड़, तने व पत्तियों में विभेदित होता है ।
3. ये विषम रूपी पीढ़ी एकान्तरण (Heteromorphic alternation of generation) दर्शाते हैं।
4. जीवन चक्र की अल्पकालिक पीढ़ी अगुणित युग्मकोद्भिद् (Gametophyte) है तथा सूकायक (Thalloid) होती है । इसे प्रोथेलस (Prothallus) कहते है ।
5. बीजाणुद्भिद् अवस्था दीर्घकालिक व अत्यधिक विकसित होती है ।
6. बीजाणुद्भिद् के सभी भागों में संवहन उत्तक पाया जाता है ।
7. जायलम में वाहिकाओं (Vessels) तथा फ्लोयम में सह कोशिकाओं (Companion cells) का अभाव होता है ।
8. अधिकांश वर्तमान टेरिडोफाइट्स में द्वितीयक वृद्धि (Secondary growth) अनुपस्थित होती है।
9. बीजाणुद्भिद् में अलैंगिक जनन बीजाणुद्भिद् में निर्मित बीजाणुमातृ कोशिकाओं (Spore mother cells) के अर्धसूत्री विभाजन से बने बीजाणुओं (Spores) के द्वारा होता है ।
10. अधिकांश टेरिडोफाइट्स **समबीजाणुता** (Homospory) दर्शाते है । उदाहरण फर्न (Ferns), इक्विसिटम (Equisetum) आदि । केवल कुछ ही टेरिडोफाइट्स में विषम बीजाणुता (Hererospory) पाई जाती है । उदाहरण सिलेजिनेला (Selaginella), मार्सिलिया (Marselia)
11. अनुकूल अवस्था में अंकुरित हो बीजाणु युग्मकोद्भिद् का निर्माण करते है । यह अल्पकालिक व अत्यन्त सरल संरचना वाला स्वतंत्र एव स्वपोषी होता है ।
12. युग्मकोद्भिद् में प्राय : आन्तरिक उत्तक विभेदन नहीं होता है व संवहन उत्तक अनुपस्थित होते हैं।
13. युग्मकोद्भिद् में जननांग बनते हैं । नर जननांग एन्थ्रिडिया (Antheridia) व मादा जननांग आर्किगोनिया (Archegonia) कहलाते हैं ।

14. जननांग बहुकोशीय तथा बंन्ध्य आवरण (Sterile jacket) युक्त होते है ।
15. युग्मनज (Zygote) से भ्रूण (Embryo) का निर्माण होता है ।
16. भ्रूण से शीघ्र ही स्वतंत्र व विकसित युग्मकोद्भिद् का विकास होता है ।

विशेष :

- जड़ विहिन - साइलोटम (Psilotum)
- जीवाश्म - राइनिया (Rhynia)
- वार्किग फर्न (Walking fern) - एडिएन्टम (Adiantum)
- ट्री फर्न (Tree fern) - एलसोफिला (Alsophila)
- द्‌वितीयक वृद्धि दर्शाने वाला - आइसोइटिस (Isoetes)

7.11 अनावृतबीजी (जिम्नोस्पर्मस) के सामान्य लक्षण (General Characters of Gymnosperms)

1. ये सामान्यत : अनावृतबीजी (Naked seeded) कहलाते हैं । क्योंकि इन पौधों के बीज फल भित्ति से ढके नहीं होते हैं, अपितु नग्न होते हैं ।
2. पादप शरीर जड़, तने व पत्ती में विभेदित अति विकसित, प्राय : वृक्ष रूपी होता है । सभी भागों में संवहन उत्तक पाया जाता है ।
3. इनमें द्‌वितीय वृद्धि पाई जाती है तथा बहुवर्षीय (Perennial) व काष्ठीय (Woody) होते हैं।
4. जायलम में वाहिकाओं (Vessels) तथा फ्लोयम में सहकोशिकाओ (Companion cells) का अभाव होता है ।
5. इनमें वृद्धि धीमी गति से होती है तथा पत्तियाँ सरल (Simple) या संयुक्त (Compound)हो सकती हैं ।
6. सामान्यत : सदाहरित या सदापर्णी (Evergreen) होते हैं ।
7. सभी जिमोस्पर्मसं विषमबीजुता (Heterospory) दर्शाते हैं ।
8. पौधों में जनन संरचनायें (Reproductive structures) प्राय: एकलिंगी शंकु (Cone) या स्ट्रोबाइलस (Strobilus) के रूप में बनती है ।
9. लघु बीजाणुधानियाँ (Microsporangia) या परागधानियाँ (Pollen sacs) रूपान्तरित पर्णो पर बनती है । इन्हें लघु बीजाणुपर्ण कहते हैं ।
10. लघु बीजाणुधानियों में लघु बीजाणुमातृ कोशिकायें या परागमातृ कोशिकायें (Microspore mothers cells or pollen mothers cells) के अर्धसूत्री विभाजन से सूक्ष्मबीजाणु या परागकणों (Microspore or pollen grain) का निर्माण होता है ।
11. गुरूबीजाणु पर्णो (Megasporophylls) पर बीजाण्ड (Ovule) का निर्माण होता है ।

12. बीजाण्डकाय (Nucellus) में स्व गुरूबीजाणु मातृ कोशिका (Megaspore mother cell) के अर्धसूत्री विभाजन से रेखीय क्रम में स्थित चार गुरूबीजाणुओं (Megaspores) का निर्माण होता है।
13. चार गुरुबीजाणुओं में से केवल एक (प्राय : आधारीय) क्रिया शील होता है । तथा शेष तीन नष्ट हो जाते हैं ।
14. इस क्रियाशील गुरु बीजाणु से बीजाण्ड में एक मादा युग्मकोद्भिद् (Female gametophyte) का निर्माण होता है । इस संरचना को भ्रूण पोष (Endosperm) भी कहते हैं ।
15. मादा युग्मकोद्भिद् या भ्रूण पोष के उपरी सिरे पर दो या दो से अधिक आर्किगोनिया विकसित होती है ।
16. परागण (Pollination) वायु द्वारा होता है तथा परागकण (Pollen grains) सीधे बीजाण्ड द्वार (Micropyle) पर पहुँचते हैं ।
17. बीजाण्ड एकअध्यावरणीय (Unitegmic) होते हैं । यह अध्यावरण प्राय: तीन परतों में विभेदित होती है ।
18. परागकण अंकुरित हो नरयुग्मकोद्भिद् में विकसित होता है ।
19. नर युग्मक प्राय: अकशाभी (Non-flagellated) होते हैं तथा परागनलिका द्वारा अण्ड (egg) के समीप पहुँचते हैं ।
20. निषेचन से युग्मनज (Zygote) का निर्माण होता है ।
21. युग्मनज के समसूत्री विभाजन से भ्रूण (Embryo) का निर्माण होता है ।
22. परागण व निषेचन के उपरान्त गुरूबीजाणु पर्ण पर स्थित बीजाण्ड (Ovule) बीज (Seed) में पीरवर्तित हो जाता है ।
23. क्योंकि अण्डाशय (Ovary) जैसी संरचना का अभाव होता है अत : फल का निर्माण नहीं होता।
24. भ्रूणपोष (Endosperm) अगुणित (Haploid) होता है, तथा इसका निर्माण परागण व निषेचन से पूर्व ही हो जाता है ।
25. आवृतबीजीयों (Angiosperms) में पाई जाने वाली द्विनिषेचन (Double fertilization) तथा त्रिसंलयन (Triple fusion) अवस्था अनुपस्थित होती है ।

विशेष :

- प्रमुख उदाहरण - सायकस (Cycas), पाइनस (Pinus), एफिड्रा (Ephedra)
- सबसे छोटा - जैमिया पिग्मिया (Zamia pygmia)
- सबसे ऊँचा (लम्बा) - सिकुआ सेम्पर वाइरेंस (Sequoia sempervirens) लगभग 400 फीट लम्बा - " रेडवुड ऑफ केलिफोर्निया " के नाम से प्रसिद्ध
- साइकस रम्फाई (Cycas rumphii) को सागो पॉम (Sago palm) भी कहते है - इससे साबूदाना प्राप्त किया जाता है ।

- साइकस के बीजाण्ड (Ovules) व नरयुग्मक (Male gametes) पादप जगत में सबसे बड़े आमाप (Size) के होते है ।
- राजस्थान में प्राकृतिक रूप से पाया जाने वाला एक मात्र अनावृत बीजी एफिड्रा (Ephedra) है।
- बगीचों में उगाया जाने वाला शोभाकारी पौधा - मोरपंख या विद्या (Thuja or Biota) एक अनावृतबीजी है ।

7.12 आवृतबीजीयों के सामान्य लक्षण (General Characters of Angiosperms)

1. यह पादप जगत का सबसे अधिक प्रभावी वर्ग है तथा हमारे चारों ओर पाये जाने वाले अधिकांश पौधे इस श्रेणी में आते हैं ।
2. ये पौधे सभी प्रकार के आवासों में पाये जाते है तथा सर्वाधिक विकसित होते हैं ।
3. मुख्य पादप द्विगुणित बीजाणुद्भिद् होता है । यह जड़, तने, व पत्तियों में विभेदित होता है ।
4. इनकी जायलम में वाहिकायें (Vessels) तथा फ्लोयम में सहकोशिकायें (Companion cells) उपस्थित होती हैं ।
5. जनन संरचनायें रूपान्तरित प्ररोह (Modified shoot) में बनती है । जिसे पुष्प (Flower) कहते है ।
6. पुष्प में पुमंग (Androecium) व जायाँग (Gynoecium) क्रमश: नर (Male) व मादा (Female) चक्र (Whorls) कहलाती है ।
7. पुमंग की इकाई पुंकेसर है । इसके स्वतंत्र सिरे पर परागकोष (Anther) का निर्माण होता है ।
8. परागकोश प्राय: द्विपालित (Bilobed) अर्थात द्विकोष्ठीय (Dithecous) होते है ।
9. प्रत्येक कोष्ठक में दो परागकोष्ठ (Pollen chamber) होते हैं । इस प्रकार एक परागकोष में चार परागकोष्ठ (Pollen chamber) बनते है ।
10. परागकोष्ठ में परागमातृ कोशिकाओं (Microspore mother cells) के अर्धसूत्री विभाजन से परागकणों (Pollen chamber) का निर्माण होता है ।
11. जायांग की इकाई **अण्डप** (Carpel) है । यह तीन भागों - **अण्डाशय** (Ovary) वर्तिका (Style) व **वर्तिकाग्र** (Stigma) में विभेदित होता है ।
12. बीजाण्ड (Ovule) अण्डाश्य (Ovary) के अन्दर विकसित होते है ।
13. प्रत्येक बीजाण्ड में गुरूबीजाणु मातृ कोशिका (Megaspore mother cells) के अर्धसूत्री विभाजन से 4 गुरूबीजाणु बनते है । इनमें से प्राय : तीन लुप्त हो जाते है त था एक क्रियाशील रहता है ।

14. क्रियाशील गुरूबीजाणु (Functional megaspore) बीजाण्डकाय (Nucellus) में सिरे के पास मादायुग्मकोद्भिद् (Female gametophyte) का निर्माण करता है । यह प्राय: अष्ट केन्द्रकीय (Eight nucleated) संरचना होती है । इसे भ्रूण कोष (Embryo sac.) कहते है।
15. परागकण कीटों या वायु तथा कुछ जातियों में जल अथवा अन्य जन्तुओं द्वारा वर्तिकाग्र (Stigma) पर पहुँचाये जाते हैं ।
16. वर्तिकाग्र पर परागकण अंकुरित होते है तथा परागनलिका त था 2 नर युग्मकों का निर्माण होता है । परागनलिका वर्तिका में होती हुई अण्डाशय क्षेत्र में पहुँचती हैं ।
17. अन्तत: परागनलिका बीजाण्ड द्वार (Micropyle) द्वारा बीजाण्ड में स्थित भ्रूणकोष (Embryo sac) में प्रवेश करती है ।
18. एक नरयुग्मक, अण्ड के साथ संयुक्त (Fuse) हो द्विगुणित युग्मनज (Zygote or Oospore) बनाता है ।
19. दूसरा नरयुग्मक भ्रूण कोष के दो केन्द्रकों के संलयन से निर्मित **द्वितीयक केन्द्रक** (Secondary nucleus) के साथ संयुक्त हो एक त्रिगुणित **प्राथमिक भ्रूणपोष केन्द्रक** (Primary endosperm nucleus) का निर्माण करता है ।
20. इस प्रकार आवृत बीजीयों में होने वाली निषेचन की यह क्रिया **द्विनिषेचन** (Double fertilization) व त्रिसंलयन (Triple fusion) कहलाती है ।
21. प्राथमिक भ्रूणपोष केन्द्रक से **भ्रूणपोष** (Endosperm) का विकास होता है तथा युग्मनज से भ्रूण का विकास होता है ।
22. भ्रूण से बनने वाले बीज पत्रों की संख्या - दो बीज पत्र (द्विबीजपत्री - Diotyledons या एक बीज पत्र (एक बीज पत्री - Monocotyledons) ही आवृत बीजीयों के इन दो श्रेणियों में विभाजन का प्रमुख आधार है ।

विशेष :

- सबसे छोटा - वॉल्फिया (Wolffia)
- सबसे बड़ा - यूकेलिप्टस (Eucalyptus)
- सबसे बड़े पुष्प वाला - रेफ्लेसिया (Raffesia)
- मृतोपजीवी (saprophyte) - मोनोट्रोपा (Monotropa)
- परजीवी (Parasite) - अमरबेल (Cuscuta), ओरोबेन्की (Orobanche)
- कीट भक्षी (Insectivorous) - पिचर प्लान्ट या घट पादप (Nepenthes)

बोध प्रश्न

1. लिनिएस द्वारा प्रस्तावित वर्गीकरण प्रणाली है।
   (a) कृत्रिम
   (b) प्राकृतिक
   (c) जातिवृतीय

(D) आधुनिक

2. मोनेरा जगत में किन जीवों को सम्मलित किया गया है।

(a) सभी एक कोशीय जीव

(b) केवल प्रोकेरियोटिक जीव

(c) सभी अकशाभिकीय एक कोशीय जीव

(d) केवल अकेन्द्रकीय जीव

3. अनावृत बीजायों में निम्न में से किस का अभाव होता है?

(a) बीज में बीज चोल

(b) बीज में भ्रूण पोष

(c) बीज पर फलभित्ती आवरण

(d) उपरोक्त सभी

4. शैवालों में मादा युग्मक किस संरचना में बनता है ?

....

....

5. किस श्रेणी के पौधों में युग्मकोदभिद अवस्था अल्पावधी वाली, स्वतंत्र व स्वपोषित होती है ?

....

....

6. किस श्रेणी के सभी पौधों में परागण केवल वायु द्वारा ही होता है ?

....

....

7. 'एम्ब्रियोफाइटा' में कौन से पौधे सम्मलित किए गये है?

....

....

8. राजस्थान में प्रकृति में उगने वाले अनावृतबीजी पौधे का नाम लिखिए।

....

....

9. सहकोशिकाएं किस विशेष प्रकार के उत्तक में पाई जाती है।

....

....

10. किसी एक मृतोपजीवी आवृतबीजी का नाम लिखिए।

....

....

7.13 सारांश

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि जिस प्रकार किसी पुस्तकालय में पुस्तकों को एक विशेष नियमावली के द्वारा व्यवस्थित किये जाने पर ही आसानी से उनका समुचित उपयोग व अध्ययन सम्भव है उसी प्रकार प्रकृति में पाये जाने वाले पौधों को भी एक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्य नाम से जानना तथा उनके लक्षणों की समानता व भिन्नता के आधार पर समूह या श्रेणियों में विभक्त करने पर ही उनका अध्ययन संभव है । इस प्रकार के वर्गीकरण का एक महत्वपूर्ण लाभ यह भी है कि एक विशेष श्रेणी के एक पौधे का अध्ययन करने पर उस श्रेणी के सभी पौधों के प्रमुख लक्षणों का आभास हो जाता है ।

यहाँ यह जानना भी आवश्यक है कि भिन्न -भिन्न प्रकार के पौधे सारे विश्व में भिन्न -भिन्न स्थानों पर पाये जाते हैं तथा किसी भी मनुष्य के लिए इन सभी पौधों को प्रत्यक्ष देख पाना संभव नहीं है । उपरोक्त वर्गीकरण के आधार पर हम किसी पौधे को बिना देखे भी उसके प्रमुख लक्षणों के आधार पर उसे सम्बन्धित समूह श्रेणी में वर्गीकृत कर सकते हैं ।

7.14 शब्दावली

द्विदीर्घी : चार पुंकेसरों में दो लम्बे व दो छोटे ।

चतुदीर्घी : छः पुंकेसरों में चार लम्बे व दो छोटे ।

एकसंघी : सभी पुंकेसरों के केवल पुतन्तु भाग आपस में संयुक्त ।

द्विसंघी : पुंकेसरों के पुतन्तु दो संघों में संयुक्त ।

बहु संघी : पुंकेसरों के पुतन्तु दो से अधिक संघों में संयुक्त ।

युक्त कोषी : पुंकेसरों के पुतन्तु भाग पृथक् किन्तु परागकोष संयुक्त ।

उभयलिंगाश्रयी : एक पौधे पर नर व मादा पुष्प स्थित ।

एकलिंगाश्रयी : नर व मादा पुष्प भिन्न पौधों पर स्थित ।

सर्वालिंगी : एक ही पौधे पर नर, मादा व द्विलिंगी प्रकार के पुष्प स्थित ।

कोरीपेटेली : पुष्प में दल स्वतंत्र (पृथक् दली) ।

सिमपेटेली : पुष्प में दल संयुक्त (संयुक्तदली) ।

स्पोरोगोनियम : ब्रायोफाइटा वर्ग के बीजाणुभिद् हेतु प्रयुक्त शब्द ।

समबीजाणुता : एक ही प्रकार के बीजाणु निर्माण का लक्षण ।

विषम बीजाणुता : दो भिन्न प्रकार के बीजाणु निर्माण का लक्षण यथा लघु बीजाणु व गुरु बीजाणु निर्माण का लक्षण ।

भ्रूण : निषिक्ताण्ड के समफ्टी विभाजन से मादा जननांग में बनी बहुकोशीय संरचना ।

7.15 संदर्भ ग्रन्थ

1. कॉलेज बोटनी (वोल्यूम II), हिरेन्द्र चन्द्र गाँगुली एवं अशोक कुमार कार, न्यूसेन्ट्रल बुक एजेन्सी, कोलकाता - 9

2. क्रिप्टोगेमिक बोटनी (वोल्यूम I,II), गिलबर्ट एम. स्मिथ, टाटा मग्रा हिल पब्लिशिंग कं. लि.,नई दिल्ली
3. आधुनिक वनस्पति विज्ञान, एम पी. कौशिक, प्रकाश पब्लिकेशन्स, मुज़फ़्फरनगर (उ.प्र.)
4. फण्डामेन्टल्स ऑफ बोटनी, के. एस. बिलग्रामी, श्रीवास्तव रख श्रीमाली, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., नई दिल्ली
5. सूक्ष्म जैवीय एवं अपुष्पोद्भिदी विविधताएँ, पी.सी. त्रिवेदी, निरंजन शर्मा व अन्य, रमेश बुक डिपो, जयपुर - नई दिल्ली

7.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (a)
2. (b)
3. (c)
4. अण्डधानी
5. टेरिडोफाइटा
6. अनावृतबीजी
7. ब्रायोफाइटा, टेरिडाफाइटा,अनावृतबीजी व आवृतबीजी ।
8. एफिड्रा
9. फ्लोयम
10. मोनोट्रोपा

7.17 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अण्डधानी व स्त्रीधानी में अन्तर स्पष्ट कीजिए ।
2. शैवाल के चार प्रमुख लक्षण लिखिए ।
3. ब्रायोफाइटा के बीजाणुद्भद् के विभेदक लक्षण लिखिए ।
4. टेरिडोफाइटा व ब्रायोफाइटा में तीन प्रमुख अन्तर लिखिए ।
5. संवहन उत्तक क्या हैं तथा किन वर्गो के पौधों में पाये जाते हैं?
6. समबीजाणुता व विषमबीजाणुता से आप क्या समझते हैं?
7. आवृतबीजीयों के मादा युग्मोद्भिद् को किस नाम से जाना जाता है तथा इसकी संरचना कैसी होती है ।
8. द्विनिषेचन व त्रिसंलयन से आप क्या समझते है? यह किस श्रेणी के पौधों का विशिष्ट लक्षण है।
9. प्रोकेरियोटा व यूकेरियोटा में प्रमुख अन्तर लिखिए ।
10. विटेकर द्वारा प्रस्तावित जीव जगत वर्गीकरण का आरेखी चित्र बनाइये ।

इकाई 8 : आवृतबीजी पादपों का अध्ययन, नर एवं मादा युग्मकोद्भिद संरचना एवं विकास, परागण, निषेचन एवं भ्रूण परिवर्धन)Studies of Angiosperm Plants, Male and Female Gamatophyte, Structure and Development, Pollination, Fertilization and Embryo Development)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 आवृतबीजी पादपों की प्रमुख विशेषताएँ

- 8.2.1 एक प्रारूपिक पुथ के प्रमुख भाग
- 8.2.2 परागकोष की संरचना
- 8.2.3 लघु बीजाणुजनन
- 8.2.4 लघु बीजाणु चतुष्कों के प्रकार
- 8.2.5 परागकोष : स्फुटन

8.3 नर युग्मकोद्भिदः संरचना एवं विकास

- 8.3.1 परागकण की संरचना
- 8.3.2 नर युग्मकोद्भिद का विकास
- 8.3.3 नर युग्मकों का निर्माण

8.4 मादा युग्मोकोद्भिदः संरचना एवं विकास

- 8.4.1 बीजाण्ड की संरचना
- 8.4.2 बीजाण्ड के प्रकार
- 8.4.3 गुरूबीजाणु मातृ कोशिका
- 8.4.4 मादा युग्मकोद्भिद

8.5 परागकण

- 8.5.1 परागण के प्रकार

8.6 निषेचन

- 8.6.1 परागकणों का अंकुरण
- 8.6.2 परणनलिका का बीजाण्ड में प्रवेश

8.6.3 परागनलिका का भ्रूणकोष में प्रवेश
8.6.4 द्विविषेचन एवं त्रिक सलंघन
8.6.5 द्विनिषचन का महत्व
8.7 भ्रूणकोष की संरचना एवं परिवर्धन
8.7.1 भ्रूणकोष के प्रकार
8.7.2 भ्रूणकोष के कार्य
8.8 भ्रूण का परिवर्धन
8.9 सारांश
8.10 शब्दावली
8.11 सन्दर्भग्रन्थ
8.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.0 उद्देश्य

युग्मकोद्भिद एवं युग्मक के निर्माण तथा भ्रूण विकास से सम्बन्धित सभी प्रकियाएँ पुष्प में होती है । पौधे के जीवन -चक्र में पुष्प का विशेष महत्व है । पुष्प के अन्दर ही नर व मादा जननांग बनते हैं वही पर इनका विकास होता है । अत: इस अध्याय में पुष्प की संरचना तथा नर एवं मादा युग्मकोद्भिद (Male and Female Gametophyte) एवं परागकण (Pollination),निषेचन (Fertilization) एवं भ्रूण (Embryo) के विकास से सम्बन्धित घटनाओं का संक्षिप्त परिचय कराया गया है ।

8.1 प्रस्तावना

आवृन्तबीजियों के भ्रूण विज्ञान में वैज्ञानिक अनुसंधान प्रारम्भ करने का श्रेय इटली के **गियोवेनी बेटिस्टा एमिसी** (Giovanni Battista Amici, 1824) को है । कुछ समय बाद **एडवर्ड स्ट्रैस** बर्गर Edward Strasburger,1884) ने आदर्श स्थिरीकरण व अभिरंजन तकनीकों की सहायता से नरयुग्मक व अण्ड के संलघन (Fertilization) की प्रक्रिया देखने में सफलता प्राप्त की । 1898 में **एस. जी, नावाश्चिन** (S.G. Nawaschin) ने द्विनिषेचन अथवा त्रिकसंलघन (Double Fertilization or Triple Fusicm) की पुष्टि की, यह आवृतबीजियो का प्रमुख लक्षण है । 1950 में **प्रोफेसर पी. माहेश्वरी** (Professor P. Maheshwari) की पुस्तक **"एन इन्ट्रोक्शन दू दी एम्ब्रयोलोजी"** (An Introduction to the Embryology) एवं डी. ए. जोहेन्सन (D.V. Johansen) की पुस्तक **प्लान्ट एम्ब्रयोलोजी** (Plant Embryology) में आवृतबीजियों के सभी वर्गो के पौधों के भ्रूणविकास की विस्तृत वर्णन किया गया है ।

8.2 आवृतबीजी पादपों की प्रमुख विशेषताएँ

एन्जियोस्पर्म्स (Angios = छिपा हुआ, Sperma = बीज) पुष्पधारी पादप है, जिनमें बीज फल भित्ति में छिपे रहते हैं । आवृतबीजी पौधें उच्चकोटि के विकसित (Advanced) एवं विश्वव्यापी (Cosmopolitan) होते हैं।

आवृतबीजी (Angiosperms) पादप को र्स्पमेटोफाइटा या बीजपादप भी कहते हैं । इस समुदाय में बीज पाये जाते हैं, जोकि अण्डाशय की भित्ति से पीरवद्ध रहते हैं, और दिखाई नहीं देते हैं । बीज के अन्दर भ्रूण (Embryo) सुरिक्षत रहता है प्रकृति में आवृन्तबीजी पादप बीजाणुद्भिद (Sporophyte) अवस्था में मिलते है, जोकि मूल स्तम्भ, पर्णो पुष्प व फल में विभेदित होते हैं । पुष्प लैंगिकजनन के लिए रूपान्तरित प्ररोह है जोकि पादप जनन के लिए उत्तरदायी है ।

8.2.1 एक प्रारूपिक पुष्प के प्रमुख भाग (Parts of a Typical Flower)

पुष्प, जिस डंठल (stalk) पर लगा होता है, उसे पुष्प वृन्त (sedicel) कहते है पुष्प वृन्त का शीर्षमार्ग (apex) थोड़ा फैला हुआ व बड़ा होता हैं । इस भाग पर पुष्प के पुष्पत्र लगे रहते हैं, इसको पुष्पासन (thalamus) कहते है ।

एक प्रारूपिक पुष्प (Typical Flower) में चार प्रमुख भाग पाये जाते हैं । सबसे बाहरी भाग को ब्रहमदल पुंज (Calyx) कहतें हैं । इस के भीतर दूसरा भाग दलपुंज (Corolla) होता है । दलपुंज पुष्प का सुन्दर रंगीन भाग होता है, जिन्हें पुष्प की पंखुडिया भी कहते है । कभी कभी ब्रहमदलपुंज एवं दलपुंज मिलकर परिदल (Perianth) बनाते हैं । दलपुंज के अन्दर की ओर पुंकेसरों (Stamen) का एक चक्र विद्‌यमान होता है, जिसे पुंमग (Androecium) कहते है । यह नर जनन अंग कहलाता है । प्रत्येक पुंकेसर के तीन भाग होते हैं । पुष्पासन से जुड़ा निचला भाग पतले धागों के समान होता है । इसे पुतन्तु (Filament) कहते है । इस तन्तु के शीर्ष भाग पर थैली के समान **परागकोष** (Anther) होते है । परागकोश दो पत्तियों (Anther Lobes) के बने होते हैं । दोनों पत्तियों के मध्य में योनि (Connective) होती है, जिससे दोनों पत्तियाँ जुड़ी रहती है ।

पुष्पासन के सबसे भीतरी भाग पर जावांग (Gynoecium) पाये जाते हैं । यह मादा जनन अंग होता है । इसका निचला भाग **अण्डाशय** (Ovary) कहलाता है । अण्डाशय के भीतर बीजाण्ड बन्द रहते हैं । अण्डाशय का ऊपरी भाग एक पतला तन्तुनुमा होता है, इसे वर्तिका (Style) कहते है । वर्तिका का ऊपरी भाग फूला हुआ होता है, इसे **वर्तिकाग्र** (Stigma) कहते है (चित्र 8.1) ।

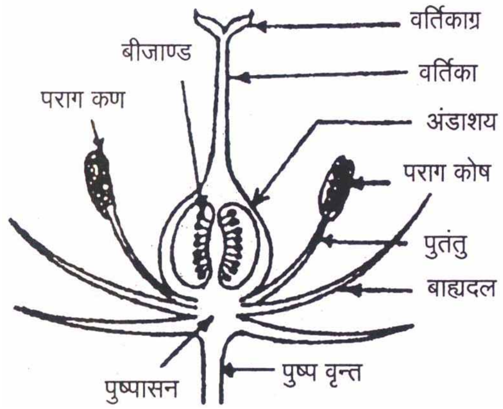

चित्र 8.1 : पुष्प के विभिन्न भाग (अनुदैर्ध्य काट)

8.2.2 परागकोष की संरचना (Structure of Anther)

प्रत्येक परागकोश में दो पत्तियाँ (Lobes) होती है । प्रत्येक पाली में दो **परागपुट** (Pollen sacs) होते हैं । इन्हीं परागपुटों के अन्दर **परागकण** (Pollen Grains) बनते हैं । परागकोष के अनुप्रस्थकाट के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भित्ति बाह्यत्वचा (Epidermis) ऐवं आंतरिक अन्तभित्ति (Endothecium) की बनी होती है । अन्तभित्ति की कोशिकाएँ आर्द्रताग्राही (Hygroscopic) होती है । आर्द्रताग्राही होने के कारण अन्त:भित्ति की कोशिकाओं में शुष्क परिस्थितियों में खिंचाव पैदा होता है, तथा परागकोष का स्फुटन (Dehiscence) होता है, परागकोष भित्ति सबसे अन्दर वाली परत को टेपीटम (Tapetum) कहते हैं । टेपीटम की कोशिकाएँ परागकोश में उपस्थित बीजाणुजनक कोशिकाओं को घेरे रहती है । टेपीटम का पूर्ण विकास, परागकोषों के बनने के समय होता है (चित्र 8.2) ।

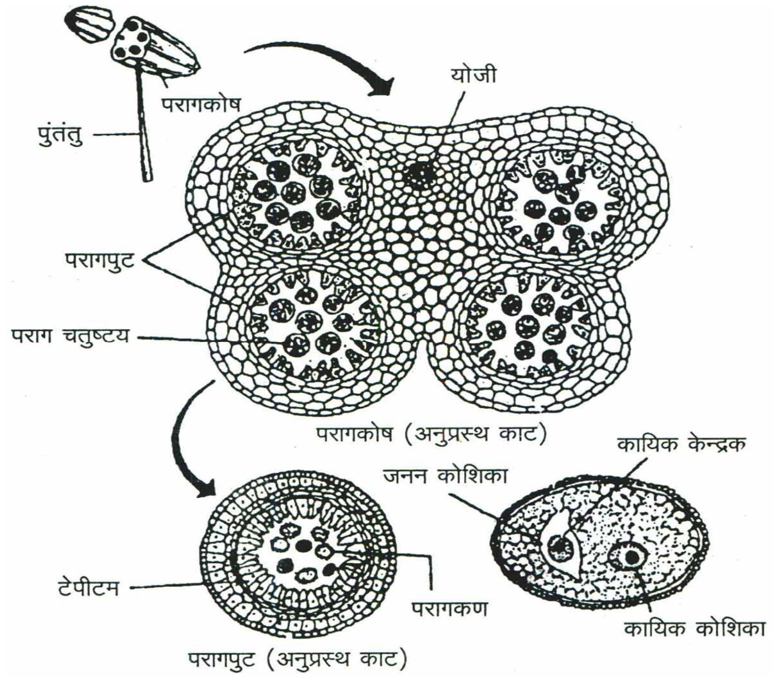

चित्र 8.2: पुंकेसर व परागकण की संरचना

टेपीटम कोशिकाओं का जीवद्रव्य गाढ़ा तथा केन्द्र काफी बड़ा होता है । आवृतबीजी पादपों में टेपीटम दो प्रकार का होता है । (1) **अमीबीकी** (Amoeboid) इस प्रकार की टेपीटम कोशिकाओं की कोशिकाभित्ति नष्ट हो जाने के कारण जीवद्रव्य अमीबा की भाँति विचरण करने लगते हैं तथा परागकणों के भोजन के रूप में काम में आते है । (2) **स्रावी टेपीटम** (Secretory Tapetum) टेपीटम की आन्तरिक सतह से भोज्य पदार्थों का स्त्रावण होता है ।

टेपीटम का मुख्य कार्य विकासशील परागकणों का पोषण (Nutrition) प्रदान करना हैं । पोषण के अलावा स्रावी टेपीटम द्वारा प्रोटीन कण (यूबिश कण) का निर्माण करते हैं जो परागकणों की बाह्यसतह पर जमा हो जाते हैं ।

8.2.3 लघु बीजाणु जनन (Microsporogenesis)

आवृतबीजी पादपों का अध्ययन नर एवं मादा परगपुटों के अन्दर गाढ़े जीवद्रव्य वाली कोशिकाएँ होती है, इन्हें **प्राथमिक बीजाणु जनन कोशिकाएँ** (Primary Sporogenous) कहते हैं। लघु बीजाणु जनन कोशिकाएँ बीजाणुजन ऊतक विकास, परागण, निषेचन बनाती हैं। बीजाणु जनन ऊतक से लघु बीजाणुओं के बनने का प्रक्रम लघु बीजाणु जनन (Microsporogenesis) कहलाता हैं।

प्रत्येक सक्रिय लघु बीजाणु जनन कोशिका (Functional Microspore Mother Cell) में अर्द्धसूत्री विभाजन (Meiosis) के फलस्वरूप चार लघु बीजाणु बनते है परागकण (Pollen Grain or Microspore) चतुष्कों (Tetrads) के रूप में व्यवस्थित रहते हैं।

8.2.4 लघु बीजाणु चतुष्कों के प्रकार (Types of Pollen Tetrads)

आवृतबीजी पादपों में लघु बीजाणु विभिन्न प्रकार के चतुष्कों (Tetrads) में पाये जाते है, जोकि निम्नलिखित प्रकार से व्यवस्थित रहते है (चित्र 8.3)।

(1) चतुएकफलकीय (Tetrahedr)

(2) समद्वि पार्शिविक (Isobilateral)

(3) क्रॉसित (Decussate)

(4) रेखिक (Linear)

(5) T - आकार (T-shaped)

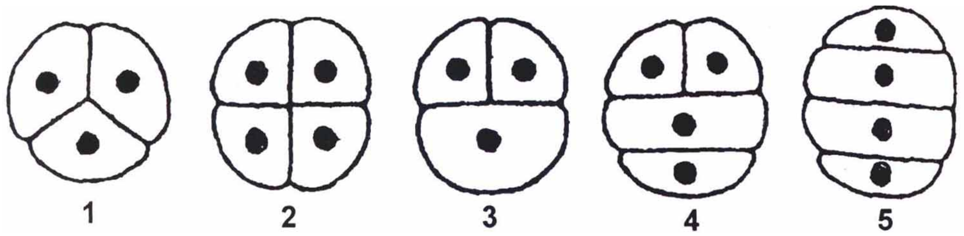

चित्र 8.3 : विभिन्न प्रकार के लघुबीजाणु चतुष्क - चतुष्कफलकीय एवं समद्विपार्श्व

सामान्यतया: चतुष्क के लघुबीजाणु (Microspre) एक दूसरे से पृथक होकर परागपुट या लघु बीजाणुधानी (Microsporangium) में स्वतंत्र रूप से बिखरे होते है, परन्तु कभी -कभी कुछ पौधों में चतुष्कों में ही जुड़े रहकर संयुक्त परागकरण (Compound Pollengrain) बनाते है जैसे - ड्रोसेरा टाइफा अमरबेल इत्यादि। **आक** व कुछ **आरकिड्स** में एक परागकोष (Anther Lobes) के सभी लघु बीजाणु एक साथ जुड़े रहकर एक विशिष्ट संरचना बनाते हैं जिसे परागपिण्ड (Pollinium) कहते है|

8.2.5 परागकोष: स्फुटन (Anther: Dehiscence)

परिपक्व परागकोष की भित्ति के फटने को परागकोष का स्कुटन कहते है। पादपों में यह भिन्न -भिन्न प्रकार का होता है। कुछ पादपों में परागकोष की भित्ति में लम्बी दरार के रूप में स्कृटित हो जाता है। कभी-कभी यह दरार अनुप्रस्थ (Transverse) स्थिति में या कपाटीय (Valvular) इत्यादि प्रकार की भी हो सकती हैं । कुछ पौधों में परागकोष का स्फुटन छिद्रों (Pores) के रूप में भी होता है (चित्र 8.4)।

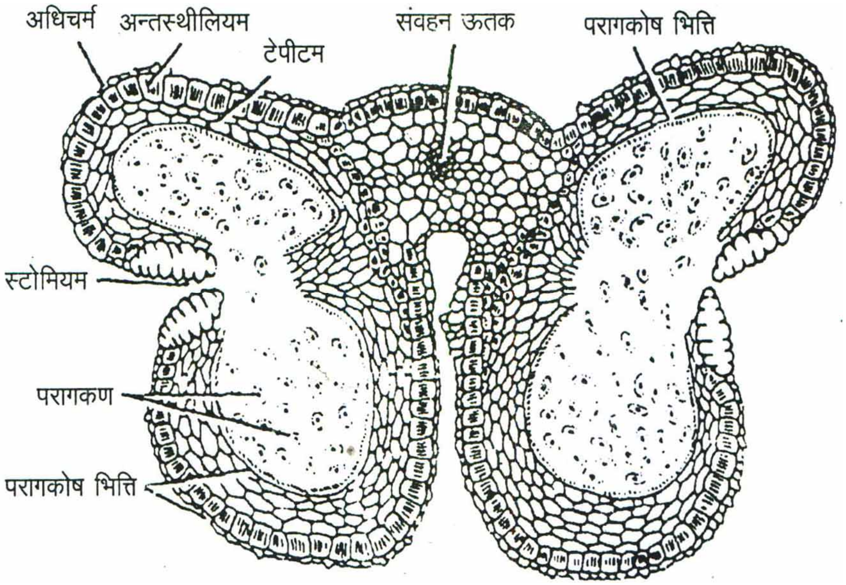

चित्र 8.4 : परिपक्वपरागकोप की अनुप्रस्थ काट

8.3 नर युग्मकोद्भिक: संरचना एवं विकास (Structure and Development of Male Gametophte)

लघु बीजाणु नर युग्मकोद्भिक की प्रथम कोशिका है चतुष्कों से पृथक् होने पर लघुबीजाणु परागकण कहलाते हैं। युग्मक जनन (Gametogenesis) की प्रक्रिया में परागकण का केन्द्रक विभाजित होक्त एक छोटी मसूराकार (Lenticular) **जनन कोशिका** (Generative Cell) तथा एक **बड़ी कायिक कोशिका** (Vegetative Cell) बनता है। जनन कोशिका के सूत्री विभाजन से दो **नर युग्मक** (Male Gametes) बनते है (चित्र 8.5)।

8.3.1 परागकणों की संरचना (Structure of Pollengrain)

प्रत्येक परागकण का केन्द्रक व सघन कोशिका द्रव्य दो सुनिश्चित भित्तियों द्वारा घिरे होते हैं। बाहरी भित्ति, बाह्यचोल (Exine) तथा भीतरी भित्ति (Intine) कहलाती है। बाह्यचोल स्पोरोपोलेनिन नामक पदार्थ से निर्मित मोटी भित्ति होती है। चूकि स्पोरोपोलोनिन का भौतिक अथवा जैविक अपघटन सरलतापूर्वक नहीं होता है। अत : बाह्यचोल परागकण को प्रतिरोधी (Resistant) बनाता है। इसकी कारण जीवाश्म (Fossil) में ये अपघटित नहीं होते तथा लम्बे समय तक सुरक्षित पाये जाते हैं (चित्र 8.5)

अन्तरचोल पैक्टिन व सेलुलोस से निर्मित परत है। इसमें सेलुलोस के तन्तु परागकण की सतह के समान्तर व्यवस्थित होते हैं। सामान्यतया : परागकणों की सतह पर एक तैलीय परत (Oily Layer) पायी जाती है, जिसे पोलनकिट (Pollen Kit) कहते है। परागकणों का रंग, चिपचिपापन एवं उनकी विशेष गन्ध पोलानकिट के कारण होती है। इस तैलीय परत के निर्माण के लिए आवश्यक पदार्थों का संश्लेषण टेपीटम कोशिकाओं द्वारा किया जाता है।

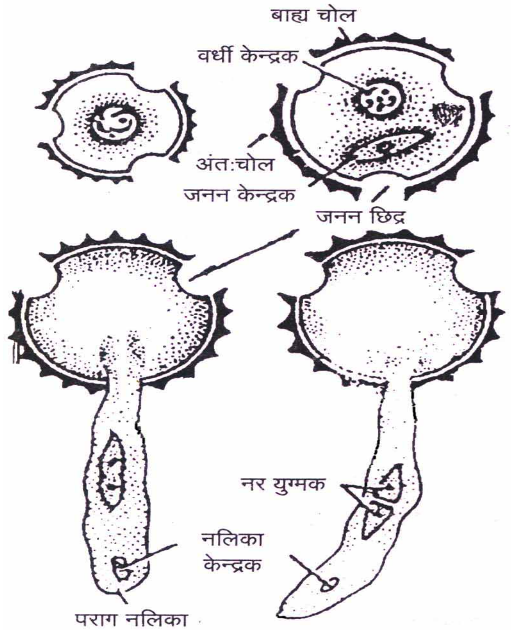

चित्र 8.5: परागकण का अंकुरण

परागकण के कोशिका द्रव्य में अनेक डिक्टियोसोम, माइटोकान्ड्रिया व अन्तद्रव्यीजाल पाये जाते हैं। चतुष्क से पृथक् होने पर परागकण का तेजी से विस्तार होता है। इसका विस्तार पूर्ण होने पर परपरागकण में अनेक रसधानियाँ (Vacuoles) उत्पन्न होती है। कोशिका द्रव्य केवल एक पतली परिधीय झिल्ली के रूप में दिखाई देता है।

8.3.2 नरयुग्मकोद्भिद का विकास (Development of Male Gametophyte)

आवृतबीजी पादपों में नरयुग्मकोद्भिद का विकास निम्नलिखित अवस्थाओं में बांटा गया है।

(अ) जनन एवं कायिक कोशिका का निर्माण (Formation of Generative and Vegetative Cell): परागकण के केन्द्रक के प्रथम विभाजन से दो असमान कोशिकाएँ बनती है तथा यह विभाजन समक्टी होता है। इस विभाजन के उपरान्त बड़ी कोशिका कायिक कोशिका (Vegetative Cell) तथा छोटी **जनन कोशिका** (Generative Cell) कहलाती है। प्रारम्भ में जनन कोशिका परागकण के अन्तरचोल से सलंग्न रहती है, परन्तु विभाजन के कुछ समय बाद यह कायिक कोशिका के जीवद्रव्य में स्वतंत्र रूप से देखी जा सकता है। कायिका कोशिका परागनलिका (Pollentube) तथा जननकोशिका नरयुग्मक (Male Gametes) बनाती है।

परागकण के जीवद्रव्य में सूत्री विभाजन चतुष्क अवस्था में होता है। एक चतुष्क के चारों बीजाणुओं में ये विभाजन एक ही समय होते है।

आवृतबीजी पादपों का अध्ययन, नर एवं मादा युग्मकोद्भिद संरचना एवं विकास, परागण, निषेचन एवं भ्रूण परिवर्धन

परागकण के जीवद्रव्य में सूत्री विभाजन से पूर्व दो सुनिश्चित परिवर्तन होते है :

(i) केन्द्रक बीजाणु के केन्द्रक से परिधि की और स्थानान्तरित हो जाता है। यह स्थानान्तरण निश्चित दिशा में होता है तथा जनन कोशिका की स्थिति दर्शाता है, जनन कोशिका की स्थिति एक आनुवंशिक लक्षण है।

(ii) बीजाणु में जिस और कायिक कोशिका का निर्माण होता है, उस और केन्द्रक तथा परागकण भित्ति के बीच स्थित कोशिका द्रव्य में अनेक रसधानियाँ उत्पन्न हो जाती है।

परागकण के सूत्री विभाजन का तर्कु (Spindle) छोटा व असीमित होता है। परागकण की भित्ति की और बन तर्कु, कुन्द (Blunt) तथा भीतर के बाद परागकण की भित्ति की ओर स्थित संतति केन्द्रक **जनन केन्द्रक** तथा परागकण के अन्दर की ओर स्थित संतति केन्द्रक **कायिक केन्द्रक** बनाता है। विभाजन के अन्त में जनन केन्द्रक एक अर्द्धगोलाकार भित्ति द्वारा कायिक कोशिका से पृथक् हो जाता है। प्रारम्भ में जनन कोशिका परागकण की भित्ति से संलग्न रहती है। परन्तु घिरे घिरे यह कोशिका अपनी भित्त का निर्माण कर लेती है, और परागकण की भित्ति से मुक्त होकर कायिक कोशिका के केन्द्रक की ओर बढ़ने लगते है।

परागकण की भित्ति से पृथक् होने पर जनन कोशिका का आकार लगभग चपटा होता है, परन्तु विकास की विभिन्न अवस्थाओं में इसका आकार दीर्घ वृजल (Ellipsoid), कृमिरूपी (Vermiform) तर्कुरूपी (Fusiform) अथवा मसूराकार (Lenticular) हो सकता है।

जनन कोशिका का लम्बा आकार परागनलिका में इसकी गति को सरल बनाता है।

(ब) कायिक कोशिका (Vegetative Cell): कायिक कोशिका का केन्द्रक गोलाकार तथा अनियमित होता है, तथा इसमें उपस्थित क्रोमोटिन पदार्थ अधिक सघन नहीं होता है। इसके केन्द्रक में एक अथवा दो केन्द्रक होते है। कायिक कोशिका में अनेक कोशिकांग व अनेक स्टार्च कण पाये जाते हैं। इस कोशिका में RNA एवं प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में पाये जाते है। यद्यपि कायिक कोशिका में DNA संश्लेषण की क्षमता होती है, परन्तु ये प्राय: विभाजित नहीं होती है।

(स) जनन कोशिका (Generative Cell) : जनन कोशिका में उपस्थित क्रोमेटिन प्रवार्ध कायिक कोशिका में केन्द्रक की तुलना में अधिक सघन होता है। जनन कोशिका के कोशिका द्रव्य में माइटोकान्ड्रिया, राइबोसोम, अन्त:द्रव्यी जालिका, माइक्रोटयूबल, डिक्टियोसोम आदि सभी कोशिकांग पाये जाते हैं। इसके अलावा अनेक रसधानियाँ भी पायी जाती है, जो प्राय : जीवद्रव्यकला से आलग्न होती है। परागकण में निर्मित कायिक कोशिका का आकार व इसके कोशिकांगों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती रहती है। इसकी रसधानियाँ धीरे धीरे लुप्त होती रहती है।

8.3.3 नर युग्मकों का निर्माण (Formation of Male Gametes)

नर युग्मक जनन कोशिका के सूत्री विभाजन से विकसित होते हैं। यह विभाजन प्राय : उस समय होता है जब परागकण परागकोष में होते हैं जैसे - बीटा तथा हार्डियन परन्तु अनेक जातियों में जनन कोशिका का विभाजन परागकण के परागकोष से मुक्त होने पर होता है।
जनन कोशिका में समसूत्री विभाजन से दो अण्डाकार नर युग्मक कोशिकाएँ बनती है। प्रारम्भिक अवस्था में वे दोनों कोशिकाएँ आपस में संलग्न रहती है। इस प्रकार जनन कोशिका से दो नर युग्मक (Male Gametes) बनते हैं (चित्र 8.5)।

8.4 मादायुग्मकोद्भिद: संरचना एव विकास
Development and Structure of Female Gametophyte

जायांग: अण्डय **या गुरुबीजाणुपर्ण(Gynoecium :Carpel or Megasporophyll)**

आवृतबीजी पादपों के पुष्प में मादा जनन अंग को **जायांग** (Gynoecium) कहते है। जायांग एक फ्तास्क नुमा संरचना है। जायांग का आधारी भाग फूला होता है, जिसे **अण्डाशय** (Ovary) कहते है। इस का लम्बा भाग वर्तिका (Style) कहलाता है तथा शीर्षस्थ भाग पालिवत (lobed) होताहै, इसे वर्तिकाय (Stigma) कहते है।

अण्डाशय में अण्डप पाये जाते है। अण्डप अण्डाशय का महत्त्वपूर्ण भाग होता है। अण्डप स्वतन्त्र हो सकते हैं। इन्हें **वियुक्ताण्डपी** (apocarpous) कहते हैं। जब अण्डप संयुक्त होते हैं, जो इन्हें **युक्ताण्डपी** (syncarpous) कहते है। अण्डप में एक या अनेक गोलाकार या अण्डाकार रचना होती है जिसे बीजाण्ड (ovule) कहते है। ये बीजाण्ड वृन्त द्वारा बीजाण्ड आसन (Placenta) से जुड़े रहते है। यह वही स्थान है, जहाँ बीजाण्डवृत्त बीजाण्ड के साथ जुड़ता है, जो कि हायलम (Hilum) कहलाता है|

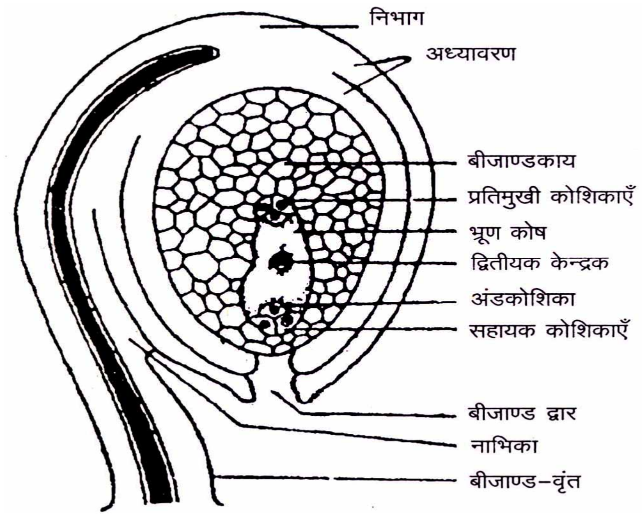

चित्र 8.6 : एक प्रारूपिक बीजाण्ड का अनुदैर्ध्य काट

8.4.1 बीजाण्ड की संरचना (Structure of Ovule)

आवृतबीजी पौधों में बीजाण्ड की संरचना अत्यन्त जटिल होती है। एक पीरपक्व बीजाण्ड लगभग गोल संरचना है। इसमें एक गोलाकार या अण्डाकार रचना बीजाण्डकाय (Nucellus) होती है। बीजाण्ड दोहरे आवरण की बाह्य अध्यावरण (outer Integument) एवं आन्तरिक आवरण को अन्तअध्यावरण (Inner Integuments) कहते है। बीजाण्डकाय मृदूतक कोशिका का बना होता है। बीजाण्ड के आधार भाग निभाग (Chalaza) कहते है। बीजाण्ड का अगला भाग जो नलिकाकार द्वार (Tubular Passage) बनाते है, इसको **बीजाण्डद्वार** (Micropyle) कहते है। बीजाण्ड, बीजाण्डसन (Placenta) पर बीजाण्डवृत (Funicle) द्वारा जुडे रहते है। बीजाण्डकाय के केन्द्रीय भाग में एक थैले जैसी संरचना होती है, जिसे **भ्रूणकोष** (Embryo Sac) कहते है। सामान्यतया: भ्रूणकोष में सात केन्द्रक होते है। निभाग की और तीन कोशिकाएँ होती है, जिन्हें प्रतिमुख(Antipodal) कहते है (चित्र 8.6)।

बीजाण्ड द्वार की और तीन कोशिकाएँ अण्ड समुच्चय या **अण्ड उपकरण** (Egg Apparatus) कहलाती है। इनमें एक कोशिका का आकार नाशपाती के समान होता है, इसे अण्ड कोशिका (Egg Cell) कहते है, तथा शेष दो इस कोशिका के पास में पायी जाती है। इनको **सहायक कोशिकाएँ** (Synergids) कहते है। भ्रूणकोष के मध्य भाग में दो ध्रुवीय केन्द्रक संयुक्त होकर द्विगुणित (2n) केन्द्रक बनाते है, इसे **द्वितीयक केन्द्रक** (Secondary Nucleus) कहते है। भ्रूणकोष में कोशिकाएँ भित्तियुक्त नहीं होती है। बीजाण्ड अपने लिए भोज्य पदार्थ बीजाण्डसन से प्राप्त करता है (चित्र 8.6)।

8.4.2 बीजाण्ड के प्रकार (Types of Ovules)

आवृतबीजी पौधो में सामान्यतया : बीजाण्ड द्वार (Micropyle) तथा निभाग (Chalaza) की पारस्परिक स्थिति के आधार पर परिपक्व बीजाण्ड निम्न प्रकार के हो सकते है

1. **ऋजु अथवा ओरथोट्रोपस (Orthotropous) :** इस प्रकार के बीजाण्ड सीधा होता है, अत : बीजाण्ड द्वारा, निभाग, तथा बीजाण्डवृन्त एक सीधी रेखा में होते है। उदाहरण - पोलीगोनम इसके अलावा आवृतबीजी पौधो की अनेक परिवार में इस प्रकार के बीजाण्ड पाये जाते है (चित्र8.7 अ)।

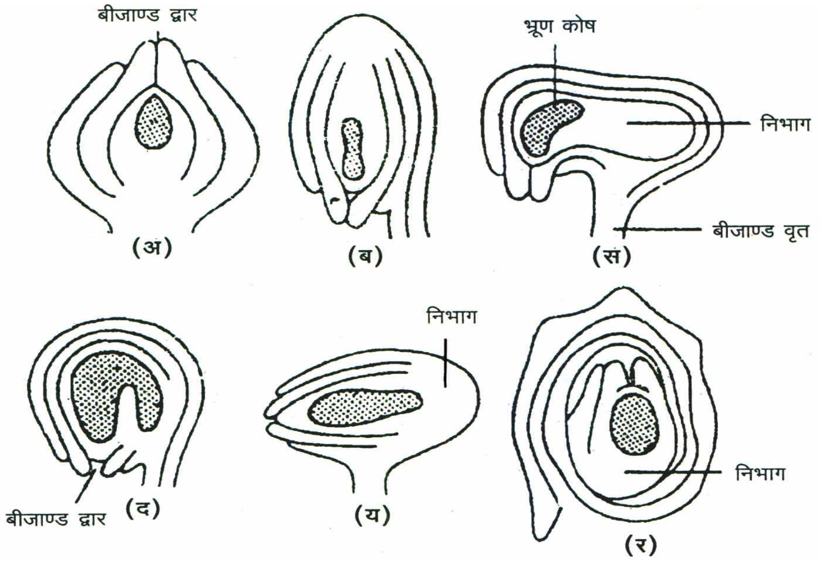

चित्र 8.7 : बीजाण्ड के प्रकार :

(अ) ऋजु, (ब) प्रतीप, (स) वक्र, (द) अर्धप्रतीप, (य) अनुप्रस्थ एवं (र) कुण्डलित

2. **प्रतीप** (Anatropous) : बीजाण्ड की एक पार्शिवक (Unilateral) वृद्धि के कारण बीजाण्ड पूर्व रूप से उल्टा हो जाता है। ऐसी स्थिति में बीजाण्डद्वार तथा बीजाण्डवृन्त एक दूसरे के मीप आ जाते है, तथा बीजाण्द्वार व निभाग एक सीधी रेखा में होते है। आवृतबीजी पौधों की 82% परिवार में इस प्रकार के बीजाण्ड पाये जाते है। उदाहरण - चना, मटर, सेम इत्यादि (चित्र 8.7ब)।
3. **वक्र** (Campylotropous) : इस प्रकार के बीजाण्ड में बीजाण्डद्वार तथा निभाग एक सीधी रेखा में नहीं होते है। बीजाण्ड में वक्र के कारण निभाग, बीजाण्डवृन्त के समकोण पर होता है। नाल की भांति मुड़ जाते है। इस वजह से बीजाण्डद्वार भी बीजाण्डवृन्त के समीप होता है। उदाहरण - केपेरीडेसी तथा लिग्यूमिनोसी परिवार के सदस्य (चित्र 8.7स)।
4. **अनुप्रस्थ** (Amphitropous) : इस प्रकार के बीजाण्ड में वक्रता के कारण भ्रूणकोष (Embryosac) मुड़ जाता है। बीजाण्ड, बीजाण्डवृन्त, समकोण पर आ जाने से इसकी स्थिति अनुप्रस्थ हो जाती है। जैसे खूटी मेसी, ऐलिस्मेन्सी इत्यादि (चित्र 8.7य) परिवार के पौधें।
5. **अर्धप्रतीप** (Hemi-anatropous) : इस प्रकार के बीजाण्ड में बीजाण्डद्वार तथा निभाग एक क्षितिज रेखा में होते है। बीजाण्ड वृन्त इनके समकोण में होता है। रेननकुलस तथा प्राइमुलेसी परिवार में इस प्रकार के बीजाण्ड पाये जाते है (चित्र 8.7 द)।

6. **कुण्डलित** (Circinotropous) : इस प्रकार के बीजाण्ड में बीजाण्डवृन्त अत्यधिक लम्बा होता है, तथा बीजाण्ड को चारों और घेरे रखता है, यह बीजाण्ड से केवल एक बिन्दु पर ही जुड़ा रहता है। बीजाण्ड वृन्त ज्यादा लम्बा हो जाने के कारण बीजाण्ड एक बार उल्टा होने के बाद घुमकर फिर सीधा हो जाता है। उदाहरण नागफनी (Opuntia) तथा कैक्टेसी परिवार के सदस्य (चित्र 8.7 र)।

8.4.3 गुरुबीजाणु जनन (Megasporogenesis)

बीजाण्ड के निर्माण के समय बीजाण्ड काय के स्वतंत्र सिरे की बाह्यत्वचा के अन्दर अर्थात् अर्ध:स्तरीय (Hypodermis) क्षेत्र में एक या कई कोशिकाओं का समूह अपने स्पष्ट केन्द्र को तथा घने कोशिका द्रव्य के कारण ज्यादा स्पष्ट हो जाता है।

ये कोशिकाएँ **प्रपसू कोशिकाएँ** (Archesporial Cells) कहलाती है। यदि एक से अधिक प्रपसू कोशिकाएँ हे तो भी सामान्यतया : एक ही बड़ी स्पष्ट होने में सफल हो जाती है। यह कोशिका सामान्यतया: एक पीरनत विभाजन (Perickinal Division) के द्वारा दो कोशिकाओं मे बंट जाती है। इनमें बाहरी कोशिका **प्राथमिक भितीय कोशिका** (Primary Parietal Cell) कहलाती है, तथा **प्राथमिक बीज़ाणुजनक कोशिका** (Primary Sporogenous Cell) कहलाती है। यह प्राय: विभाजित नहीं होती है, और सीधे ही गुरूबीजाणु मातृ कोशिका (Megaspore Mother) की तरह कार्य करने लगती है।

गुरुबीजाणु मातृ कोशिका जब काफी बड़ी तथा स्पष्ट केन्द्रक वाली हो जाती है, जो अर्द्धसूत्री विभाजन (Meiosis) द्वारा विभाजित होती है। जिससे चार अगुणित (Haploid) कोशिकाएँ बन जाती है, जोकि लम्बवत् चतुष्क (Linear Tetrad) में विन्यासित हो जाती है। इन चारों में से एक ही

सामान्यतया: क्रियाशील (Functional) होती है। जोकि विकसित होकर मादा युग्मकोद्भिद Female Gametophyte) का निर्माण करती है। शेष तीन गुरूबीजाणु अब ह्रासित हो जाते है। प्राय: चतुष्क का सबसे नीचे वाला बीजाणु अर्थात निभागी गुरूबीजाणु (Chalazal Megaspore) एवं भ्रूणपरिवर्धन क्रियाशील हो जाता है। शेष तीन अपहासित होते हैं ये सक्रिय गुरुबीजाणु द्वारा पोषण के रूप में उपयोग कर लिया जाता है (चित्र 8.8)।

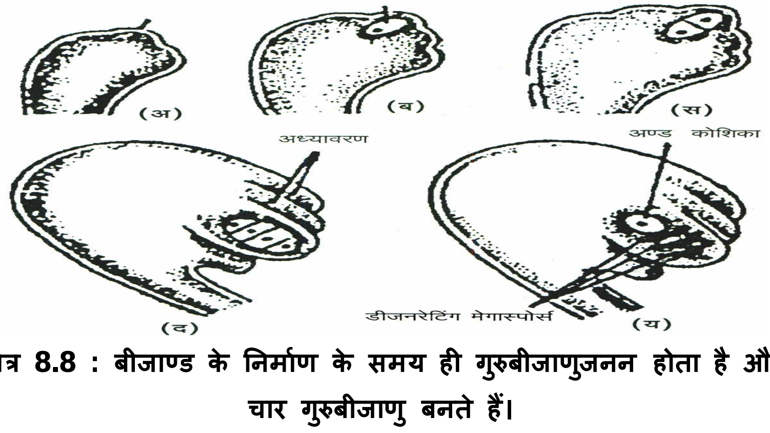

चित्र 8.8 : बीजाण्ड के निर्माण के समय ही गुरुबीजाणुजनन होता है और चार गुरुबीजाणु बनते हैं।

8.4.4 मादा युग्मकोद्भिद (Female Gametophyte)

सक्रिय गुरुबीजाणु मादा युग्मकोद्भिद की प्रथम कोशिका है। इसे भ्रूण कोष मातृ कोशिका (Embryo sac Mother Cell) कहते है। मादा युग्मकोद्भिद का विकास प्राय: निभागी गुरुबीजाणु के दीर्घीकरण (Elongation) से प्रारम्भ होता है, परन्तु धीरे धीरे इसमें अनेक छोटी रिक्तिकाएँ (Vacuoles) प्रकट होती है, जो बाद में संयुक्त होकर एक बड़ी रिक्तिका बनाती है। गुरू बीजाणु के केन्द्रक में तीन सूत्री विभाजन (Mitotic Division) होते है, जिनके फलस्वरूप आठ केन्द्रक बनते है। प्रथम विभाजन का तर्कु गुरुबीजाणु के उर्ध्वधिर अक्ष (Cytokinesis) में अभि विन्यासित रहता है। इस विभाजन के बाद कोशिका का द्रव्य का विभाजन (Cytokinesis) नहीं होता है। दोनों संतति केन्द्रक (Daughter Nuclei) एक वृहत्त केन्द्रीय रिक्तिका द्वारा पृथक रहते है। रिक्तिका के दीर्घीकरण से दो संतति केन्द्रकों में से एक केन्द्रक गुरूबीजाणु के निभागी (Chalazal) ध्रुव पर तथा दूसरा बीजाण्डद्वारी (Micropylar) ध्रुव पर पहुँच जाता है (चित्र 8.9)।

प्रत्येक केन्द्रक पुन: दो बार विभाजित होता है, जिसके फलस्वरूप दोनों ध्रुवों पर अब चार-चार केन्द्रक आवृतबीजी पादपों का होते है। इस अवस्था तक सभी केन्द्रक एक सामान्य कोशिका द्रव्य में होते है। इसके उपरान्त केन्द्रीय कोशिका में इन केन्द्रकों का पुर्नगठन होता है। भ्रूणकोष के बीजाण्डद्वारी ध्रुव पर स्थित चार केन्द्रको का पुनर्गठन होता है|भ्रूणकोष के बीजाण्डद्वारीध्रुव पर स्थित चार केन्द्रकों में से तीन केन्द्रक संगठित होकर **अण्ड-समुच्य** (Egg-Apparatus) बनाते है,तथा चौथा केन्द्रक केन्द्रभय कोशिका के केन्द्र की ओर सरककर **ध्रुवीय केन्द्रक** (Polar Nucleus) बनाता है। इसी प्रकार निभागी ध्रुव पर चार केन्द्रकों में से तीन केन्द्रक संगठित होकर प्रतिमुख कोशिकाएँ (Antipodal) बनाते है। चौथा केन्द्रक केन्द्रीय कोशिका के केन्द्र की ओर सरक कर दूसरा ध्रुवीय केन्द्रक (Polar Nucleus) बनाता है।

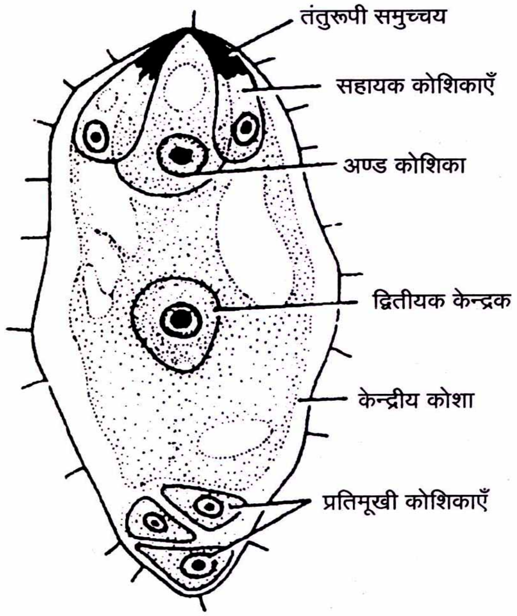

चित्र 8.9 : परिपक्य भ्रूणकोष की संरचना

इस प्रकार बनाना एक गुरूबीजाणु का केन्द्रक विभाजित होकर कुछ आठ केन्द्रक बनाता है। इस प्रकार के भ्रूणकोष को पोलीगोनय टाइप भ्रूणकोष कहते है। आवृतबीजी पादपों में सामान्यतया : तीन प्रकार के आकोष पाये जाते है, जिन्हें **मोनास्पोरिक, बाईस्पोरिक** तथा **टेट्रास्पोरिक** भ्रूणकोष कहते है।

कुछ पादपों में दोनों ध्रुवीय केन्द्रक संयुक्त होकर द्विगुणीत होकर (2n) बनाते है जिसको **द्वितीयक केन्द्रक** (Secondary Nucleus) कहते है। इस प्रकार गुरूबीजाणु मादा युग्मकोद्भिद (भ्रूणकोष) का निर्माण करता है। भ्रूणकोष मादा युग्मकोद्भिद (भ्रूणकोष) का निर्माण करता है। भ्रूणकोष अपने पोषण के लिए निभागी बीजाण्डकायी अथवा अध्यावरणी ऊतकों पर निर्भर होता है (चित्र 8.9)।

8.5 परागण (Pollination)

पुष्प के परागकोष से परागकणों का वर्तिकाग्र तक स्थानान्तरण की क्रिया को **परागकण** (Pollination) कहते है। इस क्रिया के लिए परागकोष से परागकण मुक्त होकर अनेक माध्यमों जैसे वायु, जल, कटि तथा पक्षियों द्वारा वर्तिकाग्र तक पहुँचते है।

परागकोष का स्कुटन (Anther Dehiscence) परागकोष की अन्तस्थीसियम Endothecium) कोशिकाओं में उपस्थित रेशेदार पट्टियों की आर्द्रताग्राही प्रकृति के कारण परागकोष का स्फुटन होता है| सामान्यतया : परागकोष, अनुदैर्ध्य स्फुटित होते है। इसके अतिरिक्त कुछ पौधों में परागकोष का स्फुटन एक शीर्षस्थ कपाट (बरबेरीडेसी परिवार के सदस्य)छिद्रों (सोलेनम पॉलीगेला इत्यादि) अथवा अनियंत्रित रूप से (जैसे नाजास) में होता है।

8.5.1 परागकण के प्रकार (Types of Pollination)

परागण मुख्यत: दो प्रकार का होता है

(i) स्व परागकण (Self Pollination) : इस प्रकार के परागण में एक पुष्प के परागकण उसी पुष्प के वर्तिकाग्र को स्थानांतरित होते है।

(ii) परपरागण (Cross Pollination) : इसमें पुष्प के परागगण उसी अथवा अन्य किसी जाति के दूसरे पौधों में उपस्थित पुष्प को परागित करते है।

स्वपरागण को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है :

(अ) स्वक युग्मन अथवा ऑटोगेमी (Autogamy): इस प्रकार के स्वपरागण में एक पुष्प को परागकोष में बने परागकण उसी पुष्प के वर्तिकाग पर पहुँचते हैं। अत: एक ही पुष्प की आवश्यकता होती है।

(ब) सजातपुष्पी परागण (Geitonogamy): जब एक पुष्प के परागकण उसी पौधे में उपस्थित किसी दूसरे पुष्प को परागित करते है। सजातपुष्पी पराग एक ही पौधे में उपस्थित दो अलग - अलग पुष्पों के बीच होता है।

स्वपरागण के लिए अनुकूलन (Asaptation for self Pollination) स्वपरागण के लिए पुष्पों में दो प्रमुख अनुकूलन पाये जाते है।

1. **समकालन प्रवक्ता** (Homogamy) : इस अनुकूलन में उभयलिंगी पुष्प के परागकोष वर्तिकाग्र एक साथ परिपक्व होते है। इसके कारण परागकाष के स्फुटन के समय वर्तिकाय ग्राही (Receptive) होती है। इसलिए उसी पुथ के परागक्ण उसी पुष्प के वर्तिकाग को परागित करते है। उदाहरण - मीरा विलिस, केथेनेन्थ
2. **अनुन्मीलय परागकण** (Cleistogamy) : कुछ पुष्प बन्द अवस्था में रहते हैं, अत : उनमें केवल स्वपरागण ही सम्भव है। अनुन्मील्य परागणी तथा ड्रोसेरा इत्यादि पौधें प्रमुख है।

परपरागण तथा उनकी विधियॉ : एक पुष्प के परागकण बाह्य साधनों द्वारा दूसरे पुष्पों के वर्तिकाग्र पहुँचते है। ये साधन वायु, कटि और जल है। परपरागण लाभदायक होता है।

परागकणों में स्थानान्तरण में सहायक कारकों को दो मुख्य वर्गो **जीविय** (Biotic) एवं **अजैव** (Abiotic) में विभाजित किया जा सकता है। अजीविय वर्ग में वायु, जल, इत्यादि शामिल है जीवीय वर्ग में अनेक प्रकार के जन्तु जैसे कटि, पक्षी, चमगादड़ तथा घोंघे इत्यादि है।

1. **वाय परागण** (Anemophily) : जब परागकण्गो का स्थानान्तरण वायु द्वारा है तो उसे वायु परागकण कहते है। ऐसे पुष्पों को वायु परागित (Anemophilous) कहते है।
2. **जल परागण :** जब परागकणों का स्थानान्तरण जल द्वारा होता है तो उसे जल परागकण कहते है। सभी जलीय पौधें जल परागित नहीं होते है जैसे - पाटोमेजिस्टोन ।
3. **कटिपरागण** (Entomophily) : कटि परागण पर परागण की एक मुख्य विधि है, जिसमें मधुमक्खियाँ, मक्खियों पतंगा, तितली इत्यादि कटि परागण में सहायक होते हैं इसमें ये कीट पौधों से परागण लेकर दूसरे पौधों तक ले जाते है।
   कीट परागित पुष्प कीटों को अपनी और रंग तथा खुशबु के कारण आकर्षित करते है। पुष्प में कटि ज्यादातर मकरन्द (Nectar) के कारण आते हैं।
4. **पक्षी परागण** (Ornithophily) : अनेक उष्ण कटिबन्धीय पौधें पक्षियों द्वारा परागित होते हैं। इनके पुष्प नलिकाकार प्यालेनुमा अथवा कुंभाकार तथा चमकदार एव आकर्षक रंग वाले होते हैं। इन पौधों में मकरन्द (Nectar) तथा परागकण सामान्यतया : अत्यधिक मात्रा में बनते है। पक्षी मकरन्द तथा परागकणों के लिए पुष्प की और आकर्षित होते हैं, मकरन्द चूसते समय इनके शरीर त्र चोच में लगे परागकण वर्तिकांग पर चिपक जाते हैं, जिनसे परागण में मदद मिलती है।

पक्षियों के अलावा चमगादड़, गिलहरी द्वारा भी परागण होता है। गुलमोहर और सेमल में गिलहरी परागण में सहायता करती है। चमगादड़ एक रात्रिचर जन्तु है।, यह मकरन्द और कीट -पतंगों की खोज में फूल पर जाता है। इस प्रकार यह परागण का साधन बन जाता है। कदम्ब, सीरपूस, कैक्टस, क्राइजीलिया इत्यादि पौधों में परागण चमगादड़ द्वारा होता है।

8.6 निषेचन (Fertilization)

नर एव मादा युग्मकों के केन्द्रकों के संयोजन (Fusion) को निषेचन (Fertilization) कहते हैं।इस क्रिया का प्रतिपादन **स्ट्रासबरगर** (Strasburger) ने 1884 में किया था। परागण के पश्चात् परागकण अथवा युग्मकोद्भिद वर्तिकाग्र की सतह पर अंकुरण आवश्यक होता है। परागकण के अंकुरण आवश्यक होता है। परागकण के अंकुरण के परिणाम स्वरूप परागनलिका बनती है। यह परागनलिका (Pollen tube) नर युग्मकों को मादा युग्मकों में स्थित अण्डकोशिका (Egg Cell) तक पहुँचाने में मदद करती है। परागकण के अंकुरण से बनी परागनलिका वर्तिका से होती हुई प्राय : बीजाण्ड द्वार(Miucropyle) से बीजाण्ड में प्रवेश करती है। जिनमें से एक नर युग्मक अण्डकोशिका से संयोजित होकर युग्मनज (2y gote) बनाता है।

दूसरा नर युग्मक (Second Male Gamete) द्वितीयक (Secondary Nucleus) से संयोजित होकर प्राथमिक भ्रूणकोष केन्द्रक (Primary Endosperm Nucleus) बनता है। सामान्यतया जितनी लम्बी वर्तिका होगी उतनी ही लम्बी परागनलिका होगी (चित्र 8.10)

8.6.1 परागकणो का अंकुरण (Germination of Pollen Grains)

वर्तिकाग्र की सतह पर जब परागकण विभिन्न माध्यमों से पहुँचते है जो उनका अंकुर (Germination) आरम्भ होता है। वर्तिकाग्र पर परागकणों के चिपकाने के लिए अनेक प्रकार के है|सामान्यतया: वर्तिकाग की सतह पर उपस्थित स्राव जिनमें अनेक लिपिड, शर्करा, रेजिन, बोरोन इत्यादि उपस्थित होते हैं। जो कि परागकणों के अंकुरण के लिए एक उपयुक्त माध्यम प्रदान करते है (चित्र 8.10)।

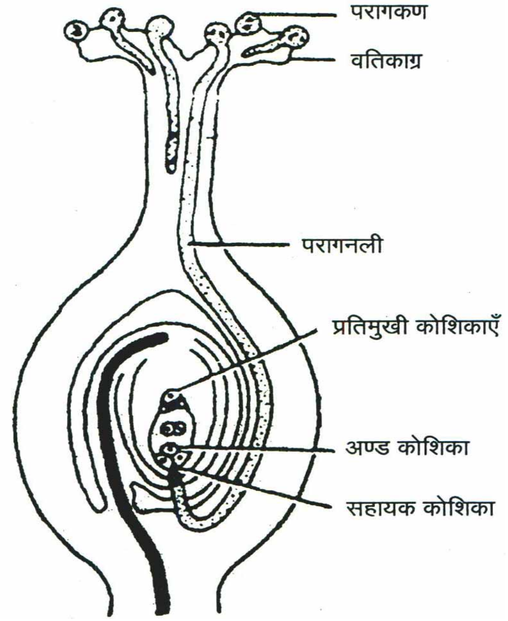

चित्र 8.10: पुष्प का अनुदैर्ध्य परिच्छेद पराग नलिका कही भ्रूणकोष तक वृद्धि दर्शाते हुए

परागकण के अंकुरण के समय परागनलिका, परागकण में उपस्थित जननछिद्र (Germ Pore) से निकलकर वर्तिकाग्र में प्रवेश करते है। सामान्यतया : प्रत्येक परागकण से एक ही परागनलिका निकलती है। जोकि एक नलिकीय (Monosiphonous) स्थिति कहलाती है। कुछ पौधों में एक परागकण से बहुत सी परागनलिका (PollenTube) निकलती है, जैसे केस्पेन्यूलेसी, कुकर बिटेसी तथा माल्वेसी परिवार के कुलों में परागकण बहुनलिकयि (Polysiphonous) संरचना मिलती है।

परागनलिका की वृद्धि (Growth of Pollen Tube) : वर्तिका की आन्तरिक संरचना पर परागनलिका की वृद्धि निर्भर करती है। लिलियम (Lilium) तथा राइबीज पौधों में वर्तिका खोखली होती है। इसकी गुहिका श्लेएमक पदार्थ स्रावित करती है, जोकि परागनलिका की वृद्धि को प्रेरित करती है। अधिकांश एक बीजपत्री पौधों में वर्तिका के बीच के ऊतक पैक्टिनेज (Pectinase) नामक **एन्जाइम** (Enzyme) की क्रिया से नष्ट हो जाते है। अत:वर्तिका के भीतर में एक मार्ग बन जाता है। कुछ पौधों जैसे - पिटुनिया ओइनोथेरा इत्यादि में वर्तिका ऊतकों के अन्तराकोशिकीय अवकाशों (Intercellular) में परागनलिका गुजरती हुई वृद्धि करती है।

वर्तिका मैं परागनलिका की वृद्धि सदैव अण्डाशय की और होती है। यह एक दिशीयवृद्धि निर्धारित करने के सम्भवत: जलावर्ती, रसायनानुवर्ती व यान्त्रिक कारण होते है तो अण्डाशय तथा बीजाण्ड का रसायनानुवर्ती उद्दीपन परागनलिका को बीजाण्ड की और आकर्षित करता है (चित्र 8.10)।

8.6.2 परागनलिका का बीजाण्ड में प्रवेश (Entry of Pollen Tube into the Ovule

परागनलिका वर्तिका में वृद्धि करती हुई अण्डाशय (Ovary) में बीजाण्ड (Ovule) की ओर अग्रसर होती है। बीजाण्ड में परागनलिका का प्रवेश निम्नलिखित तीन विधियों से हो सकता है।

1. **अण्डाद्वारी प्रवेश** (Porogamy):जब परागनलिका बीजाण्ड में बीजाण्डद्वार से प्रवेश करती हैं तो उसे अण्डाद्वारी प्रवेश कहते है। यह आवृतबीजी पादपों के अधिकांश कुल में पायी जाने वाली सामान्य विधि है (चित्र 8.11 अ)।
2. **निभागी प्रवेश :** (Chalazogamy) जब परागनलिका बीजाण्ड में निभागी (Chalazal) छोर से प्रवेश करती है तो उस निभागी प्रवेश कहते है। केजूरायना, जुगलेन्स तथा बेट्रूला इत्यादि पौधों में निभागी प्रवेश सामान्य रूप से पाया जाता है (चित्र 8.11 ब)।
3. **अध्यावरणी प्रवेश** (Mesogamy). इस विधि में परागनलिका अध्यावरणों (Integuments) को बेघती हुई बीजाण्ड में प्रवेश करती है। कुकरबिटा, एल्बीमेला इत्यादि पौधों में यह विधि पाई जाती है (चित्र 8.11 स)।

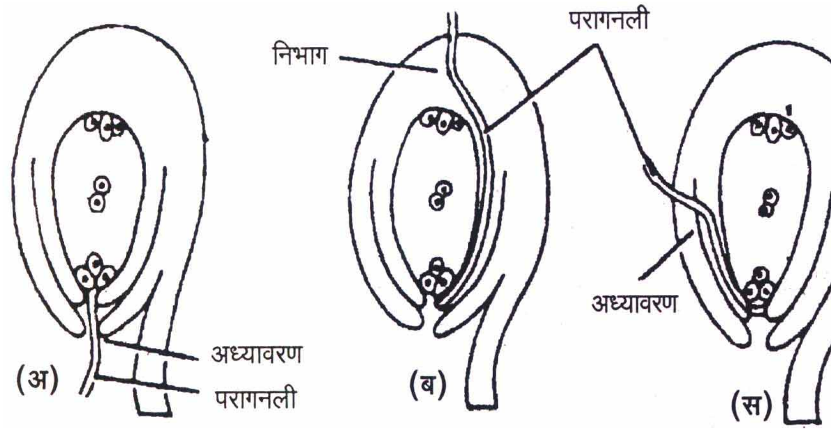

चित्र 8.11 : परागनलिका का भ्रूणकोश बीजाण्ड में प्रवेश - (अ) अण्डधारी प्रवेश (ब) निभागी प्रवेश (स) मध्य प्रदेश

8.6.3 परागनलिका का भ्रूणकोष में प्रवेश (Entry of Pollen Tube into Embryosac)

भ्रूणकोष में परागलिका सामान्यतया: निम्न रूप से प्रवेश करती है। (अ) अण्डकोशिका तथा एक सहायक कोशिका (Synergid) के बीच में से (ब) भ्रूणकोष की भित्ति तथा एक सहायक कोशिका के बीच से (स) एक सहायक कोशिका को भेदते हुए प्रवेश करती है। परागनलिका का भ्रूणकोष में प्रवेश निम्न चरणों में होता है।

1. दो सहायक कोशिका में से एक कोशिका परागनलिका के भ्रूणकोष में प्रवेश से पूर्व ही अपहग़सित हो जाती है।
2. परागनलिका प्राय: दो सहायक कोशिकाओं के बीच से आकोष में प्रवेश करती है। और कुछ दूरी तय करने के पश्चात् ज्यादातर अपसासित कोशिका के तन्तुरूपी समुच्चय द्वारा उसमें प्रवेश करती है|
3. तत्पश्चात् परागनलिका के शीर्ष भाग पर एक छिद्र विकसित होता हैं, इस छिद्र से परागनलिका के कोशिका द्रव्य कुछ भाग, दोनों नर युग्मक, स्टार्च व कायिक केन्द्रक भी अपसासित सहायक कोशिका में विमुक्त हो जाते है।
4. परागनलिका की अन्तवस्तुएँ सहायक कोशिकाओं से विमुक्त होती है, जो प्राय: अन्य कोशिका के सम्पर्क में होती है।, अत:

नर युग्मक अमीबीय अथवा निष्क्रिय गति द्वारा द्वितीयक केन्द्रक तक पहुँचकर दूसरा निषेचत करता है|

8.6.4 द्विनिषेचन एवं त्रिक संलयन (Double Fertilization and Triple Fusion)

एक अण्ड तथा एक नर युग्मक के संलयन को युग्मक संलयन (Syngamy) अथवा निषेचन (true Fertilization) कहते हैं। इसके परिणामस्वरूप द्विगुणित युग्मनज (Diploid Zygote) बनता हैं। आवृतबीजी पादपों में परागनलिका में दो नरयुग्मक होते हैं। एक नर युग्मक अण्ड

कोशिका से संयोजन करता है, तथा दूसरा नर युग्मक **द्वितीयक केन्द्रक** (Secondary Nucleus) से संयोजित होते हैं, इसके परिणाम स्वरूप त्रिगुणित केन्द्रक (Triploid Nucleus) बनाता है। इस विधि को दोहरा निषेचन (Double Fertilization) कहते हैं।

8.6.5 द्विनिषेचन का महत्व (Significance of Double Fertilization)

ध्रुवीय केन्द्रक (द्वितीयक केन्द्रक) दूसरे नर युग्मक से संयोजित होकर प्राथमिक भ्रूणकोष केन्द्रक (Primary Endosperm Nucleus) बनता है, जिससे बाद में आकोष का परिवर्धन होता है। भ्रूण (Embryo) के विकास के लिए भ्रूणकोष का बनना एक नितांत आवश्यक रचना है, क्योंकि भ्रूण के विकास के लिए पोषक का एक मात्र स्रोत आरम्भ में भ्रूणकोष (Endosperm) ही होता है। अगर द्विनिषेचन नहीं होता है तो ध्रुवीय केन्द्रकों का भ्रूणकोष में परिवर्धन ही नहीं होगा उसके परिणाम स्वरूप भ्रूणकोष नहीं बन पायेगा। अनेक पादप दूण वैज्ञानिकों का मानना है कि द्विनिषचन या त्रिक सलगन से निर्मित आकोष केन्द्रक में पेतृक (Paternal) तथा मातृक (Maternal) गुणसूत्र होते हैं जिसके कारण भ्रूणकोष में अत्यधिक संकर-ओज (Hybrid Vigour) पाई जाती है। बीजों की जीवन क्षमता के लिए युग्मकसंलघन तथा द्विनिषेचन दोनों ही आवश्यक है। इससे जीवद्रव्य का पूर्णविन्यास एवं नवीनीकरण होता है। इसलिए आवृतबीजी पादपों में द्विनेषचन एवं त्रिक संलघन दोनों ही अति- महत्वपूर्ण क्रियायें है।

8.7 भ्रूणकोष की संरचना एवं परिवर्धन (Structure and Development of Endosperm)

भ्रूणपोष (Endosperm) : आवृतबीजी पादपों में एक -नर युग्मक अण्ड से संयोजन कर युग्मनज (zygote) बनाता है, जो कि बाद में आ में बदल जाता है। द्रसरा नरयुग्मक ध्रुवीय केन्द्रकों से संलयित होकर **प्राथमिक भ्रूणपोष केन्द्रक** (Primary endosperm nucleus) बनाता है।

प्राथमिक भ्रूणपोष केन्द्रक का विभाजन होता है तथा अन्त में यह **भ्रूणपोष** (Endosperm) का निर्माण करता है। इस प्रकार विकसित भ्रूणपोष **त्रिगुणित** (Triploid) होता है। इसके बनने से भ्रूण समुचित मात्रा में पौषक तत्व मिलते रहते है|

8.7.1 भ्रूणपोष के प्रकार (Types of Endosperm)

आवृतबीजी पादपों में प्राथमिक भ्रूणकोष के विकास के आधार पर भ्रूणकोष को निम्नलिखित तीन प्रकार में बांटा गया है।

1. केन्द्रकीय भ्रूणकोष (Nuclear Endosperm)
2. कोशिकीय भ्रूणकोष (Cellular Endosperm)
3. माध्यमिक भ्रूणकोष (Helobial Endosperm)

उपरोक्त तीन प्रकार में से केन्द्रकीय भ्रूणकोष आवृतबीजी पादपों के 60% कुलों में पाया जातां हैं। कोशिकीय भ्रूणकोष लगभग 20% कुलों में तथा माध्यमिक भ्रूणकोष भी लगभग 20% कुलों में मिलता हैं। कोशिकीय भ्रूणकोष मुख्यत : द्विबीजपत्री तथा माध्यमिक भ्रूणकोष एक बीज पत्री पौधों में पाये जाते है। (चित्र 8.12)

1. **केन्द्रकीय भ्रूणकोष** (Nuclear Endosperm) : इस प्रकार के भ्रूणकोष के विकास में प्राथमिक भ्रूणकोष केन्द्र में प्रथम तथा कुछ पश्वर्ती विभाजनों के बाद कोशिका भित्ति का निर्माण नहीं होता है। इसके फलस्वरूप भ्रूणकोष की केन्द्रीय कोशिका (Central Cell) के कोशिका द्रव्य में अनेक स्वतंत्र रूप से निलम्बित केन्द्रक पाये जाते हैं (चित्र 8.12अ)। उदाहरण कैप्सैला लिमनेनथास इत्यादि।

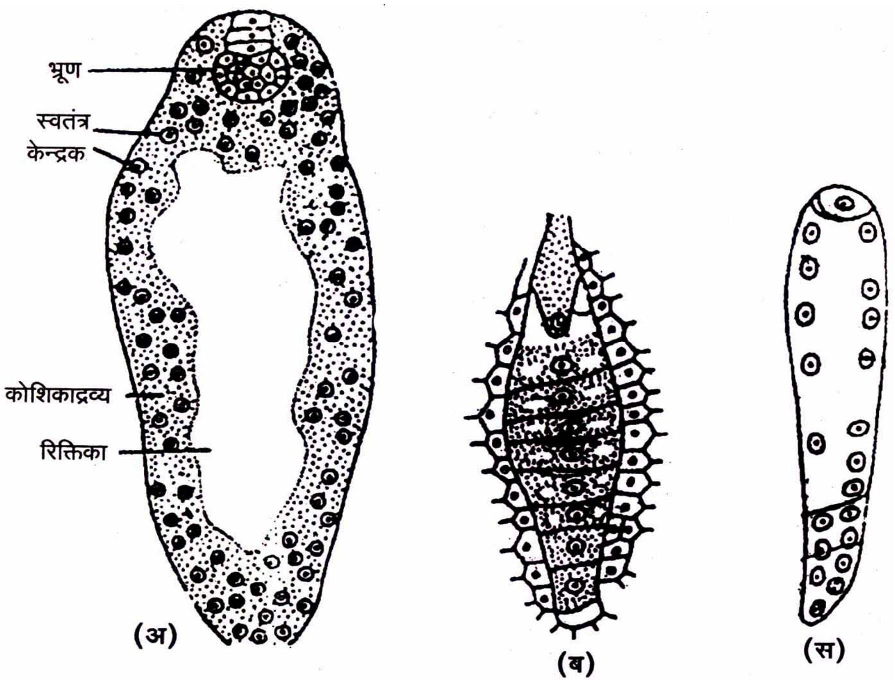

चित्र 8.12 :विभिन्न प्रकार के भ्रूणपोष (अ) केन्द्रकीय (ब) कोशिकीय (स) माध्यमिक

2. **कोशिकीय भ्रूणकोष** (Cellular Endosperm) इस प्रकार के भ्रूणकोष में प्राथमिक भ्रूणकोष केन्द्रक के प्रथम तथा उसके बाद होने वाले सभी विभाजनों के साथ कोशिका द्रव्य का विभाजन भी भित्तियों द्वारा होता है। इसमें भ्रूणकोष केन्द्रक के विभाजनों के बाद कोशिका भित्ति का निर्माण होता है । (चित्र 8.12 ब)

3. **माध्यमिक भ्रूणकोष** (Helobial Endosperm) इस प्रकार का भ्रूणकोष उपरोक्त दोनों प्रकार के भ्रूणकोष का मिला जुला रूप होता है। इसमें प्राथमिक भ्रूणकोष केन्द्रक के प्रथम विभाजन के बाद ही कोशिका भित्ति का निर्माण होता है। इसके बाद दोनों केन्द्रक भ्रूणकोष के अलग - अलग भागों में विभाजित होते रहते हैं। अब कोई भी कोशिका भित्ति का निर्माण नहीं होता है। इस प्रकार हिलोबियल भ्रूणकोष केन्द्रीय (चित्र 8.12 स) तथा कोशिकीय भ्रूणकोषों के बीच की स्थिति को दर्शाता है|

8.7.2 भ्रूणकोष के कार्य (Functions of Endosperm)

आवृतबीजी पादपों में भ्रूणकोष का मुख्य कार्य भ्रूण के प्रारम्भिक विकास के लिए भोजन उपगध कराना है । **भ्रूणकोष बीजों** (Endosperm) के भ्रूणकोष में वसा, कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन प्रचुर मात्रा में संचयित रहते हैं, जो बीज के अंकुरण के समय नवोद्भिद (Seedling) को भलीभाँति स्थापित करने के लिए पोषण प्रदान करते हैं।

8.8 भ्रूण का परिवर्धन (Development of Embryo)

निषेचन (Fertilization) के समय एक नरयुग्मक (Male Gamete) जब अण्डकोशिका संयोजन करता है तो निषिक्ताण्ड (Zygote) बनाता है, जो आगे विकसित होकर भ्रूण में बदल जाता है। इस प्रकार का भ्रूणीय परिवर्धन **कैप्सैला बर्सा पैस्टोरिस** (Capsella bursa pastories) में देखा जा सकता है (चित्र 8.13)।

निषिक्ताण्ड में प्रथम विभाजन अनुप्रस्थ होता है जिससे दो कोशिकाएँ बन जाती है। एक कोशिका जो बीजाण्डद्वारा की ओर होती है, इसे आधार कोशिका (Basal Cell) तथा दूसरी कोशिका जो निभाग की और होती है, उसे भ्रूणीय कोशिका कहते है। दोनों कोशिकाओं में एक एक विभाजन लगभग साथ -साथ होता है किन्तु आधारीय कोशिका में यह विभाजन अनुप्रस्थ होता है। भ्रूणीय कोशिका में यह विभाजन अनुदैर्ध्य तल में होता है। आधारीय कोशिका में अनेक अनुप्रस्थ विभाजनों के कारण सात से दस पंक्तिबद्ध कोशिकाएँ एक तन्तु के समान दिखाई देती है। इस रचना को निलम्बक (Suspensor) कहते है। निलम्बक की अन्तिम कोशिका कुछ फूलकर गोल आकार में बदलती है। जोकि भ्रूणकोष से खाद्य पदार्थ के अवशोषण का कार्य करती है। यह चूषकांग का कार्य भी करती है (चित्र 8.13)।

निलम्बक के दूसरे सिरे (भ्रूण की ओर) की कोशिका हाइपोफाइसिस कहलाती है। मूलांकुर के साथ मिलकर मुलांकुर शीर्ष (Radicle Apex) बनाती है। भ्रूणीय कोशिका में एक के बाद एक तीन विभाजन होते हैं जिसके परिणामस्वरूप चार कोशिका अवस्था, फिर तीसरे विभाजन के बाद अपृांशक (Octant) अवस्था बनती है। अपृांशक की प्रत्येक कोशिका में पीरनतिक (Periclinal) विभाजन आवृतबीजी पादपों का होता है, जिसके फलस्वरूप एक बाह्यडर्मेटाजन परत तथा एक आंतरिक परत बनती हैं। अत : प्रावस्था में प्राक्भ्रूण (Proembryo) आठ ब्रह्यडर्मेटोजन तथा आठ आंतरिक कोशिकाओं से बना होता हैं। डर्मेटोजन कोशिकाएँ अनेक अपनतिक (Anticlinal) विभाजनों द्वारा भ्रूण की ब्रह्मत्वचा (Epidernal)बनाती है| आठ आंतरिक कोशिकाओं से अन्ततः बीज पत्राधार तथा बीजपत्रो (Cotyledons) के भरण मेरिस्टोन (Ground Meristem) प्रावस्था तंत्र का विकास होता है।

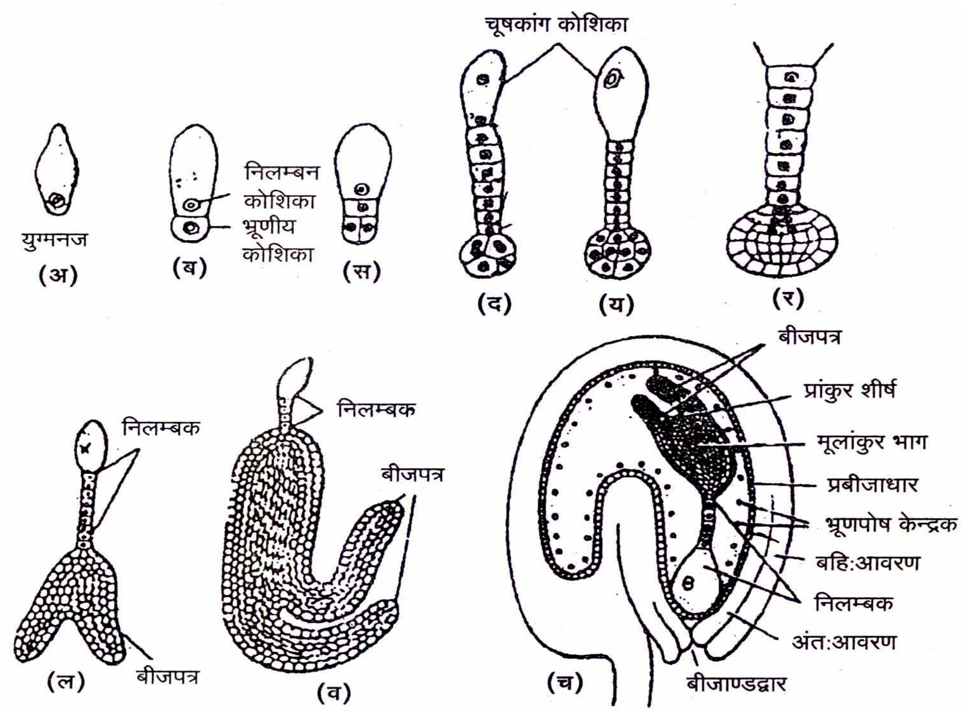

चित्र 8.13 : द्‌विबीजपत्री भ्रूण के विकास की विभिन्न अवस्थाएँ

निलम्बक, भ्रूण को भ्रूणकोष में धकेलता है। भ्रूणीय कोशिकाओं में निरन्तर कई विभाजनों के बाद भ्रूण हृदयाकार हो जाता है। इसमें दो पालियाँ बनने लगती है। ये दोनों पालियाँ बीजपत्रों में विकसित होने लगती हैं। इसकी खाँच के आधारीय भाग से प्रांकुर (Plumule) का विकास होता है। इसलिए भ्रूण में प्रांकुर की स्थिति शीर्षस्थ व बीजपत्र की पार्श्वीय होती है। इस प्रकार का भ्रूण विकास द्‌विबीजपत्री पादपों में होता है। परिपक्व भ्रूण दो बीजपत्रों एवं भ्रूणअक्ष में विभेदित होता है। भ्रूण अक्ष का बीजपत्रों के स्तर से ऊपर का भाग प्रांकुर तथा इस स्तर से नीचे का भाग मूलांकुर कहलाता है। बीज के अंकुरण के समय प्रांकुर से प्ररोह तथा मूलांकुर से मूलतंत्र विकसित होता है। बीजपत्रों में भोजन संचित रहता है, जो अंकुरण के समय नवोद्भिद (Seedlings) को स्थापित करने के लिए पर्याप्त होता है।

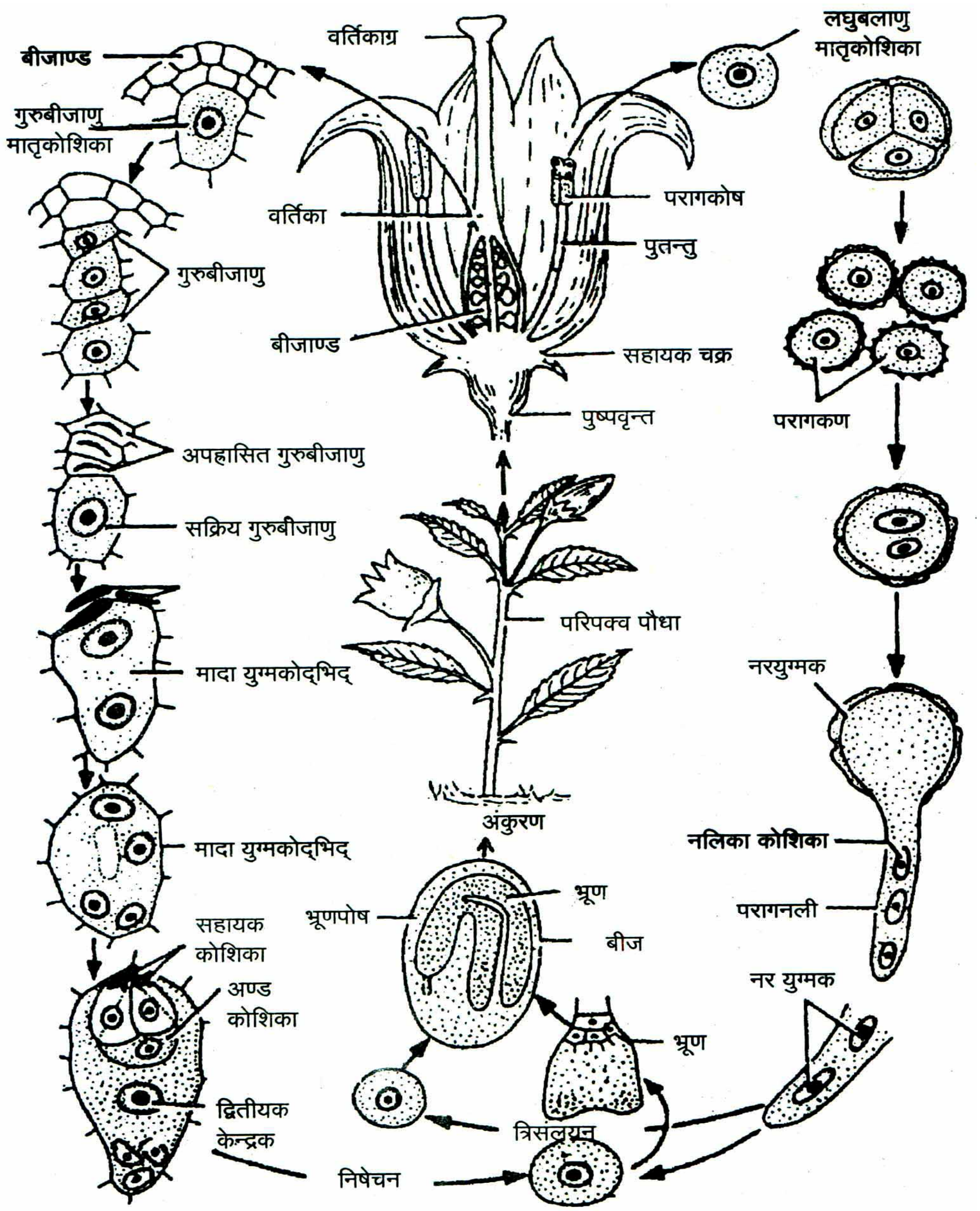

चित्र 8.14: ऐन्जियोस्पर्मी पौधे का जीवन -चक्र

बोध प्रश्न - 1

1. टेपीटम का मुख्य .... कार्य है
2. एक पराकगण का बाहरी चोल .... बना होता है।
3. परागकण किसका .... प्रतीक है।
4. आवृतबीजी पादपों के मादा युग्मकोद्भिद में सामान्यतया: कितने .... विभाजन होते है।
5. परागकण से सामान्यतया कितनी .... परागनलिका निकलती है।
6. आवृत बीजी पादपों के भ्रूणकोश में कितने .... केन्द्रक होते है।

7.	द्विनिषेचन की खोज .... किसने की थी?
8.	निषेचन के बाद .... बीजावरण बंता है।
9.	द्वीतीयक केन्द्रक तथा नरयुग्मक के संयोजन से .... बनाता है।
10.	भ्रूणकोश का परिवर्धन .... होता है।
11.	कदंब में परागकण .... होता है।
12.	माध्यमिक भ्रूणकोश का उदाहरण .... हैं।

8.9 सारांश

आवृतबीजी पौधें संसार के समस्त पौधों में सबसे अधिक विकसित एवं विश्वव्यापी होते हैं। इनमें पौधा जड़, तना, पत्तियों एवं फलों में विभेदित होता है। पुभंग पुष्प का नर जननांग है तथा इसके प्रत्येक अंग को पुंकेसर कहते है। पुंकेसर के तीन भाग होते हैं, पुतन्तु, परागकोष तथा पोषी। परागकोष के पराग पुटो में परागकण मिलते हैं। ये अगुणित होते हैं। प्रत्येक परागकण में दो कार्यिक एवं जनन कोशिकाएँ होती -है। जनन कोशिका विभाजित होकर दो नर युग्मक बनाती है।

जायांग पुष्प का मादा जननांग है, तथा इसके तीन भाग होते है, वर्तिकाग, वर्तिका एवं अण्डाशय। अण्डाशय में बीजाण्ड होते हैं, जोकि बीजाण्डवृत्त द्वारा बीजाण्डसन से जुड़े रहते हैं। अण्डाशय में भ्रूणकोष विकसित होता है, जो अगुणित पीढ़ी मादा युग्मकोद्भिद को निरूपित करता है।

मादा युग्मकोद्भिद में अण्ड समुच्चय (दो सहायक कोशिकाएँ तथा एक अण्डकोशिका) तीन प्रतिमुख कोशिकाएँ तथा एक द्वितीयक केन्द्रक होता है। परागकण विभिन्न साधनों द्वारा वर्तिकाग पर पहुँचते हैं एव अंकुरित होकर परागनलिका बनाते हैं। परागनलिका में दो नर युग्मक होते है। कायिक कोशिका लुप्त हो जाती है।

आवृतबीजी पादपों में द्विनिषेचन होता है। एक नर युग्मक अण्डकोशिका से संयोजित होता है तथा दूसरा नर युग्मक द्वितीयक केन्द्रक से संयोजन करता है|निषेचित अण्ड से भ्रूण तथा प्राथमिक भ्रूणकोष केन्द्रक से भ्रूणकोष बनता है।

8.10 शब्दावली

(i) आवृतबीजी : पुष्पधारी पादप, जिनके बीज फल भित्ति में छिपे रहते हैं।

(ii) बीजाणुजनक: आवृत बीजी पादप जोकि जड़,तना,पत्तियों में विकसित होता है|

(iii) पुमंग : पुष्प का नर जनन अंग, जोकि पुतन्तु तथा परागकोष में विभक्त रहता है।

(iv) जायांग : पुष्प का मादा जनन अंग जोकि अण्डाशय, वर्तिका तथा वर्तिकाग में विभक्त रहता है|

(v) लधुबीजाणु जनन : बीजाणु जनन ऊतक से लघु बीजाणुओं के बनने का प्रकरण लघुबीजाणु जनन कहलाता है।

(vi) नरयुग्मकोद्भिद : लघुबीजाणु नर युग्मकोद्भिद की प्रथम कोशिका है।

(iii) **परागकण** : चतुष्कों से पृथक होने पर लघुबीजाणु परागकण कहलाता है।

(iv) **अण्डाशय :** मादा जनन अंग, जिसके अन्दर बीजाणु पाये जाते हैं।

(v) **मादा युग्मकोद्भिद :** सक्रिय गुरूबीजाणु मादा युग्मकोद्भिद की प्रथम कोशिका है।

(vi) **परागण :** परागकोष से परागकणों का वर्तिकाग्र तक पहुँचने की क्रिया को परागकण कहते है|

(vii) **निषेचन :** नर एवं मादा युग्मकों के केन्द्रकों के संयोजन को निषेचन कहते है।

(viii) **द्विनिषेचन :** एक नर युग्मक अण्डकोशिका से संयोजन करता ह तथा दूसरा नर युग्मक द्वितीयक केन्द्रक से संयोजित होता है, उसे द्विनेषचन कहते है।

8.11 संदर्भ ग्रंथ

1. शर्मा सक्सेना, वर्मा तथा चौधरी - 2000 आवृतबीजी भ्रोणिकी वर्गिकी एव आर्थिक वनस्पति विज्ञान अल्का पब्लिकेशन्स अजमेर
2. शर्मा, त्रिवेदी, शर्मा - 2004 बीजधारी पादपों की विविधता एवं वर्गिकी रमेश बुक डिपो, जयपुर
3. सिंह, पाण्डे, जैन 2005 आवृतबीजी पादपों की बनावट तथा जनन रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ
4. अग्रवाल, शर्मा - 2004 पुष्पीय पादपों की संरचना परिवर्धन तथा जनन, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर

8.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोधप्रश्न - 1

1. पोषण	2. वो परत का	**3.** नरयुग्माकोद्भिद
4. तीन	5. एक	6. 8
7. नवश्चिन	8. अध्यावरण	9. भ्रूणकोष
10. समसूत्री विभाजन से	11. चमगादड़	12. एस्फोडिलस

8.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. लघुबीजाणु धानी किसे कहते है।
2. पुंकेसर कितने भागों में विभेदित होता है।
3. आवृतबीजी में परागधानी का विकास किस प्रकार का होता है।
4. गुरूबीजाणु धानी किसे कहते है।
5. बीजाण्ड की संरचना को चित्र की सहायता से समझाइये।
6. बीजाण्ड कितने प्रकार के होते है।।
7. भ्रूणकोष किसे कहते है तथा ये कितने प्रकार के होते है।

8. भ्रूणकोष किसे कहते है, यह किस प्रकार बनता है तथा आवृतबीजी पादपों में कितने प्रकार का होता है।
9. निषेचन तथा द्‌विनिषेचन की विधि को समझाइये।
10. भ्रूण परिर्वघन को द्‌विबीजपत्री पौधों में चित्र की सहायता से समझाइये।

इकाई 9A : जल सम्बन्ध (Water Relations)

इकाई की रूपरेखा

9A.0 उद्देश्य
9A.1 प्रस्तावना
9A.2 विसरण
9A.3 पारगम्यता
9A.4 परासरण
9A.5 जीवद्रव्य कुंचन व जीवद्रव्य विकुंचन
9A.6 कोशिका में उत्पन्न होने वाले विभिन्न प्रकार के दाब
9A.6.1 परासरण दाब
9A.6.2 स्फीति दाब एवं भित्ति दाब
9A.6.3 विसरण दाब न्यूनता
9A.7 जल विभव अवधारणा
9A.8 अंतः चूषण
9A.9 सारांश
9A.10 शब्दावली
9A.11 संदर्भ ग्रन्थ
9A.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
9A.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

9A.0 उद्देश्य

इकाई के इस भाग में आप जल की महत्वता को समझेंगे, जो कि पादप की समस्त जैविक और कार्यिकी में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। जल सम्बन्ध में कुछ मूलभूत प्रक्रियाओं जैसे- विसरण, पारगम्यता, परासरण, जीवद्रव्य कुंचन व विकुंचन, विभिन्न प्रकार के दाब, अन्त:चूषण व जल विभव अवधारणा को भली-भांति जान सकेंगे।

9A.1 प्रस्तावना (Introduction)

पौधों की समस्त जैविक क्रियाओं के अध्ययन को पादप शरीर क्रिया विज्ञान (plant physiology) कहा जाता है। जल पादपों की समस्त जैविक एवं कार्यिकी (physiological) क्रियाओं के लिए आवश्यक माध्यम है।

एक श्रेष्ठ विलायक होने के कारण इसकी महत्ता जैविक तंत्री के लिए और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। कोशिकाओं के जीवद्रव्य (protoplasm) के जैविक भार (Biomass) का लगभग 90% भाग जल है। परन्तु प्रसुप्त बीजों (dormant seeds) व कलिकाओं में जल की मात्रा 10% से भी कम पायी जाती है। पादप कोशिकाओं में होने वाली विभिन्न क्रियाओं जैसे खनिज

पोषकों एवं अन्य पदार्थों का अवशोषण, उनके वितरण तथा प्रकाश संश्लेषण (photosynthesis) की क्रियाओं में जल महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पादप कोशिकायें किस क्रिया के द्वारा इस जल को ग्रहण करती हैं, अत : पादपों के जल सम्बन्ध (water relation) में कुछ मूलभूत प्रक्रियाओं को समझना अति आवश्यक है, जो निम्न प्रकार से है : -

9A.2 विसरण (Diffusion)

गैस, द्रव अथवा ठोस के अणुओं अथवा आयनों के अपने अधिक सांद्रता क्षेत्र से कम सांद्रता क्षेत्र की ओर सामान वितरण तक गमन को विसरण कहते हैं। उदाहरण - एक जल से भरे बीकर में पोटेशियम परमैंगनेट ($KMnO_4$) के कुछ क्रिस्टल डालने पर कुछ समय पश्चात् पोटेशियम परमैंगनेट के अणु जल में समान रूप से वितरित हो जाते हैं, यह क्रिया विसरण के द्वारा होती है (चित्र9A.1)।

(i) विसरण के लक्षण :

- अणु अथवा आयन अधिक सांद्रता - क्षेत्र से कम सांद्रता क्षेत्र की ओर गति करते हैं।
- विसरित होने वाले आयन अथवा अणु सभी दिशाओं में अनियमित एवं सतत् गतिशील होते है|
- प्रत्येक पदार्थ जैसे गैस, ठोस व द्रव का विसरण एक दूसरे से स्वतंत्र होता है जैसे रन्ध्रों में कार्बनडाइ - ऑक्साइड (CO_2) तथा आक्सीजन (O_2) का विसरण साथ-साथ एक ही समय में अलग - अलग दिशाओं में होता है

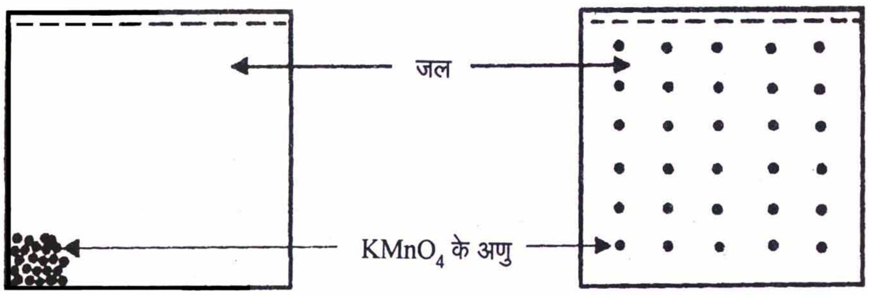

चित्र 94.1 : विसरण का $KMnO_4$ द्वारा प्रदर्शन

(ii) विसरण को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affecting rate of diffusion) :

(क) तापमान : तापमान बढ़ने के साथ -साथ विसरण की दर बढ़ती है|

(ख) अणुओं / आयनों का आकार : अणुओं अथवा आयनों का आकार बढ़ने के साथ विसरण की दर कम होती है, ग्राहम के विसरण के नियमानुसार गैसों के विसरण की दर उनके घनत्व के वर्गमूल के व्युत्क्रमानुपाती होती है।

$$\text{विसरण की दर} = \frac{1}{\sqrt{d}}$$

(ग) विसरण माध्यम : माध्यम की सांद्रता बढ़ने के साथ विसरण की दर कम होती है। गैसों का विसरण वायु की तुलना में निर्वात में अधिक होता है। विलेयों की विलयता भी विसरण की दर को प्रभावित करती है।

(iii) विसरण का महत्त्व : विसरण क्रिया का पौधों में निम्नलिखित महत्व है :

1. श्वसन तथा प्रकाश संश्लेषण की क्रियाओं के समय गैसों का आदान -प्रदान विसरण के द्वारा होता है।
2. यह वाष्पोत्सर्जन की क्रिया के समय अन्तराकोशिकी स्थानों से पानी के वाष्पन में सहायक है|
3. निष्क्रिय अवशोषण (Passive absorption) के समय जल पादपों द्वारा विसरण द्वारा ही ग्रहण किया जाता है।
4. यह खाद्य पदार्थों के संवहन में भी सहायक है।

9A.3 पारगम्यता (Permeability)

गैसों, द्रवों अथवा घुलित पदार्थ (solute) जिस दर /गति से किसी झिल्ली द्वारा विसरित होते हैं, विसरण की इस दर को उस झिल्ली की पारगम्यता कहते हैं। पारगम्यता के आधार पर झिल्लियों को निम्न चार वर्गो में विभक्त किया जा सकता है।

(i) अपारगम्य (Impermeable) : इस प्रकार की झिल्लियों द्वारा पदार्थों का आदान -प्रदान नहीं हो सकता, जैसे कार्क कोशिका भित्ति, क्यूटीन द्वारा आवीरत कोशिका भित्ति।

(ii) पारगम्य (Permeable) : इस प्रकार की झिल्लियों द्वारा पदार्थों का आदान -प्रदान मुक्त रूप से होता है, जैसे कोशिका भित्ति।

(iii) अर्द्धपारगम्य (Semipermeable) : ऐसी झिल्लियाँ सामान्यतया विलेय के अणुओं के लिए अपारगम्य होती है परन्तु विलायक के अणुओं के प्रति पारगम्य होती है, जैसे-चर्म पत्र (Parchment paper), बकरे का आमाशय (goat's bladder)।

(iv) चयनात्मक अथवा वरणात्मक पारगम्य (Selectively permeable) : इस प्रकार की झिल्लियों से कुछ अणु अथवा आयन आसानी से, कुछ अणु अथवा आयन धीरे - धीरे परागमित हो सकते हैं परन्तु कुछ अणु अथवा आयनों का आदान -प्रदान सम्भव नहीं होता। जैसे - रिक्तिका झिल्ली, कोशिका की झिल्लियों आदि।

9A.4 परासरण (Osmosis)

किसी विलायक का अपने अधिक सांद्रता क्षेत्र की ओर से कम सांद्रता क्षेत्र की तरफ अर्द्धपारगम्य झिल्ली के द्वारा होने वाले विसरण को परासरण कहते हैं। समस्त जैविक तंत्रों में विलायक का कार्य जल करता है अत: जल का अर्द्धपारगम्य झिल्ली से होने वाले विसरण को भी परासरण कहते हैं।

परासरण की क्रियाविधि को निम्नलिखित प्रयोग द्वारा समझाया जा सकता है :

एक थिसिल कपि (thistle funnel) के मुँह पर चर्मपत्र को चित्रानुसार बाँध देते हैं। चर्मपत्र एक अर्द्धपारगम्य झिल्ली की तरह कार्य करता है। थिसिल नली में सांद्र शर्करा का घोल भर कर इसके चौड़े झिल्ली लगे भाग को जल से भरे बीकर में चित्र 9A.2 के अनुसार स्टैण्ड पर लगा देते हैं। कुछ समय पश्चात् देखते हैं कि थिसिल कपि में जल की मात्रा बढ़ जाती है तथा थिसिल कपि की संकरी नली में ऊपर चढ़ जाता है। जल का यह बहाव अर्द्धपारगम्य झिल्ली से होते हुए अधिक सांद्रता से कम सांद्रता की तरफ होता है। जैसे-जैसे थिसिल नली में जल की मात्रा बढ़ती है शर्करा के घोल की सांद्रता कम होने लगती है। सांद्रता कम होने के साथ-साथ जल का बहाव भी कम होने लगता है।

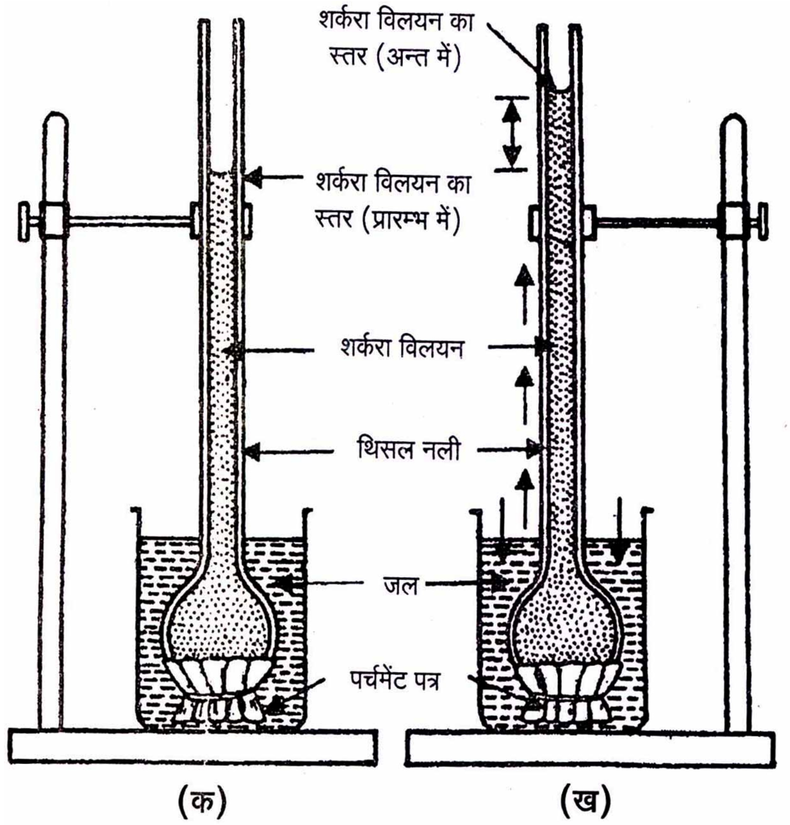

चित्र 9A.2 : थिसिल कपि -चर्म पत्र द्वारा परासरण का प्रदर्शन :
(क) परासरण से पूर्व (ख) परासरण के पश्चात्

(i) विलयनों के प्रकार (Types of solutions) : रिक्तिका के कोशिका रस (cell sap) के सापेक्ष विलयन तीन प्रकार के होते हैं :

(क) उच्च परासरी विलयन /अतिपरासरी विलयन (Hypertonic solution) : इस प्रकार के विलयन की सान्द्रता कोशिका रस की सान्द्रता की तुलना में अधिक होती है।

(ख) अल्प परासरी विलयन (Hypotonic solution) : इस प्रकार के विलयन की सान्द्रता कोशिका रस की सान्द्रता की तुलना में कम होती है।

(ग) सम परासरी विलयन (Isotonic solution) : इस प्रकार के विलयन की सान्द्रता कोशिका रस की सान्द्रता के बराबर होती है।

(ii) परासरण के प्रकार : परासरण की क्रिया दो प्रकार की होती है।

1. अन्त: परासरण (Endosmosis) : कोशिका को यदि जल या अधोपरासरी विलयन (hypotonic solution) में रखा वाये तो जल के अणु कोशिका के अन्दर प्रवेश करने लगते हैं। इस क्रिया को अन्त :परासरण (endosmosis) कहते हैं; जैसे - किशमिश को पानी में रखने पर फूल जाना।

2. बहि: परासरण (exosmosis) : जब कोशिका को अतिपरासरी विलयन (hypertonic) या सान्द्र विलयन में रखा जाये तो जल के अणु कोशिका में से निकल कर बाहरी विलयन में प्रवेश करने लगते हैं और कोशिका द्रव्य सिकुड़ जाता है जैसे-अंगूर को शर्करा के अत्यधिक सान्द्र घोल में रखने पर सिकुड़ जाना।

(iii) परासरण का महत्त्व (Importance of osmosis). पौधों के लिए परासरण के महत्व निम्नलिखित हैं

1. मूलरोमों द्वारा जल का अवशोषण परासरण क्रिया पर निर्भर करता है।
2. पादपों में एक कोशिका से दूसरी कोशिका में जल का स्थानान्तरण इसी क्रिया से होता है।
3. पौधों के विभिन्न अंग परासरण के कारण स्फीत होकर निश्चित आकार ग्रहण करते हैं।
4. वाष्पोत्सर्जन के समय रन्ध्रों का खुलना व बन्द होना परासरण पर निर्भर करता है।
5. परासरण दाब के कारण ही तरुण कोशिकाओं वृद्धि होती है।
6. उच्च परासरणी सान्द्रता के फलस्वरूप पौधे हिमीकरण (freezing) तथा शुष्कन (desiccation) का प्रतिरोध करते हैं।
7. यह फलों व बीजों के स्फुटन तथा प्रकीर्णन में सहायक है।

9A.5 जीवद्रव्य कुंचन एवं जीवद्रव्य विकुंचन (Plasmolysis and Deplasmolysis)

जब किसी पादप कोशिका को अतिपरासरी विलयन में रखा जाता है तब बहि:परासरण के परिणामस्वरूप जल कोशिकाद्रव्य से बाहर कें विलयन की ओर गति करता है, जिससे कोशिका का जीवद्रव्य सिकुड़ने लगता है। कोशिका भित्ति तथा सिकुड़े हुए जीवद्रव्य के मध्य रिक्त स्थान उत्पन्न हो जाता है, जो बाहय विलयन (अति परासरी) से भर जाता है (चित्र 94. 3) । धीरे-धीरे कोशिका का जीवद्रव्य कुंचित होकर कोशिका के कोने में दिखाई देने लगता है। इस प्रकार की कोशिका को **जीवद्रव्य कुंचित कोशिका** (plasmolysed cell) एवं इस प्रक्रिया को जीवद्रव्य कुंचन कहते हैं। जीवद्रव्य कुंचन की घटना रोहियो डिस्कलर (Rhoeo discolor) पादप की पत्तियों की निचली अधिचर्म कोशिकाओं में आसानी से देखी जा सकती है।

जब इस जीवद्रव्य कुंचित कोशिका को अल्प परासरी (hypotonic) विलयन में रखा जाता, तो अन्त:परासरण की क्रिया द्वारा जल बाहर से कोशिका में प्रवेश करता है, जिससे जीवद्रव्य

कुंचित कोशिका पूर्ववत् स्फीत स्थिति में आ जाती है। इस प्रक्रिया को जीवद्रव्य विकुंचन कहते हैं।

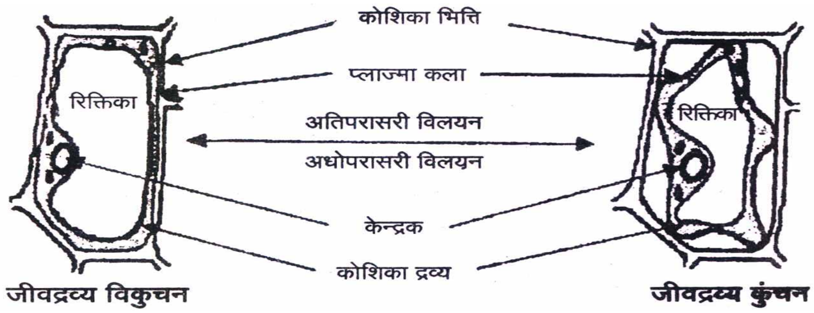

चित्र 943 : जीवद्रव्य कुंचन एवम् विकुंचन कां प्रदर्शन

9A.6 कोशिका में उत्पन्न होने वाले विभिन्न प्रकार के दाब

9A.6.1 परासारण दाब (Osmotic pressure)

वह दाब जो शुद्ध जल को अंर्द्धपारगम्य झिल्ली के दूसरी तरफ विद्यमान घोल में प्रवेश करने से रोकने के लिए आवश्यक होता है परासरण दाब कहलाता है तथा यह घोल के अमाप में वृद्धि को रोकता है। किसी विलयन का परासरण, दाब विलायक में उपस्थित विलेय के अणुओं की संख्या के समानुपाती

परासरण दाब (OP) α विलायक मे विलेय के अणुओं की संख्या

9A.6.2 स्फीति दाब एवं भित्ति दाब (Turgor and wall pressur)

परिपक्व पादप कोशिका में विकसित कोशिका भित्ति पायी जाती है। जब पादप कोशिका को जल में रखा जाता है तो कोशिकाद्रव्य का परासरण दाब अधिक होने के कारण जल के अणु बाहर से कोशिका में विसरित होने लगते हैं। जिससे प्लाज्मा झिल्ली (plasma membrane) कोशिका भित्ति पर दबाव डालती है। कोशिका भित्ति पर लगने वाले इस बहिर्मुखी दाब को स्फीति दाब तथा इस प्रकार की कोशिका को स्फीति कोशिका कहते हैं।

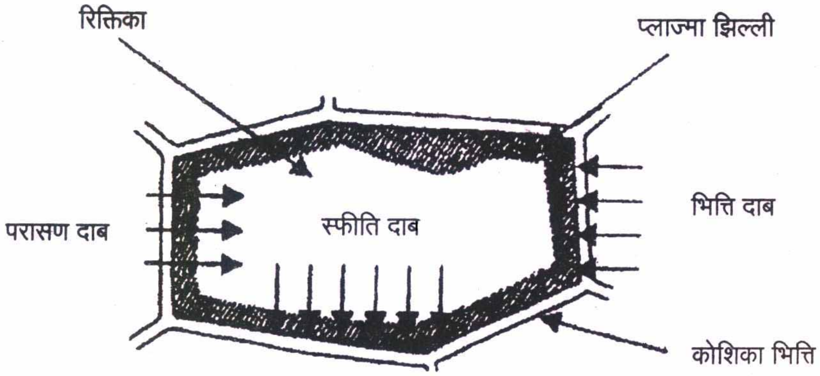

चित्र 9A.4 : कोशिका में जल अवशोषण के द्‍वारा उत्पन्न विभिन्न दाबों (परासरण दाब, स्फीति दाब व भित्ति दाब) में सम्बन्ध

स्फीति अवस्था में कोशिका कला अथवा प्लाज्माकला के द्‌वारा कोशिका भित्ति पर लगने वाले स्फीति दाब के विपरीत प्रत्यास्थ एवं दृढ़ कोशिका भित्ति समान तथा विरोधी दाब उत्पन्न करती है। यह दाब भित्ति दाब (Wall pressure) कहलाता है तथा यह कोशिका की आकृति को बनाये रखता है (चित्र 9A.4)।

9A.6.3 विसरण दाब न्यूनता (Diffusion {ressure Deficit)

प्रत्येक द्रव्य का एक निश्चित विसरण दाब होता है। एक शुद्ध विलायक (जल) का विसरण दाब उसके विलयन से सदैव अधिक होता है अर्थात् शुद्ध जल में अगर विलेय मिलाया जाये तो बनने वाले विलयन का विसरण दाब शुद्ध जल की तुलना में कम होता है (परन्तु परासरण दाब अधिक होता है) इस प्रकार शुद्ध विलायक (जल) एवं घोल के विसरण दाब में अन्तर पाया जाता है। समान वायुमण्डलीय दाब एवं ताप पर विलयन का विसरण दाब शुद्ध विलायक के विसरण दाब से जितना कम होता है उसे उस विलयन की **विसरण दाब न्यूनता** [diffusion pressure deficit(DPD)] कहते हैं। इस विसरण दाब न्यूनता को दूर करने के लिए विलयन, विलायक (जल) के अणुओं को अवशोषित करते हैं अर्थात् दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि विसरण दाब न्यूनता घोल की विलायक (जल) अवशोषण क्षमता है। अत:विसरण दाब न्यूनता को चूषण दाब [suction pressure(SP)] भी कहा जाता है।

विभिन्न प्रकार के दाबों में सम्बन्ध : कोशिका के अन्दर जल के अणुओं के प्रवेश करने की कुल (Net) प्रवृत्ति को विरण दाब न्यूनता कहते हैं। कोशिका के अन्दर परासरण दाब (OP) के कारण जल के अणुओं का प्रवेश होता है। जल अवशोषण के साथ-साथ कोशिका का स्फीति दाब (TP) बढ़ता है तथा इसके विपरीत परासरण दाब घटता है। साधारणतया कोशिका में परासरण दाब का मान स्फीति दाब से अधिक रहता है। परासरण दाब तथा स्फीति दाब के इस अन्तर को **चूषण दाब** (SP) या **विसरण दाब न्यूनता** (DPD) कहते हैं जिसे निम्न समीकरण के द्‌वारा प्रदर्शित किया जाता है :

$$DPD = OP - TP$$

(i) जब कोशिका श्लेथ अवस्था में होती है उस समय उसका स्फीति दाब शून्य तथा परासरण दाब, विसरण दाब न्यूनता के बराबर होता है।

$$DPD = OP - TP$$

शलथ अवस्था में TP के शून्य होने पर :

$$DPD = OP$$

(ii) जब कोशिका पूर्ण स्फीति अवस्था में हो तब उसका परासरण दाब स्फीति दाब के बराबर होगा तथा विसरण दाब न्यूनता का चूषण दाब शून्य होगा।

$$DPD = OP - TP$$

स्फीति अवस्था में चूषण दाब के शून्य होने पर :

$$TP = OP$$

जल अणुओं के प्रवेश क्रिया के समय कोशिका का स्फीति दाब शून्य से क्रमश: बढ़ता है और उस सीमा तक पहुँच जाता है जहाँ परासरण दाब स्फीति दाब के बराबर हो जाता है। अत:चूषण दाब या विरण दाब न्यूनता कोशिका के परासरण दाब व स्फीति दाब के अन्तर के बराबर होती है (चित्र 9A.5)।

DPD= OP - TP

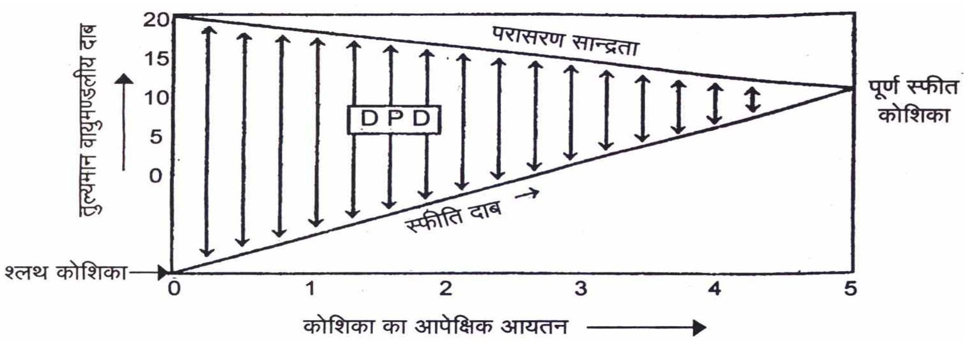

चित्र 94.5 : कोशिका में विसरण दाब न्यूनता, परासरण दाब व स्फीति दाब में सम्बन्ध

9A.7 जल विभव अवधारणा (Hypothesis of Water potential)

विलयनों की सान्द्रता में अन्तर के आधार पर परासरण की प्रक्रिया में जल सही-सही प्रवाह को समझाना कठिन है। परासरणीय तंत्र में जल की गति को ऊर्जा के नियमानुसार समझाया जा सकता है जो ऊष्मा गति के नियमों के अनुरूप है। किसी भी विलेय-विलायक तंत्र के प्रत्येक घटक की कुछ मुक्त ऊर्जा होती है, जो उस घटक को कार्य करने की क्षमता प्रदान करती है। जल (विलायक) सदैव अधिक मुक्त ऊर्जा क्षेत्र से कम मुक्त ऊर्जा क्षेत्र की ओर गति करता है। शुद्ध जल की मुक्त ऊर्जा सबसे अधिक होती है। यदि किसी पादप कोशिका को शुद्ध जल में रखा जाता है, तो शुद्ध जल के अणुओं की मुक्त ऊर्जा तथा पादप कोशिका विलयन में उपस्थित जल के अणुओं की मुक्त ऊर्जा के अन्तर को जल का विभव कहा जाता है। दूसरे शब्दों में जल के रसायनिक विभव को भी जल विभव के रूप में प्रदर्शित किया जाता है।

जल का Ψ =शुद्ध जल के अणुओं की मुक्त ऊर्जा - विलयनमे जल के अणुओंकी मुक्त ऊर्जा

ऊष्मा गतिकी शब्दावली में परासरण दाब (osmotic pressure), परासरण विभव (osmotic potential) Ψs के बराबर परन्तु ऋणात्मक (-ve) चिन्ह से प्रदर्शित किया जाता है।

अत: Ψs = - OP

अत: इसके अनुसार परासरण विभव जल विभव की वह मात्रा है जो विलयन में विलेय की उपस्थिति के कारण कम होता है। या

अत: विलेय की उपस्थिति के कारण जल विभव में होने वाली कमी उस विलयन का परासरण विभव कहलाती है।

जल विभव की अवधारणा **आर.के. स्लेटियर व एस.ए. टायलर** ने सन 1960 मैं प्रतिपादित कीथी जल चल विभव की ग्रीक शब्द Ψ(PSI, साई) से प्रदर्शित किया जाता है। जल विभव की सामान्य इकाई पास्कल (Pa) है।

कोशिका की वह सतह जो जल का अधिशोषण करती है, मैट्रिक्स कहलाती है। अत: मैट्रिक्स के द्वारा उत्पन्न विभव को मैट्रिक्स विभव कहते हैं तथा इसे Ψ_M से प्रदर्शित किया जाता है। यह भी ऋणात्मक होता है व कोशिका के जल विभव को कम करता है। मैट्रिक्स विभव मृदा में तो महत्व रखता है परन्तु परासरण में महत्वहीन होता है। दाब विभव धनात्मक होता है व इसके कारणजल विभव बढ़ता है। अत: -

$$\text{जल विभव} = \Psi M + \Psi s + \Psi p$$

ΨM = मेट्रिक्स विभव

ΨS = परासरण विभव

ΨP = दाब विभव

चूँके परासरण में पल नगण्य होता है। अत:

$$\Psi = \Psi S + \Psi P$$

अत: किसी तंत्र का जल विभव (Ψ) उस तंत्र के परासरण विभव व दाब विभव के योग के बराबर होता है।

9A.8 अन्त: चूषण (Imbibition)

अन्त: चूषण एक भौतिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा ठोस या अर्ध ठोस कार्बनिक पदार्थ (जैसे गोंद, कपास के रेशे, बीज, लकड़ी का बुरादा, स्टार्च, अगर-अगर सेल्यूलोज आदि) जल या नमी का अवशोषण करके फूल जाते हैं। ये पदार्थ जल स्नेही होते हैं तथा जल में घुले बिना जल को अपने समाहित कर लेते हैं। इस क्रिया को **अन्त:चूषण** (imbibition) कहते हैं। कोशिका भित्ति क्षेत्र तथा पादप संरचनाओं में अन्यत्र स्थित जल स्नेही पदार्थों के अणुओं व जल के अणुओं के बीच एक प्रकार का आकर्षण होता है। इसी आकर्षण के कारण बाह्य से जल अन्त:चूषण क्रिया द्वारा कोशिका भित्ति, बीज तथा काष्ठ आदि में प्रवेश करता है। अन्त:चूषण की क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले दाब को अन्त:**चूषण दाब** (imbibitions pressure) कहते हैं। बीजों को जल में डालने पर बीज चोल इसी दाब के कारण फट जाता है। यदि लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़ों को चट्टानों की दरारों में प्रवेश करा दिया जाए तो उनके फैलने से इतना दाब उत्पन्न हो सकता है कि चट्टानें एक दूसरे से दूर हट सकती हैं।

बोध प्रश्न

1. पत्तियों द्वारा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड या ऑक्सीजन लेने की क्रिया को क्या कहते है?

   ....

   ....

2. जब जीवद्रव्य कुंचित कोशिका को पानी में अथवा अल्पपरासरी विलयन में रखते हैं, जिससे जीवद्रव्य प्रसारित होता है। जब इस क्रिया को क्या कहते हैं?

   ....

……………………………………………………………………

3. जीवद्रव्य कुंचित अवस्था में DPD का मान किसके बराबर होता है?

……………………………………………………………………

……………………………………………………………………

4. कोशिका को अतिपरासरी विलयन में रखने पर क्या होता है?

……………………………………………………………………

……………………………………………………………………

5. श्लथ कोशिका में भित्ति दाब कितना होता है?

……………………………………………………………………

……………………………………………………………………

6. पादप कोशिका में DPD किसके बराबर है ?

……………………………………………………………………

……………………………………………………………………

9A.9 सारांश

इकाई के इस भाग में हम यह अध्ययन कर पाये हैं कि जल विभिन्न पादप एवं जैविक क्रियाओं से अनिवार्य रूप से सम्बद्ध है। जीवन का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव जल में ही हुआ था। जल को जीवन का द्रव (fluid of life) कहा जाता है। जल तथा विभिन्न पादप प्रक्रियाओं के मध्य गहन घनिष्टतायें पायी जाती हैं। जल एक माध्यम का कार्य करता है। यह पदार्थों का विलायक एवं वाहक है। पौधों की विभिन्न जैव-भौतिकी-रासायनिक प्रक्रियाओं जैसे विसरण, परासरण, अन्त:शोषण आदि से जल घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है। इस भाग में हमें OP,TP,WP तथा DPD में क्या सम्बन्ध है, इस बारे में भली-भांति जानकारी प्राप्त कर सके हैं।

9A.10 शब्दावली

विसरण : अणुओं अथवा आयनों का अधिक सांद्रता क्षेत्र से कम सांद्रता क्षेत्र की ओर गमन विसरण कहलाता है।

परासरण : किसी विलायक का अपने अधिक सांद्रता क्षेत्र की ओर से कम सांद्रता क्षेत्र की तरफ अर्द्धपारगम्य झिल्ली के द्‌वारा होने वाले विसरण को परासरण कहते हैं।

समपरासरी विलयन : इस प्रकार का विलयन जिसकी सांद्रता कोशिका रस की सांद्रता के बराबर होती है।

भित्ति दाब : कोशिका भित्ति द्‌वारा कोशिका कला पर लगने वाला विरोधी दाब भित्ति दाब कहलाता अन्त:**चूषण** ठोस या कार्बनिक पदार्थो का जल अवशोषण कर फूल जाना अन्त:चूषण कहलाता है।

9A.11 संदर्भ ग्रंथ

1. पादप कार्यिकी एवं जैव रसायन, डॉ. एन. बी. सक्सेना, डॉ. एम एल. वर्मा, डॉ. बी एल. चौधरी अल्का पब्लिकेशन, अजमेर।
2. वनस्पति शास्त्र, डॉ. ओ. पी. दायमा, सी. बी. एच. पब्लिकेशन जयपुर।
3. वनस्पति विज्ञान, डॉ. प्रमोद कुमार शर्मा, डॉ. मंजू शर्मा, डॉ. प्रेम प्रकाश पालीवाल माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान अजमेर।

9A.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. विसरण कहते हैं।
2. जीवद्रव्य विकुंचन
3. OP के बराबर
4. बहि :परासरण
5. शून्य
6. OPTP

9A.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. OP, TP WP तथा DPD में क्या सम्बन्ध है?
2. परासरण और विसरण में क्या अन्तर है?
3. निम्नलिखित में अन्तर बताइए।

   (क) अन्त : परासरण और बहि:परासरण

   (ख) अतिपरासरी और अल्पपरासरी विलयन
4. विसरण दाब न्यूनता क्या है? यह जल विभव से कैसे समानता दर्शाता है?
5. परासरण में भाग लेने वाली झिल्लियों के लक्षणों को बताइए।
6. अन्तःचूषण का दैनिक जीवन में क्या उपयोग है?

इकाई 9B : खनिज पोषण (Mineral Nutrition)

इकाई की रूपरेखा

9B.0 उद्देश्य

9B.1 प्रस्तावना

9B.2 पादप पोषण एवं अनिवार्य पोषक तत्व

9B.3 अखनिज पोषक तत्व

9B.4 खनिज पोषक तत्व

9B.4.1 वृहत मात्रा पोषक तत्व

9B.4.2 सूक्ष्म मात्रा पोषक तत्व

9B.5 खनिज लवणों का अवशोषण

9B.5.1 निष्क्रिय अवशोषण

9B.5.2 सक्रिय अवशोषण

9B.6 जड़ में आयनों का आवागमन

9B.7 विलैयों का स्थानांतरण

9B.8 साराश

9B.9 शब्दावली

9B.10 संदर्भ ग्रन्थ

9B.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

9B.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

9B.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम पादप पोषण एवं अनिवार्य पोषक तत्व जिन्हें मृदा द्वारा पादप प्राप्त करके संभरण करते हैं के बारे में समझायेंगे। खनिज पोषक तत्वों का वर्गीकरण, तथा खनिज अवशोषण के तरीकों पर प्रकाश डालेंगे। जड़ों में आयनों का अवागमन कैसे होता है और विलयों का एक स्थान से दूसरे स्थान तक स्थानातरण किस प्रकार सम्भव होता है इस इकाई में हम इसे भली-भाँति समझेंगे।

9B.1 प्रस्तावना (Introduction)

अपनी जीवन चक्र को सामान्य रूप से पूरा करने के लिए सजीवों में बाह्य पर्यावरण से अनेक पदार्थों का संभरण आवश्यक होता है। पदार्थों का संभरण पोषण (Nutrition) कहलाता है। पोषण के लिए जब पादप में कार्बनिक तथा अकार्बनिक दोनों ही प्रकार के पदार्थों का संभरण बाह्य वातावरण से आवश्यक हो तो ऐसे सजीव को स्वपोषी (Heterotrophic) कहते हैं। इसके

विपरीत सामान्य जीवन चक्र के लिए जब बाहर से केवल अकार्बनिक पदार्थों की ही आवश्यकता होती है तो ऐसे सजीव को स्वपोषी (Autotrophic) कहते हैं।

वृद्धि की सामान्य परिस्थितियों मे समस्त हरे पौधे बाह्य पर्यावरण से केवल अकार्बनिक पदार्थो की ही प्राप्ति करते हैं। हाइड्रोजन कार्बन तथा ऑक्सीजन के अतिरिक्त अन्य सभी अकार्बनिक तत्व प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मृदा से ही प्राप्त होते हैं। चूकि इन अकार्बनिक पदार्थों के संभरण का स्रोत खनिज पदार्थ होते हैं, अत : इन तत्वों को खनिज पोषक (Mineral nutrition) तथा इस प्रकार के पोषण को खनिज पोषण (Mineral nutrition) कहते हैं।

पादप पोषण के क्षेत्र में सबसे पहला योगदान एन. टी. डी सोसर (N.T.D.) का है जिन्होंने पौधों की मिट्टी में उपस्थित खनिजों पर निर्भरता के बारे में बताया ।

9B.2 पादप पोषण एवं अनिवार्य पोषक तत्व (Plant Nutrition and Essential Nutrient)

जर्मन वैज्ञानिक लीबीग (Liebig) ने 19वीं शताब्दी के मध्य में यह बताया कि पोषक तत्व पादप जीवन के लिए आवश्यक है। उन्होंने ही **"लॉं ऑफ मीनियम"** प्रतिपादित किया जिसके अनुसार पादप, पोषकों को एक दूसरे के निश्चित अनुपात में ही उपभोग करते हैं तथा वह तत्व जो दूसरे तत्वों के अनुपात में सबसे कम मात्रा में उपलब्ध हो यह निश्चित करता है कि पादप दूसरे तत्वों का किस प्रकार उपभोग करें।

पौधों की वृद्धि व विकास के लिए 17 अनिवार्य पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। जिनमें से तीन अखनिज पोषक तत्व तथा 14 खनिज पोषक तत्वों के रूप में पाये जाते हैं।

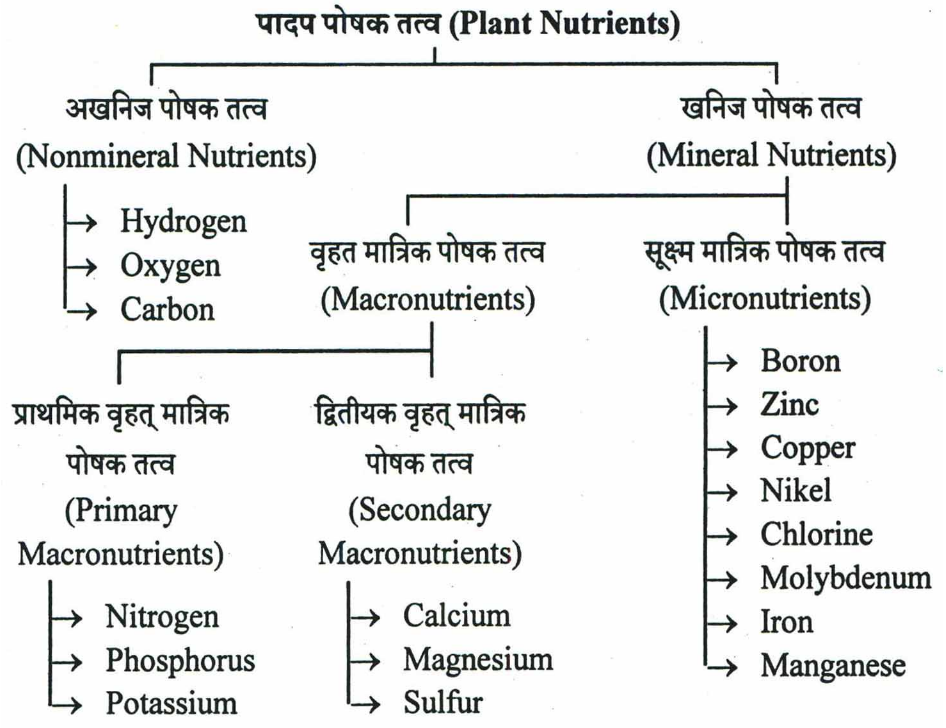

9B.3 अखनिज पोषक तत्व

ऑक्सीजन (O_2), हाइड्रोजन (H) तथा कार्बन (C) ये तीनों अखनिज पोषक तत्व पादपों को वायु तथा जल से प्राप्त होते है पौधों में सभी कार्बनिक पदार्थो में यह तत्व विद्यमान होते हैं। वायुमण्डल में ऑक्सीजन का प्रतिशत लगभग 21 है जो जीवित कोशिकाओं की श्वसन क्रिया में उपयोगी है। यह हाइड्रोजन के साथ मिलकर जल बनाती है। कार्बन को पादप CO_2, के रूप में वायु से प्राप्त करते हैं। वायुमण्डल में CO_2 की मात्रा 3% तक होती है। प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा पौधें विभिन्न कार्बनिक यौगिक CO_2 द्वारा बनाते हैं। ये तीनों अखनिज तत्व मिलकर कोशिका भित्ति एवं जीवद्रव्य का निर्माण करते हैं।

9B.4 खनिज पोषक तत्व (Mineral Nutrients)

पादपों की वृद्धि एवं संतुलित विकास के लिए 14 खनिज पोषक तत्व आवश्यक है जिन्हें उपभोग की प्राथमिकता एवं आवश्यक मात्रा के आधार पर निम्न प्रकार वर्गीकृत किया गया है।

9B.4.1 वृहत् मात्रा पोषक तत्व (Macronutrients)

यह तत्व पादपों के प्रति ग्राम शुष्क भार में 1.0-10 मिली ग्राम मात्रा में पाये जाते हैं ये दो प्रकार के होते हैं-

प्राथमिक वृहत मात्रा पोषक तत्व : मृदा में पाये जाने नाइट्रोजन (N), फॉस्फोरस (P) तथा पोटेशियम (K) तीन प्राथमिक वृहत् मात्रा पोषक तत्व हैं। जिनकी मृदा में अक्सर कमी पायी जाती है। क्योंकि पादप इन तत्वों का उपभोग सबसे पहले व अधिक मात्रा में करते हैं।

नाइट्रोजन (N) : इसका अवशोषण NO_2, NO_3 अथवा NH_3 के रूप में किया जाता है। वातावरण में नाइट्रोजन की मात्रा 78 प्रतिशत तक होती है परन्तु पौधें इसका सीधे उपयोग नहीं कर सकते। यह सभी जीवित कोशिकाओं का प्रमुख घटक है तथा कोशिका में ऊर्जा उत्पादन एवं उसके स्थानान्तरण में भाग लेने वाली उपापचयी अभिक्रियाओं में प्रयुक्त प्रोटीन्स एवं विकरों (Enzymes) के संश्लेषण में उपयोगी है। पौधें नाइट्रोजन का उपयोग अनेक कार्बनिक यौगिक, न्यूक्लिक अम्ल (DNA व RNA) तथा प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के लिए आवश्यक वर्णक क्लोरोफिल (Chlorofhyll) के बनाने में भी सहायक होते हैं। नाइट्रोजन की कमी के कारण पौधों की पत्तियों पीली पड़ जाती है तथा कोशिका विभाजन व प्रोटीन संश्लेषण की दर में कमी आ जाती है। अधिक मात्रा में नाइट्रोजन की उपस्थिति के कारण पौधों की कायिक (Vegetative) वृद्धि तो होती है परन्तु पुष्पन देरी से होता है। पौधों को नाइट्रोजन खाद के रूप में तथा लेग्यूमिनस पादपों को जड़ों में पाये जाने वाले सहजीवी जीवाणुओं द्वारा प्राप्त होती है।

फॉस्फोरस (P) : मृदा से यह आयनों (H_2 PO_4 या HPO_4^2) के रूप में अवशोषित किया जाता है। पौधों द्वारा फॉस्फोरस नाइट्रोजन के बाद सबसे ज्यादा उपयोग में लिया जाने वाला पोषक तत्व है। फॉस्फोरस की कमी के कारण पौधों की 'सामान्य वृद्धि नहीं होती है। यह न्यूक्लिक अम्लों फॉस्फोलिपिड्स कोएन्ताइम्स, एन.ए.डी.पी. (NADP) तथा सबसे महत्वपूर्ण ऊर्जा अणु ए.टी.पी. (ATP) का घटक है।

यह एमिनो अम्ल तथा प्रोटीन संश्लेषण में प्रयुक्त सह-एन्जाइमों में सक्रियण में सहायक है पादपों में फॉस्फोरस कई उपापचयी (Matabolic) क्रियाओं जो संतुलित / सामान्य वृद्धि के लिए आवश्यक है। जैसे प्रकाश संश्लेषण, ग्लाइकोलाइसिस, श्वसन (Respiration), वसीय अम्ल संश्लेषण (Fattyacid Synthesis) में भी भाग लेता है।

यह पादपों के वर्धन प्रदेश में पाये जाने वाले विभज्योतकी क्षेत्रों में अधिक मिलता है। यह बीज अंकुरण (Seed Germination) शीघ्र वृद्धि, पुष्पन आदि में सहायक होता है। पादपों को फॉस्फोरस, फॉस्फोरस व खाद के रूप में मिलता है।

पोटेशियम (K) : इसका अवशेषण K आयनों के रूप में किया जाता है। पोटेशियम प्राय: पौधों के वृद्धिशील भागों में पाया जाता है। पादप वृद्धि में इस तत्व की महत्वपूर्ण भूमिका है जैसे -

- यह प्रकाश संश्लेषण के लिए आवश्यक तत्व है।
- एमिनो अम्लों व प्रोटीन संश्लेषण में भाग लेने वाले एन्जाइमों के सक्रियण में सहायक है।
- कोशिका विभाजन, रोग व सूखा प्रतिरोधक क्षमता रंध्रों का नियमितखुलना व बन्द होना आदि प्रक्रियाओं में सहायक है।
- पोटेशियम पादप वृद्धि, बीज व फलों के विकास से सम्बन्धित उपापच्ची क्रियाओं को नियन्त्रित करता है, तथा बीजों व फलों को स्थूलता प्रदान करता है। पोटेशियम की कमी के कारण पौधों की पत्तियाँ हरिमाहीनता (Chlorosis) के कारण पीली पड़ जाती है व इसकी कमी से पौधें बौने (Stunted) रह जाते हैं।

अधिकतर मृदाओं में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटेशियम की कमी रहती है। इस कारण इन्हें क्रान्तिक तत्व (Critical Elements) कहते हैं।

द्वितीयक वृहत मात्रा पोषक तत्व (Secondary Macronutrients) :

कैल्शियम (Ca)-इसको Ca^{2+} के रूप में अवशोषित किया जाता है। पौधों में कैल्शियम कोशिका की भित्ति के मध्य पायी जाने वाली मध्य पट्लिका का महत्वपूर्ण घटक है। यहाँ यह पैक्टिन (Pectin) से संयुग्मित होकर कैल्शियम पैक्टेट बनाता है। यह नये वृद्धि स्थानों, बिन्दुओं व मूल शीर्ष के बनने में सहायक है तथा यह कोशिका भित्ति को प्रत्यास्थता प्रदान करता है। यह न्यूक्लिक अम्लों को प्रोटीन्स से जोड़ने, माइट्रोकॉन्ड्रिया के बनने के साथ-साथ गुणसूत्रों (Chromosomes) के संघटन, वसा के उपापचचन, वृद्धि काल में कार्बोहाइड्रेट्स ए एमीनों अम्ल के परिवहन में विशेष भूमिका निभाता है कैल्शियम की कमी के कारण नई पत्तियाँ विकृत हो जाती है तथा अत्यधिक कमी के कारण वर्धनशील शीर्ष मर जाते हैं।

मैग्नीशियम (Mg) : इसको Mg^{2+} आयनों के रूप में अवशोषित किया जाता हैं यह क्लोरोफिल का घटक होने के कारण महत्वपूर्ण तत्व है। इसी कारण से यह प्रकाश संश्लेषण के लिए आवश्यक है। यह न्यूक्लिक अम्ल-आर.एन.ए (RNA) व डी.एन.ए (DNA) संश्लेषण में एन्जाइम सक्रियक की तरह कार्य करता है। यह कार्बोहाइड्रेट उपापचय के लिए भी अनिवार्य तत्व है। मैग्नीशियम की कमी के कारण पौधों में हरिमाहीनता (Chlorosis) उत्पन्न हो जाती है।

सल्फर (S) : पौधें इसे SO_4^{2+} के रूप में प्राप्त करते हैं। सल्फर पौधों में प्रोटीन संश्लेषण के लिए आवश्यक अमीनो अम्लों के संश्लेषण में सहायक होता है। कोशिका में यह प्रोटीन व जीव

द्रव्य में पाया जाता है। यह विटामिन B_1 व कोएन्जाइम A में उपस्थित होता है तथा जड़ जनन में सहायक है। इसकी कमी के कारण पौधे बौने रह जाते हैं तथा विकास देरी से होता है। अत्यधिक कमी के कारण सम्पूर्ण पादप पीला (Yellow) हो जाता है।

9B.4.2 सूक्ष्म मात्रा पोषक तत्व (Micronutrients)

वे तत्व जो पादपों में प्रतिग्राम शुष्क भार में 1.0 मिली ग्राम से कम पाये जाते हैं सूक्ष्म मात्रा पोषक तत्व कहलाते हैं। पादप पोषण में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। ये तत्व निम्न हैं -

बोरोन (B) : यह BO_3^{3-} अथवा $B_4O_7^{2-}$ आयनों के रूप में अवशोषित होता है। यह एक एन्जाइम सक्रियक है बोरेन का महत्वपूर्ण कार्य प्ररोह (Shoot) एवं जड़ों के विभज्योतकी क्षेत्रों में शर्करा स्थानान्तरण पत्र हैं। इसकी कमी के कारण वर्घनशील शीर्ष मर जाते हैं, जड़ों का विकास व पुष्पन रूक जाता है तथा आन्तरिक ऊतक विघटित हो जाते हैं चुकन्दर का हर्ट-सेट (Heart-rot) इसका उदाहरण है। अंगूर में छोटे व बड़े फलों के गुच्छे बन जाते हैं, जिसे हेन व चिकन्स (Hen and Chickens) कहते हैं। इस तत्व की कमी के कारण लेग्यूमिनोसी कुल के पादपों की जड़ों में गुलिकाएं (Root Nodules) नहीं बनती है।

बोरोन कोशिका जनन व विकास, नाइट्रोजन उपापचय पुष्प निषेचन, सक्रिय लवण अवशोषण हार्मोन, वसा तथा फॉस्फोरस उपापचय में भी सक्रिय भूमिका निभाता है।

कॉपर (Cu) - इसका अवशोषण Cu^{2+} आयनों के रूप में होता है। कॉपर पादपों को बहुत कम मात्रा में चाहिए जो कि मृदा में आसानी से उपलब्ध हो जाता है। यह पादपों में ऑक्सीकरण अपचयन में भाग लेने वाले विकरों का भाग है, जिनमें कुछ निम्न हैं- साइटोक्राम ऑक्सिडेज (Cytochrome Oxidase) व प्लास्टोयायनिन (Plastocyanin) कॉपर की कमी के कारण पत्तियों में हरिमाहीनता के लक्षण प्रकट होते हैं। नींबू के बगीचों में नयी पत्तियाँ मर जाती हैं, इस कारण इस प्रकार के लक्षण को डाई बैक कहा जाता है।

क्लोरीन (Cl) : क्लोरीन मृदा से क्लोराइड (Cl^-) आयनों के रूप में अवशोषित की जाती है। इसका महत्वपूर्ण कार्य प्रकाश की क्रिया में जल को विघटित कर ऑक्सीजन उत्पन्न करना होता है। यह जड़ों व पत्तियों में कोशिका विभाजन में भी सहायक है।

मैंगनीज (Mn) : यह Mn^{2+} के रूप में अवशोषित होता है। पादपों से यह नाइट्रोजन स्वांगीकरण (Nitrogen Assimilation) में एन्जाइम सक्रियक के रूप में उपयोगी है तथा क्लोरोफिल के उत्पादन के लिए अनिवार्य तत्व है। यह कई श्वसन एन्जाइमों तथा नाइट्राइट के नाइट्रेट बनने के लिए आवश्यक है। क्लोरीन की तरह यह भी जल के प्रकाश संश्लेषी अपघटन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

इस तत्व की कमी के कारण पौधों की पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। मैंगनीज की कमी के कारण मटर में **मार्स स्पॉट** (Marsh Spot) तथा चुकन्दर में **स्पीकल्ड यलो** (Speakled Yellow) के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

मोलिबडेनम (Mo) : मृदा में यह मोलिब्डेट (MoO_2^{2-}) आयन के रूप में अवशोषित होता है। लेग्यूमिनस पादपों में यह तत्व जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिए आवश्यक है। यह नाइट्रेट

रिडक्टेज एन्जाइम से सम्बन्धित होने के कारण प्रोटीन संश्लेषण के लिए नाइट्रोजन का अपचयन करता है। अत: इस तत्व की कमी के कारण प्रोटीन संश्लेषण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है एवं हरिमाहीनता उत्पन्न हो जाती है।

निकल (Ni) : डाल्टन एवं उनके साथियों ने 1988 में निकल को भी अनिवार्य तत्व के रूप मे सम्मिलित किया। निकल पादपों में बहुतायत रूप से पाये जाने वाले एन्जाइम यूरिऐज (Urease) का प्रमुख घटक है। यूरिऐज एन्जाइम यूरिया के जल अपघटन की क्रिया में उत्प्रेरक के रूप में कार्य करता है। यह पादपों में नाइट्रोजन युक्त यौगिकों के परिवहन (mobilization) में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जी में निकल की कमी के कारण अजीवित (Nonviable) बीज बनते हैं। **यह अनिवार्य पोषक तत्वों में 17 वां पोषक तत्व है।**

जिंक (Zn) : इसका अवशोषण Zn^{2+} के रूप में होता है। जिंक पादपों में एन्जाइमों को सक्रिय करने के काम आता है। कार्बोहाइड्रेट के रूपान्तरण व इण्डोल एसिटिक एसिड (IAA) के संश्लेषण में सहायक है। यह शर्करा के संघटन को नियंत्रित करता है। जिंक की कमी के कारण सेब (Apple) के पौधों में लधुपर्ण (Little Leaf) रोग उत्पन्न हो जाता है। इसकी कमी के कारण पौधें बौने रह जाते हैं।

आयरन (Fe) : (Fe^{3+}के रूप में अवशोषण) यह क्लोरोफिल का संरचनात्मक भाग नहीं है। फिर भी यह क्लोरोफिल के संश्लेषक में सहायक होता है। यह पत्तियों की कोशिकाओं के क्लोरोप्लास्ट में स्थायी आयरन प्रोटीन **फाइटोफैरिटिन** (Phytoferritin) के रूप में पाया जाता हैं आयरन जीवद्रव्य एवं केन्द्रक के क्रोमेटिन में विद्यमान रहता है। पादपों में यह **साइटोक्रोम** (Fytochrome) वर्णकों व क्रेव चक्र के एकोनिटेज एन्जाइम के सक्रियण के लिए आवश्यक है। इसकी कमी के कारण पौधों में अन्तर शिरिय (Interveinal) हरिमाहीनता देखी जा सकती है।

9B.5 खनिज लवणों का अवशोषण (Absorption of Mineral Salt)

विसरण के सिद्धान्त के अनुसार कोशिका में एक सीमा से अधिक खनिज तत्वों की सान्द्रता का होना असम्भव है। विसरण प्रवणता के कारण कोशिका में खनिज पदार्थों के अणुओं का प्रवेश उस सीमा तक ही होना सम्भव है जब कि बाह्य विलयन व अन्तःविलयन की सान्द्रता समान न हो जाये। पूर्व में ऐसा समझा जाता था कि खनिज तत्व भी जल के साथ ही अवशोषित होते हैं। परन्तु अब यह सिद्ध हो चुका है कि ये दोनों क्रियायें अलग-अलग होती है। खनिज लवणों का अवशोषण मृदा से आयनों के रूप में होता है। इनका अवशोषण मुख्य रूप से जड़ के विभज्योतक क्षेत्र से होता है। इन खनिज पदार्थों का पादपों में प्रवेश व संचय एक साधारण विसरण क्रिया नहीं, बल्कि एक ऐसी क्रिया है, जिसमें ऊर्जा का उपयोग होता है।

लवणों के अवशोषण की क्रियाविधि : पादप कोशिका मे खनिज तत्वों का प्रवेश आयनों के रूप में होता है। धनायन तथा ऋणायन को विभिन्न प्रयोगों में विभिन्न गतियों द्वारा अवशोषित होते देखा गया है। कभी-कभी पादप शरीर मे खनिज तत्वों की सान्द्रता बाह्य विलयन की सान्द्रता से कई गुना अधिक हो जाती है। (जैसे - नाइटेला में K^+ आयन तथा PO^{4-} आयनों की सान्द्रता बाहर से हजारों गुना अधिक होती है) इस प्रक्रिया को लवण संचयन (Salt

Accumulation) कहते हैं। इस प्रकार एकत्रित किये गये विलेय, कोशिका द्रव्य (Cytoplasm) व कोशिका रस (Cell Sap) में विद्‌यमान रहते हैं।

तत्वों के अवशोषण की क्रियाविधि के दो प्रमुख सिद्धान्त हैं -

- निष्क्रिय अवशोषण (Passive Absorption)
- सक्रिय अवशोषण (Active Absorption)

9B.5.1 निष्क्रिय अवशोषण (Passive Absorption)

इस प्रकार के अवशोषण में आयन उनके विद्‌युत रासायनिक विभव प्रवणता के आधार पर कोशिका द्‌वारा बिना ऊर्जा के खर्च किए कोशिका में प्रवेश करते हैं। निष्क्रिय अवशोषण को भौतिक अवशोषण भी कहते हैं। ब्रिग्स और रॉबर्टसन (1975) ने मृदा कोलायड्स वजल विलयन से जड़ों द्‌वारा आयनों के निष्क्रिय अवशोषण को समझाने हेतु निम्न सिद्धान्त प्रस्तुत किये-

(i) संहति प्रवाह सिद्धान्त (Mass Flow Hypothesis) : इस सिद्धान्त के अनुसार वाष्पोत्सर्जन कर्षण के (Transpiration) प्रभाव के कारण जल के मात्रात्मक प्रवाह के साथ-साथ जड़ों द्‌वारा आयनों को भी ग्रहण कर लिया जाता है। इस प्रकार जडीय ऊतकों के द्‌वारा आयनों का पुंजप्रवाह ऊर्जा की अनुपस्थिति में वाष्पोत्सर्जन कर्षण के द्‌वारा होता हैं।

(ii) आयन विनिमय सिद्धान्त (Ion Exchange Theory) : आयन जड़ की सतह कोशिका भित्ति से अधिशोषित होते हैं तथा उनका विनिमय आपस में अपनी तरह के आयन से ही होता है, जैसे H^+ आयन का K^+ आयन से।

(iii) डोनन साम्यावस्था (Donnan Equilibrium) पौधों में कुछ आयन ऐसे होते हैं जो कोशिका झिल्ली से बाहर नही जा सकते हैं। इन्हें स्थिर आयन कहते हैं। कोशिका झिल्ली के अन्दर ही ऋणायन एवं धनायन दोनों ही प्रवेश कर सकते हैं। सामान्यत: एक तरह के जितने आयन कोशिका में आते हैं दूसरी तरह के उतने ही आयन बाहर निकलते हैं। इस तरह अन्दर एवं बाहर आयनों की स्थिति बराबर होती है। लेकिन जो स्थिर ऋणायन कोशिका झिल्ली के पास होते है और बाहर नहीं जा सकते उन्हें संतुलित करने के लिए बाहर से धनायन अन्दर आ जाते हैं। इस प्रकार भीतर आने वाले धनायन हों तो भीतर आने वाले ऋणायनों की संख्या अधिक होगी। इस सिद्धान्त को डोनन साम्यावस्था (Donnen Equilibrium) कहते हैं।

9B.5.2 सक्रिय अवशोषण (Active Absorption)

आधुनिक विचारधारा के अनुसार तत्वों अवशोषण की क्रिया एक सक्रिय क्रिया है जो कोशिकाओं की उपापचयी क्रियाओं पर निर्भर करती है। इस क्रिया में ऊर्जा की आवश्यकता होती है। सक्रिय अवशोषण के पक्ष में निम्न सिद्धान्त के पक्ष मे निम्न सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं।

(i) वाहक संकल्पना सिद्धान्त (Carrier Concept Theory) : होनर्ट (1937) ने तत्वों अवशोषण के लिए वाहक संकल्पना सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इसके अनुसार कोशिका झिल्ली के घटकों में आयनों की उत्क्रमणीयता बन्धता, तत्वों के आयनों के सक्रिय स्थानान्तरण के लिए उत्तरदायी है। ऐसा माना जाता है कि कोशिका झिल्ली मुक्त आयनों के लिए

अपारगम्य होती है। परन्तु झिल्ली में उपस्थित कुछ प्रोटीन वाहक का कार्य करते है और एक वाहक आयन पुंज (Carrier Ionocomlex) बनाते हैं। यह वाहक आयन पुंज झिल्ली के दूसरी तरफ आयन को ले जाकर छोड़ देता है।

वाहक संकल्पना सिद्धान्त को चित्र 9B.1 द्वारा समझाया जा सकता है। चित्र से स्पष्ट है, कि आयन व वाहक दोनों ही माध्यम में गति नहीं कर सकते हैं परन्तु वाहक आयन पुंज बाह्य माध्यम से गति करके भीतर की ओर जा सकता है, जहाँ यह पुंज विघटित होकर आयनों को मुक्त कर देता है तथा वाहक (X) पूर्वगामी वाहक (X) में परिवर्तित हो जाता है। पूर्वगामी वाहक (X) का स्थानान्तरण वापस झिल्ली में हो जाता है और यह वापस वाहक (X) में बदलकर बाह्य वातावरण के दूसरे आयनों से संयोजित हो जाता है। इस प्रकार सीमित वाहक अणुओं की संख्या तत्वों की अनिश्चित मात्रा का स्थानान्तरण करने में सक्षम होती है।

(ii) साइटोक्रोम पम्प परिकल्पना : लुंडेगार्ध (Lundegrardh, 194०) के अनुसार कोशिका का रिडाक्स तन्त्र वाहक का कार्य करता है। साइटोक्रोम में उपस्थित हीम लौड रिडाक्स तंत्र बनाता है। रेडॉक्स तन्त्र ऋणायनों से संयोजन करके एक पुंज बना लेता है, जो झिल्ली की बाहरी सतह से भीतरी सतह की ओर गति कर जाता है जहाँ पर इसका अपचयन होने के कारण भीतर की ओर ऋणायन मुक्त हो जाता है।

सक्रिय अवशोषण के लिए अन्य सिद्धान्त प्रोटीन लेसिथिन वाहक परिकल्पना, ATP सिद्धान्त आदि मुख्य है।

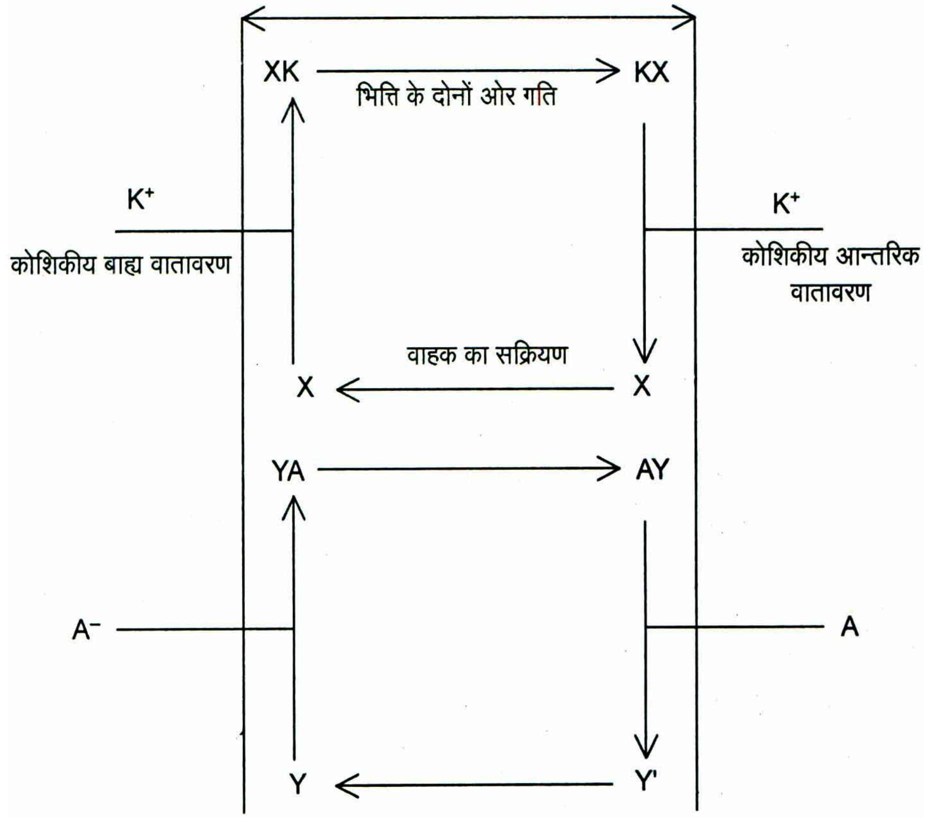

K^+, A^-= आयन, X = वाहक, XK, YK = वाहक आयन पुंज X = पूर्वगामी वाहक

चित्र 9B.1 : वाहक संकल्पना का आरेखी निरूपण

9B.6 जड़ में आयनों का आवागमन (Ion Traffic into Root)

जड़ द्वारा अवशोषित खनिज लवण दारू (Xylem) तक सिम्प्लास्ट एवं एपोप्लास्ट रूपी दो मार्गों द्वारा सम्पन्न होता है। बाह्य त्वचा की कोशिका भित्ति में प्रवेश करने वाले आयन वल्कुट की कोशिका भित्ति के आर-पार अन्तश्त्वचा के कोशिका द्रव्य, परिरम्भ की कोशिका भित्तियों से होते हुए अन्तत : दारू वाहिकाओं में एकत्र हो जाते हैं। सिम्प्लास्ट मार्ग में बाह्य त्वचा के कोशिका द्रव्य में प्रवेश करने वाले आयन बाह्य त्वचा के कोशिका द्रव्य के आर-पार जीवद्रव्य तन्तुओं के द्वारा वल्कुट, अन्तश्त्वचा, परिरम्भ और दारू वाहिकाओं में पहुँचते हैं।

9B.7 विलयों का स्थानान्तरण (Translocation of Solute)

स्टाउड एवं होगलैंड (1939) ने सिद्ध किया कि खनिज लवण जाइलम के माध्यम से स्थानांतरित किये जाते हैं। जाइलम के माध्यम से संवाहित किया गया कोई भी विलय जल की आरोही, धारा जो पादप में वाष्पोत्सर्जन कर्षण (Transpiration pull) द्वारा ऊपर से खींची जाती है, के साथ ले जाया जाता है। जाइलम वाहिका के द्वारा अकार्बनिक विलयों के स्थानान्तरण की दर जल के वाष्पोत्सर्जन की दर से समान होती है। जाइसम द्रव्य के विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि इसमें अकार्बनिक लवण विद्यमान होते हैं। साथ ही पादपों में रेडियों-सक्रिय समस्थानिक (Radioactive) पहुँचा कर यह अन्तिम रूप दर्शाया जा चुका है कि अकार्बनिक पदार्थ जाइलम के माध्यम से ऊपर की और गति करता है।

बोध प्रश्न

1. पौधों के विकास तथा वृद्धि के लिए कितने अनिवार्य तत्व है?

....

....

2. नाइट्रोजन स्थिरीकरण एवं उपापचय के लिए आवश्यक तत्व है?

....

....

3. पौधों में कार्बोहाइड्रेट के स्थानान्तरण के लिए कौनसा तत्व महत्वपूर्ण है

....

....

4. मोलिबडेनम का मुख्य कार्य है

....

....

5. पर्णहरित में पाया जाता है।

....

....

6. लघु पर्ण बीमारी किस तत्व न्यूनता से होती है।

....

....

9B.8 सारांश

पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए कुछ पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इन्हें दो भागें में विभक्त किया हैं अखनिज पोषक तत्व एवं खनिज पोषक तत्व। अखनिज तत्व वायु तथा जल से प्राप्त होते हैं व खनिज पोषक तत्व मृदा से प्राप्त होते हैं। इन सभी का पादपों में अलग-अलग अनुपात होता है। खनिज लवणों का अवशोषण मृदा से आयन के रूप में होता है। यह कार्य जड़ों के विभज्योतक क्षेत्र से होता है। इस कार्य में ऊर्जा का उपयोग भी होता है। तत्वों के अवशोषण की क्रिया विधि दो सिद्धान्तों द्वारा समझाई गई है। जड़ों द्वारा अवशोशित खनिज लवण दारू तक दो मार्गो द्वारा पहुँचते हैं। खनिज लवण जाइलम की सहायता से (Transpiration Pull) द्वारा ऊपर खींचा जाता है। इस प्रकार पादप के हर भाग में खनिज लवण पहुँचते हैं और पादप पोषण प्राप्त करता है।

9B.9 शब्दावली

क्रान्तिक तत्व : नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटेशियम क्रान्तिक तत्व कहलाते हैं।

हाइड्रोपोनिक्स : पौधों में मृदा विहिन द्रव संवर्धन को हाइड्रोपोनिक्स कहते हैं।

स्थिर आयन : ऐसे आयन जो कोशिका झिल्ली से बाहर नहीं जा सकते है वे स्थिर आयन कहलाते हैं।

9B.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. पादप कार्यिकी' एवं जैव रसायन, डॉ. एन. बी. सक्सेना, डॉ. एम. एल. वर्मा, डॉ. बी. एल. चौधरी अलका पब्लिकेशन, अजमेर।
2. वनस्पति शास्त्र, डॉ. ओ. पी. दायमा, सी. बी. एच. पब्लिकेशन, जयपुर
3. वनस्पति विज्ञान, डी. प्रमोद कुमार शर्मा, डॉ. मन्जु शर्मा, डॉ. प्रेम प्रकाश पालीवाल माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर।

9B.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 17	2. Mo
3. B	4. नाइट्रोजन स्थिरीकरण
5. Mg	6. Zn

9B.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पौधों में वृद्धि के लिए कौन-कौन से तत्वों की आवश्यकता होती हैं?
2. पौधों में N, P,K के कार्य तथा कमी के लक्षण बताइए?
3. खनिज लवणों के अवशोषण पर संक्षिप्त लेख लिखिए

4. विलेयों के स्थानान्तरण पर प्रकाश डालिये।
5. पौधों में खनिज पोषण पर संक्षिप्त लेख लिखिए।

इकाई 9C: एन्जाइम(Enzymes)

इकाई की रूपरेखा

9C.0 उद्देश्य
9C.1 प्रस्तावना
9C.2 एन्जाइम्स का इतिहास
9C.3 एन्जाइम्स के गुण
9C.4 एन्जाइम्स की संरचना
9C.5 पौधों में एन्जाइम्स का वितरण
9C.6 एन्जाइम्स के नामकरण
9C.7 एन्जाइम्स का वर्गीकरण
9C.8 एन्जाइम्स क्रिया की क्रिया विधि
9C.8.1 ताला और कुंजी सिद्धान्त
9C.8.2 प्रेरित आसंजन सिद्धान्त
9C.9 एन्जाइम्स -क्रियाओं को प्रभावित करने वाले कारक
9C.10 सारांश
9C.11 शब्दावली
9C.12 संदर्भ ग्रन्थ
9C.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
9C.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

9C.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य यह है कि इसके अध्ययन के उपरान्त आपको एन्जाइम के इतिहास, गुण, संरचना तथा पौधों में एन्जाइम्स का वितरण विस्तार से समझाना है। इनके नामकरण, वर्गीकरण एवं क्रिया विधि से अवगत कराना है। समय-समय पर वैज्ञानिकों द्वारा दिए सिद्धांत में सब से उपयुक्त सिद्धांत की जानकारी देना तथा जैविक क्रियाओं में एन्जाइम्स का योगदान एवं एन्जाइम्स को प्रभावित करनें वाले कारकों की जानकारी उपलब्ध कराना है।

9C.1 प्रस्तावना

जैविक तंत्र में अनेक प्रकार की रासायनिक परिवर्तनों के उदाहरण मिलते हैं, जैसे जीवाणु दूध से दही बनाने का कार्य करते हैं तथा हरे पौधे सूर्य प्रकाश ऊर्जा को ग्रहण कर प्रकाश संश्लेषण की क्रिया करते हैं इस प्रकार की क्रियायें सजीव कोशिकाओं के बाहर भी हो सकती हैं परन्तु उनकी गति अपेक्षाकृत मन्द होती हैं अत: इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सजीव कोशिकाओं में कुछ विशिष्ट प्रकार के कार्बनिक पदार्थों का निर्माण होता हैं, जो क्रिया को उत्प्रेरित करते हैं इस प्रकार के पदार्थों को ही एन्जाइम्स (Enzymes) कहते हैं। इन्हें (Bio-Catalysts) जैव उत्प्रेरक

भी कहा जाता हैं। एन्जाइम्स रासायनिक दृष्टि से प्रोटीन होते हैं जो जीव रासायनिक क्रियाओं की दक्षता तथा तीव्रता को विशाल रूप से बढ़ा देते हैं। एन्जाइम्स पृथक-पृथक जीव रासायनिक क्रियाओं के लिए विशिष्ट प्रकार के होते हैं, अर्थात् अमुक एन्जाइम्स अमुक क्रिया को उत्प्रेरित कर सकते हैं। अकार्बनिक उत्प्रेरकों की भांति ही एन्जाइम्स भी जीव-रासायनिक क्रियाओं के अंतिम उत्पादों को किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं करते हैं यद्यपि एन्जाइम्स की अनुपस्थिति में भी जीव रासायनिक क्रियायें होती रह सकती है, लेकिन इन क्रियाओं की दर इतनी मंद होती है कि ये जीव के वर्तमान अस्तित्व को बनाये रखने में असमर्थ होती है।

9C.2 एन्जाइम्स का इतिहास (History of Enzymes)

सर्वप्रथम एन्जाइम शब्द का प्रयोग विली कुहने (Willy kuhene, 1878) ने किया। बुकनर (Buchner,1897) ने यीस्ट कोशिकाओं को किण्वन क्षमता के अध्ययन में यह पाया कि यीस्ट कोशिकाओं से प्राप्त रस उसी प्रकार शर्करा के घोल में किण्वन (Fermentation) करता है जैसे यीस्ट की सजीव कोशिकाएँ करती हैं परन्तु जब इस रस को उबाला गया तब इसमें किण्वन की शक्ति समाप्त हो गई इस अध्ययन के आधार पर बुकनर ने निष्कर्ष निकाला कि इस में एन्जाइम होते हैं जो गर्म करने पर नष्ट हो जाते हैं उन्होंने इस एन्नाइम को जाइमेज (Zymase) नाम दिया।

जे.पी. समनर (J।P. Sumner, 1926) ने यूरियेज एन्जाइम (Enzymes) को सर्वप्रथम क्रिस्टलीय रूप में प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की नोरथ्रोप व कुन्ट्ज (Nothrop and Kuntg, 1936) पेप्सिन, ट्रिप्सिन तथा काइमोट्रिप्सिनि (Pepsin, Trypsin and Chymotrypsin) नामक एन्जाइमों को क्रिस्टलीय रूप में प्राप्त किया। इस कार्य हेतु 1940 में उन्हें नोबेल पुरस्कार प्राप्त हु आ।

मेयरबेक (Mayerback, 1952) ने एन्जाइम्स को परिभाषित किया "एन्जाइम सरल अथवा जटिल प्रोटीन होते हैं जो विशिष्ट उत्प्रेरकों की भांति क्रियाशील होते हैं।

9C.3 एन्जाइम्स के गुण (Properties of Enzymes)

समस्त प्रकार के एन्जाइम्स में निम्न गुण होते हैं :

(i) जैविक उद्गम (Biological Origin) : सजीवों में पाये जाने वाले सभी प्रकार के एन्जाइम्स का संश्लेषण कोशिका में होता है तथा एन्जाइम्स के द्वारा नियंत्रित अभिक्रियाएँ कोशिका में या कोशिका से बाहर हो सकती है।

(ii) कोलाइडी प्रकृति (Colloidal Nature) : समस्त एन्जाइम्स भौतिक रूप से कोलाइडी होते हैं। कोलाइडी होने के कारण रासायनिक क्रियाओं के लिए इनमें विशाल पृष्ठी क्षेत्रफल होता है। अधिक सक्रिय स्थल का होना एन्जाइम्स की मात्रात्मक दक्षता (Quantitative Efficiency) को दर्शाता है।

(iii) अणुभार (Molecular Weight) : एन्जाइम का अणुभार अधिक होता है, जैसे केटालेज तथा यूरिएज का अणुभार 2, 50,000 तथा 4, 83,000 तक होता है।

(iv) एन्जाइम विशिष्टता (Enzyme Specificity) : प्रत्येक एन्जाइम अपने आधार (Substrate) के लिए विशिष्ट होते हैं। जैसे : माल्टेस (Maltase) एन्जाइम केवल माल्टेस का ग्लूकोस में उत्प्रेरण करता है।

(v) उत्प्रेरी गुण (Catalytic Properties) : उत्प्रेरक वे रासायनिक पदार्थ होते है जो स्वयं परिवर्तित या नष्ट हुए बिना रासायनिक अभिक्रियाओं को त्वरित करते हैं। अत: एन्जाइम में उत्प्रेरक के सभी गुण होते है। कारण एन्जाइम को जैव रासायनिक उत्प्रेरक (Biochemical Cafalyst) कहते हैं।

(vi) उत्क्रमणीय गुण (Reversible Properties) : समस्त एन्जाइम उत्प्रेरित क्रियायें उत्क्रमणीय (Reversible) होती है। अर्थात्-रासायनिक क्रिया को दोनों दिशाओं में त्वरित करते है। जैसे-

$$\text{Fatty acids + Glyceral} \xrightleftharpoons{Lipase} \text{fat}$$

(vii) संवेदनशीलता (Sensitivity) : एन्जाइम उष्मा के प्रति संवेदनशील होते हैं अर्थात् उच्च उष्मा (55° C से 65° C) पर विकृतिकृत (Denaturation) हो जाते हैं। एन्जाइम की सर्वाधिक सक्रियता 25° C से 30° C के मध्य होती है।

(viii) pH : प्रत्येक एन्जाइम की सक्रियता हेतु एक निश्चित pH होता है। अधिकांश एन्जाइम 6.0 से 7.5 pH के मध्य सक्रिय होते हैं।

(ix) निरोधन (Inhibition) : विभिन्न कारकों अथवा कारणों से एन्जाइमों की सक्रियता में बाधा उपस्थित हो जाने को निरोधन कहते हैं। निरोध करने वाले कारकों को निरोधक (Inhibition) कहते हैं।

9C.4 एन्जाइम की संरचना (Structure of Enzymes)

अधिकांश एन्जाइमों के मुख्य घटक प्रोटीन तथा अप्रोटीन (Non-protein) पदार्थ होते हैं एन्जाइम के मुख्य प्रोटीन भाग को एपोएन्जाइम (Apoenzyme) कहते है। इसके साथ अप्रोटीन भाग पूरक के रूप में लगा रहता है, जो कि किण्वकयि क्रियाओं के लिए आवश्यक होता है। अप्रोटीन भाग को तीन प्रकारों में बांटा जा सकता है -

(i) प्रोस्थेटिक समूह (Prosthetic Group) : अप्रोटीन भाग जो किण्वक से सघन रूप में अनुबन्धित रहता है उसे प्रोस्थेटिक समूह कहते हैं सामान्य प्रोस्थेटिक समूह में कार्बनिक यौगिक जैसे साइट्रोकोम, फ्तेवोप्रोटीन इत्यादि होते हैं।

(ii) सह एन्जाइम (Co-enzyme) : जब अप्रोटीन भाग एपोएन्ताइम से ढीले अथवा आसानी से पृथक होने योग्य रूप से अनुबंधित होता है। तो इसे कोएन्जाइम या सहकारक (Cofactor) कहते हैं। उदाहरणार्थ -Cl^-, Mg^{++}आयन

(iii) सक्रिय कारक (Activator) : अधिकांशत धातु के होते हैं जो लवणों के आयन के रूप में कार्य करते हैं वैसे - Zn^{++}, Co^{++}etc. एन्जाइम की संरचना

होलोएन्ताइम = एपोएन्जाइम + प्रोस्थैटिक ग्रुप

Holoenzyme= Apoenzyme +Prosthitic Group

Prosthetic Group

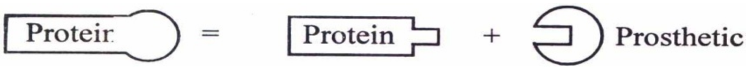

एन्जाइम की संरचना

9C.5 पौधों में एन्जाइम्स का वितरण
(Distribution of Enzymes in the plants)

प्राय: कोशिका के अन्दर एन्जाइम्स जीन के नियंत्रण से उत्पन्न होते हैं किन्तु एन्जाइम्स की क्रियाशीलता कोशिका के अन्दर या बाहर कहीं भी हो सकती है। कोशिका के अन्दर कार्यशील एन्जाइम्स को अन्त : एन्जाइम (Endoenzymes) तथा कोशिका से बाहर कार्य करने वाले एन्जाइम्स को बाह्य एन्जाइम (Exo-enzymes) कहते हैं। कवक तथा जीवाणुओं में बाह्य एन्जाइम व्यापक रूप से मिलते हैं। कीटभक्षी पौधों द्वारा भी बाह्य एन्जाइम स्रावित किये जाते हैं। कोशिकाओं में सबसे अधिक अंत एन्जाइम क्लोरोप्लास्ट तथा माइटोकॉन्ड्रिया में पाये जाते हैं।

अधिकतर एन्जाइम्स अंत: एन्जाइम प्रकार के होते हैं तथा इन्हें जल अपघटित एन्जाइम्स (Hydrolysing Enzyme) भी कहते हैं

9C.6 एन्जाइम्स के नामकरण (Nomenclature of Enzymes)

एन्जाइम्स का नामकरण प्राय : इनके द्वारा अतिक्रमित आधारी पदार्थ के नाम के आधार पर अथवा इनके द्वारा उत्प्रेरित क्रिया के प्रकार के आधार पर किया जाता है। एन्जाइमों के नामकरण की दो पद्धतियां प्रचलित हैं -

(i) **किण्वभोज के आधार पर** (On the basis of Substrate) : जो एन्जाइम जिस क्रियाधार (Substrate) पर क्रिया करते हैं उनमें नामकरण हेतु उस क्रियाधार के अन्त में Suffix ऐज (ase) जोड़ देते हैं, जैसे यूरिया पर क्रिया करने वाले एन्जाइम को यूरिएज (Urease) एन्जाइम, स्टॉच पर

(ii) **क्रिया के आधार पर** (on the basis of Substrate) यह पद्धति अधिक लोकप्रिय तथा व्यवहार में है। इस पद्धति के अनुसार एन्जाइमों का नाम उनके द्वारा उत्पेरित क्रिया के प्रकार के आधार पर रखा जाता है। उदाहरण के लिए हाइड्रोलेज (Hydrolases) आक्सीडेज (Oxydase) कार्बोक्सीलेज (Carboxylase) आदि।

(iii) पादपों तथा सूक्ष्मजीवों के कुछ प्रोटीनेसियस (Protinacious) एन्जाइम के नाम उनके उद्भव (Origin) के आधार पर रखे गये हैं। उदाहरण स्वरूप पपीते (Papaya) से प्राप्त होने वालों को पेपेन (Papain) नाम से पुकारा जाता है।

9C.7 एन्जाइम का वर्गीकरण (Classification of Enzymes)

जीवरसायन शास्त्र के अंतर्राष्ट्रीय संघ (International Union of Biochemistry=IUB) के अनुसार एन्जाइम्स का वर्गीकरण उनकी अभिक्रिया विशिष्टता पर आधारित है इस आधार पर एन्जाइम्स को छः वर्गो में विभाजित किया गया है :

1. **आक्सीडोरिडक्टेजेज** (Oxidoreductase) : वे एन्जाइम जो जैविक ऑक्सीकरण व अपचयन (Biological Oxidation and Reduction) अर्थात् श्वसन तथा किण्वन से सम्बन्धित है। इन्हें निम्न उपवर्गों में बांटा गया हैं-
   a. **ऑक्सीडेजेज** (Oxidases) : क्रियाधार से हाइड्रोजन हटाकर उसे ऑक्सीकृत करते हैं और ऑक्सीजन को अवकृत कर जल का निर्माण करते हैं, जैसे साइटोक्रोम आक्सीडेज (Cytochrorme Oxydase)
   b. **परऑक्सीडेजेज** (Peroxidases) : यह H_2O_2 को ऑक्सीकरक (Oxidant) के रूप में प्रयोग करते हैं।
   c. **डीहाइड्रोजिनेज** (Dehydrogenase) : एक प्रकार के अणुओं में से दूसरे प्रकार के अणुओं में हाइड्रोजन स्थानान्तरित कर ऑक्सीकरण करने का कार्य करते हैं।
2. **हाइड्रोलेजेज** (Hydrolase) : यह जल अपघटन (Hydrolysis) की अभिक्रियाओं को उत्प्रेरित करते हैं इनकी निम्न श्रेणियां हैं -
   a. **प्रोटिएजेज** (Proteases) ये एन्जाइम प्रोटीन तथा पेप्टाइड्स के पेप्टाइड बंधों पर क्रिया करते है। उदाहरणार्थ - ऐमीनोपेप्टाइडेज
   b. **ऐस्ट्रेजेज** (Esterases) : ये एन्जाइम एस्टर बंधों के जल अपघटन को उत्प्रेरित करते हैं।
   c. **कार्बोहाइड्रेज** (Carbohydrates) : कार्बोहाडड्रेज के ग्लाइकोसाइट्स बंधों (Glycosides-Lin ages) का जल अपघटन करते हैं।
3. **ट्रान्सफिरेजेज** (Transferases) : ये एन्जाइम एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ तक किसी समूह (Group) के स्थानान्तरण को उत्प्रेरित करते है। उदाहरणार्थ - काइनेजेज (Kinases)
4. **लाइजेज** (Lyases) : यह एन्जाइम क्रियाधारों (Substrates) से जल अपघटन कर कुछ समूहों का अपनयन (Removal) क्रिया को उत्प्रेरित करते हैं, फलस्वरूप द्विबंध बन जाते हैं। उदाहरणार्थ. - हाइड्रोजेज
5. **आइसोमेरेजेज** (Isomerases) : यह एन्जाइम अन्तराआण्विक पुनर्विन्यास (Intermolecular rearragments को उत्प्रेरित करता हैं, जैसे -

$$\text{Glucose} \xrightarrow{\textit{Isomerases}} \text{Fructose}$$

6. **लाइगेज** (Ligases) : इस प्रकार के एन्जाइम संघनन (Condensation) द्वारा दो समूहों के संश्लेषण को उत्प्रेरित करते हैं। इस क्रिया में ATP की आवश्यकता होती हैं। उदाहरणार्थ- DNA Ligase

9C.8 एन्जाइम क्रिया की क्रियाविधि (Mechanism of Enzymes)

माइकेलिस व मेन्टेन (Michaelis and Menten, 1923) के अनुसार एन्जाइम क्रिया के दौरान एक मध्यवर्ती, एन्जाइम -क्रियाधार संकुल (Enzyme-Substrate Complex) बनता है।

$$\text{Enzyme + Substrate} \rightleftharpoons \text{Enzyme - Substrate Complex}$$

$$\text{Enzyme - Substrate Complex} \longrightarrow \text{Enzyme + Product}$$

एन्जाइम क्रियाविधि को समझने हेतु दो सिद्धांत है :

1. ताला और कुंजी सिद्धांत
2. प्रेरित आसजन सिद्धांत

9C.8.1 ताला और कुंजी सिद्धांत (Lock and Key Theroy)

यह सिद्धांत फिशर (Fischer,1898) ने प्रतिपादित किया। इस सिद्धांत में एन्जाइम तथा क्रियाधारी के मध्य होने वाले सम्बन्ध को ताले व कुन्जी के आधार पर समझाया। जिस प्रकार कोई ताला किसी विशेष कुन्ती से खुलता है अर्थात ताले के खाँचे उस कुन्जी में सहीं बैठते हैं, ठीक उसी प्रकार प्रत्येक क्रियाधारी हेतु विशिष्ट प्रकार के एन्जाइम होते हैं। इसमें एन्जाइम की तुलना ताले से तथा क्रियाधारी की कुन्जी से की गयी है। एनजाइम तथा सबस्ट्रेट के सम्पर्क स्थल को सक्रिय स्थल (Active Site) कहते है।

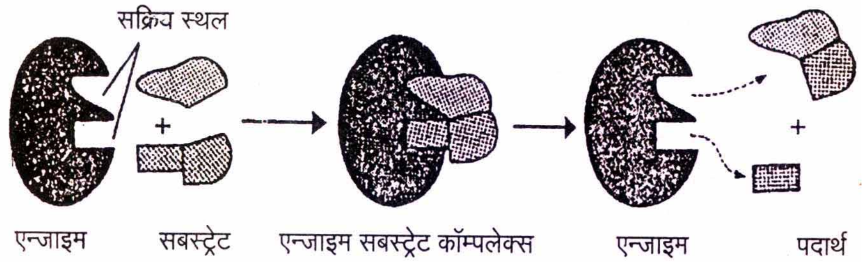

ताला और कुंजी सिद्धान्त

9C.8.2 प्रेरित आंसजन सिद्धांत (Induced fit Theory)

यह सिद्धांत कोशलैण्ड (Koshland, 196०) ने प्रतिपादित किया। इसके अनुसार एन्जाइम के सक्रिय स्थल (Active Side) की रचना आरम्भ में क्रियाधार की रचना की अनुपूरक (Complementary) नहीं होती, परन्तु जैसे ही क्रियाधार एन्जाइम के सम्पर्क में आते हैं तो यह स्थल ठीक क्रियाधार के अनुपूरक होने के प्रेरित हो जाते हैं। अत: इस सिद्धांत अनुसार एन्जाइम के सक्रिय स्थान की रचना दृढ़ न होकर लचीली होती है। प्रारम्भ में एन्जाइम के सक्रिय स्थल तथा क्रियाधारी की रचना विभिन्न प्रकार की होती है, परन्तु सम्पर्क में आते ही प्रेरित होने से एक दूसरे की अनुपूरक होकर फिट हो जाते हैं।

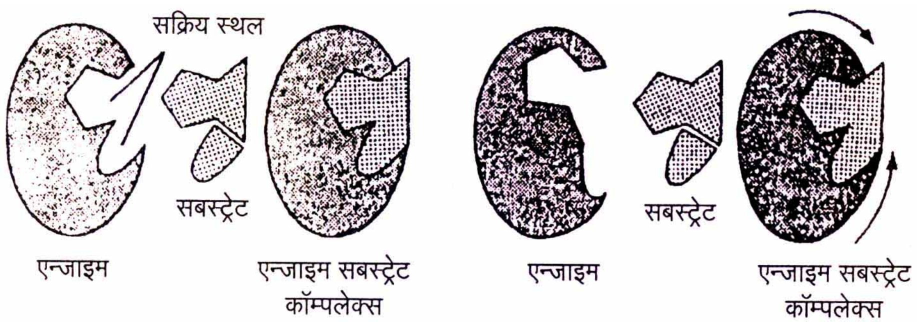

बोध प्रश्न -1

1. एन्जाइम की सर्वप्रथम खोज किसने की गयी थी?1

   ....

   ....

2. सभी एन्जाइम बने होते है?

   ....

   ....

3. कोशिका में पाचक एन्जाइम अधिकतर कहाँ है?

   ....

   ....

4. प्रोस्थेटिक समूह बना होता है?

   ....

   ....

5. एन्जाइम क्या है?

   ....

   ....

9C.9 एन्जाइम -क्रियाओं को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Enzyme-Activities)

एन्जाइम-क्रियाओं को निम्म कारक प्रभावित करते हैं-

1. **तापक्रम** (Temperature) : किसी भी रासायनिक क्रिया की भांति एन्जाइम क्रिया भी तापक्रम से प्रभावित होती है। एन्जाइम की प्रोटीन प्रकृति इनको तापक्रम के प्रति विश्व संवेदनशील बना देती है। 0° C पर एन्जाइम क्रिया लगभग शून्य होती है। जैसे-जैसे तापक्रम में वृद्धि होती है उसी अनुसार एन्जाइम क्रिया की दर में भी वृद्धि होती है। क्रिया दर प्राय: 10^0 C की वृद्धि पर 2.5 गुना बढ़ जाती है। यह औसतन वृद्धि 25° C तक होती है।

2. pH : प्रत्येक एन्जाइम pH की निश्चित सीमा में प्रभावित होते हैं यह pH की सीमा प्रत्येक एन्जाइम के लिए पृथक होती है। अधिकांश एन्जाइम 6.0 से 7.5 pH की सीमा में क्षमता-पूर्वक कार्य कर सकते हैं।
3. **जलयोजन** (Hydration) : कोशिकाओं में विद्‌यमान जल की मात्रा भी एन्जाइम की सक्रियता को प्रभावित करती है जैसे सूखे बीजों में किसी भी प्रकार की एन्जाइमी क्रिया नहीं होती।
4. एन्जाइम्स की सांद्रता (Concentration of the Enzyme) : एन्जाइम्स की मात्रा बढ़ने के साथ एन्जाइमी क्रिया की गति भी बढ़ती है, किन्तु यह आवश्यक है कि आधारी पदार्थ की सांद्रता में भी वृद्धि हो।
5. आधारी पदार्थ की सांद्रता (Concentration of the Substrate) : प्राय : आधारी पदार्थ की मात्रा बढ़ने के साथ-साथ एन्जाइमी क्रिया में भी वृद्धि होती है, किन्तु क्रियाधारी की बहुत अधिक मात्रा होने पर एन्जाइमी क्रिया पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
6. अंतिम उत्पादों की सांद्रता (Concentration of end Product) : जब अंतिम उत्पादों की मात्रा एकत्रित हो जाती है तो क्रिया की दर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

$$Rate\ of\ \ Reaction \times \frac{1}{\text{अंतिम उत्पादों की संख्या}}$$

7. **सक्रियकारक** (Activators) : कुछ रासायनिक यौगिक तथा धातु जैसे - CO, Ni, Mg, Mn इत्यादि एन्जाइमी अभिक्रियाओं को त्वरित करते हैं।
8. **निरोधक** (Inhibitors) : कुछ यौगिक जिन्हें हम निरोधक कहते हैं, ये एन्जाइमोटिक अभिक्रियाओं की सक्रियता को अवरूद्ध कर देते हैं इन निरोधकों की दो श्रेणियाँ होती हैं:

   (अ) प्रतिस्पर्धी निरोधक

   (ब) अप्रतिस्पर्धी निरोधक

   (अ) प्रतिस्पर्धी निरोधक (Competitive Inhibitors): ऐसे निरोधक यौगिकों की आण्विक संरचना (Molecular Configuration) सामान्य रूप में क्रियाधार अणु के समान होती है और ये एन्जाइम के विशेष स्थलों (Active Site) पर फिट हो सकते हैं जब ऐसी स्थिति होती है तो अभिक्रिया की सक्रियता रूक जाती है तथा एन्जाइम निष्क्रिय हो जाते हैं, जैसे - सक्सीनेट डीहाइड्रोजिनेज सक्सीनिक अम्ल के ऑक्सीकरण को उत्पेरित (Catalyse) करते है परन्तु Melonic Acid Succinic acid का प्रतिस्पर्धी निरोधक है।

   (ब) अप्रतिस्पर्धी निरोध (Non-Competitive inhibitors): इस प्रकार के निरोधक यौगिकों की आण्विक संरचना क्रियाधार अणु के समान नहीं होती है, परन्तु ये पदार्थ एन्जाइम के सक्रिय स्थलों पर न जुड़कर अन्य स्थलों पर संलग्न हो जाते है तथा एन्जाइम की सक्रियता को नष्ट कर देते हैं जैसे -Hg व Cn, इस प्रकार के आयन है जो कोशिका में उपस्थित एन्जाइम के क्रिया स्थल को नष्ट कर देते हैं।

बोध प्रश्न - 2

1. एन्जाइम का प्रोटीन हीन भाग होता है?

....

....

2. एस्टेरज किस वर्ग के एन्जाइम हैं?

....

....

3. पादपों में एन्जाइम किसमें रहते हैं?

....

....

4. एन्जाइम नाम किसने सर्वप्रथम दिया था?

....

....

5. जाइमेज एन्जाइम कौनसा परिवर्तन सम्पन्न करता है?

....

....

9C.10 सारांश

इस इकाई से आप यह समझ पाए कि एन्जाइम्स का जैविक तंत्र की रासायनिक क्रियाओं पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इसकी की सूक्ष्म मात्रा रासायनिक परिवर्तनों को तीव्रता प्रदान करती हैं तथा इनकी अनुपस्थिति से रासायनिक परिवर्तन मन्द गति से सम्पन्न होते हैं। हर रासायनिक परिवर्तन के लिए अलग तरह का एन्जाइम कार्य करता है। इन एन्जाइम्स को प्रभावित करने वाले कारक भी होते हैं जैसे- तापक्रम, जलयोजन, एन्जाइम्स की सांद्रता, आधारी पदार्थ की सांद्रता, अंतिम उत्पादों की सांद्रता, सक्रियकारक आदि।

9C.11 शब्दावली

एन्जाइम : एन्जाइम्स रासायनिक दृष्टि से प्रोटीन होते हैं जो जीव रासायनिक क्रियाओं की दक्षता तथा तीव्रता को विशाल रूप से बढ़ा देते है।

प्रोस्थेटिक समूह : अप्रोटीन भाग जो किण्वक से सघन रूप में अनुबन्धित रहता है। उसे प्रोस्थेटिक समूह कहलाता है।

सहएन्जाइम : जब अप्रोटीन भाग एपी एन्जाइम से आसानी से पृथक होने योग्य रूप से अनुबंधित होता है।

सक्रिय कारक : अधिकांशतः धातु के होते हैं जो लवणों के आयन के रूप में कार्य करते हैं।

9C.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. पादप कार्यिकी एवं जैव रसायन, डा. एन. बी. सक्सेना, डॉ. एम. एल. वर्मा. डॉ. बी. रल. चौधरी अल्का पब्लिकेशन, अजमेर'
2. वनस्पति शास्त्र, डॉ. ओ. पी. दायमा, सी. बी. एच. पब्लिकेशन, जयपुर।
3. वनस्पति विज्ञान, डॉ. प्रमोद कुमार शर्मा, डी. मन्जु शर्मा, डॉ. प्रेम प्रकाश पालीवाल, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर

9C.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1. यीस्ट में
2. प्रोटीन्स से
3. लाइसोसोम
4. धातु आयन तथा अप्रोटीन कार्बनिक अणु का
5. प्रोटीन केटोलिस्ट

बोध प्रश्न - 2

1. प्रोस्थैटिक ग्रुप
2. हाइड्रोलेजेज
3. समस्त सजीव पादप कोशिकाओं में
4. विली कुहने
5. हेक्सोस का इथेनोल में

9C.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. एन्जाइम्स क्या है? इनकी संरचना समझाइये।
2. पौधों में एन्जाइम्स कहाँ पाये जाते हैं? यह कितने प्रकार के होते हैं? इनका वर्गीकरण बताइये।
3. निम्न पर टिप्पणी लिखिए :
   (i) एन्जाइम्स के सिद्धांत
   (ii) एन्जाइम्स - क्रियाओं को प्रभावित करने वाले कारक

इकाई 9D : श्वसन (Respiration)

इकाई की रूपरेखा

9D.0 उद्देश्य
9D.1 प्रस्तावना
9D.2 श्वसन के क्रियाधार
9D.3 श्वसन के प्रकार
9D.4 श्वसन की क्रिया विधि
9D.4.1 ग्लाइकोलाइसिस
9D.4.2 क्रेब्स चक्र एवं महत्व
9D.4.3 इलेक्ट्रोन परिवहन तंत्र
9D.5 किण्वन
9D.6 श्वसन का सार व अन्य श्वसन पदार्थों का श्वसन मार्ग में प्रवेश
9D.7 श्वसन गुणांक
9D.8 श्वसन का महत्व
9D.9 श्वसन को प्रभावित करने वाले कारक
9D.10 सारांश
9D.11 शब्दावली
9D.12 संदर्भ ग्रन्थ
9D.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
9D.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

9D.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम सजीवों में होने वाली श्वसन क्रिया उसके प्रकार और क्रियाविधि से अवगत करायेंगे। यह क्रिया कई चरणों में पूरी होती हैं। इसकी जानकारी विभिन्न चक्रों द्वारा समझायेंगे। आप श्वसन गुणांक व श्वसन का महत्व भी समझेंगे। अन्त में श्वसन को प्रभावित करने वाले कारकों की भी जानकारी उपलब्ध हो सकेगी।

9D.1 प्रस्तावना (Introduction)

सभी सजीवों को अपनी जैविक क्रियायें सम्पादित करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती हैं। यह ऊर्जा प्रकृति के एकमात्र उत्पादक पौधों में विभिन्न प्रकार के जटिल कार्बनिक पदार्थों के रूप में संचित रहती हैं। इस प्रकार की ऊर्जा का संचय पादप सूर्य के प्रकाश से हरितलवक (Chloroplast) की सहायता से प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा करते हैं। जटिल कार्बनिक पदार्थों में संचित यह ऊर्जा ऑक्सीजन की क्रिया द्वारा स्वतंत्र होती हैं। इस क्रिया में जटिल कार्बनिक पदार्थ ऑक्सीजन (O_2) की उपस्थिति में विघटित होकर कार्बनडाइ ऑक्साइड (CO_2,) व जल के साथ-साथ ऊर्जा मुक्त करते हैं जो निम्न समीकरण द्वारा प्रदर्शित की जा सकती हैं

$$C_6H_{12}O_6 + 6O_2 \longrightarrow 6\ CO_2 + 6H_2O + 686 K.cal \text{ ऊर्जा}$$

अत:शिकाओं में सम्पन्न होने वाली वह प्रक्रिया हैं जिसमें उच्च ऊर्जा वाले जटिल कार्बनिक पदार्थ विघटित होकर सरल व निम्न ऊर्जा वाले अणुओं का निर्माण करते हैं व ऊर्जा मुक्त होती हैं। इस प्रकार मुक्त होने वाली ऊर्जा का उपयोग कोशिका में सम्पन्न होने वाली विभिन्न क्रियाओं के सम्पादन में किया जाता हैं।

9D.2 श्वसन के क्रियाधार (Respiratory Substrates)

श्वसन में ऑक्सीकृत होने वाली उच्च ऊर्जावान अणु श्वसन के क्रियाधार कहलाते हैं। ये क्रियाकारक कार्बोहाइड्रेट, वसा व प्रोटीन के अणुओं के रूप में कोशिका में संग्रहित रहते हैं इनमें से कार्बोहाइड्रेट्स श्वसन के प्रमुख क्रियाधार होते हैं। श्वसन में सबसे पहले उपयोग में लिया जाने वाला क्रियाधार हेक्सोज शर्करा कार्बोहाइड्रेट होती हैं। जबकि जटिल कार्बोहाइड्रेटस को पहले सरल शर्कराओं में विघटित किया जाता हैं। कार्बोहाइड्रेट की अनुपस्थिति में वसा तथा प्रोटीन्स का अक्सिंकिरण होता हैं। जब श्वसन में प्रोटीन्स का क्रियाकारक के रूप में उपयोग होता हैं तो इस प्रकार का श्वसन प्रोटोप्लाज्मिक श्वसन कहलाता हैं।

9D.3 श्वसन के प्रकार (Types of Respiration)

श्वसन सामान्यत : निम्न दो प्रकार का होता हैं - (a) ऑक्सीश्वसन (b) अनॉक्सी श्वसन

(i) **ऑक्सी श्वसन** (Aerobic respiration) : इस प्रकार का श्वसन ऑक्सींजन (O_2) की स्थिति में होता हैं। इस प्रकार के श्वसन में खाद्य पदार्थ / कार्बोहाइड्रेट का पूर्ण ऑक्सीकरण होता हैं परिणामस्वरूप कार्बोहाइड्रेट, (CO_2) व जल में विधटित होकर ऊर्जा मुक्त करते हैं । इस प्रकार के श्वसन मुक्त होने वाली ऊर्जा की मात्रा अधिक होती हैं। ऑक्सी श्वसन को निम्न रासायनिक समीकरण द्वारा दर्शाया जाता हैं -

$$C_6H_{12}O_6 + 6O_2 \longrightarrow 6\ CO_2 + 6H_2O + 686 K.cal \text{ ऊर्जा}$$

(ii) **अनॉक्सी श्वसन** (Aerobic respiration) इस प्रकार का श्वसन ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में होता हैं । इस श्वसन में कार्बोहाइड्रेट का पूर्ण ऑक्सीकरण नहीं होता जिससे कम मात्रा ऊर्जा मुक्त होती हैं तथा एत्कोहॉन अथवा कार्बनिक अप्लों व CO_2 का निर्माण होता हैं। यह श्वसन अन्तराणविक श्वसन (Intramolecular respiration) भी कहलाता हैं। अनॉक्सी श्वसन को निम्न रासायनिक अभिक्रिया द्वारा प्रदर्शित किया जाता हैं

$$C_6H_{12}O_6 + 6O_2 \longrightarrow 2C_2H_5OH + 2CO_2\ 28\ K.cal \text{ ऊर्जा}$$

संग्रहित इव अंकुरित होते हुए बीजों, माँसल फलों में अस्थायी रूप से अनॉक्सी श्वसन पाया जाता हैं जबकि कवकों व जीवाणुओं में यह एक नियमित प्रक्रिया हैं।

तालिका 1 : ऑक्सी श्वसन व अनॉक्सी श्वसन में अन्तर

क्र.सं.	ऑक्सी श्वसन	अनॉक्सी श्वसन
1.	यह ऑक्सीजन की उपस्थिति में होता हैं।	इसमें ऑक्सीजन की आवश्यकता नहीं होती।
2.	सभी जीवित कोशिकाओं में होता हैं	यह केवल कवक, जीवाणु संग्रहित व अंकुरित होते हुए बीजों आदि में होता हैं।
3.	इस श्वसन में ग्लूकोज के एक अणु के पूर्ण ऑक्सीकरण के द्वारा 38 ATP के अणुओं का निर्माण होता हैं।	इसमें ग्लूकोज का पूर्ण ऑक्सीकरण नहीं होता तथा केवल 2 ATP का निर्माण होता हैं।
4.	इस प्रकार के श्वसन में होने वाली ग्लाइकोलाजिस कोशिका द्रव्य में व क्रेब्स चक्र माइटोकोन्हियाँ में सम्पन्न होती हैं।	सभी क्रियायें कोशिका द्रव्य में सम्पन्न होती हैं।
5.	इसमें श्वसनीय पदार्थो का पूर्ण ऑक्सीकरण होता हैं।	इसमें श्वसनीय पदार्थो का अपूर्ण ऑक्सीकरण होता हैं।
6.	इसमें CO_2 पानी एवं ऊर्जा का निर्माण होता हैं	इसमें एल्कोहॉल / अम्ल, एवं रख ऊर्जा का निर्माण होता हैं।

9D.4 श्वसन की क्रिया-विधि (Mechanism of Respiration)

जैसा कि पहले बताया जा चुका हैं कि श्वसन की प्रक्रिया प्राय: ग्लूकोज शर्करा से आरम्भ होती हैं। ऑक्सी व अनॉक्सी श्वसन की प्रारम्भिक अभिक्रियाएँ कोशिकाद्रव्य में होती है तथा एक समान ही सम्पन्न होती है। इन आरम्भिक अभिक्रियाओं में ग्लूकोज के एक अणु से पाइरूविक अम्ल के अणु बनते हैं व ऊर्जा मुक्त होती हैं। इसे ग्लाइकोलासिस अथवा इस प्रक्रिया की खोज करने वाले वैज्ञानिकों (Embden,Meyerhoff व Parnas के नाम पर इसे EMP पथ भी कहा जाता हैं। यह ऑक्सी व अनॉक्सी श्वसन दोनों में समान होती हैं । इसमें ऑक्सीजन की आवश्यकता नहीं होती हैं। ऑक्सीजन की उपस्थिति में ग्लाइकोलाइसिस में बनने वाला पाइरुविक अस्त माइटोकान्ड्रिया में पहुँच कर एसिटाइल कोएन्नाइम ए (Acetyl CoA) का निर्माण करता हैं जो माइटोकॉन्ड्रिया में सम्पन्न होने वाले क्रेब चक्र जिसे टी सी ए चक्र भी कहा जाता हैं के द्वारा जल, CO_2 व ऊर्जा मुक्त करता हैं। इस प्रक्रिया में ग्लूकोज का पूर्ण ऑक्सीकरण होता हैं। ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में यह पाइरूविक अम्ल कोशिका द्रव्य में ही CO_2 व एल्कोहल का निर्माण करता हैं व अल्पमात्रा में ऊर्जा मुक्त होती हैं । श्वसन की क्रिया -विधि को निम्न

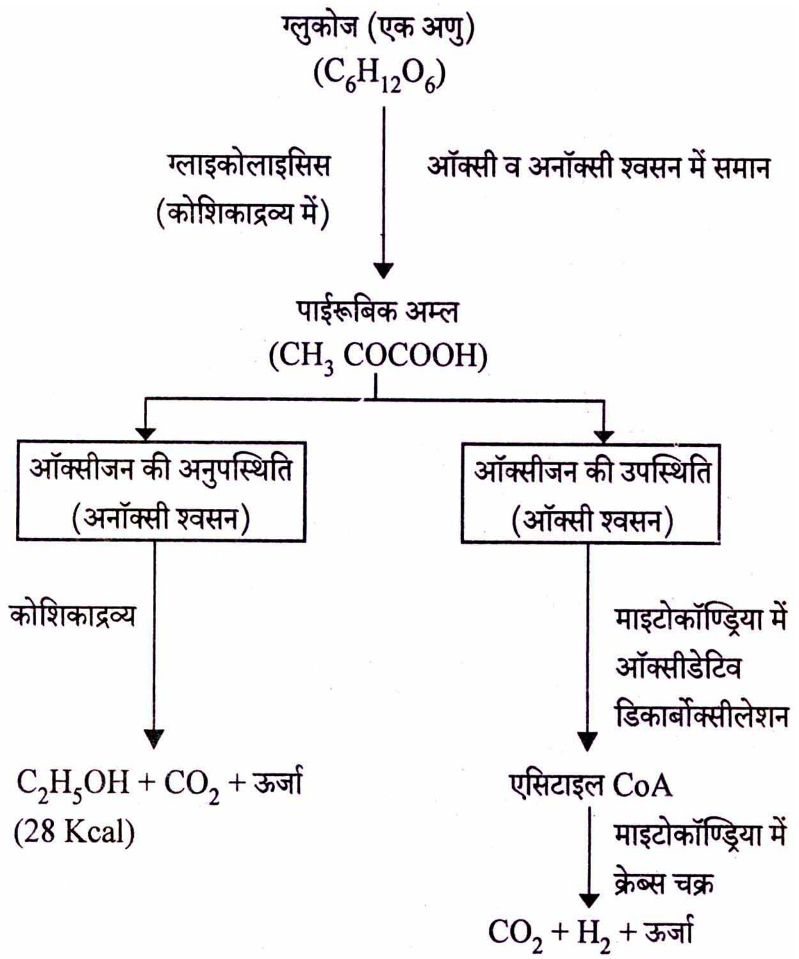

चित्र 9D.1 : ऑक्सी व अनॉक्सी श्वसन की क्रिया विधि में सम्बन्ध

9D.4.1 ग्लाइकोलाइसिस (Glycolysis)

ग्लाइकोलाइसिस शब्द का उद्भव ग्रीक शब्दों ग्लाइकोस (geyc0se = sugar) व लाइसिस (Lysis = Splitting) को मिला कर हुआ हैं जिसका अर्थ हैं शर्करा का विघटन। ग्लाइकोलाइसिस एक जटिल जैव रासायनिक प्रक्रिया हैं जो 10 चरणों में सम्पन्न होती हैं। ग्लाइकोलाइसिस की प्रक्रिया को क्रमबद्ध रासायनिक अभिक्रियाओं में गुस्ताव एम्बडेन (G. Embden), ओटो मेयरहॉफ (Otto Meyerhoff) व जे. परनास (J. Parnas) ने समझाया था अत: इनके अन्तिम नाम के पहले अक्षर से इस प्रक्रिया को ई एम पी पथ (EMP pathway). के नाम से भी जाना जाता हैं। यह ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में कोशिका द्रव्य (Cytosol) में सम्पन्न होने वाली श्वसन की प्रक्रिया का प्रथम पद हैं जो सभी जीवों में समान होता हैं। अवायवीय श्वसन करने वाले जीवों में श्वसन केवल ग्लाइकोलाइसिस द्वारा ही सम्भव हैं। अत: ग्लुकोज के अणु का एक श्रेणी में क्रमबद्ध जैव रासायनिक अभिक्रियाओं द्वारा पाइरूविल अस्त में विघटित होकर ऊर्जा मुक्त करना ग्लाइकोलाइसिस कहलाता हैं। (चित्र 9D.2) पौधों में ग्लुकोज प्रकाश संश्लेषण के अन्तिम उत्पाद सुक्रोज से प्राप्त होता हैं।

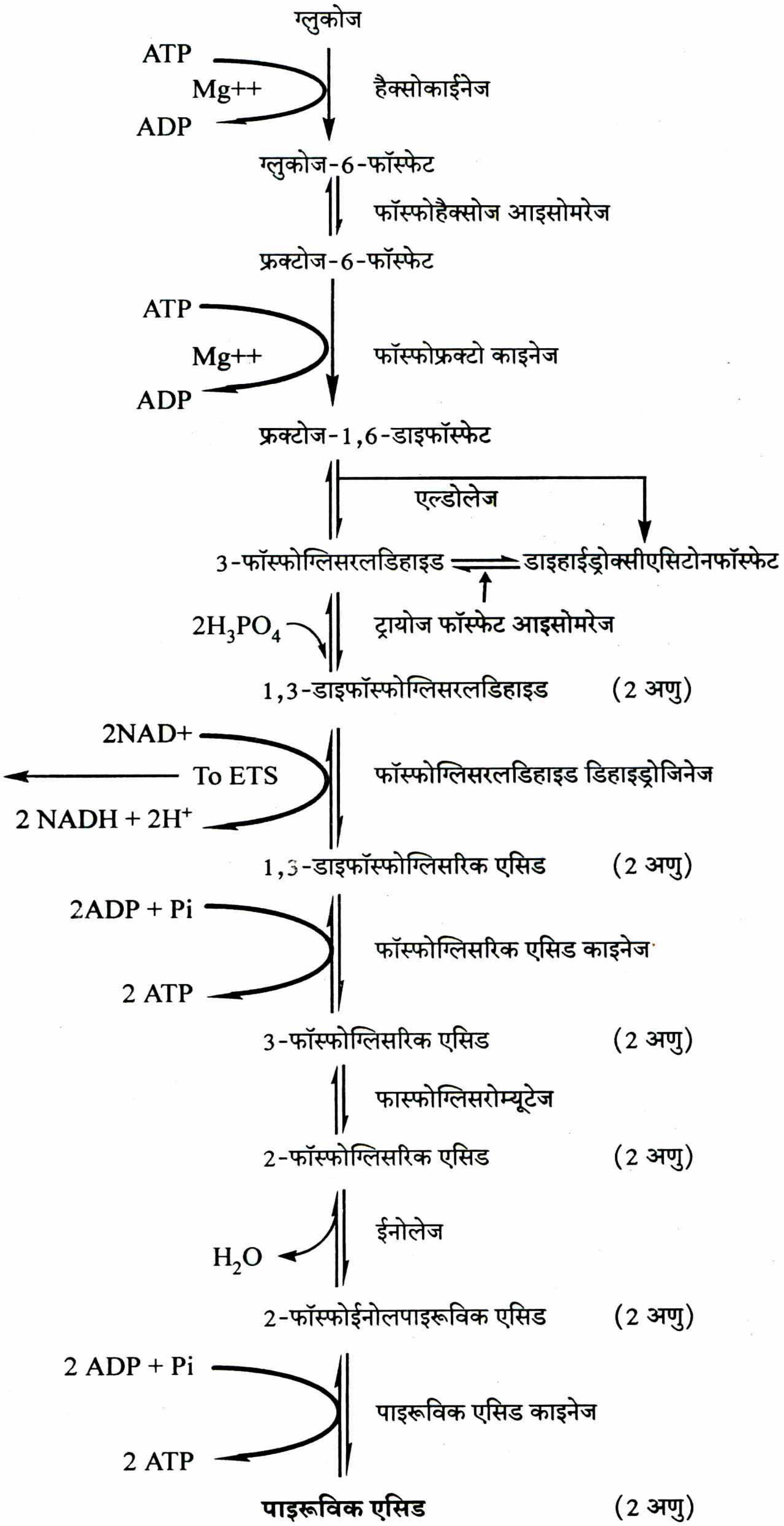

चित्र 9D.2 : ग्लाइकोलाइसिस की विभिन्न जैवरासायनिक अभिक्रियायें

ग्लाइकोलाइसिस में सम्पन्न होने वाली सभी 10 जैव रासायनिक अभिक्रियाओं को निम्न पदों के अन्तर्गत समझाया जा सकता हैं -

(क) ग्लूकोज का फॉस्फोरिलीकरण (Phosphorylation of Glucose)

(ख) फॉस्फोरिलीकृत ग्लुकोज अणु का दो अणु फॉस्फोग्लिसरैल्डिहाइड में विघटन / विखण्डन

(ग) पाइरुविक अम्ल के दो अणुओं का निर्माण (Formation of 2 Molecule of Pyruvicacid)

(क) ग्लूकोज का फॉस्फापेरिलीकरण (Phosphorylation of Glucose) : ग्लाइकोलाइसिस के प्रथम चरण में ग्लूकोज अणु एक ए टी पी (ATP) अणु का उपयोग व ग्लूकोज- 6-फॉस्फेट बनाता हैं। यह ग्लूकोज-6-फॉस्फेट समावयवीकरण की क्रिया द्वारा फ्रक्टोज-6-फॉस्फेट में परिवर्तित हो जाता हैं। फ्रक्टेव-6-फॉस्फेट एक और ए टी पी अणु का उपयोग कर फ़्रक्टोज-1, 6-डाइफॉस्फेट अणु का निर्माण करता हैं। ग्लूकोज के फॉस्फोरिलीकरण में होने वाली अभिक्रिया निमानुसार होती-

1. **प्रथम फॉस्फोरिलीकरण :** ग्लूकोज, हेक्सोकाइनेज एन्जाइम व M^{++} आयनों की उपस्थिति में ए टी पी (ATP) से क्रिया कर ग्लुकोज-6-फॉस्फेट व ए डी पी (ADP) बनाता हैं। (अभिक्रिया-1) हेक्सोकाइनेज

   ग्लुकोज $+ATP \xrightarrow[Mg^{++}]{}$ ग्लुकोज-6-फॉस्फेट + ADP ..... (1)

2. **समावयवीकरण :** इस प्रक्रिया में आइसोमेरेज एन्जाइम की उपस्थिति में ग्लूकोज-6-फॉस्फेट फ्रक्टोज-6-फॉस्फेट में परिवर्तित हो जाता है (अभिक्रिया-2)

   आइसोमरेज

   ग्लूकोज-6-फॉस्फेट $\longrightarrow$ फ़क्टोज-6-फॉस्फेट ..... (2)

3. **द्वितीय फॉस्फोरिलीकरण :** इस प्रक्रिया में फॉस्फोफ़क्टोकाइनेज एन्जाइम की उपस्थित में फ्रक्टोज-6-फॉस्फेट, ए टी पी (ATP) के एक अणु से क्रिया कर फ़क्टोज-1,6-डाइफॉस्फेट व ए डी पी (ADP) का निर्माण करता हैं (अभिक्रिया-3)

   आइसोमरेज

   फ्रक्टोज-6-फॉस्फेट फॉस्फेट + फ्रक्टोज-1,6-डाईफॉस्फेट + ADP ..... (3)

इस प्रकार अभिक्रिया 1 व 3 में शर्करा (ग्लूकोज व फ्रक्टोज) के अणु की ADP से क्रिया होने पर ए टी पी से एक फॉस्फेट समूह शर्करा अणु से जुड़ जाता हैं व ADP का निर्माण होता हैं । यह प्रक्रिया फॉस्फोरिलीकरण (Phosphorylation) कहलाते हैं। ग्लाइकोलाइसिस में ग्लूकोज से फ्रक्टोज -1,6-डाइफॉस्फेट बनने में दो अणु ADP का उपयोग होता हैं।

(ख) फॉस्फारीकृत ग्लूकोज अणु का दो अणु फॉस्फोग्लिसरैल्डिहाइड में विघटन या विखण्डन (Splitting of phosporylated glucose molecule in 2 molecules of -phosphoglyceraldhyde) : इस प्रक्रिया में फ़क्टोज-1, 6-डइफॉस्फेट जो कि एक 6 कार्बन परमाणु युक्त अणु हैं, एल्डोलेज एंजाइमों की उपस्थित में विखंडित होकर 3 -फॉस्फोग्लिसरलडिहाइड (3-phosphoglyceraldhydeN3-PGAL) व डाइहाइड्रोक्सी एसीटोन

फॉस्फोट (3 कार्बन युक्त अणु का निर्माण करता हैं (अभिक्रिया-4) दोनों यौगिक ट्रायोज फॉस्फेट कहलाते हैं।

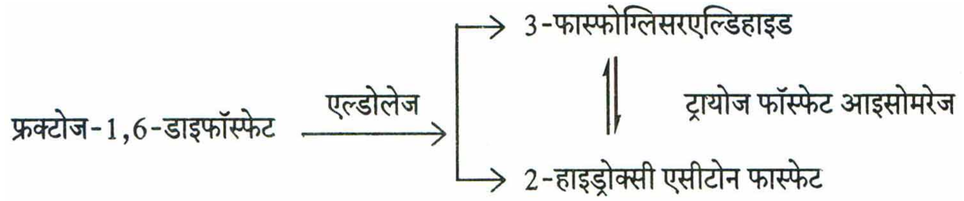

ये दोनों यौगिक ट्रायोजफॉस्फेट आइसोमरेज एन्जाइम की उपस्थिति में अन्त : परिवर्तनीय हैं इन यौगिकों में से केवल 3-PGAL का ऑक्सीकरण होता हैं। अत: जैसे-जैसे 3-PGAL उक्त का ऑक्सीकरण होता हैं 2-हाइड्रोक्सी एसीटोन फॉस्फेट, 3-PGAL में परिवर्तित होता रहता हैं ।

(ग) पाइरूविक अम्ल के दो अणुओं का निर्माण (Formation of molecule of pyruvic acid) : निम्नलिखित अभिक्रियाओं के द्‌वारा 3-PGAL (2 अणु) ऑक्सीकृत होकर 2 अणु पाइरूविक अम्ल का निर्माण करता हैं-

1. 3-PGAL का फॉस्फोरिलीकरण : ग्लिसरैल्डिहाइड-3-फॉस्फेट डिहाछोजिनेज एन्जाइम की उपस्थिति में 3-PGAL,H_3PO_4 से अभिक्रिया कर 1,3-डास्फॉँस्फोग्लिसरलडिहाइड का निर्माण करता हैं। (अभिक्रिया-5)

ग्लिसरैल्डिहाइड-3-फॉस्फेट-
डिहाइड्रोजिनेज

3-फॉस्फोग्लिसरैल्डिहाइड +H_3PO_4 ⟶ 1. 3 -डाईफॉस्फोग्लिसरलडिहाइड

(2 अणु) (2 अणु) (2 अणु)..... (5)

2. **1,3- डाईफॉस्फोग्लिसरिक अम्ल का निर्माण :** डाईफॉस्फोग्लिसरलडिहाइड डिहाइड्र ओजिनेज एन्जाइम की उपस्थिति में 1,3-डाईफॉस्फोग्लिसरलडिहाइड ऑक्सीकृत होकर 1,3-डाई-फॉस्फोग्लिसेरिक अम्ल का निर्माण करता हैं। (अभिक्रिया-6)

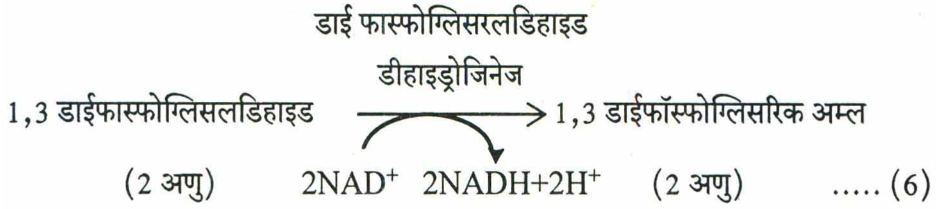

उपरोक्त अभिक्रिया में NAD^+ हाइड्रोजन ग्राही की तरह कार्य कर $NADH+H^+$ का निर्माण करता हैं जो ETS में प्रवेश कर ATP का निर्माण करता हैं।

3. **प्रथम ATP निर्माण :** इस प्रक्रिया में 1,3-डाईफॉस्फोग्लिसीरक अस्त का एक फॉस्फेट फॉस्फोग्लिसेरिक अम्ल बनता हैं (अभिक्रिया - 7)

डाईफास्फग्लिसीरक
अम्ल काइनेज

1,3 -डाईफॉस्फोग्लिसीरक अम्ल +ADP ⟶ 3-डाईफॉस्फोग्लिसीरक अम्ल +ATP

(2 अणु) (2 अणु) (2 अणु) (2 अणु)

4. **समावयवीकरण :** फॉस्फोग्लिसरोयूटेज एन्जाइम की स्थिति में 3 -फॉस्फोग्लिसीरक अस्त रूपान्तरण 2 -फॉस्फोप्तइलसीरक अम्बर में हो जाता हैं । (अभिक्रिया-8)

फॉस्फोहिलसरोम्यूटेज

3- फॉस्फोग्लिसेरिक अम्ल ⟶ 2 - फॉस्फोग्लिसेरिक अम्ल

(2 अणु) (2 अणु) ..... (8)

5. **जल अपघटन :** इनोलेज एन्जाइम की उपस्थिति में 2-फॉस्फोग्लिसेरिक अस्त में से एक अणु जल का निकल कर 2- फॉस्फोइनपोल पाइरुविक अम्ल का निर्माण होता हैं। (अभिक्रिया- 9)

इनोलेज

2- फॉस्फोग्लिसीरक अम्ल ⟶ 2- फॉस्फोइनोल पाइरूविक अम्ल

(2 अणु) (2 अणु) ..... (9)

6. **द्वितीय ATP का निर्माण :** इस प्रक्रिया में 2-फॉस्फोइनोल पाइरूविक अम्ल में से पाइरुविक अम्ल काटने एन्जाइम की उपस्थित में फॉस्फेट समूह निकल कर पाइरुविक अम्ल व ADP का निर्माण होता हैं। इस प्रकार बनने वाला पाइरुविक अम्ल ग्लाइकोलाइसिस का अन्तिम उत्पाद हैं । प्रत्येक ग्लूकोज अणु से 2 अणु पाइरुविक अम्ल के बनते हैं। (अभिक्रिया-10)

पाइरूविक अम्ल काइनेज

2-फॉस्फोइनोल पाइरूविक +ADP ⟶ पाइरूविक एसिड +ATP

(2 अणु) (2 अणु) (2 अणु) (2 अणु) ..... (10)

ग्लाइकोलाइसिस की सम्पूर्ण प्रक्रिया का निम्न समीकरण द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता हैं -

$$C_6H_{12}O_6 + 2ATP + 4ADP \longrightarrow 2C_3H_4O_3 + 2ADP + 4ATP +$$

$$2Pi + 2NAD^+ \qquad 2NADH + 2H^+$$

(घ) ग्लाइकोलाइसिस का सार : ग्लाइकोलाइसिस की प्रक्रिया के मुख्य बिन्दु निम हैं -

(i) प्रत्येक ग्लुकोज अणु से 2 अणु पाइरूविक अम्ल के बनते हैं।

(ii) ग्लाइकोलाइसिस में चार अणु ATP के बनते हैं, परन्तु 2 ATP अणु ओं का उपयोग फॉस्फोरिलीकरण में हो जाता हैं। अत: शुद्ध लाभ 2 ATP अणुओं का होता हैं।

(iii) 1,3 -डाईफॉस्फोग्लिसरलडिहाइड के 2 अणुओं से 2 अणु 1,3 -डाईफॉस्फोग्लिसीरक अम्ल के बनते समय 2 अणु $NADN+H^+$ के बनते हैं।

(iv) वायवीय श्वसन में प्रत्येक $NADN+H^+$ से 3 अणु ATP के बनते हैं (ETS द्वारा) अत : O_2 की उपस्थिति में 6 अतिरिक्त ATP अणुओं का निर्माण होता हैं।

(v) ग्लाइकोलाइसिस में CO_2 का निर्माण नहीं होता।

पाइरूविक अम्ल का वायवीय ऑक्सीकरण (Aerobic Oxidation of pyruvic Acid)

कोशिका द्रव्य (Cytosol) में ग्लाइकोलाइसिस की प्रक्रिया द्वारा बनने वाले पाइरूविक अम्ल के माइटोकोन्द्रिया में प्रवेश करने पर श्वसन का दूसरा चरण शुरू होता हैं। माइटोकोन्द्रिया में इस

पाइरूविक एसिड के तीन कार्बन परमाणुओं में से एक परमाणु कार्बनडाइऑक्सास्ट (CO_2) के रूप में आक्सीकृत हो जाता हैं। ऑक्सीकरण की यह प्रक्रिया ऑक्सीकीय डिकार्बोक्सिलीकरण (Oxidative Decarboxylation) कहलाती हैं। तत्पश्चात् स्थायी पल्लिवक डिहाड्रोजिनेज एन्त्राइम की उपस्थिति में पहले ऑक्सीकरण व बाद में कोएन्त्राइम ए (CoA) से संयुक्त होकर एसिटाइल CoA का निर्माण होता है। इस अभिक्रिया में 5सहकारक (Cofactors) आवश्यक होते हैं। जो कि कोंएन्साइम A, NAD^+,Mg^{++}, थाइमीन पाइरोफास्फेट (TPP) एवं लाइपोइक अम्ल (Lipoic Acid) हैं। यह एसिटाइल CoA ग्लाइकोलाइसिस व क्रेब चक्र की योजना कड़ी के रूप में कार्य करता हैं । पाइरुविक अस्त से एसीटाइल CoA बनने की प्रक्रिया नियमानुसार होती हैं

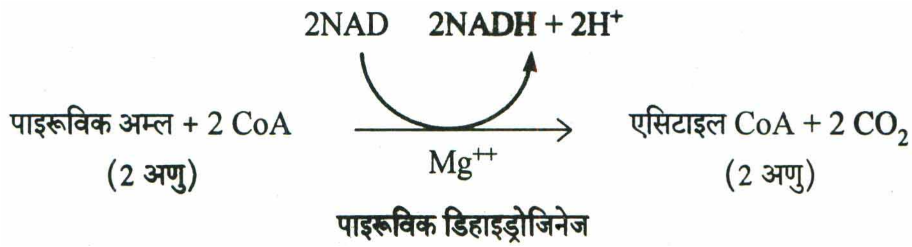

अत: पाइरुविक अम्ल के 2 अणु वायवीय ऑक्सीकरण के द्वारा दो -दो अणु एसीटाइल $NADH+H^+$ ($NADH+H^+$*3=6 ATP) CO_2 के दो अणु बनाते हैं ।

9D.4.2 क्रेब्स चक्र/सिट्रिक संस्था एसिडचक्र टी सी/ए चक्र एवं महव [Krebs cycle/Citric Acid Cycle/Tricarboxylic Acid Cycle (TCA Cucle)]

मस्योकान्हिथ में होने वाली इस प्रक्रिया को सबसे पहले ब्रिटिश जैव रस्मयनशास्त्री सर एच. एं. क्रेम्प्र (Sir H.A Kerbs) ने 1973 मैं समझाया था। इन्हीं के सम्मान में इसे क्रेब्स चक्र के नाम से जाना गता हैं। इस कार्य के लिए सर क्रेम्स को 1953 में नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। स्थ्ये चक्र का प्रमम्प सिट्रिक अन्त के बनने से होता हैं रस कारण इसे सिट्रिक अस्त चक्र के नाम से भी जाना जाता हैं। पाइरूविक अम्ल के CO_2 व जल में वियोजन को क्रेब्स चक्र द्वारा भली प्रकार समझाया जा सकता हैं (चित्र 90.3)।

क्रेब्स चक्र में एसिटाइल कोएन्जाइम (Acetyl CoA) अपने एसिटाइल समूह के दोनों कार्बन परमाणु क्रेब्स चक्र में बनने वाले आक्सेलोएसीटिक अम्ल को स्थानांतरित देता हैं जिससे सिट्रिक अम्ल (6 कार्बन परमाणु) का निर्माण होता हैं तथा CoA पुन: दूसरे एसिटाइल समूह से क्रिया करने के लिए मुक्त हो जाता हैं।

इस सम्पूर्ण चक्र में 6 कार्बन परमाणु वाले सिट्रिक अम्ल में से दो कार्बन परमाणु CO_2 के रूप में मुक्त होते हैं। रख ऑक्सेलोएसिटिक अम्ल का निर्माण होता हैं । क्रेन्स चक्र का अँन्तिम ब्लाद यह ऑक्सेलोएसिटिक अम्ल पुन: एसिटाइल CoA से मिलकर इस चक्र की निरन्तरता बनाए रखता है। क्रेब्स चक्र में मुख्य पदों को निमानुसार समझाया जा सकता: हैं -

1. **सिट्रिक अम्ल का निर्माण:** एसिटाइल CoA क्रेब्स चक्र में बनने वाले ऑक्सेलोएसिटिक अम्ल से संघनक एन्जाइम (Condensing Enzyme) की उपस्थिति में क्रिया कर जल-योजना द्वारा सिट्रिक अन्त बनाता हैं। इस प्रक्रिया में CoA पुन : मुक्त हो जाता हैं। (अभिक्रिया-1)

एसिटाइल CoA + ऑक्सोएसिटिक अम्ल $\xrightarrow[H_2O \uparrow \quad \downarrow CoA]{\text{संघनक एन्जाइम}}$ सिट्रिक अम्ल + CoA. ....(1)

2. **सिस-एकोनिटिक अम्ल का निर्माण :** एकोनिटेज एन्जाइम की उपस्थिति में सिट्रिक अम्ल जल-वियोजन द्वारा सिस-एकोनिटिक अम्ल का निर्माण करता है।

सिट्रिक अम्ल $\xrightarrow[\downarrow H_2O]{\text{एकोनिटेज}}$ सिस-एकोनिटिक अम्ल .....(2)

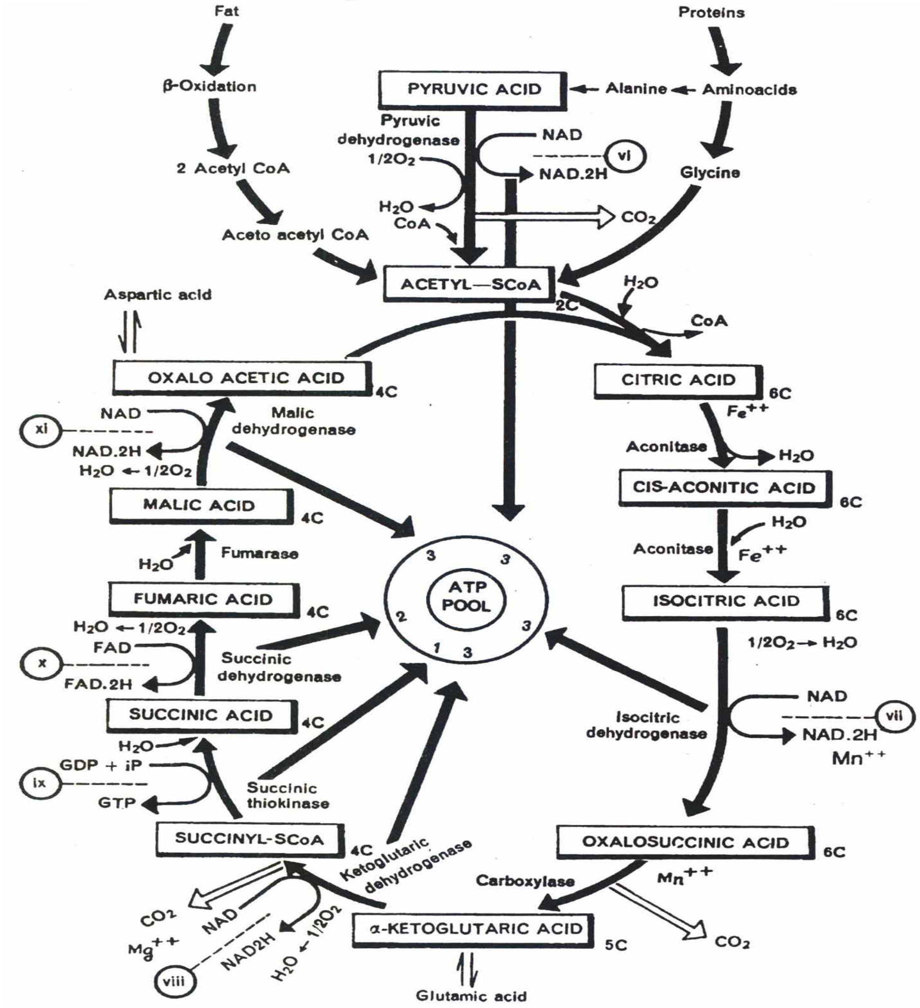

चित्र 9D.3: क्रेब्स चक्र की मुख्य अभिक्रियें

3. **आइसोसिट्रिक अम्ल का निर्माण :** एकोनिटेज एन्ट्राइम की उपस्थिति में सिस-फोनिटिक अस्त के जल-योजन द्वारा आइसोसिट्रिक अम्ल बनता हैं ।

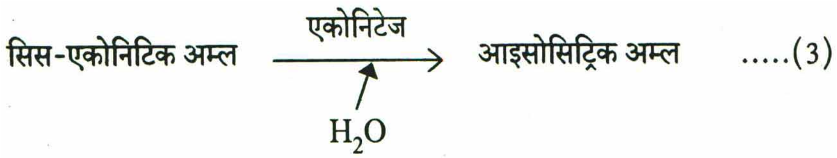

4. **ऑक्सेलो-सक्सिनिक अम्ल का निर्माण :** आइसोसिट्रिक डिहाइड्रोजिनेज एन्जाइम की उपस्थिति में आइसोसिट्रिक अम्ब ऑक्सीकरण के द्वारा ऑक्सेलोसक्सिनिक अम्ल का निर्माण करता हैं व इस क्रिया में मुक्त होने वाले 2 हाइड्रोजन अणु NAD^+ द्वारा ग्रहण किये जाते हैं।

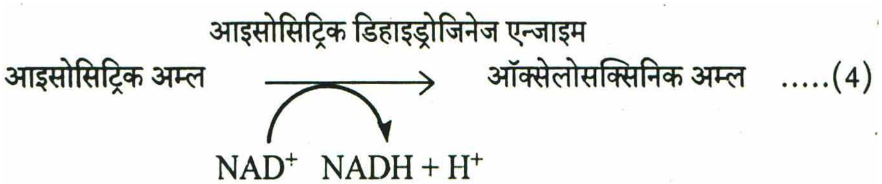

5. **आक्सेलो सक्सीनिक अम्ल का डीकार्बोक्सिलीकरण** (Decarboxylation) : ऑक्सेलोसक्सिनिक अम्ल का डीकार्बोक्सीजेज एंजाइम की उपस्थिति में डीकार्बोक्सिलीकरण होने क्रेब चक्र में बनने वाले पहले पाँच कार्बन परमाणु युक्त यौगिक α -कीटोग्लूटेरिक अम्ल का निर्माण होता हैं

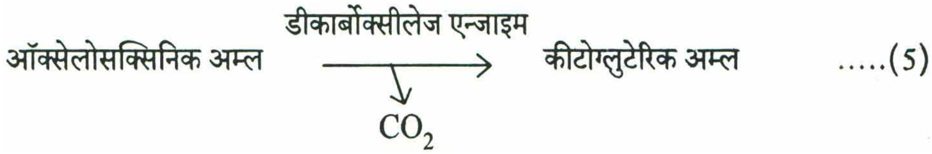

6. **सक्सीनाइल कोएन्ताइम A का निर्माण :** α -कीटोग्लुटेरिक डिहाइड्रोजिनेज एन्त्राईक्ष: उपस्थित में α -कीटोग्लुटेरिक अम्ल के ऑक्सीकीय डीकार्बोक्सिलीकरण (Oxidative Decarxylation) द्वारा चार कार्बन युक्त सक्सीनाइल कोएन्त्राइम ए (CoA) का निर्माण होता हैं तथा मुक्त होने वाले दोनों हाइड्रोजन परमाणुओं द्वारा NAD^+ का अपचयन $NADH + H^+$ में हो जाता हैं । इस प्रक्रिया में CO_2 मुक्त होती हैं ।

7. **सक्सिनिक अम्ल का निर्माण :** सक्सीनिकथायोकाइनेज एन्जाइम की उपस्थित में सक्सीनिक एसिड के जल- अपघटन द्वारा सक्सीनिक अम्ल का निर्माण होता हैं तथा CoA का पुन: मुक्त हो जाता हैं। इस क्रिया में GTP के रूप में ऊर्जा भी मुक्त होती हैं जो बाद में ATP बनाती है।

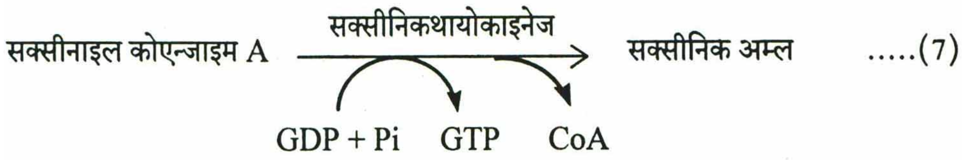

8. **क्यूमेरिक अम्ल का निर्माण :** सक्सीनिक डिहाइड्रोजिनेस एन्जाइम की उपस्थित में . सक्सीनाइल कोएन्त्राइम ए में से दो हाइड्रोजन परमाणु निकल जाते हैं जिससे च्छेरिक अस्त का निर्मोणं होता हैं। इस क्रिया में मुक्त होने वाले हाइड्रोजन परमाणु हस्स. द्वारा ग्रहण किये जाते हैं।

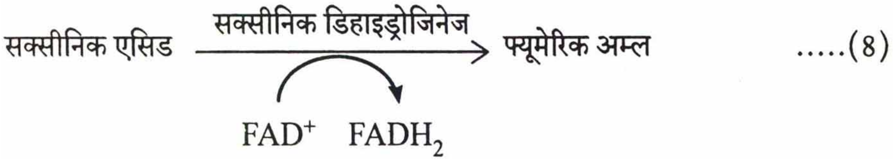

9. मैलिक अम्ल का निर्माण : फ्यूरिक अम्ल की उपस्थित में जल -योजन द्वारा फ्यूरिक अम्ल मैलिक अम्ल में परिवर्तित हो जाता हैं।

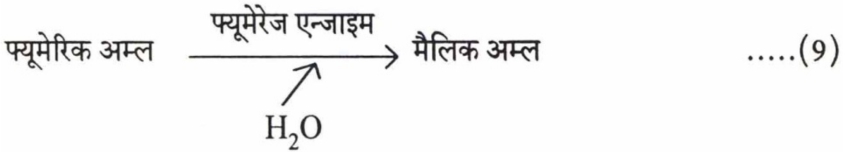

10. **ऑक्सेलो एसिटिक अम्ल निर्माण :** क्रेब्स चक्र के अन्तिम पद में मैलिक डिहाइड्रोजिनेज स्ताइम की उपस्थिति में मैलिक अम्ल में से 2 हाइड्रोजन परमाणु वियोजित होकर ऑक्सेलोएसिटिक अस्त का निर्माण होता हैं। जो एसिटाइल CoA से क्रिया कर क्रेक चक्र का पुन: आरम्भ करता हैं।

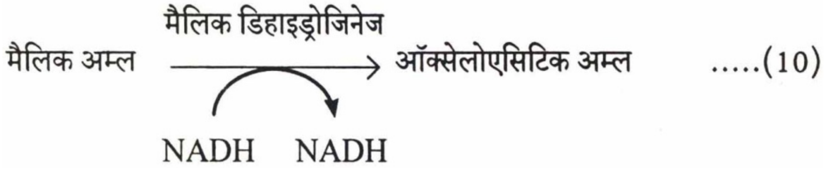

सम्पूर्ण क्रेब्स चक्र को निम्न समीकरण व चित्र 9.9D.4 द्वारा समझाया जा सकता हैं -

2X [एसिटाइल CoA + $4H_2O$ + $\longrightarrow$ 2CoA + $2CO_2$ +3NADH +

$3NAD^+$ + FAD^+ GDP Pi $3H^+$ + $FADH_2$ + GTP]

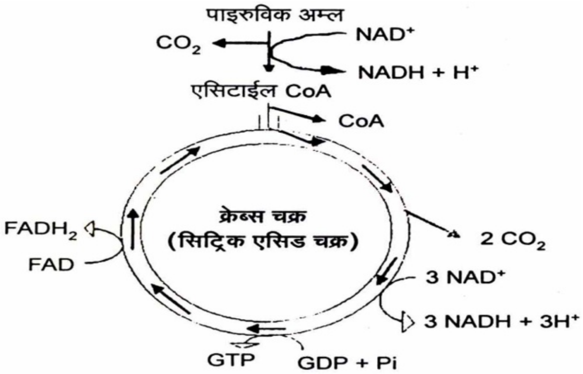

चित्र 9D.4 : क्रेबस चक्र का सार

सारणी 2 : ग्लूकोज के वायवीय ऑक्सीकरण का सार

(Summary of aerobic respiration of glucose)

क.सं	**प्रक्रिया**	**उत्पन्न ऊर्जा**
1.	ग्लाइकोलाइसिवस 8 or 6 ग्लुकोज ($C_6H_{12}O$) $\longrightarrow$ पाइरुविक अम्ल + $2H_2$	8 or 6 ATP**
2.	मध्यस्थ चरण CoA पाइरुविक अम्ल $\longrightarrow$ 2 एसिटाइल CoA + $4H^+$ $2CO_2$	CoA 6ATP
3.	क्रेब्ज चक्र एसिटाइल CoA $+6H_2O$ $\longrightarrow$ CoA+ 16 H^+ + $4CO_2$ 24 H^+ + $6O_2$ $\longrightarrow$ $12H_2O$	 **2**4ATP
	$C_6H_{12}O_6$ + $6O_2$ $\longrightarrow$ $6CO_2$ + $6H_2O$	38 or 36 ATP

* क्योंकि ग्लुकोजके एक अणु से 2 अणु पाइरूविक एसिडके बनते हैं । अत: NDADH + H^+ व CO_2 के दो-दो अणु पाइरूविक अम्ल से एसिटाइल CoA बनने पर मुक्त होते हैं।
* ग्लाइकोलाइसिवस में बनने वाले 2 NADH + H^+ के अणु यदि मैलेट - एस्पारटेट शटल (Malate-Aspartate shuttle) के द्वारा माइटोकोन्द्रिया में होनेवाले ETS में प्रवेश करते हैं तो 6 ATP के अणु बनते हैं। अगर ये NADH + H^+ के दो अणु ग्लिसरोल-फॉस्फेट शटल (Glycerol Phosphate Shuttle) के द्वारा माइटोकोन्हिया में प्रवेश करते हैं तो इन इलेक्ट्रोंस के द्वारा FAD का अपचयन होता हैं जिससे केवल चार अणु 36 ATP के अणु बनते हैं

क्रेब्स चक्र का महत्व -

(i) इस चक्र से ATP के अणुओं का निर्माण होता हैं, जिससे विभिन्न कार्यो के करने के लिए ऊर्जा मिलती हैं।

(ii) इस चक्र में कई ऐसे मध्यवर्ती यौगिकों का निर्माण होता हैं, जिनका अन्य जैव अणुओं के संश्लेषण में उपयोग होता हैं। उदाहरण के लिए सक्सीनायल कोएन्ताइम A पर्णरहित के संश्लेषण के लिए प्रारम्भिक अणु हैं। α-कीटो ग्लूटेरिक अम्ल, पाइरूविक अम्ल एवं ऑक्सेलोएसिटिक अम्लों से एमीनो अम्लों का निर्माण होता हैं।

9D.3.3 एलेक्ट्रोन परिवहन तन्त्र (Electron Transport System, ETS)

क्रेब्स चक्र के अन्त में ग्लुकोज का पूर्ण ऑक्सीकरण तो हो जाता हैं परन्तु ऊर्जा इलेक्ट्रॉन परिवहन तन्त्र के द्वारा NADH + H^+ ,$FADH_2$ के ऑक्सीकरण के बाद ही मुक्त होती हैं। अत: इस प्रक्रिया में ऑक्सीकरण को इलेक्ट्रोन्स के आधार पर समझा जाना चाहिए। इस प्रकार की प्रक्रिया में इलेक्ट्रोन्सका किसी यौगिक में जुड्ना अपचय नव किसी यौगिक से इलेक्ट्रोन्स का हटना ऑक्सीकरण कहलाता हैं। अत: श्वसन में होने वाली यह उपापचयी (Metabolic) क्रिया

जिसमें इलेक्ट्रोन एक श्रेणीबद्ध निश्चित क्रम में एक वाहक से दूसरे वाहक में स्थानान्तरित होते हैं। इलेक्ट्रोन परिवहन तंत्र ETS) कहलाती हैं। यह इलेक्ट्रोन्सा/हाइड्रोजन आयन कई मध्यस्थ वाहकों (Intermediate carriers) के द्वारा O_2 से जुड़कर जल का निर्माण करते हैं तथा इस प्रक्रिया के दौरान ATP का निर्माण होता हैं। (चित्र 9.9D.5) इस क्रिया में भाग लेने वाले सभी एन्जाइम माइटोकॉन्ड्रिया आन्तरिक झिल्ली पर पाये जाने वाले F_1 कणों (F_1 particles) में पाये जाते हैं।

इलेक्ट्रॉन परिवहन तंत्र में NADH + H^+ $FADH_2$ से इलेक्ट्रोन्स का ऑक्सीकरण एक निश्चित क्रम में होता हैं जिसे नियमानुसार समझा जा सकता है-

1. क्रेब्स चक्र में माइटोकॉन्ड्रिया की मैट्रिक्स में बनने वाले NADH + H^+ का डिहाइड्रोजिनेज एन्जाइम द्वारा NAD में ऑक्सीकरण हो जाता हैं व इस क्रिया में मुक्त होने वाले इलस्ट्रोन माइटोकॉन्ड्रिया की आन्तरिक झिल्ली पर पाये जाने वाले NADH यूबीक्तिनॉन ऑक्सीडोरिक्टेज संकुल-I(Complex) द्वारा ग्रहण कर लिये जाते हैं। जिसमें फ्तेविन मोनोन्यूक्तियोटाइड प्रोटीन भी पाया जाता हैं। सक्सीनेट-यूबीस्विनॉन आक्सीडोरिडक्टेज (संकुल-II(Complex-III) द्वारा ऑक्सीकृत होने वाले स क्सं अम्ल से मुक्त होने वाले इलेक्ट्रोन्स जो $FADH_2$ द्वारा ग्रहण किये जाते हैं, को भी ग्रहण करता हैं ।
2. इस प्रकार पूर्ण अपचयित यूबीक्विनॉन (यूबीक्विनॉन) इलेक्ट्रोन्स का स्थानान्तरण साइटोक्रोम b एवं c, संकुल-III (Cytochrome b & c, Complex (complex-III) द्वारा साइटोक्रोम -c को कर देता हैं। यह साइटोक्रोम c माइटोकॉन्ड्रिया की आन्तरिक झिल्ली की बाहरी सतह से सम्बन्धित चल (गतिशील) प्रोटीन हैं जो इलेक्ट्रोन्स को संकुल-III से संकुल -iv पर हस्तानान्तरित करती हैं।

   साइटोक्रोम-C ऑक्सीजन संकुल जिसमें साइटोक्रोम a तथा a_3 तथा दो कॉपर केन्द्र पाये जाते हैं संकुल-iv (Complex-iv) कहलाता हैं।

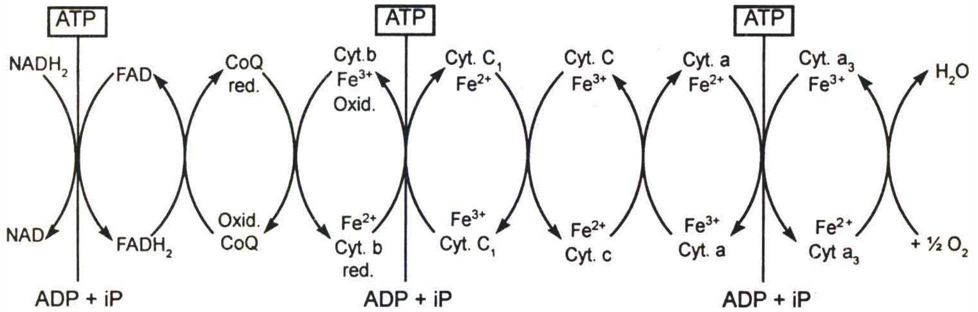

चित्र 9D.5 : इलेक्ट्रोन परिवहन तन्त्र का आरेखी चित्र

3. इलेक्ट्रोन परिवहन मृंखला में इलेक्ट्रोन विभिन्न वाहकों द्वारा संकुल -I से संकुल -iv तक पहुँचने पर ये एटीपीसिंथेज संकुल (ATP synthase complex) से जुड़ कर ADP व अकार्बनिक फॉस्फेट (Inorganic phosphate (Pi) से निर्माण करते है। संकुल -iv (Complex-v) घटक F_1 व F_0 होते हैं।

4. इस प्रक्रिया में बनने वाले ATP अणुओं की संख्या इलेक्ट्रोन दाता की प्रकृति पर निर्भर करती हैं । NADH + H^+ से 3 ATP व $FADH_2$ से 2 ATP अणु का निर्माण होता हैं।
5. ऑक्सीजन इस क्रिया में अन्तिम हाइड्रोजन ग्राही की तरह कार्य करता हैं ।
6. ADP का फॉस्फोरिलीकरण ऑक्सीजन की उपस्थिति में होने के कारण इस प्रक्रिया को ऑक्सीकयि फॉस्फोरिलीकरण (Osidative Phospholation) कहा जाता हैं ।

9D.5 किण्वन (Fernentation)

किण्वन अधिकांश जीवाणुओं व कवकों की ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में होने वाली क्रिया हैं जिसमें शर्करा के अणु का अपूर्ण ऑक्सीकरण होता हैं, जिससे एल्कोहल अथवा कार्बोक्सिलिक अम्लों का निर्माण होता है व CO_2 मुक्त होती हैं।

पाश्चर ने सन् 1857 में यह सिद्ध किया कि एल्कोहिलक किण्वन यीस्ट (Yeast) कोशिकाओं की उपापचयी क्रियाओं द्वारा होता हैं।

किण्वन क्रिया में बनने वाले उत्पाद के आधार पर किण्वन निम्न प्रकार के हो सकते हैं -

I. **एल्कोहलीय किण्वन** (Alcoholic fermentation) : यह क्रिया यीस्ट कुछ कवक तथा उच्च वर्ग के पौधों में मिलती हैं। ग्लाइकोलाइसिस में बनने वाली पाइरूविक अम्ल से एल्कोहल का निर्माण दो पदों में पूर्ण होता हैं -

$$\text{पाइरूविक अम्ल} \xrightarrow{\text{पाइरूविक डीकार्बोक्सिलेज}} \text{एसिटाइलहाडड} + CO_2$$

$$\text{एसिटाइलहाइड} + NADH + H^+ \xrightarrow[\text{डीहाछोजिनेज}]{\text{एल्कोहल}} \text{एसिड एल्कोहल} + NAD^+$$

II. **लेक्टिक अम्ल किण्वन** (Lactic acid fermentation) : यह क्रि या जीवाणु (लेक्टोबोसिलस क्लास्ट्रिडियम) में मिलती है। इसमें पाइरूविक अम्ल का लेक्टिक अस्त में अपचयन होता है।

$$\text{पाइरूविक अम्ल} \xrightarrow[\text{डीहाइड्रोजिनेज}]{\text{लेक्टिक}} \text{एसिटाइलहाइड} + CO_2$$

III. **एसिटिक अम्ल किण्वन** (Acetic acid Fermrntation) : यह क्रिया ऐसिटोबेक्टर एसीटी नामक जीवाणु में होती है। इस क्रिया में पाइरूविक अम्ल से एसिटल्डिहाइड तथा बाद में एसिटिक अम्ल बनता है।

$$\text{पाइरूविक अम्ल} \longrightarrow \text{एसिटाइलहाडड } CO_2$$

$$+ H_2O$$

$$\text{एसिटाइलहाइड} \xrightarrow[-2H]{} \text{ऐसिड एल्कोहल - 2 ध}$$

9D.6 श्वसन का सार एवं अन्य श्वसन पदार्थो का श्वसन मार्ग में प्रवेश

वसा कार्बोहाइड्रेट एवं. प्रोटीन के विघटन से बनने वाले सरल पदार्थो के श्वसन में प्रवेश को चित्र 9.9D.7 में दर्शाया गया हैं -

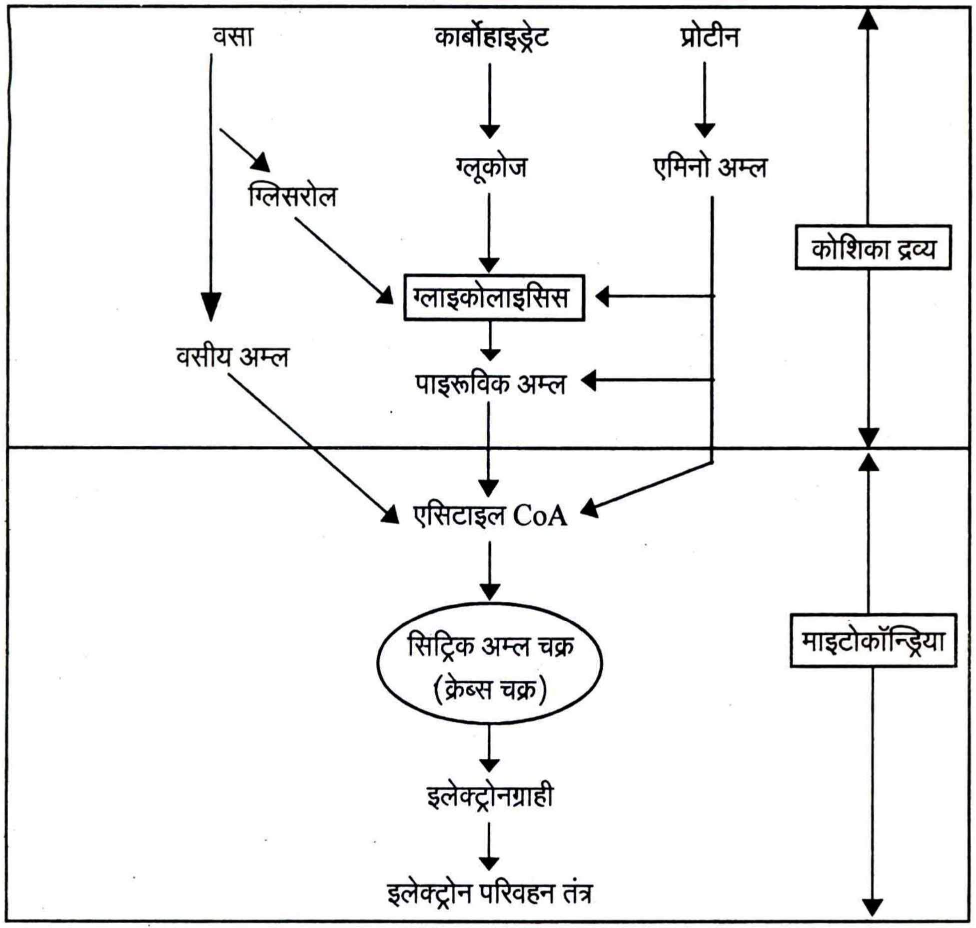

चित्र 9D.7 : कोशिकीय श्वसन की संपूर्ण प्रक्रिया का आरेखी चित्र

9D.7 श्वसन गुणांक (Respiratory Quotient)

श्वसन में पादप ऑक्सीजन का उपभोग करते हैं तथा कार्बन-डाईऑक्साइड मुक्त करते हैं । श्वसन में मुक्त होने वाली कार्बन -डाईऑक्साइड (CO_2) व प्रयुक्त होने वाली ऑक्सीजन (O_2) के आयतन का अनुपात श्वसन में प्रयुक्त होने वाले क्रियाधार की प्रकृति पर निर्भर करता हैं । अत: श्वसन में मुफ्त होने वाली CO_2 व उपभोग होने वाली O_2 के आयतन का अनुपात श्वसन गुणांक कहलाता हैं।

श्वसन गुणांक का मापन गेनोंग्स श्वसन मापी द्‌वारा किया जाता हैं।

श्वसन में मुक्त होने वाली कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) का आयतन

अत: श्वसन गुंणाक =

श्वसन में प्रयुक्त होने वाली ऑक्सीजन (O_2) का आयतन

श्वसन में प्रयुक्त होने वाले भिन्न-भिन्न क्रियाधारों के श्वसन गुणांक भी भिन्न-भिन्न होते हैं जिन्हें निन्नानुसार समझाया गया हैं

(i) **कार्बोहाइड्रेट्स का श्वसन गुणांक :** श्वसन की प्रक्रिया में क्रियाधार जब कार्बोहाइड्रेट होते हैं व इनका पूर्ण इस प्रक्रिया में विमुक्त होने वाली कार्बन-डाइऑक्साइड व प्रयुक्त होने वाली ऑक्सीजन का आयतन सदैव समान होता हैं।

$C_6H_{12}O_6 + 6O_2 \longrightarrow 6CO_2 + 6H_2O$ + ऊर्जा

$$\text{श्वसन गुणांक} = \frac{\text{श्वसन में मुक्त होने वाली } CO_2 \text{ का आयतन } 6CO_2}{\text{श्वसन में प्रयुक्त होने वाली } O_2 \text{ का आयतन } 6O_2} = 1.0$$

(ii) **वसा का श्वसन गुणांक :** तैलीय बीजों के अंकुरण के समय श्वसन की क्रिया में वसा क्रियाधार होती हैं। वसा के अणु में कार्बन की तुलना में ऑक्सीजन की मात्रा कम होती हैं। इस कारण वसा के ऑक्सीकरण के लिए ऑक्सीजन की अधिक मात्रा की आवश्यकता होती हैं। अत : वसा का श्वसन गुणांक सदैव एक से कम होता है।

$C_{51}H_{98}O_6 + 145O_2 \longrightarrow 102CO_2 + 98H_2O$

अत: श्वसन गुणांक = $\frac{102\ CO_2}{1450_2}$ = 0.7

(iii) **प्रोटीन्स का श्वसन गुणांक :** प्रोटीन्स अणुओं में भी वसा की तरह ऑक्सीजन की मात्रा कार्बन की तुलना में कम होती हैं। अत : प्रोटीन्स के ऑक्सीकरण में भी अधिक O_2 की आवश्यकता होती हैं। प्रोटीन्स श्वसन की क्रिया में क्रिया धार की तरह कार्य केवल कार्बोहाइड्रेट व सा की अनुपस्थिति में ही करते हैं। प्रोटीन्स का श्वसन गुंणाक एक से कम होता हैं।

(iv) **कार्बोक्सिलिक अम्लों का श्वसन गुणांक :** माँसलोद्भिद (Succulents) पादपों जैसे नागफनी (Opuntia) आदि में श्वसन में क्रियाधार कार्बोक्सिलिक अम्ल होते हैं जिके अणुओं में कार्बन की तुलना में ऑक्सीजन की मात्रा अधिक होती हैं। इस कारण श्वसन में इनके ऑक्सीकरण के लिए कम ऑक्सीजन की आवश्यकता होती हैं अत : इनका श्वसन गुणाक सदैव एक से अधिक होता हैं।

$2(COOH)_2 + O_2 \longrightarrow 4CO_2 + 2H_2O$

अतः श्वसन गुणांक $= \frac{4CO_2}{O_2} = 4.0$

(v) **अवायवीय श्वसन मे श्वसन गुणांक :** अवायवीय श्वसन में कार्बनडाईऑक्साइड तो मुक्त होती है परन्तु ऑक्सीजन नहीं होती हैं। अतः इस प्रकार क्रियाओं में श्वसन गुणांक अनन्त (∞) होता हैं।

$$C_6H_{12}O_6 \xrightarrow{\text{जाइमेज}} 2C_2H_5OH\ 2CO_2 + \text{ऊर्जा}$$

अत: श्वसन गुणांक $= \frac{CO_2}{0(zero)O_2} =$ अनन्त(∞)

9D.8 श्वसन का महत्व

1. श्वसन में उत्पन्न ऊर्जा पौधों की विभिन्न उपापचायी प्रक्रियाओं में उपयोग की जाती है|
2. इस क्रिया के फलस्वरूप रासायनिक पदार्थ बनते है जो कोशिका अवयव के लिए आवश्यक है|
3. इस क्रिया में निकलने वाली CO_2 से वायुमण्डल संतुलित रहता है|
4. इस क्रिया में जटिल अघुलनशील भोज्य पदार्थ सरल,घुलनशील भोज्य पदार्थों में परिवर्तित होते है|
5. यह संचित ऊर्जा (स्थितिज) को काम में आने वाली ऊर्जा (गतिज ऊर्जा) में रूपान्तरित करती है|

9D.9 श्वसन को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Respiration)

श्वसन की दर कई कारकों द्वारा प्रभावित होती है|सबसे अधिक श्वसन दर सक्रिय रूप से विभाजित होने वाली विभाज्योतकी कोशिकाओं की होती है|श्वसन की दर को प्रभावित करने वाले कारकों को निम्न दो वर्गो में वर्गो में वर्गीकृत किया गया है-

1. बाह्य कारक(External Factors)2.आन्तरिक कारक(Internal Factors)
2. **बाह्य कारक :** श्वसन को प्रभावित करने वाले प्रमुख बाह्य कारक निम्न है-

(i) **तापमान** (Temperature) : तापमान श्वसन की दर को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक है| 5^0c से 25^0c या 30^0c तापमान तक श्वसन की दर लगातार बढ़ती है 5^0c से 30^0c तक प्रत्येक 10^0c तापक्रम बढ़ाने पर श्वसन की दर दुगुनी हो जाती है| अर्थात् 5^0c से 30^0c के मध्य श्वसन का तापक्रम गुणांक (Q_{10}) लगभग2.0होता है| श्वसन की दर अधिकतम 30^0c तापक्रम पर होती है|30^0c से अधिक ताप बढाने पर एक बार श्वसन की दर बढ़ती है| परन्तु शीघ्र ही यह घटने लगती है| अधिक ताप पर भाग लेने वाले एन्जाइम विकृत हो जाते है| इस कारण श्वसन की दर घटती है| निम्न तापक्रम पर भी श्वसन की क्रिया में भाग लेने वाले एन्जाइम निष्क्रिय हो जाते है,जिससे श्वसन की दर घट जाती है|इस कारण ही शीत -ग्रहों (Cold Storages)में फल व सब्जियां बिना साड़े-गले अधिक समय तक रह जाती है|

(ii) **ऑक्सिजन**(Oxygen): ऑक्सिजन वायवीय श्वसन के लिए आवश्यक कारक है क्योंकि वायवीय श्वसन में ऑक्सिजन अन्तिम इलेक्ट्रॉन ग्राही है| अत: यह श्वसन की दर को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण कारक है| कम ऑक्सीजन सान्द्रता पर वायवीय व अवायवीय दोनालों प्रकार के श्वसन होते हैं। जब ऑक्सीजन की सान्द्रता शून्य हो जाती हैं तब केवल अवायवीय श्वसन ही होता हैं। वायुमण्डल में O_2 की सान्द्रता 20.81 प्रतिशत तक होती हैं जो श्वसन की क्रिया के लिए आवश्यकता से कहीं अधिक हैं । अत: वातावरण मे O_2 की

सान्द्रता के एक सीमा तक' घटने बढ़ने से कोई प्रभाव नही पड़ता हैं, परन्तु 1-9 प्रतिशत तक या इससे कम सान्द्रता पर केवल अवायवीय श्वसन होता हैं जिसमें केवल इथाईल एल्कोहल तथा कार्बनडाईऑक्साइड ही बनते हैं। ऐसी अवस्था में श्वसन गुणांक अनन्त होता हैं।

(iii) **जल :** अधिकांश पादप ऊतकों में 80-98 प्रतिशत तक जल होता हैं । जल कोशिकाओं में होने वाली जैव रासायनिक अभिक्रियाओं के लिए माध्यम की तरह कार्य करता हैं तथा यह इनमें भाग लेने वाले एन्जाइमों की क्रियाशीलता बढ़ाता हैं । जल की मात्रा कम होने के कारण ही सूखे बीजों व फलों की श्वसन की दर कम होती हैं । तथा इस कारण इन्हें अधिक समय तक रखा जा सकता हैं । जबकि जल की उपस्थिति में कार्बोहाइड्रेट्स घुलनशील शर्करा में परिवर्तित हो जाते हैं, जो श्वसन का मुख्य क्रियाधार हैं जिससे श्वसन दर बढ़ जाती हैं ।

(iv) **प्रकाश :** श्वसन दिन व रात निरन्तर होता हैं । प्रकाश परोक्ष रूप से श्वसन की दर को प्रभावित करता हैं जैसे - (क) प्रकाश के द्वारा तापमान बढ़ता हैं जो श्वसन की दर को बढ़ाता हैं। (ख) प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा शर्करा का निर्माण होता हैं जो एक महत्वपूर्ण श्वसन क्रियाधार हैं तथा (ग) प्रकाश में रन्ध्र खुले रहते हैं अर्थात् गैसों का आदान-प्रदान होता हैं । अत: उपरोक्त तीन प्रकार से प्रकाश, श्वसन की दर को परोक्ष रूप से बढ़ाता हैं।

2. **आंतरिक कारक :** कोशिका जीवाद्रव्य व उसमें पायें जाने वाले श्वसनीय क्रियाधार प्रमुख आंतरिक कारक हैं ।

बोध प्रश्न

1. क्रेब्स चक्र कहाँ सम्पन्न होता हैं?

   ....

   ....

2. प्रोटोप्लाज्मिक श्वसन में श्वसन क्रियाधार क्या हैं?

   ....

   ....

3. सिट्रिक अम्ब चक्र सम्पन्न होता हैं?

   ....

   ....

4. कोशिका की सर्वाधिक ऊर्जा मुद्रा कहलाती हैं?

   ....

   ....

5. पाइरूविक अम्ल से ऐटिटाइल CoA बनने की प्रक्रिया कहलाती है?

....

....

6. किसका श्वसन गुणाक एक से कम हैं?

....

....

7. ग्लाइकोलाइसिस में कुल कितने ATP अणुओं का शुद्ध लाभ होता हैं?

....

....

9D.10 सारांश

इस इकाई के भाग से आप यह समझ पाये हैं कि किस प्रकार सजीव अपनी जैविक क्रियायें सम्पादित करने के लिए ऊर्जा का उपयोग करता हैं । श्वसन क्रिया से मुक्त हुई ऊर्जा का उपयोग किस प्रकार विभिन्न क्रियाओं के सम्पादन में किया जाता हैं । श्वसन के मुख्य चरण ग्लाइकोलाइसिस में ऑक्सीजन का इस्तेमाल नहीं होता हैं । क्रेब्स चक्र जो कि दूसरा चरण हैं उसमें ATPअणुओं और कई अम्लों का निर्माण भी होता हैं । इस भाग में श्वसन का महत्व एवं उसको प्रभावित करने वाले कारक को भी समझ पायें हैं ।

9D.11 शब्दावली

(1) **ग्लाइकोलाइसिस :** ग्लूकोज के अणु का जैव रासायनिक क्रियाओं द्वारा पाइरूविक अम्ल में विघटित होकर ऊर्जा मुक्त करना ग्लाइकोलाइसिस कहलाता हैं ।

(2) **डीकार्बोक्सिलीकरण :** पाइरूविक अम्ल से CO_2 का मुक्त होना तथा एसीटलडीहाइड का निर्माण डीकार्बोक्सिलीकरण कहलाता हैं ।

(3) **किण्वन :** ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में होने वाला श्वसन किण्वन कहलाता हैं ।

9D.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. पादन कार्यिकी एवं जैव रसायन, डा. एल. बी. सक्सेना, एम. एल. वर्मा, डा. बी. एल चौधरी, अल्का पब्लिकेशन, अजमेर
2. वनस्पति शास्त्र, डा. ओ. पी. दायमा, सी. बी. एच. पब्लिकेशन जयपुर
3. वनस्पति विज्ञान, डा. प्रमोद कुमार शर्मा, डा. मन्जु शर्मा, डा. प्रेम प्रकाश पालीवाल, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर

9D.13 बोध प्रश्नो के उत्तर

1. माइटोकोन्डिया में
2. प्रोटीन
3. माइटोकोन्डिया के मेट्रिक्स में
4. ATP
5. वसा का
6. दो

9D.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. ग्लाइकोलाइसिस से आप क्या समझते हैं
2. श्वसन को परिभाषित कीजिए? श्वसन कितने प्रकार का होता हैं?
3. श्वसन गुणांक किसे कहते हैं? श्वसन में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न श्वसन-क्रियाधारों के श्वसन गुणांक बताइये?
4. पादप कार्यिकी में सर एच. ए. क्रेब्स का क्या योगदान हैं?
5. निम्न पर टिप्पणियाँ लिखिए :

   (क) किण्वन (ख) ऑक्सीजन फॉस्फोरिलीकरण

इकाई 9E :प्रकाश संश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

9E.0 उद्देश्य

9E.1 प्रस्तावना

9E.2 प्रकाश -संश्लेषण की खोज व इतिहास

9E.3 प्रकाश -संश्लेषण में उपयोगी वर्णक

9E.4 प्रकाश -संश्लेषण की क्रिया -विधि

9E.4.1 प्रकाश अभिक्रिया

9E.4.2 अप्रकाशिय अभिक्रिया

9E.5 प्रकाश संश्लेषण को प्रभावित करने वाले कारक

9E.6 प्रकाश संश्लेषण का महत्व

9E.7 सारांश

9E.8 शब्दावली

9E.9 संदर्भ ग्रन्थ

9E.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

9E.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

9E.0 उद्देश्य

इकाई के इस भाग में हम प्रकाश संश्लेषण का विस्तार से अध्ययन करेंगे । पौधों में उपयोगी वर्णकों की भूमिका तथा प्रकाश संश्लेषण की क्रिया विधि रख उसको प्रभावित करने वाले कारक का भी अध्ययन करेंगे । पौधों में प्रकाश संश्लेषण का महत्व भी बतायेंगे ।

9E.1 प्रस्तावना

अधिकांशतः हरे पौधे स्वपोषी (Autotrophic) होते हैं अर्थात् पौधे अपना भोजन स्वयं निर्मित करते हैं । इसकी कारण हरे पौधों को उत्पादक कहा गया हैं तथा इसकी भोजन के आधार पर इस धरातल पर समस्त जीवधारियों का अस्तित्व सम्भव हैं । स्वपोषी पौधे सदैव हरे अर्थात्-पर्णहरितयुक्त होते हैं । हरे पौधे सूर्य की उपस्थिति में क्लोरोफिल के सहयोग से भोजन का निर्माण करने में सक्षम होते हैं । हरे पौधे भोजन का निर्माण तो करते ही हैं परन्तु उसका संचय भी करते हैं । यही संचित भोजन समस्त परपोषियों के लिए ऊर्जा का स्रोत होता हैं । भोजन निमार्ण की इस उपचयी (Anabolic) क्रिया को प्रकाश - संश्लेषण (Photosynthesis) कहते हैं । तथा यह सबसे महत्वपूर्ण जैविक क्रिया (Biological Phenomenon) होती हैं । हरे पौधें सूर्य प्रकाश की ऊर्जा को प्राप्त करते हैं तक जल व कार्बन -डाई - ऑक्साइड से 'भोजन बनाते हैं|भोजननिर्माण 'के अतिरिक्त यह क्रिया वायुमण्डल में CO_2 व O_2 का संतुलन बनाये रखने में भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं । पृथ्वी पर होने वाले प्रकाश - संश्लेषण का लगभग

85% भाग महासागरों में तथा 5% भाग नदी, तालाबो में होता हैं । 90% प्रकाश - संश्लेषण शैवालों के द्वारा होता हैं ।

परिभाषा (Definition)

"प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis, Photo=प्रकाश, Synthesis=संश्लेषण) हरे पौधों की वह क्रिया हैं जिसमें क्लोरोफिल प्रकाश से ऊर्जा प्राप्त कर, जल व कार्बन - डाई - ऑक्साइड से सरल कार्बोहाइड्रेट्स का निर्माण करते हैं तथा ऑक्सीजन उत्पाद के रूप में निर्मुक्त होती हैं । "

या

"प्रकाश संश्लेषण वह क्रिया हैं । जिसमें हरे पौधे सूर्य प्रकाश को ग्रहण कर वायु से ली गई कार्बन - डाई - ऑक्साइड तथा मृदा से अवशोशित जल द्वारा कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करते हैं तथा ऑक्सीजन उपउत्पाद (By Product) के रूप में बाहर निकालते हैं । "

प्रकाश संश्लेषण की क्रिया :

$$6CO_2 + 12H_2O \xrightarrow[\text{क्लोरोफिल}]{\text{प्रकाश}} C_6H_{12}O_6 + 6O_2 + 6H_2O$$

9E.2 प्रकाश - संश्लेषण की खोज व इतिहास

1. अरस्तु तथा थियोफ्रेस्टस के अनुसार पादपों का भार मृदा ह्ययूमस (Soil Humus) से आवश्यक तत्वों के अवशोषण फलस्वरूप बढ़ता हैं । इसे ह्ययूमस (Humus Theory) कहते हैं ।
2. एफ. एफ. ब्लेकमैन (1905) प्रकाश संश्लेषण के दो चरण बताए - अप्रकाशीय क्रिया (Dark Reaction) तथा प्रकाशीय क्रिया (Light Reaction)
3. राबर्ट हिल (1937) ने बताया हरित लवक का मुख्य कार्य प्रकाश में जल का ऑक्सीकरण (Photoxidation) होता है ।
4. 'केल्विन (1954) ने CO_2 से कार्बोहाइड्रेट बनने की सभी क्रियाओं को बताया । इसे C_3 या केल्विन चक्र कहते हैं
5. हेच तथा स्तेक (1967) ने उष्ण कटिबन्धीय (Tropical) पौधें में C_4 चक्र के विषय में बताया ।

9E.3 प्रकाश - संश्लेषण में उपयोगी वर्णक

प्रकाश के अवशोषण तथा इसको रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित करने के उद्धेश्य से पौधें में विभिन्न वर्णक (Pigment) उपस्थित होते हैं । इन्हें प्रकाश संश्लेषी वर्णक (Photosyntheic Pigments)कहंते हैं । पर्णरहित (Cherophylls) तथा केरोटिनाइड्स (Cerotenoids) उच्च श्रेणी के पादपों के प्रधान प्रकाश संशलेषी वर्णक हैं । इनके अतिरिक्त लाल तथा नीले रहित शैवालों में वर्णकों का एक तृतीय वर्ण भी पाया जाता हैं । जिसे बिलिप्रोटीन (Billiprotein) अथवा क्रोमोप्रोटीन (Chromoprotein) कहते हैं ।

इस फार प्रकाश संश्लेषी वर्णकों के निम्नलिखित तीन वर्ग हैं - (i) पर्णहरित (Chlorophylls), (ii) केरोटिनाइड्स (Carotenoids), (iii) बिलिप्रोटीन (Biliprotein)

(i) **पर्णहरित वर्णक** (Chlorophylls Pigment) : पर्णहरित पौधों के महत्वपूर्ण हरे वर्णक हैं जो प्रकाश संश्लेषण क्रिया में सर्वाधिक सक्रिय होते हैं । अब तक आठ विभिन्न प्रकार के पर्णहरितों का प्रभेद किया जा चुका हैं । ये हैं पर्णहरित a,b,c,d,eजीवाणु पर्णहरित a तथा जीवाणु विरिडन (Bacterioviridin) पर्णहरित a एक सार्वत्रिक वर्णक हैं, जो समस्त प्रकाश संश्लेषी पादपों में पाया जाता हैं पर्णहरित b भी प्राय : पर्णहरित a के साथ उपस्थित रहता हैं, हालांकि यह नीलहीरत शैवालों में अनुपस्थित होता हैं । पर्णहरित c भूरी शैवालों, पर्णहरित dलाल शैवालों व वर्णहरित c पील हरित शैवालों में उपस्थित होता हैं । जीवाणु पर्णहरित a तथा b मुख्य रूप से नीलारूण प्रकाश संश्लेषी जीवाणुओं (Purple Photosynthetic) में तथा जीवाणु - विरिडन हरित प्रकाश संश्लेषी (Green photosynthetic Bacteria) में उपस्थित होता हैं ।

(ii) **केरोटिनॉइड वर्णक** (Carotenoid Pigment) : केरोटिनॉइड वर्णक वस्तुत : लिपाइड यौगिक हैं जो पौधों तथा जन्तुओं में व्यापक रूप से वितरित रहते हैं. । बर्णकों का यह महत्वपूर्ण वर्ग हैं जो पीले, नारंगी, भूरे अथवा लाल रंग के हो सकते हैं | अंधेरे में उगने वाले पौधों में पर्णहरित उत्पन्न नहीं होता बल्कि केरोटिनॉइड वर्णक यथापूर्व उत्पन्न होते हैं । जिससे ये पौधे पीले रंग के हो जाते हैं ।

केरोटिनॉइड वर्णकों को दो वर्गो में विभेदित किया जा सकता: हैं -

(A) कइरोटिन (Carotenes)

(B) जैन्थोफिल्म (Xanthophylls)

(iii) **बिलिप्रोटीन** (Biliprotein) : पादप वर्णकों का यह तीसरा वर्ग हैं । जो केवल शैवालों में ही पाया जाता हैं । बिलिप्रोटीनों को दो प्रकारों में विभेदित किया गया हैं । ये हैं - लाल रंग के फाइकोएरेथ्रिन्स (Phycoerythrins) तथा नीले रंग के फायकोसायनिन्स (Phycocyanins) ये क्रमश : रोडोफाइसी (Rhodophyceae) तथा सायनोफायसी (Cynophyceae) कुलों की लाल तथा नीलहीरत शैवालों में उपस्थित होते हैं ।

9E.4 प्रकाश संश्लेषण की क्रिया विधि

प्रकाश संश्लेषण का स्थल -हरित लवक (Chloroplast-The site of Photosynthesis)

हरित लवक वे कोशिकाएं हैं जिनमें प्रकाश -संश्लेषण की विलक्षण एवं अद्भुत क्रिया का आदि से अंत तक सम्पादन होता हैं । प्रकाश ऊर्जा एवं CO_2 का अवशोषण तथा अन्ततोगत्वा CO_2 का स्टार्च में परिवर्तन एवं ऑक्सीजन का निकास आदि सभी महत्वपूर्ण क्रियायें दीप्तिमान हरितलवक में सम्पन्न होती हैं ।

हरितलवक (Chloroplast;Chlore=Green) ' क्लोरोप्लास्ट ' शब्द का गठन शिम्पर (Schimper,1883) ने किया । यह हरी पादप कोशिकाओं में उपस्थित दोहरी कलाबद्ध कोशिकांग होता हैं जिसमें भीतर की ओर प्रोटीनमय पीठिका में क्लोरोफिल युक्त पटालिकायें अन्तर्विष्ट रहती हैं । हरितलवक प्रकाश फास्फोलीकरण व प्रकाश संश्लेषी CO_2 स्थिरीकरण का महत्वपूर्ण कार्य करते है|

हरितलवक का रासायनिक संघटन (Chemical Composition of Chloroplast)

एक परिपक्व हरितलवक शुष्कभार 'के आधार पर निम्नांकित रासायनिक पदार्थों का बना होता हैं-

1. प्रोटीन्स 40-56%
2. पर्णहरित 3-10%
3. केरोटिनाइड्स 1 - 2%
4. फास्फोलिपिड्स 23-32%
5. RNA 5%
6. DNA1%
7. एन्जाइम व सह - एन्जाइम - अंशमात्र

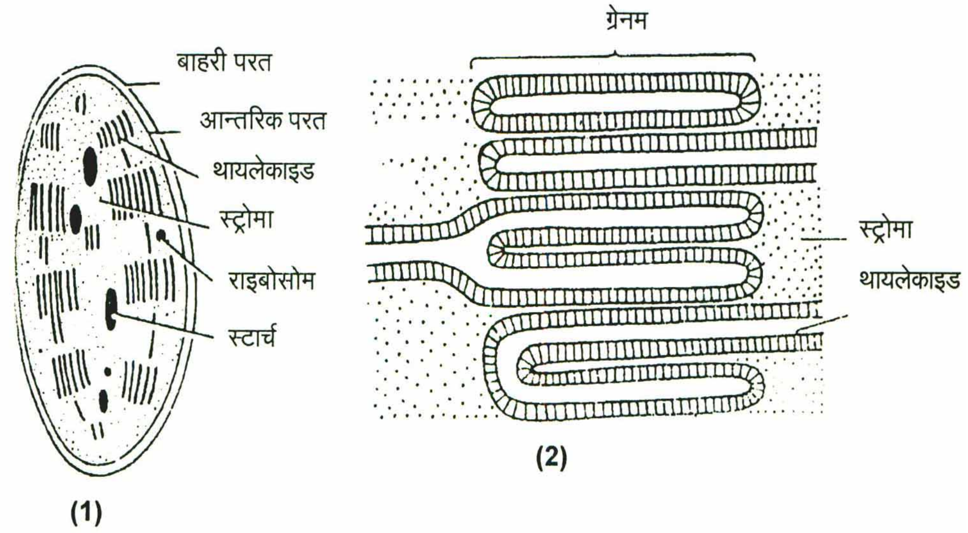

चित्र: हरितलवक का काट (1)सक्षेप, (2) विस्तृत

Mechanism of Photosynthesis

कार्बन -डाई - ऑक्साइड (CO_2) तथा जल (H_2O) प्रकाश संश्लेषण के दो प्रमुख कच्चे पदार्थ हैं। पौधों के पर्णहरित तथा अन्य वर्णक प्रकाश ऊर्जा का अवशोषण कर इसका रासायनिक ऊर्जा के रूप मे रूपान्तरण कर देते हैं ।

प्रकाश संश्लेषण की समग्र क्रियाविधि को निम्नलिखित समीकरण द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता हैं -

विकिरण ऊर्जा

$$6CO_2 + 6H_2O \xrightarrow{\hspace{3cm}} C_6H_{12}O_6 + 6O_2 \uparrow$$

पर्णहरित हेक्सोज शर्करा'

अभिनव वर्षों में एकत्रित हुये प्रमाणों के आधार पर स्थापित हो गया हैं कि प्रकाश संश्लेषण क्रिया में दो स्पष्ट प्रावस्थायें प्रयुक्त होती हैं -

1. प्रकाश प्रावस्था (Light Phase)
2. अप्रकाश प्रावस्था (Dark Phase)

प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में दो प्रावस्थाएं (Phase) पाई जाती हैं जिन्हें प्रकाश रासायनिक अभिक्रिया (Photochemical Reaction) अथवा हिल अभिक्रिया तथा अप्रकाशिक अभिक्रिया (Dark Reaction) अथवा ब्लेकमैन अभिक्रिया कहा जाता हैं । इनमें से प्रथम प्रक्रिया में प्रकाश की आवश्यकता होती हैं जिससे इस प्रकाश ऊर्जा का उपयोग सीधे ही ऊर्जा वाहक अणु बनाने में होता हैं । ये ऊर्जा -वाहक अणु अप्रकाशिक अभिक्रिया में ऊर्जा स्रोत के रूप में प्रस्तुत होते हैं । अप्रकाशिक अभिक्रिया प्रकाशिक अभिक्रिया में बने उत्पादों पर निर्भर करती हैं । क्योंकि इन्हीं उत्पादों का उपयोग कार्बोहाइड्रेट्स में C-Cसहसंयोजक बंध बनाने में होता हैं । प्रकाश संश्लेषण में होने वाली प्रकाशिक व अप्रकाशिक क्रियायें क्रमश: क्लीरोप्लान्ट के ग्रेना व खोमा भाग में सम्पन्न होती हैं ।

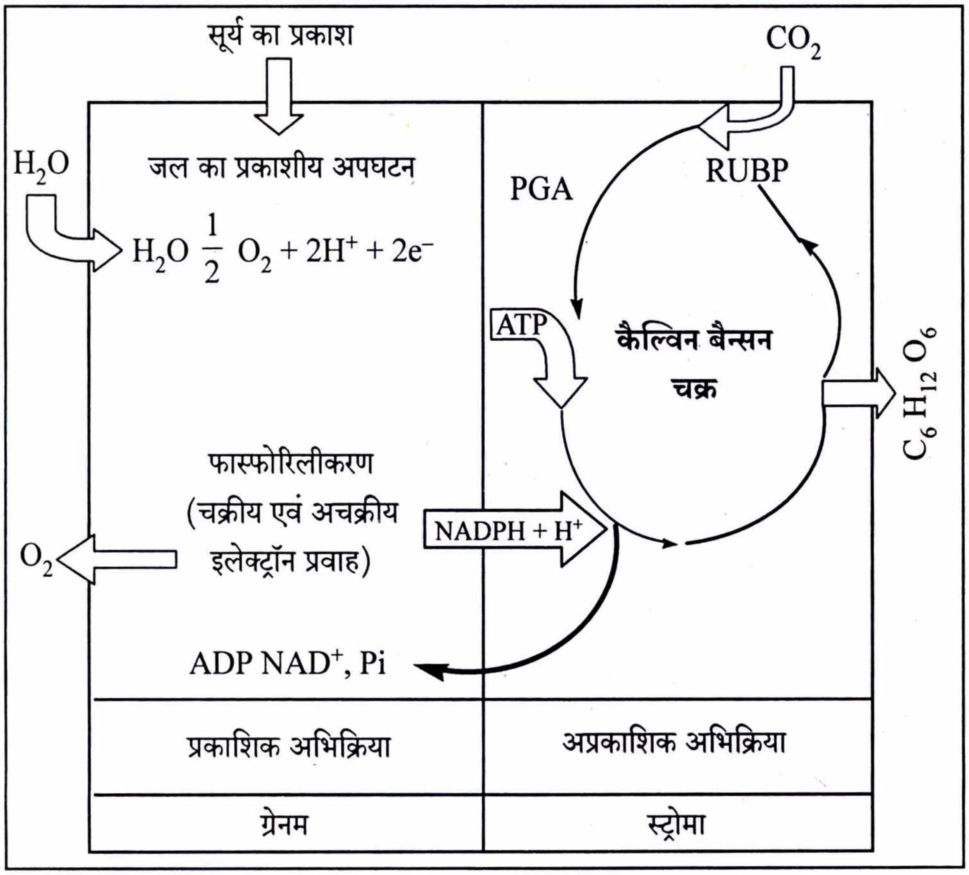

प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया में सम्पन्न होने वाली प्रकाशिक व

अप्रकाशिक अभिक्रियाओं का सार

प्रकाश की प्रकृति : प्रकाश विद्युत चुम्बकीय तंरगों का रूप हैं, जिनका तरंग दैर्ध्य 200 से 40000 नेनोमीटर होता हैं । इस स्ट्रोक्टम में दृश्य प्रकाश तरंग दैर्ध्य 390 - 780 नेनोमीटर का उपयोग पादप प्रकाश संश्लेषण में करते हो ।

(i) **प्रकाश रासायनिक अभिक्रिया** (Photochemical Reaction/Light Reaction) : प्रकाश संश्लेषण के इतिहास में यह बताया जा चुका हैं कि प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में मुक्त होने वाली O_2 जल के प्रकाशिक अपघटन द्वारा वियोजित होती हैं प्रकाश संश्लेषण में सम्पन्न होने वाली प्रकाशिक अभिक्रिया में निम्न रासायनिक घटनायें होती हैं -

(क) प्रकाश का अवशोषण व क्लोरोफिल अणु का उत्तेजित होना : प्रकाश के निश्चित फोटोन का अवशोषण कर क्लोरोफिल अणु कुछ समय के लिए उत्तेजित अवस्था में आ जाता हैं। क्लोरोफिल (सामान्य) + फोटोन $\rightarrow$ क्लोरोफिल' (उत्तेजित अवस्था)

(ख) जल का प्रकाशिक अपघटन व ऑक्सीजन का विकास : क्लोरोफिल द्वारा अवशोषित की गई प्रकाश ऊर्जा का उपयोग जल के प्रकाशिक अपघटन में होता हैं । जिससे O_2 का वियोजन होता हैं, जो श्वसन क्रिया में प्रयुक्त होती हैं तथा बची हुई O_2 वायुमण्डल में मुक्त हो जाती हैं । O_2 के एक अणु के निकलने के लिए पानी के दो अणुओं का प्रकाशिक अपघटन होता हैं । पानी के प्रकाशिक अपघटन की क्रिया निम्न हैं -

$$2H_2O \xrightarrow{\text{प्रकाश}} 4H^+ + 4e^- + O_2$$

(ग) NADPH का निर्माण : जल के प्रकाशिक अपघटन में मुक्त होने वाली हाइड्रोजन $NADP^+$ को अपचपित कर NADPH+H^+ का निर्माण करती हैं पानी के दो अणुओं के प्रकाशिक अपघटन के पश्चात् निकलने वाले 4H^+से 2 NADPH +H^+बनते हैं, जो कि CO_2 के एक अणु के अपचयन के लिए आवश्यक होते हैं । इस क्रिया में $4e^-$ भी आवश्यक होते हैं जो प्रथम प्रकाश तंत्र से प्राप्त होते हैं -

$$2NADP^+ + 4H^+ + 4e^- \longrightarrow 2NADP + 2H^+$$

CO_2 के अणुओं के अपचरान के लिए $12NADP + 2H^+$ आवश्यक होते हैं जो कि पानी के 12 अणुओं के अपघटन पश्चात् प्राप्त होते हैं जो कि पानी के 12 अणुओं के अपघटन के पश्चात प्राप्त हो

(घ) प्रकाशिक फॉस्फोरिलीकरण : प्रकाश ऊर्जा द्वारा उत्तेजित क्लोरोफिल से मुक्त होने वाली ऊर्जा का उपयोग ATP संश्लेषण में होता हैं । जिसे प्रकाशिक फॉस्फोरिलीकरण कहते हैं ।

इमर्सन प्रभाव (Emerson Effect)

इमल्शन एवं सहयोगियों ने प्रकाश की विभिन्न तरंग दैर्ध्य (Wavelengths) में प्रकाश संश्लेषण की दर का मापन करते हुए यह पता लगाया कि स्पेक्ट्रस के लाल क्षेत्र में जहाँ तरंग दैर्ध्य 680λ से अधिक होती हैं प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया बहुत कम हो जाती हैं । इसे रेड ड्रॉप (Red Drop) कहते हैं । उन्होंने यह भी बताया कि मिश्रित तरंग दैर्ध्य (680λ से

अधिक व कम) में होने वाले प्रकाश संश्लेषण की दर दोनों प्रकार के तरंग दैर्ध्य वाले प्रकाश में होने वाली अलग-अलग प्रकाश संश्लेषण के योग से अधिक होती हैं । इस घटना को इमर्सन वृद्धिकरण प्रभाव (Emerson Enhancement Effect) कहते हैं ।

उपरोक्त प्रयोगों के आधार पर इमर्सन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पादपों में प्रकाश संश्लेषण करने के लिए वर्णकों के कम से कम दो समूह पाये जाते हैं । एक वह जो उच्च या बड़ी तरंग दैर्ध्य को प्रकाश का अपशोषण करते हैं । तथा दूसरे वह जो निम्न या छोटी तरंग दैर्ध्य के प्रकाश का अवशोषण करते हैं । इन वर्णक समूहों को क्रमश : प्रकाश तंत्र - I (Photosystem-I) व प्रकाशतंत्र - II (Photosystem-II) कहा जाता हैं । थायलेकॉइड में क्लोरोफिल व इसके वर्णकों के विन्यास को प्रकाश तंत्र में एक अभिक्रिया केन्द्र (Reaction Centre) तथा इसको चारों तरफ से होते हुये सहायक वर्णक पाये जाते हैं । ये सहायक वर्णक प्रकाशिक ऊर्जा को अवशोषित करके अभिक्रिया केन्द्र को दे देते हैं । इन अणुओं को एन्टीना अणु (Antenna Molecules) कहते हैं ।

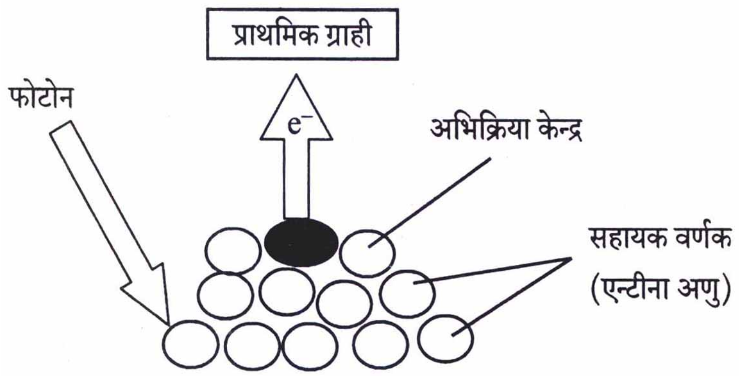

प्रकाशतंत्र की क्रियाविधि

प्रकाश तंत्र -I : प्रकाश तंत्र -I में फोटोन की ऊर्जा का अवशोषण क्लोरोफिल -a के विभिन्न अणु व केरोटिनॉइड करते हैं । जो भिन्न भिन्न तरंग दैर्ध्य वाली तरंगों का अवशोषण कर अंत में विशेष प्रकार के क्लोरोफिल -a700 (P_{100}) अणु जो अभिक्रिया केन्द्र की तरह कार्य को स्थानान्तरित कर देते हैं । अभिक्रिया केन्द्र में प्रकाश रासायनिक अभिक्रिया के कारण उच्च वाले इलेक्ट्रोन्स का उत्सर्जन होता हैं । यह प्रकाश तंत्र चक्रीय व अचकयि दोनों प्रकार के फोस्फोलीकरण में भाग लेता हैं ।

प्रकाश तंत्र -I की कार्यविधि (Mechanism of Photosystem-I) : इस प्रकाश तंत्र में सूर्य के प्रकाश के फोटोन क्लोरोफिल -a (P_{100} Pigment-700)से टकराते हैं । तथा फोटोन की क्वान्टम ऊर्जा का अवशोषण कर क्लोरोफिल से 2 इलेक्ट्रॉन उत्सर्जित होते हैं । जिससे क्लोरोफिल अणु ऑक्सीजन अवस्था में आ जाते हैं । ये उत्सर्जित इलेक्ट्रॉन एक आयरन सल्फर प्रोटीन [A(Pes)] द्वारा ग्रहण कर लिये जाते हैं । जिससे A अपचयित हो जाता हैं । पुन : ये इलेक्ट्रॉन A से फेरीडाक्सिन (fb) द्वारा ग्रहण कर लिये जाते हैं । अपचयित फेरीडाक्सिन से इलेक्ट्रॉन $NADP^+$ के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं, जो अपयचित होकर NADPH+H^+ अवस्था

में आ जाते हैं । NADPH+H^+ शक्तिशाली अपचयनकारी (Strong Reductant) हैं इस प्रकार बनी NADPH+H^+ अप्रकाशिक अभिक्रिया में CO_2 के अपचयन में काम आती हैं ।

प्रकाशतंत्र -II : प्रकाश तंत्र -II में फोटोन ऊर्जा का अवशोषण क्लोरोफिल -a 673, क्लोरोफिल-b, फाइकोबिलिन्स करते हैं । इस वर्णक तंत्र में भी इन अणुओं द्वारा भिन्न भिन्न तरंग दैर्ध्य की प्रकाश तरंग का अवशोषण कर अभिक्रिया केन्द्र (P_{680}) को हस्तानान्तरित कर दिया जाता हैं । इस प्रकाश तंत्र में क्लोरोफिल -a 673, क्लोरोफिल -b 650 व जैन्थोफिल एन्टीना का कार्य करते हैं । इस प्रकाश तंत्र में प्रकाश तंत्र -I की तुलना में कम तरंग दैर्ध्य वाले फोटोन ऊर्जा का अवशोषण होता हैं । इस प्रकाश तंत्र का उपयोग केवल अचकयि प्रकाश फॉस्फोरिलीकरण में होता हैं ।

प्रकाश तंत्र -II की कार्यविधि (Mechanism of Photosystem-II) : इस प्रकाश तंत्र में जल का प्रकाशिक अपघटन होता हैं । प्रकाश तंत्र -II में इलेक्ट्रॉन स्थानान्तरण श्रृंखला की शुरूआत इस प्रकाश तंत्र के वर्णकों द्वारा विशेष तरंग दैर्ध्य वाली प्रकाश तरंगों के अवशोषण से होती हैं । जब क्लोरोफिल प्रकाश तरंगों का अवशोषण करता हैं । तो यह उत्तेजित अवस्था में आ जाता हैं । जिससे इसमें से इलेक्ट्रॉन मुक्त होते हैं । यह मुक्त इलेक्ट्रॉन ग्राही अणु फीयोफाइटिन द्वारा ग्रहण कर लिये जाते हैं । क्लोरोफिल अणु अब प्रबल ऑक्सीकारक की तरह कार्य करते हैं । यह प्रक्रिया जल का प्रकाशिक अपघटन (Photolysis of Water) कहलाती हैं । इसमे मैंग्नीज, के ल्शियम, क्लोराइडआयन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । जल के अपघटन द्वारा मुक्त होने वाले इलेक्ट्रॉन P680 द्वारा ग्रहण कर लिये जाते हैं । P68० द्वारा यौगिक (Pheo)को स्थानान्तरित e प्लास्टोक्वीनान(PQ)$\rightarrow$साइटोक्रोम b_6 एवं f से होते हुये प्लास्टोसायनीन(PC) द्वारा ग्रहण कर लिये जाते हैं । जिससे यह अपचयित हो जाते हैं । अपचयित प्लास्टोसायनिन से ये इलेक्ट्रॉन्स प्रकाश तंत्र -I के P_{700} अणु द्वारा ग्रहण कर लिये जाते हैं । (P_{700} इलेक्ट्रॉन ग्रहण उस अवस्था में ही करता हैं जब उसके इलेक्ट्रॉन प्रकाश फोटोन द्वारा उन्सर्जित किये जा चुके हो)

इलेक्ट्रॉन श्रृंखला में प्लास्टोसायनिन प्रकाश तंत्र -II व प्रकाश तंत्र - I के बीच योजक कड़ी का कार्य करता हैं ।

$$H_2O \xrightarrow[\text{क्लोरोफिल}]{\text{फोटोन}} \frac{1}{2}O_2 + 2H^+ + \mathrm{Re}^-$$

इलेक्ट्रॉन स्थानान्तरण श्रृंखला (Electron Transfer Chaun) : प्रकाश संश्लेषण में प्रकाश द्वारा क्लोरोफिल अणुओं से मुक्त हुए इलेक्ट्रॉनों से होने वाली अभिक्रियाओं को इलेक्ट्रॉन स्थानान्तरण श्रृंखला कहा जाता हैं । जिन्हें 1939 में रॉबर्ट हिल (Robert Hill) ने बताया । प्रकाश फॉस्फोरिलीकरण (Photophosphorylation) पादप क्लोरोप्लास्ट में सूर्य के प्रकाश की

उपस्थिति में ADP के निर्माण की प्रक्रिया फॉस्फोरिलीकरण कहलाती हैं । इस क्रिया को आर्नन ने खोजा था। प्रकाश फॉस्फोरिलीकरण क्रिया दो प्रकार से होती हैं -

1. **चक्रीय प्रकाश फॉस्फोरिलीकरण** (Cyclic Photophosphorylation) : प्रकाश तंत्र - I में P_{700} से उत्सर्जित इलेक्ट्रॉन्स मै - $A \rightarrow Fd \rightarrow cy + b6/f \rightarrow Pc$ से होते हुए P_{700} अणु में वापस लौट आते हैं । इस प्रकार वापस लोटते e^{-} PQ (Pastoauine)व Cyt-f के मध्य ADP से ATP का निर्माण करते हैं । क्योंकि इस क्रिया में e^{-} P_{700} से उत्सर्जित होकर पुन : P_{700} में चक्रीय क्रिया द्वारा पहुँच जाते हो तथा ATP का निर्माण करते हो इस कारण इसे चक्रीय फॉस्फोरिलीकरण कहते हो ।
2. **अचक्रीय प्रकाश फॉस्फोरिलीकरण** (Noncyclic Photophosphorylation) : यह फॉस्फोरिलीकरण दोनों प्रकाश तंत्री (PSIतथा PS II) के द्वारा होता हैं । इस क्रिया में P_{680} द्वारा उत्सर्जित e^{-} पुन : P_{680} में नहीं आकर एक रेखीय पथ द्वारा पदार्थ Pheol $\rightarrow$PQ$\rightarrow$Cy+b_6 $\rightarrow$Cy+f$\rightarrow$Pcसे होते हुये P_{700} में पहुँच जाते हो तथा ADPव Pi द्वारा ATP का निर्माण करते हो । इसमें टे PSII के e^{-} के द्वारा ATP व त् PS-I से निकले हुये e^{-} के द्वारा $NADPH + H^{+}$ बनता हैं ।

चक्रीय व अचकयि फॉस्फोरिलीकरण में अन्तर

क्र.स.	**चक्रीय प्रकाश फॉस्फोरिलीकरण**	**अचक्रीय प्रकाश फॉस्फोरिलीकरण**
1.	जल का प्रकाशीय अपधटन नही होता हैं	जल का प्रकाशीय अपधटन नही होता हैं
2.	ऑक्सीजन का निकास नही होता	ऑक्सीजन बाहर निकलती हैं ।
3.	केवल PSIव PSII के द्वारा होता है	PSIव PSII के द्वारा
4.	$NADPH + H^{+}$ का संश्लेषण नहीं होता	$NADPH + H^{+}$ का संश्लेषण होता हैं ।

अत : प्रकाश रासायनिक क्रिया में भाग लेने वाले दो वर्णकध /प्रकाश तंत्री द्वारा जल अपघटन के कारण O_2 मुक्त होती हैं तथा ATP व $NADPH + H^{+}$ निर्माण होता हैं । ATP को स्वांगीकरण शक्ति व $NADPH + H^{+}$ को अपयाचक शक्ति कहा जाता हैं ।

बोध प्रश्न

1. प्रकाशिक अभिक्रिया का मुख्य केन्द्र क्या हैं?

   ....

   ....

2. प्रकाश संश्लेषण का पहला स्थायी पदार्थ कौनसा हैं?

   ....

   ....

3. अप्रकाशिक /प्रकाशहीन अभिक्रिया कहाँ सम्पन्न होती हैं?

   ....

   ....

4. कार्बनडाई ऑक्साइड का अपचयन किस चक्र द्वारा समझाया गया हैं?

	....
	....
5.	नीचे दिये गये संक्षिप्तीकरण का पूरा नाम दीजिये ।
	....
	....
	ATP…………………………………………………..
	NADP……………………………………………
	PGA……………………………………..

(ii) प्रकाशिक /प्रकाशहीन अभिक्रिया (Dark Reaction)

प्रकाश संश्लेषण में सम्पन्न होने वाली यह क्रिया क्लोरोप्लास्ट के खोमा (Stroma) में सम्पन्न होती हैं । तथा इसमें प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती हैं । इस प्रक्रिया में वायुमण्डल द्वारा अवशोषित CO_2 विभिन्न एन्जाइमों द्वारा अपचयित होकर कार्बोहाइड्रेट्स का निर्माण करती हैं । इस प्रक्रिया को कार्बन स्थिरीकरण भी कहा जाता है ।

पादपों में कार्बन स्थिरीकरण निम्न प्रकियाओं द्वारा सम्पन्न होती हैं -

(क) केल्विन बैन्सन चक्र (calvin-Benson Cycle/C_3 Cycle)

(ख) हेच - स्तेक चक्र (Hatch- Slack Cycle/C_4 Cycle)

(क) **केल्विन - बोन्सन चक्र** (Calvin -Benson Cycle) : प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया में CO_2 का कार्बोहाइड्रेट में परिवर्तन का पथ रेडियोएक्टिव ट्रेसर तकनीक द्वारा केल्विन, बेन्सन ने सन् 1946 - 53 के मध्य बताया । इस कार्य के लिए उन्हें 1961 में नोबेल पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया ।

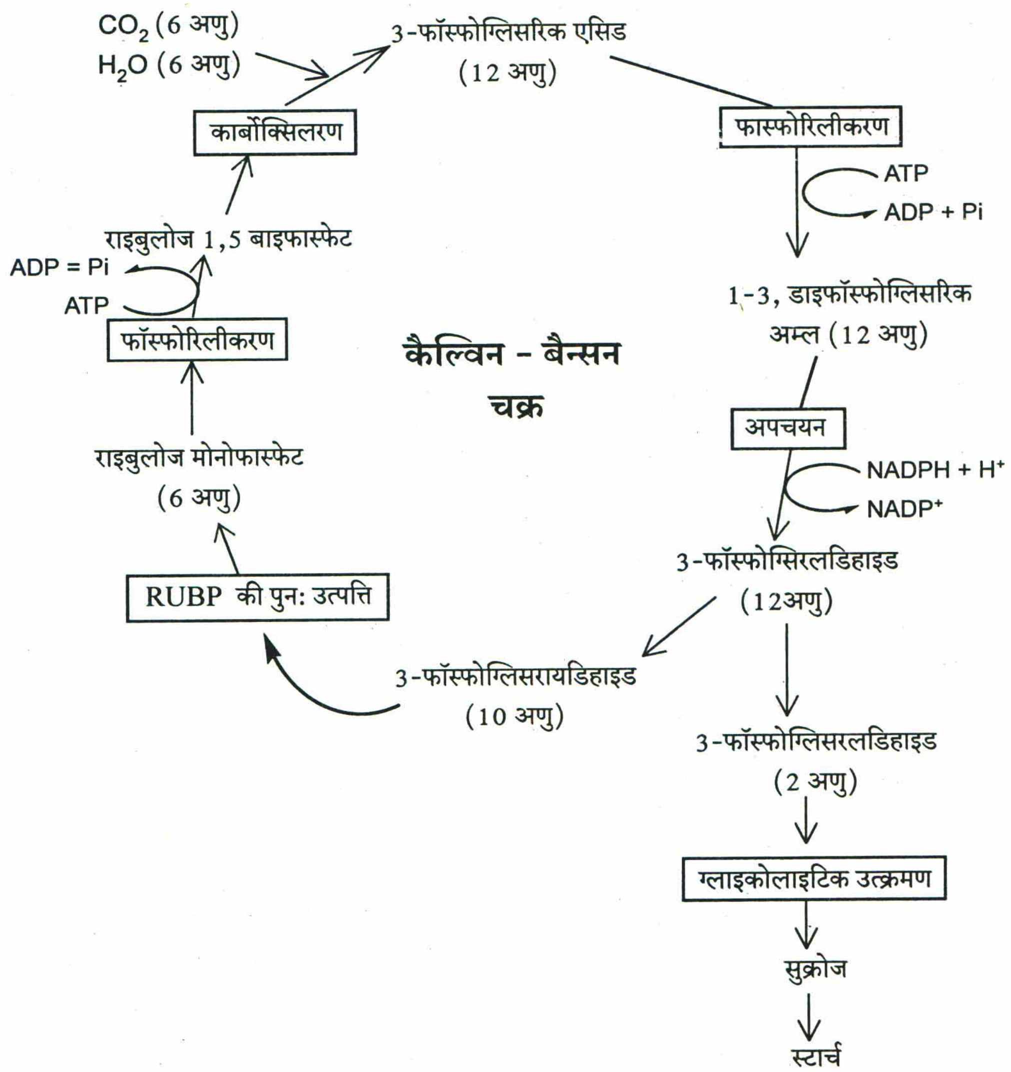

कैल्विन - बैन्सन चक्र का सार

केल्विन - बेन्सन चक्र में CO_2, के अपचयन को निम्मानुसार समझा जा सकता हैं -

1. **प्रथम फॉस्फेरीकरण** (First Phosphorylation). CO_2 के अप्रकाशिय अभिक्रिया में भाग लेने से पूर्व रिबुलोस - 5 फॉस्फेट ATP से संयुक्त होकर रिबुलोस 1 ,5 बिसफॉस्फेट का निर्माण होता है ।

$$6\text{ -5- Ribulose-Phosphate}+6\text{ ATP} \xrightarrow{Phosphopentakinase} 6\text{ Ribulose-1-5-Bisphosphate} + 6\text{ ADP}$$

2. **कार्बोक्सलीकरण** (Carboxylation):इस क्रिया के अन्तर्गत रिबुलोस1 ,5 बिसफॉस्फेट CO_2 से संयोग करता हैं । अत: RUBP,CO_2 का ग्राही होता हैं तथा इसी कारण इसी कार्बोक्सलीकरण कहते है ।

$$6\text{ Ribulose,1,5 bisphesphate} \xrightarrow[carbonla,sec\,arbonylas]{Ribulose1,5bisphosphate} \text{3-phosphoglyceric}$$

+6CO2+6H2)(12 अणु) Acid (12 अणु)

3. **द्वितीय फॉस्फेरीकरण** (Second Phosphorylation) : स्टार्च फॉस्फोग्लिसीरक अम्ल के 12 अणु प्रकाश अभिक्रिया में बने हुये ATP के 12 अणुओं से संयुक्त होकर 1 ,3 डाइफॉँस्फोग्लिसीरक अम्ल के 12 अणुओ का निर्माण करते हैं :

3-phosphoglyceric Acid+ $\xrightarrow[kinase]{Phosphoglyceryl}$ 1,3 diposphologlycric

12 ATP (12 अणु) (12 अणु) Acid+12 ADP

4. **अपचयन** (Reduction) : प्रकाशीय अभिक्रिया में बने हुये NADP.H_2, के 12 अणुओं के द्वारा 1,3 डाई-फॉस्फोगलिसीरक अम्ल के 12 अणुओं का अपचयन हो जाता हैं तथा इसके फलस्वरूप 3 फॉस्फोग्लिसरोल्डिहाइड, NAPS तथा फॉस्फोरिक अम्ल के 12- 12 अणुओं का निर्माण होता है ।

1,3 Diphosphoglyceric $\xrightarrow[dehydrogenase]{Triosephosphate}$ 3Phosphoglyceraldehyde

Acid +12NADP.H +12NADP+12H_3PO_4

(12 अणु) (12 अणु)

उपरोक्त निर्मित 3 फॉस्फोग्लिसीरलिडहाइड के 12 अणुओ में से 10 अपु रिंबुलीस 5 फॉस्फेट का पुनर्जनन करते हैं तथा शेष 2 अणुओ से शर्करा व बाद में मण्ड का संश्लेषण होता है ।

3 Phosphoglyceraldehyde → 10 अणु → Regeneration of R-5P
→ 2 अणु → Sugar → Starc

5. **शर्करा तथा मण्ड का निर्माण** (Formation of sugar and starch) : अपचयनक्रिया पश्चात् 3 फॉस्फोरिसरोल्डिहाइड के 12 अणुओं में से केवल 2 अणु शर्करा तथा मण्ड का निर्माण निम्न क्रियाओ द्वारा करते है ।

- $3Phosphyglyceraldehyde \xrightarrow{Phosphotrioseisomerase} 3Dihydronyacetone$ $phosphofe$
- $3Phosphoglyceraldehyde \xrightarrow{Aldolase} factore1;6diphosphate$
- $3Dihyldronyacertrephosphate$
- $Fuctrose1,6diphosphate + H_2O \xrightarrow{Phosphate} fuctrose - 6 - phosphate + H3PO_4$
  $Fuctrose - 6 - Phosphate \longrightarrow fuctrose - 1 - phosphate - 1 - phosphate$
- $Fuctrose - 6 - phosphate \xrightarrow{Phosphate} sucrose \rightarrow starch$
- $glu\cos e - 1 - phosphate$

6. **रिबुलोस 5 फॉस्फेट का पुन**र्जनन (Regeneration of Ribulose 5-Phosphate) : केल्विन चक्र के अंत में R-S-Pके 6 अणुओं का निम्नलिखित क्रियाओं द्वारा पुन:निर्माण हो जाता हैं -

- $fuctrose - 6 - phosphate \xrightarrow{Transketolase} nylulose - 5 - phosphate$

$+$ $+$

- $3-phosphogly \quad ceraldehyde\ erythrose-4-phosphate$
- $Erythrose-4-phosphate \xrightarrow{Transketolase} sedoheptulose 1,7$

  $diphosphate$

  $+$
- $dishdroxyactone \quad phosphate$
- $Sedoroxyacetone 1,7 diphosphate \xrightarrow{phosphatase} sedoheptulose-7-$

  $phosphate + H_3PO_4$
- $Sedoroxyacetone-7-phosphate \xrightarrow{Transketolase} ribose-5- \ phosphate$

  $+$
- $3 phospho \lg yceraldehyde \ \ Xyluose-5-phosphate$
- $ribose-5-phosphate \xrightarrow[isomerase]{phespopentase} Ribulose-5-phosphate$
- $Xyluose-5-phosphate \xrightarrow[epimerase]{phespopentase} Ribulose-5-phosphate$

(क) **हेच और स्लेक चक्र या C_4 चक्र** (Hatch and Slack Cycle or C_4-Cycle) : M.D.Hatch and C.R.Slack, 1967 में गन्ने पर कार्य करते हुये पादपों में CO_2 के स्थायीकरण की केल्विन चक्र के अतिरिक्त एक नई विधि का पता लगाया । इसमें CO_2 के स्थिरीकरण का प्रथम स्थायी उत्पाद 4c - का योगिक Oxaloacetic Acid बनता हैं, इसी कारण इस प्रकार के पौधों को C_4 पादप कहते हैं । तथा इस चक्र को C_4 चक्र कहते हैं ।

C_4 पौधों की पत्तियों की आंतरिक संरचना में भी अन्तर होता हैं इस प्रकार की शारीरिकी (Anatormy) को क्रान्ज प्रकार कहते हैं । इनकी पत्तियां पर्णमध्योतक (Mesophyl), स्तम्भ उत्तक (Pallisade tissue) तथा स्पंजी ऊत्तक (Spongy tissue) में विभेदित नहीं होती । इनमें क्लोरोप्लास्ट दो प्रकार के पाये जाते हैं । पर्णमध्योतक कोशिका में पाये जाने वाले क्लोरोप्लास्ट सामान्य प्रकार के तथा पूल आच्छद की कोशिकाओं में बड़े आकार के क्लोरोप्लास्ट होते हैं ।

C_4 चक्र की क्रियाविधि

पर्ण मध्योतक कोशिकाओं में वायु से ली गई CO_2 को फोस्फोइनोलपाइरूविक अम्ल (Phosphoenolpyruvic Acid) ग्रहण करता हैं। उससे 4 कार्बन का यौगिक ऑक्सेलोऐसिटिक अम्ल (OAA) बनता हैं । यह 4 -कार्बन वाला अम्ल फिर मौलिक अम्ल में परिवर्तित होकर पूल आच्छद की कोशिकाओं में प्रवेश करता हैं, इस मौलिक अम्ल से निकली हुई CO_2 को RUDP (Ribulose-di-Phosphate) ग्रहण कर C_3 चक्र चलाता हैं । मौलिक अम्ल से CO_2 निकलने के बाद पाइरूवेट (Pyruvate) शेष रहता हो । जो पुन : पर्णमध्योतक की कोशिकाओं में आकर फास्फोइनोलपाइरूविक अम्ल (PEP) C_4 पादपों में सम्पन्न होने वाली प्रकाश संश्लेषण की अभिक्रियाएं बनाकर चक्र चलाता हो । अत : पर्णमध्योतक में C_4 चक्र तथा पूल आच्छद में C_3 चक्र होता हैं ।

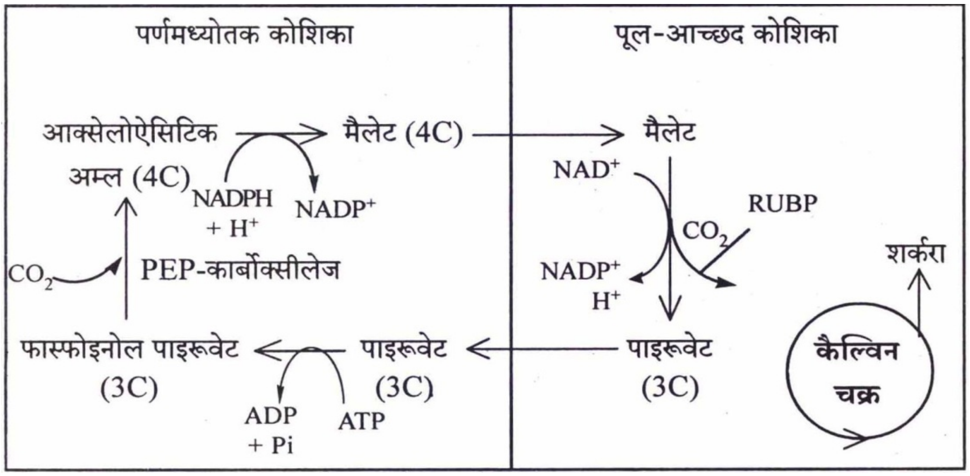

C_4 चक्र का महत्व :

C_4 चक्र अधिकांशतः मरूद्भिद पादपों में पाया गया हैं । अत : C_4 पादप जैविक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । क्योंकि ऐसे पादप CO_2 की अत्यधिक कम सांद्रता में भी प्रकाश संश्लेषण करने में सक्षम होते हैं । शुष्क अवस्था में रन्ध्रों के आशिक बन्द होने पर कोई प्रभाव नहीं होता । अत : ऐसे पादप कम जल वाले स्थानों व अधिक तापक्रम तथा उच्च तीव्रता वाले सूर्य प्रकाश के क्षेत्रों में आसानी से उगाये जा सकते हैं । यह चक्र विशेषकर उष्णकटिबंध व उप - उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के शुष्क जलवायु क्षेत्रों में उगने वाले पौधों में पाया जाता हैं ।

9E.5 प्रकाश संश्लेषण को प्रभावित करने वाले कारण (Factors Affecting Photosynthesis)

पादपों द्वारा होने वाली प्रकाश संश्लेषण की क्रिया निम्न कारकों द्वारा प्रभावित होती हैं :

(i) **बाह्य कारक** (External Factors) : प्रकाश संश्लेषण की क्रिया विधि को प्रभावित करने वाले प्रमुख ब्राह्य कारक निम्न हैं :

प्रकाश (Light) : प्रकाश संश्लेषण की क्रिया प्रकाश स्पेक्ट्रस के दृश्य भाग में ही ही सम्पन्न होती हैं जिसे PAR कहते हैं । प्रकाश संश्लेषण की अधिकतम दर दृश्य स्पैक्ट्रम के लाल भाग में व उससे कम नीले रंग में होता है । हरे रंग-में प्रकाश' संश्लेषण नहीं होता है ।

तापक्रम (Temperature) : प्रकाश संश्लेषण की क्रिया तापक्रम की काफी सीमाओं में सम्पन्न होती हैं । कुछ मरूद्भिद पादपों में 55^0C पर भी प्रकाश संश्लेषण की क्रिया की दर में कमी आती हैं ।

कार्बनाडाइऑक्साइड (CO_2) : वायुमण्डल में कार्बन-डाई - ऑक्साइड की मात्रा 0.03% होती हैं । C_3 व C_4 पादपों की उपलब्ध CO_2 की मात्रा के प्रति अनुक्रिया भिन्न भिन्न होती हैं। पादपों में जब दूसरे कारक सीमाकारी नहीं हों तब CO_2 की सांद्रता 0.05%तक बढ़ने के साथ साथ प्रकाश संश्लेषण की दर बढ़ती हैं ।

जल (Water) : पौधे द्‌वारा मृदा से अवशोषित जल की केवल 1% भाग का ही प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में उपयोग होता हैं । मृदा जल की अधिक कमी होने के कारण जल सीमाकारी कारक बन जाता हैं । तथा प्रकाश संश्लेषण की दर को प्रभावित करता हैं ।

(ii) **आंतरिक कारक** (Internal Factors) : प्रकाश संश्लेषण की दर को प्रभावित करने वाले प्रमुख आंतरिक कारक निम्न हैं -

पर्णहरित (Chlorophyll) : पर्णहरित की अनुपस्थिति में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया सम्भव नहीं हैं । पादपों में होने वाली प्रकाश संश्लेषण की क्रिया दर पत्ती में क्लोरोफिल की मात्रा बढ़ने के साथ बढ़ती हैं ।

संचित भोजन की मात्रा (Amount of Stored Food) : पादपों की कोशिकाओं में संचित भोजन की मात्रा बढ़ने के साथ प्रकाश संश्लेषण की दर घटती हैं ।

पत्ती की आंतरिक संरचना (Internal Structure of Leaf) प्रकाश संश्लेषण की दर पत्ती की आंतरिक संरचना व रन्ध्रों की संख्या पर निर्भर करती हैं ।

9E.6 प्रकाश संश्लेषण का महत्व (Significance of Photosynthesis)

प्रकाश संश्लेषण की क्रिया पृथ्वी पर सभी सजीवों के लिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि यही ऐसी क्रिया हैं जिसमें सूर्य के प्रकाश रूपी भौतिक ऊर्जा का रूपान्तरण कार्बोहाइड्रेट रूपी रासायनिक ऊर्जा में होता हैं । पृथ्वी पर पाये जाने वाले सभी जीव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपने भोजन के लिए पौधों पर निर्भर रहते हैं । इस क्रिया के द्‌वारा ही पेड़ -पौधे प्रकाश ऊर्जा को कार्बनिक पदार्थों में रूपान्तरित करते हैं । जिससे इनका जैव- भार बढ़ता हैं । जिसका मानव तथा इस पृथ्वी पर पाये जाने वाले अन्य विषमपोषी जीव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपयोग करते हो । इस क्रिया के द्‌वारा ही प्राण वायु O_2 वायुमण्डल में बनी रहती हैं । जो निम्न प्रकार से जैव मण्डल में पाये जाने वाले सजीवों के काम आती हैं ।

9E.7 सारांश (Summary)

अधिकांश हरे पौधे उत्पादक कहलाते हैं तथा ये सूर्य की उपस्थिति में क्लोरोफिल के सहयोग से भोजन का निर्माण करने में सक्षम हैं । तथा संचय भी करते हैं । यही संचित भोजन समस्त परपोषियों के लिए ऊर्जा का स्रोत होता हैं । भोजन निर्माण की इस उपचयी क्रिया को प्रकाश संश्लेषण कहते हैं । जीवन के निरन्तर अस्तित्व के लिए प्रकाश संश्लेषण एक परम आवश्यक प्रक्रिया हैं । जीवधारियों को कार्बनिक भोजन तथा ऑक्सीजन की प्राप्ति इस क्रिया की सक्रियता में ही निहित हैं । जन्तुओं तथा पेड़ -पौधों की श्वसन क्रिया के अन्तर्गत ऑक्सीजन का निरन्तर उपयोग तथा कार्बन-डाई - ऑक्साइड का निकास होता हैं । जीवन एक प्रकाश रासायनिक प्रक्रिया हैं । (बेन्टले ग्लास 1961)

प्रकाश संश्लेषण क्रिया प्रकाश एवं उपप्रकाशीय हैं । अत : यह दो प्रक्रमों में पूरी होती हैं । प्रकाश संश्लेषण क्रिया की को बाह्य तथा आंतरिक कारक प्रभाव डालते है ।

9E.8 शब्दावली (Glossary)

1. **प्रकाश संश्लेषी वर्णक :** पौधों में प्राये जाने वाले विभिन्न वर्णक जो प्रकाश के अवशोषण तथा उसकी रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित करते हैं ।
2. **हरित लवक :** हरि पादप कोशिकाओं में उपस्थित दोहरी कलाबद्ध कोशिकांग होता हैं ।
3. फोटोफास्फोरायलेशन (Photophosphorylation) : प्रकाश संश्लेषण के दौरान ग्रेवा में होने वाली ADP+iP=ATP क्रिया को कहा जाता हैं ।
4. C_4 **पादप :** ऐसे पादप जिनमें प्रकाश संश्लेषण की अप्रकाशिय अभिक्रिया में प्रथम उत्पाद C_4 कार्बन वाला तत्व Oxaloaceticबनता हैं ।

9E.9 संदर्भ ग्रन्थ (Further Reading)

1. पादप कार्यिकी एवं जैव रसायन, डा. एन. बी. सक्सेना, डा. एम. एल. शर्मा डा. बी. एल. चौधरी अल्का पब्लिकेशंस, अजमेर
2. वनस्पति शास्त्र, डा. ओ. पी. दायमा सी. बी. एच पब्लिकेशंस जयपुर
3. वनस्पति विज्ञान, डा. प्रमोद कुमार शर्मा, डा. मन्तु शर्मा, डा. प्रेम प्रकाश पालीवाल माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर

9E.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ग्रेना, क्लोरोप्लास्ट
2. फॉस्फोग्लिसरीक अम्ल
3. स्ट्रोमा में
4. केल्विन चक्र
5. एडीनीन ट्राई फॉस्फेट निकोटीनेमाइड एडीनीन डाइफॉस्फेट, फ़ॉस्मोग्लिसरीक अम्ल

9E.11 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise Question)

1. प्रकाश संश्लेषण को परिभाषित कीजिये ।
2. क्लोरोप्लास्ट की संरचना का संक्षेप में वर्णन कीजिये ।
3. चक्रीय फोस्फोरिलीकरण से आप क्या समझते हैं ।
4. निम्न पर टिप्पणियाँ

   (क) प्रकाश संश्लेषी वर्णक (ख) जल का प्रकाशिक अपघटन
5. प्रकाश संश्लेषण को प्रभावित करने वाले कारकों को विस्तार से व्याख्या कीजिये ।
6. केल्विन बेन्सन चक्र के द्वारा CO_2 स्थिरीकरण की प्रक्रिया पर प्रकाश डालिये ।

इकाई 9F : पादपवृद्धि (Plant Growth)

इकाई की रूपरेखा

9F.0 उद्देश्य
9F.1 प्रस्तावना
9F.2 वृद्धि के प्रकार
9F.3 वृद्धि के चरण
9F.4 वृद्धि वक्र
9F.5 वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारक
9F.6 वृद्धिमापन
9F.7 वृद्धि नियामक पदार्थ
9F.7.1 ऑक्सिन
9F.7.2 जिबरेलिन
9F.7.3 साइटोकाइनिन
9F.7.4 इथाइलीन
9F.7.5 वृद्धि निरोध पदार्थ
9F.8 जीर्णता
9F.9 विल्गन
9F.10 दीप्तिकालिता
9F.11 वसन्तीकरण
9F.12 सुप्तावस्था एवं बीजांकुरण
9F.13 सारांश
9F.14 शब्दावली
9F.15 संदर्भ ग्रन्थ
9F.16 बोध प्रश्नों के उत्तर
9F.17 अभ्यासार्थ प्रश्न

9F.0 उद्देश्य

इकाई के इस भाग में हम यह जान पायेंगे कि वृद्धि सभी सजीवों का लाक्षणिक गुण है । सजीवों के परिमाण में स्थायी अनुत्क्रमणीय परिवर्तन को वृद्धि कहते हैं । पौधों में वृद्धि तीन प्रकार से होती हैं उसके बारे में जान पायेंगे । वृद्धि कई चरणों में पूरी होती हैं तथा उसके मापन के तरीकों को समझ पायेंगे । पादपों में वृद्धि नियामक पदार्थ एवं वृद्धि निरोधक पदार्थों के कार्य व योगदान को समझ पायेंगे । पादपों पर बाहय वातावरण का वृद्धि पर पड़ने वाला प्रभाव भी जान पायेंगे ।

9F.1 प्रस्तावना (Introduction)

वृद्धि सजीवों का एक विशिष्ट गुण हैं तथा यह जीवनपर्यन्त होती रहती हैं किन्तु सजीव क्रियाओं में वृद्धि एक सबसे जटिल क्रिया होती हैं क्योंकि यह सजीवों में होने वाली विविध उपचय व अपचय (Anabolic and Catabolic) जैसे जटिल क्रियाओं के फलस्वरूप होती हैं या हम कह सकते हैं कि वृद्धि को निम्न प्रकार परिभाषित किया जा सकता है :

> वृद्धि वह प्रक्रिया हैं जिसमें सजीवों के आयतन तथा शुष्क भार की मात्रा में स्थायी रूप से वृद्धि होती हैं
>
> या
>
> आमाप (Size) व आयतन का वह अनुक्रमणीय परिवर्तन जिसके साथ -साथ शुष्क भार(Dry weight) व जीवद्रव्य की मात्रा में भी वृद्धि होती हैं उसे पादप वृद्धि कहते हैं।

9F.2 वृद्धि के प्रकार (Types of Growth)

पौधों में वृद्धि मुख्यत : तीन प्रकार से होती हैं (चित्र 9F1) :

(a) **लम्बवत् -वृद्धि,** (Longitudinal Growth) : यह शीर्षस्थ विभज्योतक की कोशिकाओं में विभाजन के परिणामस्वरूप होती हैं । आवृतबीजी पादपों में शीर्षस्थ विभज्योतक प्ररोह एवं मूल के शीर्ष (Root and Shootapices) पर उपस्थित होते हैं । विभज्योतक कोशिकाओं में विभाजन के द्वारा नई कोशिकाएं बनती हैं । जो कि विवर्धन (Enlargement) तथा विभेदन (Differentiation) के द्वारा स्थायी उत्तकों का निर्माण करते हैं । इन सब के परिणामस्वरूप पौधे की लम्बाई तथा सीमित मात्रा में मोटाई में वृद्धि होती हैं । यह प्राथमिक वृद्धि कहलाती है|

(b) **पार्श्व वृद्धि** (Lateral Growth) : इस प्रकार की वृद्धि अधिकतर पादपों में पाई जाती हैं इसमें संवहन तथा कॉर्क बहु वर्षी तथा (Cork Cambium) में विभाजन के फलस्वरूप होती हैं । यह द्वितीयक वृद्धि होती हैं ।

(c) **अन्तर्वेशी वृद्धि** (Intercalary Growth) : कुछ पौधों में पर्वसंधि (Node) के ऊपर विभज्योतक पाये जाते हैं । इनमे विभाजन से भी लम्बाई में वृद्धि होती हैं । e.g.घास गन्ना

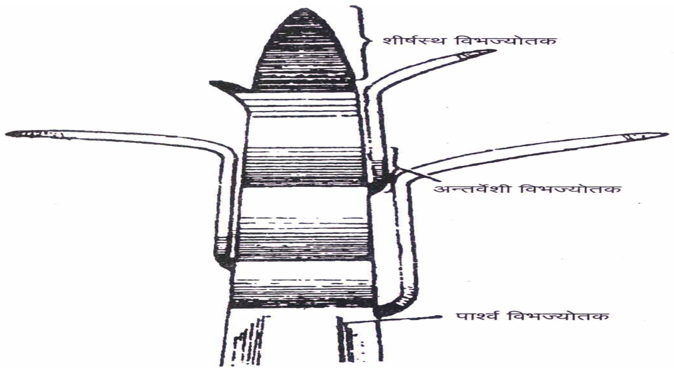

चित्र 9F.1: पादप में वृद्धि के विभिन्न स्थल

9F.3 वृद्धि के चरण (Phases of growth)

वृद्धि के तीन चरण होते हैं -

(i) **कोशिका निर्माण अवस्था** (Phase of cell formation) : विभज्योतक श्रेत्र की कोशिकाओं में निरन्तर सूत्री विभाजन होने से नयी कोशिकायें बनती हैं । इन कोशिकाओं में प्रचुर मात्रा में जीवद्रव्य, रसधानियाँ (Vacuoles) अत्यन्त कम तथा भित्तियाँ पतली होती है|

(ii) **कोशिका दीर्घीकरण अवस्था** (Phase of cell elongation) : इसमें कोशिका के आकार में वृद्धि होती हैं और कोशिका का विस्तार सभी दिशाओं में सम्भव होता हैं ।

(iii) **कोशिका विभेदन तथा परिपक्यन अवस्था** (Phase of cell differentiation and maturation) : अब ये कोशिकायें विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं में परिवर्तित हो जाती हैं तथा कोशिका भित्ति पर विभिन्न प्रकार के स्थूलीकरण के फलस्वरूप स्थायी ऊत्तक में रूपान्तरित हो जाती हैं ।

9F.4 वृद्धि वक्र (Growth curve)

पादप की वृद्धि काल में स्पष्ट रूप से चार प्रकार के चरण देखने को मिलते हैं ।

(i) प्रथम चरण में कोशिकायें विभाजित होती हैं । प्रारम्भ में वृद्धि की दर धीमी रहती हैं तथा धीरे धीरे बढ़ती हैं, इसे पश्च चरण (Lag phase) या मंद वृद्धि काल (grand period of growth) कहते हैं ।

(ii) द्वितीय चरण में कोशिका का दीर्घीकरण होता हैं तथा वृद्धि दर सबसे अधिक होती हैं, इसे लोग चरण (Log phase) या समग्र वृद्धिकाल (Grand period of Growth) कहते हैं ।

(iii) तृतीय चरण में वृद्धि दर क्रमश : कम होने लगती हैं अत : यह डिक्लाइन चरण(Decline phase) होती हैं।

(iv) चतुर्थ चरण में कोशिका विभेदन होता हैं तथा वृद्धि दर लगभग स्थिर हो जाती हैं, इस जीर्णता चरण (Senescent Phase) कहते हैं ।

यदि वृद्धि दर का समय या दिनों को आधार के साथ एक ग्राफ बनाया जाये तब S आकार का वक्र ग्राफ बनता हैं, इस वक्र को सिग्मोइड़ वक्र (Sigmoid curve) कहते हैं (चित्र 9F. 2) ।

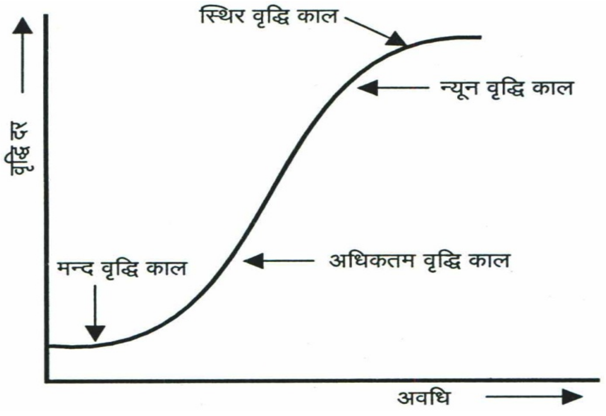

चित्र 9F.2 : सिग्मोइड वक्र

9F.5 वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affecting growth)

यद्यपि वृद्धि एक जटिल क्रिया हैं, यह चीजों में होने वाली विविध क्रियाओं का परिणाम हैं। अत : जो कारक इन क्रियाओं पर प्रभाव डालते हैं, उससे वृद्धि प्रभावि होती हैं । कुछ मुख्य कारकों का उल्लेख निम्म प्रकार से हैं -

(i) **जल** (Water) : कोशिका में विभिन्न प्रकार के पदार्थों को प्रवेश कराने, जीवद्रव्य में जल की उपस्थिति, प्रकाश-संश्लेषण तथा श्वसन सभी में जल की आवश्यकता होती हैं। अत : जल के अभाव में वृद्धि अवरूद्ध हो जाती हैं।

(ii) **ऑक्सीजन** (Oxygen) : उपापचयी क्रियाओं हेतु O_2 महत्वपूर्ण होती हैं । श्वसन में O_2 का उपयोग कर ऊर्जा का विमोचन होता हैं । अत : ऊर्जा के उपयोग से ही वृद्धि होती हैं ।

(iii) **ताप** (Temperature) : सामान्यत : पौधों में वृद्धि 0^0C से लेकर 35° C के बीच के तापमान में होती हैं । पौधों में पुष्पन हेतु ठंडा तापमान (इसी इकाई में बसन्तीकरण देखें) आवश्यक हैं ।

(iv) **प्रकाश** (Light) : अधिक तीव्रता के प्रकाश में वृद्धि कम होती है । प्रकाश काल का भी अत्यधिक महत्व हैं । (इसकी इकाई दीप्तिकालिता देखें) प्रकाश की लाल विकिरण वृद्धि हेतु अधिक उपयुक्त होती हैं ।

(v) **खनिज लवण व हॉर्मोन्स** (Minerals & harmones) : विविध प्रकार के खनिज तत्वों तथा हॉरमोन्स से वृद्धि प्रभावित होती हैं ।

9F.6 वृद्धि मापन (Measurement of growth)

पादपों में वृद्धि निम्न विधियों द्वारा मापी जाती हैं -

(i) **प्रत्यक्ष विधि** (Direct metho) : वृद्धि अंगों पर निशान लगाकर पैमाने द्वारा मापा जाता ई ।

(ii) **आर्क वृद्धिमापी** (Arc auxanometer) : चित्र अनुसार पौधे के शीर्ष को धागे से बांधकर पुली पर लटकाकर धागे के अन्तिम सिरे पर भार लटका देते हैं, ताकि धागा तना रहे। पुली एक लम्बे सूचक (Pointer) से जुड़ी होती हैं । यह सूचक चाप की आकार के स्केल पर वृद्धि दर को दर्शाता हैं (चित्र 9?. 3)।

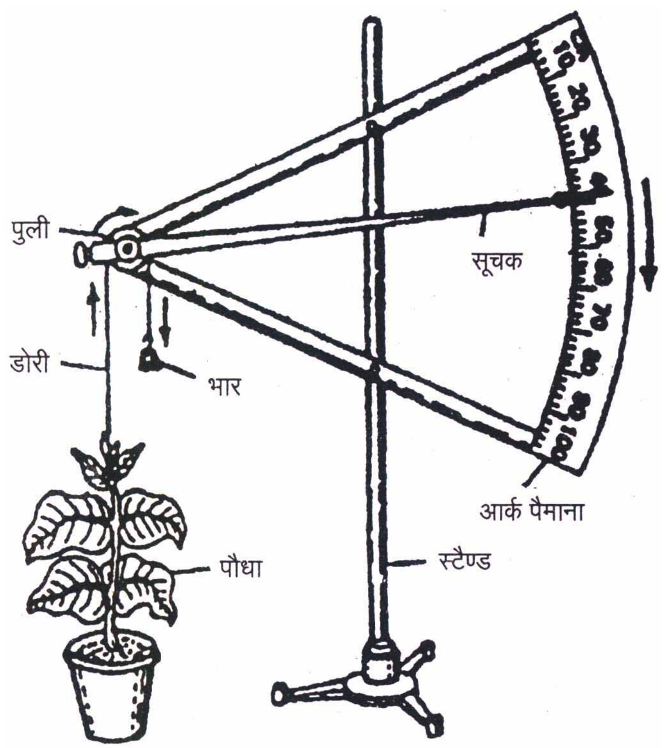

चित्र 9F.3 : आर्क-वृद्धिमापी

9F.7 वृद्धि नियामक पदार्थ (Growth regulators)

वृद्धि हॉर्मोन्स (Growth harmones) : हॉर्मोन्स शब्द का प्रयोग सबसे पहले स्टारलिंग (Sterling) ने किया था । पादप हॉर्मोन (Plant hormones) कार्बनिक पदार्थ होते हैं जो कि पौधे के एक भस में संश्लेषित होकर अन्य भागों में स्थानान्तरित हो जाते हैं । ये अतिसूक्ष्म मात्रा में वृद्धि को प्रभावित करते हैं । ये पदार्थ पादप की कार्यिकयि गतिविधियों (Physiological activites) को प्रभावित व नियंत्रित करते हैं । हॉर्मोन्स को हम पाँच प्रमुख वर्गो में विभाजित कर सकते हैं -

1. ऑक्सिन
2. जिबरेलिन
3. साइटोकाइनिन
4. इथाइलीन
5. वृद्धि निरोधक पदार्थ

इनके अतिरिक्त **जैस्मोनिक अम्ल** (Jasmonic acid) **सेलीसिलिक अम्ल** (Salicylic acid), ब्रैसीनोस्टीरॉइड (Brassinosteriod) तथा कुछ विटामिन्स (Vitamins) भी वृद्धि को नियंत्रित करते हैं ।

9F.7.1 ऑक्सिन (Auxins)

आक्सिन शब्द की व्युत्पाती ग्रीक शब्द auxein से हुई हैं जिसका अर्थ हैं 'to grow' ऑक्सिन ऐसे पादप हॉर्मोन हैं जिन्हें सर्वप्रथम खोजा गया । इन्हें सबसे पहले मानव मूत्र से पृथक (isolate) किया गया था । **इण्डोल एसीटिक अम्ल (Indole acetic acid) व इसके समान गुण वाले सभी प्राकृतिक व कृत्रिम संश्लेषित पदार्थ आक्सिन कहलाते हैं ।**

ऐसे पदार्थ जो ऑक्सिन में रूपान्तरित हो सकते हैं उन्हें **ऑक्सिन पूर्ववर्ती** (auxin precursor) कहते हैं । ऑक्सिन की कार्यविधि को बापधित करने वाले पदार्थ को प्रतिऑक्सिन (antiauxin) कहते हैं । ऐसे ऑक्सिन जिन्हें कोशिकाओं से आसानी से पृथक् किया जा सकता हैं मुक्त ऑक्सिन (free auxin) तथा जिन्हें कठिनाई पूर्वक कार्बनिक विलायकों (Organic solvents) की सहायता से प्राप्त किया जाता हैं, **बन्धित ऑक्सिन** (bound auxin) कहलाते हैं ।

पौधों में ऑक्सिन अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में पाए जाते हैं । अत: इनकी उपस्थिति दर्शाने के लिए सूक्ष्म संवेदी जैविक परीक्षण (sensitive biological tests) प्रयोग में लाए जाते हैं, जिन्हें जैव आमापन (bioassays) कहते हैं । जैव आमापन के द्वारा खा।लन की मात्रा तथा उसके पादप वृद्धि पर पड़ने वाले प्रभाव को ज्ञात किया जा सकता हैं । आक्सिन के जैव आमापन हेतु जई प्रांकुरचोल वक्रता परीक्षण (Avena coleoplite curvature test) का प्रयोग किया गया । बॉयसन-जैन्सन (Boysen Jensen,1910-13) ने जई के प्रांकुरचोल को शीर्षोच्छेदित (decapitate) कर दिया तथा पाया कि वह वक्रण (curvature) प्रदर्शित नहीं करता हैं । कटे हुए भाग को पुनःस्थापित करने पर वक्रण अथवा प्रकाशानुवर्तन (phototropism) क्षमता पुन: स्थापित हो जाती हैं । शिरोच्छेदित शीर्ष व ठूँठ (stump) के मध्य जिलेटिन का टुकड़ा रखने पर भी वक्रण क्षमता बनी रहती हैं । यदि प्रांकुरचोल की अप्रदीप्त सतह (Dark side) पर आधे भाग में एक अनुप्रस्थ चीरा (horizontal slit) लगाकर उसमें अभ्रक की प्लेट लगा दी जाती हैं तो प्रांकुर चोल प्रकाश की ओर नहीं मुड़ता, परन्तु यदि चीरा अभ्रक की प्लेट प्रकाशित सतह (illuminated side) पर लगाई जाए तब प्रांकुर चोल प्रकाश की ओर मुड़ जाता हैं । उपरोक्त प्रयोगों के आधार पर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रकाशानुवर्तन अथवा वक्रण के लिए उत्तरदायी पदार्थ अप्रदीप्त पार्श्व से नीचे की ओर स्थानान्तरित होता हैं ।

प्राकृतिक ऑक्सिन

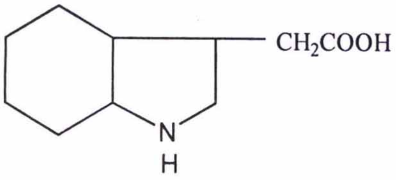

(क) इण्डोल-3-एसिटिक अम्ल (IAA)

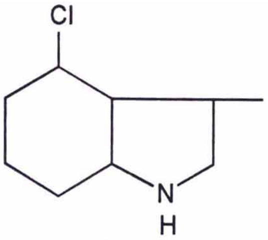

(ख) 4-क्लोरोइण्डोल-3-एसिटिक अम्ल

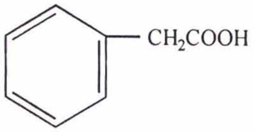

(ग) फिनाइल एसिटिक अम्ल

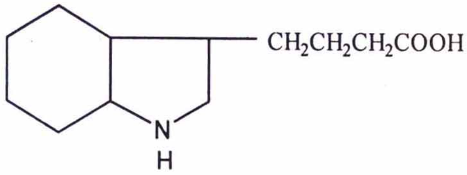

(घ) इण्डोल-3-3ब्यूटायरिक अम्ल (IBA)

संश्लेषित ऑक्सिन

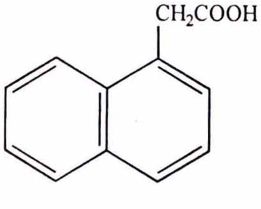

(ङ) नैफ्थेलीन एसिटिक अम्ल

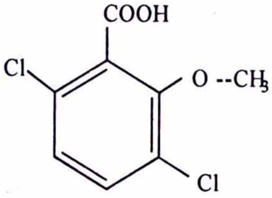

(च) 2-मिथोक्सी-3, 6-डाई क्लोरो बैन्जोइक अम्ल (डाइकैम्बा)

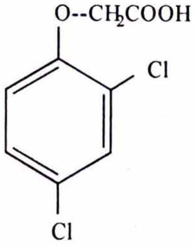

(छ) 2, 4-डाई क्लोरो फिनौक्सी एसिटिक अम्ल (2, 4-डी)

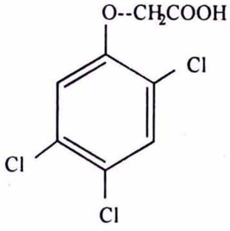

(ज) 2, 4, 5-ट्राई क्लोरो फिनौक्सी एसिटिक अम्ल (2, 4, 5-टी)

चित्र 9F.4 : प्राकृतिक एवं कृत्रिम संश्लेषित ऑक्सिन अणुओं की रासायनिक संरचना

एफ. डब्लयू वैन्ट (F.W. Went, 1926) ने वृद्धिकारी पदार्थ को वियोजित (isolate) करने में सफलता प्राप्त की । उन्होंने जई के प्रांकुर चोल का शीर्ष काट कर उसे अगार (Agar) के घनाकार टुकड़े के ऊपर रखा । इसके पश्चात् शीर्ष को अगार से अलग करके अगार को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँट दिया तथा इन छोटे टुकड़ों को प्रांकुर चोल के ठूँठ (Stump) पर स्थापित करने पर पाया कि वृद्धि उसी प्रकार पुन: प्रारम्भ हो जाती हैं । अगार के टुकड़े को उत्केन्द्री (eccentric) ढंग से लगाने पर प्राकुर चोल अगार के टुकड़े की स्थिति के विपरीत दिशा में मुड़

जाता हैं । इससे यह स्पष्ट होता हैं कि कुछ पदार्थ प्रांकुर चोल से नीचे की ओर अगार खंड में स्थानान्तरित होते हैं जो वृद्धि के लिए उत्तरदायी हैं ।

अपने प्रयोगों के आधार पर वैन्ट ने पाया कि प्रांकुरचोल को एक ओर से प्रकाशित किए जाने पर प्रदीप्त क्षेत्र में ऑक्सिन की मात्रा कम होती हैं । उन्होंने अपने दूसरे प्रयोग में जई के शीर्ष को अगार के दो टुकड़ों जिनके बीच में अभ्रक की पतली प्लेट लगी थी, के ऊपर इस प्रकार रखा जिससे शीर्ष आधा-आधा दोनों टुकड़े पर रहे । एक पाशर्व से प्रकाश डालने पर हॉर्मोन का 65 प्रतिशत भाग अप्रकाशित दिशा के टुकड़े मे एकत्रित होता हैं । अप्रकाशित भाग में हॉर्मोन की मात्रा अधिक होने के कारण इस भाग की कोशिकाओं का अधिक विस्तारण (elongation) हो जाता हैं और प्ररोह प्रकाश मे ओर मुड़ जाता हैं ।

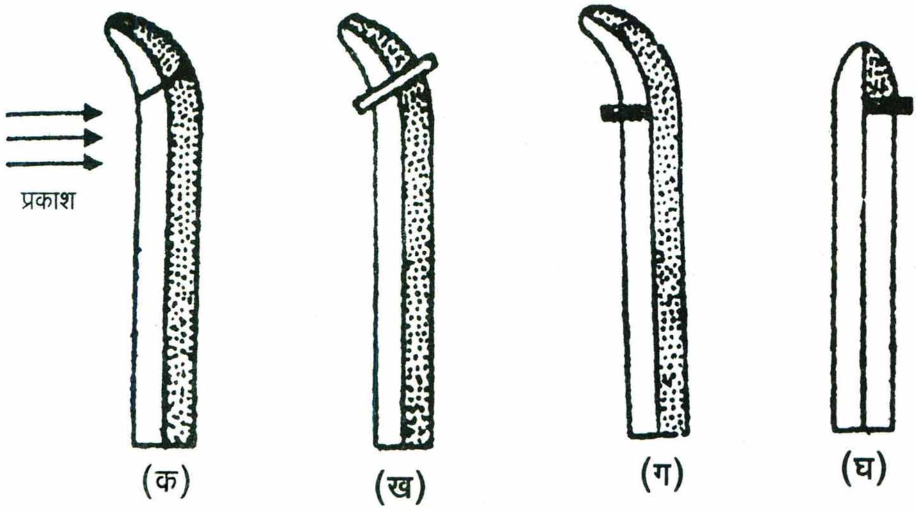

चित्र 9F.5 : बॉयसन - जैनसन के प्रयोग

(क), (ख) तथा (ग) - शिरोच्छेकइउ शीर्ष की पुन: स्थापना, शिरोच्छेदित शीर्ष एवं स्कन्ध के मध्य जिलेटिन का टुकड़ा रखने तथा प्रकाशित भाग में अभ्रक लगाने पर शीर्ष द्वारा वक्रण क्षमता का प्रदर्शन (घ) अप्रकाशित भाग में अभकप्लेट लगाने पर अप्रभावित शीर्ष

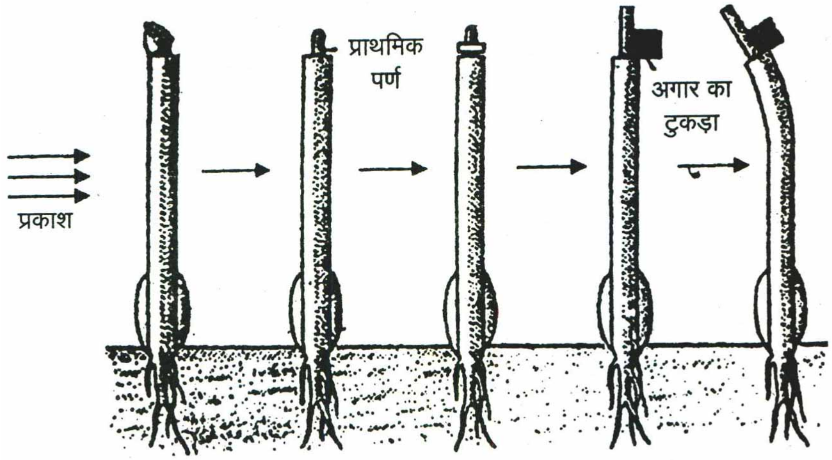

'चित्र 9D.6: 'वैन्ट 'का प्रयोग

इसी प्रकार कुछ दूसरे वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया कि प्रांकुर चोल शीर्ष अथवा मूल शीर्ष को क्षैतिज स्थिति में रखने पर हॉर्मोन का विस्थापन तथा प्रवाह गुरूत्वाकर्षण के कारण नीचे की ओर हो जाता हैं । नीचे की कोशिकाओं में ऑक्सिन की अधिक सान्द्रता प्ररोह शीर्ष के नीचे की कोशिकाओं को वृद्धि के लिए प्रेरित करती हैं एवं वह ऊपर की ओर मुड जाता हैं । परन्तु मूल शीर्ष में ऑक्सिन वृद्धि को संदमित करता हैं अत: नीचे की कोशिकाओं में कम वृद्धि होने से वह नीचे की ओर मुड़ जाता हैं ।

आक्सिन के कार्यिकयि प्रभाव (Physiological effects of auxins) : ऑक्सिन की सान्द्रता का पौधे के विभिन्न भागों कीं वृद्धि पर निम्न प्रकार से प्रभाव होता हैं :

1. **शीर्षस्थ प्रभाविता** (Apical dominance) - शीर्षस्थ कलिका की उपस्थिति में पार्श्व अथवा कक्षस्थ कलिकाओं की वृद्धि पूर्णत: आशिक रूप से निरूद्ध रहती हैं । इसे शीर्षस्थ प्रभाविता कहते हैं ।

शीर्ष कीलका द्‌वारा ऑक्सिन का संश्लेषण होता हैं जो नीचे की ओर स्थानान्तरित हो जाता हैं इसके कारण पार्श्व कलिकाओं की वृद्धि संदमित हो, जाती हैं । यदि शीर्षस्थ कलिका को हटा दिया जाए तो पार्श्व या कक्षस्थ कलिकाऐं विकसित होने लगती हैं ।

2. **खरपतवार का उन्मूलन** (Eradication of weeds) : खेतों में प्राय: अनावश्यक पौधे उग जाते हैं । ये पौधे जल, खनिज इत्यादि पदार्थों के लिए फसल से प्रतियोगिता करने लगते हैं और फसल की अच्छी वृद्धि नहीं हो पाती । हॉर्मोन्स के द्‌वारा इन अनावश्यक पौधों को नष्ट किया जा सकता हैं । इस कार्य के लिए 2,4-D (2,4 Dichorophenoxy acetic acid) नामक ऑक्सिन विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हुआ हैं ।

3. **कटे तनों पर जड़ विभेदन** (Root differentiation) : बहुत से पौधे जैसे-गुलाब में कलम लगाकर नया पौधा तैयार किया जाता हैं । यदि गुलाब की कलम में निचले सिरे को ऑक्सिन के घोल में डुबोकर गमले में लगाया जाए तो कटे भाग पर शीघ्र ही जड़ें निकल आती हैं । इस कार्य के लिए इण्डोल ब्यूटाइरिकू अम्ल (IBA) विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हुआ हैं ।

4. **अनिषेकफलन** (Parthenocarpy) : संतरा, नींबू अंगूर, केला आदि में बिना परागण के भी फलों का विकास हो सकता हैं । ये फल बीजरहित (Seed Less) होते हैं । यदि कली अवस्था में पुष्पों से पुंकेसरों को निकालकर वर्तिकाग्र के ऊपर ऑक्सिन का छिड़काव कर दिया जाए तब बीज रहित फल बन जाते हैं ।

5. **फसलों के गिरने का निरोध** (Prevention of loding) : बहुत सी फसलें जैसे गेहूँ में तने दुर्बलता के कारण तेज हवा चलने पर पौधा जड़ के पास से मुड़ जाता हैं । ऑक्सिन का विलयन छोटे पौधों के ऊपर छिड़कने से पौधों का नीचे का भाग शक्तिशाली हो जाता हैं और हवा में गिरने की कम सम्भावना रहती हैं ।

6. **प्रसुप्तावस्था नियंत्रण** (Control of dormancy) : आलू का कन्द हमें वर्ष भर प्राप्त होता रहे, इसके लिए आवश्यक हैं कि उसका संग्रह इस प्रकार किया जाए कि कन्द की कलिकाओं का प्रस्फूटन ना होने पाए । प्रस्फूटन होने से कन्द में संचित मण्ड समाप्त हो जाता

हैं । ऑक्सिन का विलयन कन्द पर छिड़कने से कलिकाओं का प्रस्फूटन रूक जाता हैं तथा उन्हें लम्बे समय तक संग्रह किया जा सकता हैं ।

7. **पुष्पों की सघनता कम करना** (Thenning of flowers) : कुछ वृक्षों जैसे आम की कुछ किस्मों में एक वर्ष अत्यधिक पुष्प बनते हैं जिससे फलों की संख्या तो अधिक होती हैं परन्तु वे आकार में छोटे रह जाते हैं । इन वृक्षों में दूसरे वर्ष में पुष्पों की संख्या कम रह जाती हैं । NAA तथा NAAM का छिड़काव करके पुथन क्रिया को नियंत्रित किया जा सकता हैं ।

8. **अपीरपक्य फलों का झड़ने से रोकना** (Prevention of premature fruit fall) : सेब, नींबू आम, टमाटर इत्यादि में वृन्त के आधार पर विलगन परत (abscission layer) बनने के कारण ये अपरिपक्व अवस्था में झड़ जाते हैं । 2 ,4-D, 1AA,IBA इत्यादि के छिड़काव द्वारा इन्हें अपरिपक्व अवस्था में झड़ने से रोका जा सकता हैं ।

9. **पर्वो का लघुकरण** (Shortening of internodes). नाशपाती, सेब आदि में लघु शाखाओं पर ही फलों का निर्माण होता हैं । इन पौधों में NAA के छिड़काव द्वारा दीर्घ शाखाओं के पर्व को लघुकरण करके लघु कोशिकाओं की संख्या में वृद्धि की जा सकती हैं ।

10. **ऊत्तक संवर्धन** (Tissue Culture) : आजकल ऑक्सिन के अनुप्रयोग से ऊत्तकों व अंगों का कृतित्रम संवर्धन व्यापक रूप से किया जाता हैं । ऑक्सिन मूल निर्माण तथा कैलस विभेदन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं ।

9F.7.2 जिबरेलिन (Gibberellin)

जापान में 1890 में धान के खेतों में कुछ पौधो असामान्य रूप से लम्बे पाए गए । इसे **बैकने रोग** (bakane disease) नाम दिया गया । होरी (Hori, 1898) ने इस रोग का अध्ययन किया कि इस रोग से ग्रसित पौधे असामान्य रूप से लम्बे तथा पतले होते हैं । इनमें पुष्पन नहीं होता तथा ये फल व बीज उत्पन्न करने में असमर्थ होते हैं । सामान्य भाषा में इन्हें बेवकूफ नवोदभिद (foolish seedlings) कहा जाता हैं । धान का यह रोग एक कवक जिबरेला फ़्यूजीकोराई (Gibberella fujikuroi) द्वारा होता हैं । कुरोसावा (Kurosawa, 1962) ने प्रमाणित किया कि इस कवक के स्राव को पौधों पर छिड़कने से यह रोग हो जाता हैं । याबूता तथा हायाशी (Yabuta and Hayashi, 1939) ने इस कवक से शुद्ध क्रिस्टलीय रसायन प्राप्त किया तथा उसे जिबरेलिन नाम दिया । विभिन्न कवकों एवं उच्च पादपों से अब तक 100 से अधिक प्रकार से जिबरेलिन प्राप्त किए जा चुके हैं । इनको GA_1, GA_2, GA_3,...... GA_{100} आदि नामों से जाना जाता हैं । इनमें GA_3 सबसे पहले खोजे जाने वाले तथा सामान्य रूप से पाए जाने वाले जिबरेलिन में से एक हैं ।

रासायनिक दृष्टि से सभी जिबरेलिन, **जिबरेलिक अम्ल** (Gibberellic acid) होते हैं । इनमें एक **गिबेन वलय** (Gibbane ring) पाया जाता हैं । कुछ के गिबेन वलयों में 19 कार्बन तथा कुछ अन्य में 2० कार्बन परमाणु पाए जाते हैं ।

जिबरेलिन के कार्यिकीय प्रभाव (Physilogical effects of gibberellins)

1. **पर्व दीर्घन** (Internode elongation) : जिबरेलिन पौधे में पर्व दीर्घन द्वारा पौधे की लम्बाई में वृद्धि को प्रेरित करता हैं । यह पत्तियों के आकार में वृद्धि को प्रेरित करता हैं । यह पत्तियों के आकार में वृद्धि को भी प्रेरित करता हैं । रोजेट प्रभाव (rosette habit) वाले द्विवेषी पादपों में यह दीर्घित पर्णरहित पर्व के निर्माण को प्रेरित करता हैं । इस क्रिया को वोल्टकरण (Bolting) कहते हैं ।

2. **बीजाकुरण** (Seed germination) - कुछ खाद्यान्नों के बीज मृदा से जल अवशोषित कर फूल जाते हैं । इनको भ्रूण जिबरेलियन संश्लेषण करते हैं जो एत्थूरोन परत (aleurone layer) में विकसित हो जाते हैं । यह α -एमाइलेज (α -amylase), प्रोटीएज (Protease), लाइपेज (lipase) तथा राइबोन्यूक्लिएज (ribonuclease) इत्यादि विकरों के संश्लेषण को प्रेरित करता हैं । ये विकर भ्रूणपोष में उपस्थित पदार्थों का अपघटन (hydrolysis) कर देते हैं । इस प्रकार पाचन के पश्चात् बने उत्पाद भ्रूण की वृद्धि में काम आते हैं ।

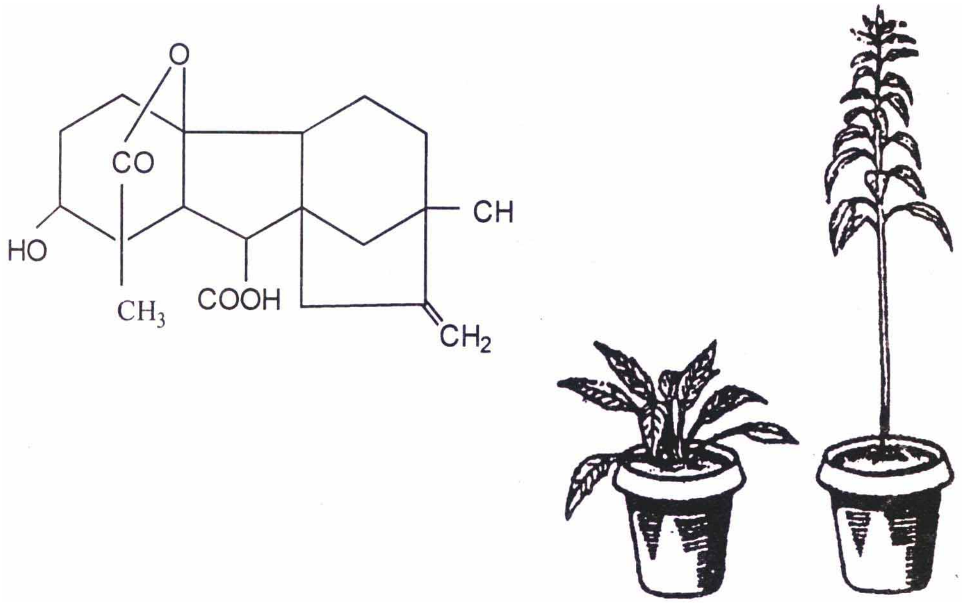

चित्र 9F.7: (क) जिबरेलिक अम्ल (GA_3) (ख) रोजेट पादप (ग) जिबरेलिन के प्रभाव से रोजेट पादप की लम्बाई में वृद्धि

3. **प्रसुप्ति भंग करना** (Breaking ऑफ dormancy) : अनेक वृक्ष की कलिकाओं तथा बीजों में पाई जाने वाली प्रसुप्ति को जिबरेलिन की उच्च सान्द्रता के द्वारा निष्प्रभावी किया जा सकता हैं।

4. **पुष्पन** (Flowering) : जिबरेलिन कुछ पौधों में पुष्पन के लिए प्रेरक शीतन उपचार (Vernalization) अथवा आपेक्षित दीप्तिकाल (Photoperiod) का प्रतिस्थान करने में सक्षम होते हैं ।

5. **अनिषेकफलन** (Parthenocarpy) : ऑक्सिन की तुलना में ये अनिषेकफलन को प्रेरित करने में अधिक प्रभावशाली होते हैं ।

9F.7.3 साइटोकाइनिन (Cytokinins)

साइटोकाइनिन कोशिका विभाजन को प्रेरित करता हैं । इस वर्ग का एक पदार्थ **काइनेटिन** (Kinetin) का रूपान्तीरक रूप हैं । यह एक मछली के शुक्राणुओं के DNA से प्राप्त किया गया था । काइनेटिन पौधों में प्राकृतिक रूप से नही पाया जाता । जे. हेबरलैण्ड J. Haberlandt) ने सर्वप्रथम प्रेक्षण किया कि कुछ पादपों के फ्लोएम ऊतकों में विलेय पदार्थ (Soluble substance) पाया जाता हैं जो क्षतिग्रस्त आलू की मृदूतकी कोशिकाओं के कोशिका विभाजन को त्वरित करता हैं । लीथम व मिलर (Letham and Miller) ने मक्का के आकोष से एक पदार्थ
विमुक्त किया जिसका नाम जिएटिन (Zeatin) रखा । साइटोकाइनिन नाम भी लीथम द्वारा ही रखा गया । प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले साइटोकाइनिन में जिएटिन (Zeatin) सर्वाधिक माना जाता हैं । साइटोकाइनिन का संश्लेषण पादपों में उन स्थानों में होता हैं जहाँ कोशिकाएं विभाजित होती रहती है जैसे कि प्ररोह शीर्श, मूल शीर्ष, विकासशील कलिकाएं, तरूण फल इत्यादि । पौधों में साइटोकाइनिन के निम्न प्रभाव दिखाई देते हैं -

1. ये कोशिका विभाजन को प्रेरित करते हैं ।
2. ये कोशिकाओं के दीर्घन को प्रेरित करते हैं । तम्बाकू की मूल कोशिकाऐं साइटोकाइनिन के प्रभाव से सामान्य की तुलना में चार गुना अधिक दीर्घित पाई गई ।
3. कोशिका विभेदन पर भी इनका प्रभाव देखा गया हैं । ऑक्सिन के साथ मिलकर ये पौधों के कुछ अंगों के निर्माण को नियंत्रित करते हैं । उदाहरण के लिए यदि तम्बाकू की पिथ कोशिकाओं का संवर्धन (culture) ऐसे माध्यम में किया जाता हैं जिसमें शर्करा एवं खनिज लवण उपस्थित हों तब केवल कैलस (अविभेदित कोशिकाओं का सकू) का विकास होता हैं । परन्तु यदि माध्यम में साइटकोकाइनिन और ऑक्सिन का अनुपात बदलता रहे तब जड़े / प्ररोह अथवा दोनों को विकसित किया जा सकता हैं । माध्यम में साइटोकाइनिन की मात्रा अधिक ऑक्सिन की कमी हो तो प्ररोह का विकास होता हैं । साइटोकाइनिन की मात्रा कम व ऑक्सिन की अधिक होने पर केवल जड़ों का विकास होता हैं ।

   संवर्धन के ये प्रयोग आनुवांशिक इंजीनियरिंग (genetic engineering) में बहुत लाभदायक हैं क्योंकि नई किस्म के पौधे उत्पन्न करने में कोशिका संवर्धन काफी उपयोगी सिद्ध हुआ हैं
4. साइटोकाइनिन शीर्षस्थ प्रभाविता को कम करने तथा जीर्णता को स्थगित करने में सक्षम होते हैं ।

9F.7.4 इथाइलीन (Ethylene)

आर. गेने (R.Gane. 1935) ने यह प्रमाणित किया कि इथाइलीन एक प्राकृतिक गैसीय हॉर्मोन हैं । पौधे के लगभग सभी भाग इथाइलीन निर्मित करते हैं । सामान्यत: इसकी उच्च सान्द्रता पत्तियों, सुषुप्त कलिकाओं व पुष्पों में पाई जाती हैं । फलों के परिपक्वन के साथ ही इथाइलीन का निर्माण भी बढ़ जाता हैं । पौधों में इथाइलीन के निम्न प्रभाव दिखाई देते हैं -

1. **वृद्धि पर प्रभाव** (Influence on growth) : इथाइलीन सामान्यत : प्ररोह व मूल की लम्बाई में वृद्धि को संदमित (inhibit) करती हैं । इसके प्रयोग से लम्बाई बढ़ना प्ररोह व मूल की मोटाई में वृद्धि होती हैं । अपस्थानिक जड़ों का निर्माण बढ़ जाता हैं तथा पादप में क्षैतिज वृद्धि बढ़ जाती हैं ।
2. **पुष्पन का प्रभाव** (Influence on flowering) : इथाइलीन अधिकतर पादप जातियों में पुष्पन क्रिया पर निरोधी प्रभाव डालती है । परन्तु आम, अनानास, इत्यादि में यह पुष्पन को प्रेरित करती हैं ।
3. **लिंग परिवर्तन** (Sex modification) : इथाइलीन मादा पुष्पों की संख्या में वृद्धि करती हैं तथाप पर पुष्पों की संख्या को कम करती हैं । उदाहरणार्थ - मक्का ।

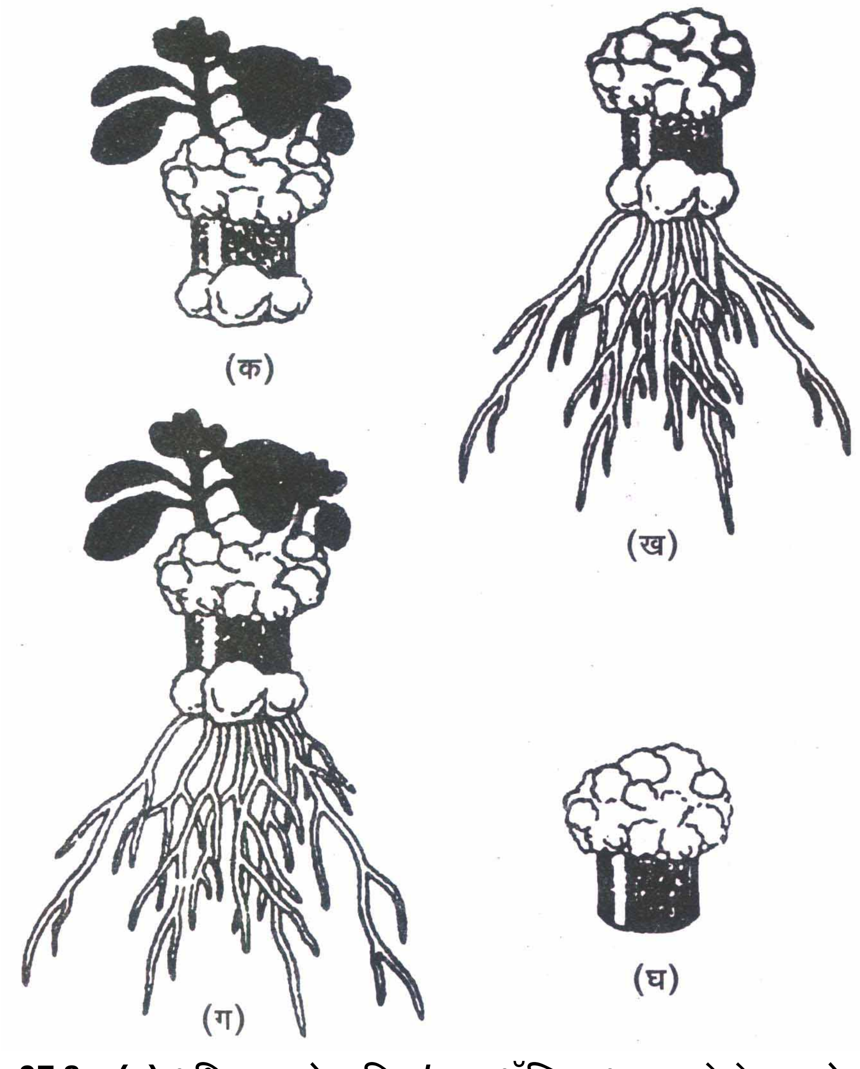

चित्र 9F.8 : (क) अधिक साइटोकाइनिन / कूम ऑक्सिन अनुपात से केवल प्ररोह का विकास कम साइटोकाइनिन / अधिक ऑक्सिन अनुपात से केवल जड़ों का विकास (ग) मध्यम साइटोकाइनिन / आक्सिन अनुपात से जड़ तथा प्ररोह दोनों

का विकास (घ) मध्यम साइटोकाइनिन / कम ऑक्सिन अनुपात से केवल कैलस का विकास

4. **विलगन** (Abscission) ' इथाइलीन पत्तियों, फलों व पुष्पों के विलगन को तीव्र करती हैं।

5. **फूलों का पकना** (Ripening of fruit) : फलों के प्राकृतिक परिपक्वन में इथाइलीन का महत्वपूर्ण योगदान होता हैं । ऐसा विश्वास किया जाता हैं कि इसका निर्माण तने के अग्र भाग में होता हैं तथा वहाँ से यह विसरित होकर फलों को पकाने में सहायता प्रदान करता हैं । इथाइलीन के प्रभाव से कुछ जीन सक्रिय हो जाते हैं तथा ऐसे एन्जाइम का संश्लेषण करते हैं जो कि फल परिपक्वन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं ।

6. इथाइलीन के प्रभाव से पुष्प एवं पत्तियों नीचे की ओर झुक जाती हैं जिसे अधोकुंचन (epinasty) कहते हैं । पुष्पों एवं पत्तियों की ऊपरी स्तर की कोशिकाओं में दीर्घन होने के कारण ऐसा होता हैं ।

आजकल **इथेफोन** (2, chloroethyl phosphoric acid) को कृत्रिम रूप से फलों को पकाने के काम में लिया जाता हैं । इस पदार्थ से इथाइलीन गैस निकलती हैं जो फलों को पकाने का काम करती हैं । भारत सहित अधिकांश देशों में फलों (आम, अंगूर, केला पपीता, इत्यादि) को पकाने के लिए इथेफोन का प्रयोग औद्योगिक स्तर पर किया जा रहा हैं । इस प्रकार से पके फल रंग, रूप, और सुगन्ध में प्राकृतिक फलों जैसे' लगते हैं ।

9F.7.5 वृद्धिनिरोधक पदार्थ (Growth inhibitors)

पौधों की वृद्धि एवं विकास के पूर्ण संतुलन एवं नियंत्रण के लिए वृद्धि वर्धक (Growth promoters) और वृद्धि रोधक (growth inhibitors) दोनों प्रकार के पदार्थ आवश्यक हैं । इन दोनों प्रकार के पदार्थों को हम वृद्धि नियामक पदार्थ कहते हैं । इथाइलीन फल परिपक्वन में सहायक होती हैं, परन्तु सामान्यत : वृद्धि रोधक का कार्य करती हैं । इसी प्रकार एब्लिसिक अम्ल भी वृद्धि रोधक होता हैं ।

एब्सिसिक अम्ल (Abscisic Acid) : एब्लिसिक अम्ल पौधों में प्राकृतिक रूप से पाया जाता हैं । यह प्रमुख वृद्धि नियन्त्रक हॉर्मोन्स हैं । यह पादप की प्रतिमूल वातावरणीय परिस्थितियों का सामना करने में सहायता करता हैं अत : इसे स्ट्रैस हॉर्मोन (Stress hormons) भी कहते हैं। कार्न्स एवं एडिकोट ने 1961-65 में कपास (Gossypium spp.) के पौधे के पुष्पों की कलियों (bund) से एक पदार्थ निकाला जिसका नाम उन्होंने एब्लिसिन (Abscisim) रखा जो किसी भी पौधे पर छिड़कने पर शीघ्र ही पत्तियों का विलगन कर देता था । वेयरिंग (Wareing, 1963) ने काष्ठीय पौधों की पत्तियों से एक पदार्थ प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की जो कलियों की वृद्धि और बीजों के अंकुरण का रोधन करता था । उन्होंने इस पदार्थ का नाम डोर्मिन (Dormin) रखा । बाद में यह सिद्ध हुआ कि डोर्मिन और एब्लिसिन एक ही पदार्थ हैं और उसका नाम एब्लिसिक अम्ल (ABA) रखा गया ।

एब्लिसिक अम्ल के कार्यिकीय प्रभाव (Physiological effects of abscisic acid): ABA के प्रमुख प्रभाव निम्न हैं -

1. **पत्तियों का विलगन** (Abscission of leaves): ABA के घोल को पत्तियों पर छिड़कने से उनका शीघ्र ही विलगन हो जाता हैं ।
2. **कलियों तथा बीजों की प्रसुप्तता** (Dormancy of bund and seeds) : ABA कलियों की वृद्धि को तथा बीजाकरण को रोककर इनकी प्रसुप्तावस्था को बनाए रखता हैं ।
3. **जीर्णता** (Senescence) : ABA अनेक पादपों में जीर्णता को प्रेरित करता हैं । इस प्रक्रिया में सम्भवत : क्लोरोफिल, प्रोटीन तथा RNA का तीव्र ह्रास होता हैं ।
4. **कोशिका विभाजन एवं कोशिका परिवर्तन** (Cell division and cell development) : ABA इन दोनों प्रकियाओं को अवरूद्ध करता हैं ।
5. **रन्धों का बन्द होना** (Stomatal closure) : यह रन्ध्रों को बन्द करने में प्रभावी होता हैं अत: वाष्पोत्सर्जन की दर को कम कर देता हैं ।

9F.8 जीर्णता (Senescence)

सभी जीवों के जीवन काल में परिपक्व अवस्था (Maturity) प्राप्त करने के पश्चात् इस प्रकार की अवनतकारी क्रियाऐं (deteriorative processes) होती हैं जिससे अन्त में उनकी मृत्यु हो जाती हैं । (किसी जीव की परिपक्व अवस्था से लेकर मृत्यु होने तक के काल (period) को जीर्णता कहते हैं) इस काल के दौरान जीव कमजोर होता जाता हैं तथा उसकी कार्यक्षमता कम होती जाती हैं । उपापचयी पदार्थ (Metabolic Substance) संग्रहित हो जाते हैं तथा शुष्क भार में कमी आ जाती हैं । लियोपोल्ड (Leopod, 1961) ने पादपो मे चार प्रकार की जीर्णता का वर्णन किया हैं -

1. **सम्पूर्ण पादप जीर्णता** (Whole plant senescence) : बहुत से एकवर्षी पादपों (annuals) जैसे कि गेहूँ चना, टमाटर इत्यादि में फल बनने के पश्चात् सम्पूर्ण पादप पीला होकर अन्तत: मृत हो जाता हैं ।
2. **प्ररोह जीर्णता** (Shoot senescence) : बहुवर्षी पादपों जैसे अल्फाल्फा (Alfalfa) में पादप का उपरिभूमिक (aerial) भाग प्रति वर्ष मृत हो जाता हैं तथा भूमिगत तना व जडें जीवित रहती हैं । आगामी वर्ष में भूमिगत भाग में कलिकाऐं बनती हैं जो कि वायवीय भाग का पुन: निर्माण करती है ।
3. **पर्णपाती जीर्णता** (Deciduous senescence) : बहुत से पादपों में पतझड़ में पत्तियाँ मृत होकर झड़ जाती हैं । अनुकूल परिस्थितियाँ आने पर पत्तियाँ पुन: विकसित हो जाती हैं । जीर्णता मुख्यत: ABA, इथाइलीन इत्यादि के द्वारा नियत्रित होती हैं ।

9F.9 विलगन (Abscission)

पत्तियों, पुष्पों एवं फलों के मातृपादप से अलग होकर गिरने को विलगन कहते हैं । यह एक जैविक क्रिया हैं जो इन पादप अंगों के आधारीय भाग (basal part) की कोशिकाओं में परिवर्तन के परिणामस्वरूप होती हैं । इन स्थानों पर एक निश्चित क्षेत्र की कोशिकाओं की मध्य पटलिकाओं (Middle lamellae) एवं बाह्य भित्तियों (outer walls) का पैक्टीनेज

(pectinase) तथा सैल्यूलोज (cellulose) एन्जाइम की सहायता से पाचन हो जाता हैं । मध्य पटलिका या भित्तियों के टूटने के कारण ये कोशिकाएं एक दूसरे से अलग होने लगती हैं । इस क्षेत्र के ऊतक मुलायम तथा कमजोर हो जाते हैं तथा इस स्थान पर एक **विलगन पर्त** (abscission layer) का निर्माण हो जाता हैं । विलगन परत से कुछ नीचे की कोशिकाएं विभाजन शील होकर कॉर्क कोशिकाओं का निर्माण करती हैं जो कि एक **रक्षात्मक स्तर** (protective layer) अथवा विलगन क्षेत्र (abscission zone) का निर्माण करती हैं । तेज हवा के झोंके अथवा वर्षा के परिणाम स्वरूप ये पादप अगविलगन परतवाले स्थान से टूट कर मातृ पादप से अलग होकर गिर जाते हैं ।

विलगन हॉर्मोन संतुलन में बदलाव के परिणामस्वरूप होता हैं । इस प्रक्रिया में एब्लिसिक अम्ल महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं ।

9F.10 दीप्तिकालिता (Photopriodism)

पुष्पीय पादपों (flowering plants) में निश्चित समयतक कायिक वृद्धि होने के पश्चात् पौधे जनन अवस्था (reproductive phase) में प्रवेश करते हैं तथा उनमें पुष्पन की क्रिया प्रारम्भ हो जाती हैं । कायिक अवस्था (vegetative phase) भिन्न-भिन्न पौधों में भिन्न-भिन्न अवधि की होती हैं । पौधे के कायिक अवस्था से पुष्पन अवस्था में प्रवेश को कई कारकों द्वारा नियंत्रित किया जाता हैं । इसमें से एक प्रमुख कारक प्रकाश की अवधि अर्थात् दीप्तिकालिता हैं। पुष्पन पर दीप्तिकालिता के प्रभाव का अध्ययन सर्वप्रथम दो अमेरिकी वैज्ञानिकों गार्नर तथा एलार्ड (Garner and Allard , 1920) ने किया । वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पुष्टन को प्रभावित करने वाला क्रान्तिक कारक (critical factor) प्रकाश काल की अवधि हैं । दीप्तिकालिता को परिभाषित करते हुए उन्होंने बताया कि दिन की वह लम्बाई जो पौधों में पुष्पन के लिए अनुकूल हो तथा दिन की आपेक्षित लम्बाई अथवा आपेक्षिक दीप्तिकाल के प्रतिपौधे की अनुक्रिया को दीप्तिकालिता कहते हैं । हिलमेन (Hillman, 1969) के अनुसार प्रकाश तथा अन्धकार अवधियों के अन्तरालों के प्रति पौधों की अनुक्रिया को दीप्तिकालिता कहते हैं । तम्बाकू (Nicotiana tabacum) ब्रायोफिलम (Bryophyllum) कॉसमॉस (Cosmos) एस्टर (Aster) आदि पौधों में लम्बी अन्धकार अवधि व छोटे दीप्तिकाल की आवश्यकता होती हैं । इसके विपरीत गेहूँ (Wheat) मूली (Radish), पालक (Spinach) इत्यादि में पुष्पन के लिए छोटी अन्धकार अवधि तथा लम्बे दीप्तिकाल की आवश्यकता होती हैं ।

दीप्तिकालिता अनुक्रियाओं के आधार पर पौधों को निम्न वर्गों में बाँटा गया हैं -

(i) **अल्प दीप्तिकाली पादप या लघु दिवस पादप** (short day plants SDP) ऐसे पौधे जो निश्चित क्रांतिक दीप्तिकाल (critical photoperiod) से कम अवधि में दीप्तिकाल उपलब्ध होने पर पुष्पन करनें लघुदिवस पादप कहलाते हैं उदा, गन्ना, डहेलिया इत्यादि ।

(ii) **दीर्घ दीप्तिकाली पादप या दीर्घ दिवस पादप** (Long day plants, LDP): वे पौधे जिनमें पुष्पन के लिए क्रान्तिक दीप्तिकाल से दीर्घ अवधि का दीप्तिकाल आवश्यक हो, दीर्घ दिवस पादप कहलाते हैं । उदा, पालक, मूली, चुकंदर इत्यादि ।

(iii) **दिवस उदासीन पादप** (Day netural plants) : वे पौधे जो लगभाग सभी सम्भव दीप्तिकालों में पुष्पीकरण कर सकते हैं, दिवस उदासीन पौधे कहलाते हैं । उदा, टमाटर, ककड़ी, कपास आदि ।

ग्राही अंग (Receptive organs). दीप्तिकाल को ग्रहण करने का कार्य मुख्य रूप से पत्तियों एव कलिकाओं के द्वारा किया जाता हैं ।

क्रियाविधि (Mechanism) प्रकाशग्राही वर्णक फाइटोक्रोम के दो रूप पुष्पन को प्रेरित करते हैं । फाइटोक्रोम मुख्यत: P730 (pfr) तथा P660 (pr) के रूप में पाया जाता हैं । बोर्थबिक एव हैंन्ड्रिक्स (Borthwick and Hendricks, 1950) के अनुसार प्रदीप्तकाल में पौधे फाइटोक्रोम के Pfr रूप का संचय करते हैं । Pfr,LDP में पुष्पन को संदमित करता हैं । अँधेरे में Pfr का Pr में रूपान्तरण हो जाता हैं । फाइटोक्रोम का Pr, रूप SID पादपों में पुष्पन को उद्दीपित करता हैं तथा LD में इससे पुष्पन संदमित होता हैं ।

9F.11 वसन्तीकरण (Vernalization)

अनेक पादपों में पुष्पन की क्रिया पर उचित दीप्तिकालों के अतिरिक्त तापक्रम का भी गहन प्रभाव पड़ता है । पौधे के तापक्रम के प्रति व्यवहार का सर्वप्रथम वैज्ञानिक अध्ययन लायसैन्को (Lysenko) ने चावल की दो किस्मों शीत किस्म एवं बसन्त किस्म (Winter varity and apring variety) पर किया ।

एकवर्षी (annuals) पादपों में पुष्पन पर प्रकाश का मुख्य प्रभाव पड़ता हैं तथा तापमान का प्रभाव द्वितीयक होता हैं । द्विवर्षी पादपों में स्थिति भिन्न होती हैं । इसमें प्रथम वर्ष में केवल कायिक वृद्धि होती हैं तथा पुष्पन द्वितीय वर्ष में होता हैं । पुष्प से पूर्व इन पादपों का शीत ऋतु के निम्म तापक्रम में उद्भासिन अथवा उपचारित होना आवश्यकता होता हैं । अगर द्विवर्षी पादपों को निम्म तापमान नहीं मिलता तो इनमें जनन अवस्था का प्रारंभ नहीं होता हैं । कोई, 1960 के अनुसार द्रुतशीतन उपचार (Chilling treatment) द्वारा पुष्पन की योग्यता के उपार्जन को वसन्तीकरण कहते हैं ।

यदि पानी सोखे हुए (Water soaked) बीजों अथवा नवोद्भिदों (seedlings) को निम्न तापक्रम (1-10^0 C) उपचार दिया जाता हैं तो उसके प्रभाव से उनकी वृद्धि त्वरित हो जाती हैं तथा उनमें पुथन भी जल्दी होता हैं । इस प्रभाव का अध्ययन गेहूँ चावल, कपास इत्यादि में किया गया हैं ।

सभवत: पत्तियों में हॉर्मोन के समान कुछ ऐसे पदार्थ बनते हैं जो वसन्तीकरण को नियंत्रित करते हैं । इस अज्ञात पदार्थ को वर्नेलिन (vernalin) कहा गया । लैंग (Lang, 1952) के अनुसार वर्नेलिन पुष्पन की क्रिया को आरम्भ करने वाले हॉर्मोन फ्लोरीजन (florigen) का पूर्वगामी (precursor) हैं ।

शीतकालीन पादप $\xrightarrow{\text{कम तापमान}}$ वर्नेलिन ⟶ फ्लोरीजन ⟶ पुष्पन

ग्राही अंग (Receptive organs) : पौधों के भ्रूण तथा विभज्योतक शीतन उपचार के ग्राही अंग हैं । वसंतीकरण से पौधों में कृषि सम्बन्धी कई उपयोगी परिवर्तन किए जा सकते हैं ।

इसकी सहायता से पौधों के कायिक काल को कम करके, उनमें समय पूर्व ही पुष्पन को प्रेरित किया जा सकता हैं यद्‌यपि वसंतीकरण क्रिया मुख्यत: शीतकालीन पौधों को प्रभावित करती हैं परन्तु कई ग्रीष्मकालीन पौधों में भी इससे उपयोगी परिवर्तन किए गए हैं ।

9F.12 सुप्तावस्था एवं बीजांकुरण]
(Dormancy and seed Germination)

सुप्तावस्था (Dormancy) : पादपों के बीज का पूर्ण विकास हो जाने के पश्चात् उसकी वृद्धि रूक जाती हैं । कुछ पौधों में बीज बनने के तत्काल बाद ही उनका अंकुरण हो जाता हैं । परन्तु अधिकांश पौधों के बीजों में निलंबित संजीवन (Suspended animation) की अवस्था पाई जाती हैं । इस समय बीजों का अंकुरण अस्थायी रूप से कुछ समय के लिए निलंबित रहता हैं । इसके कारण बीज लम्बे समय तक जीवनक्षम (viable) बने रहते हैं । निलंबन अवधि मरुस्थलीय पादप जैसे अकेशिया (Acacia), घास इत्यादि में 5 से 10 वर्ष तक होती हैं । आर्कटिक टुंड्रा में स्लूपाइन (Lupin) के बीजों में प्रसुप्तता 1000 वर्ष आँकी गई हैं । अधिकांश फसली पादपों के बीज 2.से 5 वर्ष तक की प्रसुप्तावस्था प्रदर्शित करते हैं । कुछ पादपों जैसे राइजोफोरा, मटर इत्यादि के बीजों में प्रसुप्तावस्था नहीं पाई जाती । ये बीज फलों के अन्दर ही अंकुरित हो जाते हैं ।

बीजों में निलंबित संजीवन कई बार बहिर्जात (exogenous) कारकों जैसे अंनुकूल वातावरणीय परिस्थितियों की अनुपस्थिति के कारण होती हैं इसे शांत अवस्था (quiescence) कहते हैं । परन्तु कुछ अन्य बीजों में परिवर्तन होने के पश्चात् अनुकूल वातावरणीय परिस्थितियाँ उपलब्ध होने पर भी ये अंकुरित नहीं हो पाते, इसे सुप्तावस्था (dormancy) कहते हैं ।

सुप्तावस्था को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affactiong the dormancy)

1. **कठोर बीजावरण** (Hard seed coat) : कई बीजों में बीजावरण अत्यंत कठोर होता हैं । यह बीजावरण अंकुरण के लिए आवश्यक जल (उदा चना मटर) एवं ऑक्सीजन (उदा जैन्थियम) के प्रति अपारगम्य (Impermeable) होता हैं । कई बार यह यांत्रिक प्रतिरोध (Mechanical resistance) भी प्रदर्शित करता हैं । (उदाहरण - एमेन्थम) तथा भ्रूण को विकसित नहीं होने देता ।
2. **भ्रूण की अपूर्ण परिपक्वता** (Immaturity of the embryo) : अनेक पौधों में भ्रूण के परिपक्व होने से पूर्व ही बीज जनक पादप से अलग हो जाते हैं । ये तब तक अंकुरित नहीं हो पाते जब तक कि भ्रूण का पूर्ण परिवर्धन नहीं हो जाता । उदाहरण - गिंगो बाइलोबा (Ginkgo biloba), नीटम निमोन (Gnetum gnemon)
3. **उत्तरपक्वनकाल की आवश्यकता** (Requirement of after ripening period) : कई बीज कुछ समय के विश्रामकाल के पश्चात् अंकुरित होते हैं इसे उत्तरपक्वनकाल कहते हैं । इस काल के दौरान बीज अंकुरण की क्षमता अर्जित करते हैं तथा इनमें कई कार्यिकी परिवर्तन होते हैं । उदाहरण - गेहूँ, जौ, जई इत्यादि ।

4. **विशिष्ट तापक्रम एवं प्रकाश की आवश्यकता** (Requirement of specific temperature and light) : कई बीजों के अंकुरण के पूर्व शीतन उपचार की आवश्यकता होती हैं । इसके लिए अनुकूल तापमान 0 - 5° C पाया गया हैं । शीत ऋतु में ये बीज प्राकृतिक रूप से उपचारित हो जाते हैं, उदा चैरी ओक इत्यादि । इसी प्रकार कुछ बीज प्रकाश की अवधि उसकी गुणवत्ता तथा मात्रा के प्रति अति संवेदी होते हैं । ये बीज फोटोब्लास्टिक (Photoblastic) कहलाते हैं । उदा तम्बाकू, कैप्सेला इत्यादि ।
5. **अंकुरण निरोधकों की उपस्थिति** (Presence of germination inhibitors) : गूदेदार फलों में स्थित बीजों तथा गूदे में उपस्थित कई पदार्थ अंकुरण का निरोध करने में सक्षम होते हैं इन्हें अंकुरण संदमक कहते हैं । इनमें काउमेरिन (Coumarin) पैराएस्कोर्बिक अम्ल (Parascorbic acid), फेरुलिक अम्ल (Ferulic acid), फिनोलिक अम्ल (Phenolic acid) आदि प्रमुख हैं । बीजों के मृदा में पड़े रहने से ये पदार्थ धीरे-धीरे निक्षालित हो जाते हैं तथा बीजों में अंकुरण हो जाता हैं ।

बीज प्रसुप्ति भंग करने की विधियों (Methods of breaking seed domacy)

1. **खुरचना** (Scarification) : इस विधि में कठोर बीजावरणों को तोड़कर अथवा खुरचकर कमजोर बना दिया जाता हैं । कई बार बीजों को अम्ल (H_2SO_4) गरम जल अथवा वसा विलायकों में भिगोकर मुलायम बनाया जाता हैं ।
2. **शीतन उपचार** (Chilling treatment) : ऐसे बीज जिनमें अंकुरण के लिए शीतन उपचार की आवश्यकता होती हैं उन्हें कृत्रिम शीतन उपचार दिया जाता हैं ।
3. **एकान्तरित तापक्रमों द्वारा उद्भासन** (Exposure to alternate temperatures) : कुछ बीजों की प्रसुप्ति को क्रमश : उच्च व निम्न तापक्रम से उद्रभासित करके समाप्त किया जा सकता हैं ।
4. **प्रकाश** (Light). कुछ धनात्मक प्रकाश संवेदी (positive photoblastic) बीजों को लाल प्रकाश से उद्रभासित करके इनकी अंकुरण क्षमता को बढ़ाया जाता हैं ।
5. **दाब** (Pressure) : कुछ प्रसुप्त बीजों को 18 - 20^0 C तापक्रम पर 2000 वायुमण्डल दाब पर रखने से इनकी अंकुरण क्षमता बढ़ जाती हैं ।
6. **वृद्धि नियंत्रकों का उपयोग** (Use of growth regulators) : कई प्रसुप्त बीजों में जिबरेलिन, इथाइलीन, क्लोरोहाइड्रीन, थायोशुईरया आदि के प्रयोग द्वारा अंकुरण कराया जाता है

बीजांकुरण (Seed germination) : बीज में भ्रूण सामान्यत : निलंबित संजीवन अवस्था में रहता हैं । जल की अल्प मात्रा (6-15%) तथा अन्य अवरोधक पदार्थों (Inhibitors) की उपस्थिति बीज को अंकुरित नहीं होने देती । उचित वातावरणीय परिस्थितियाँ मिलने पर यह अंकुरित होकर एक स्वतंत्र पादप का निर्माण करता हैं ।

बीजांकुरण के लिए जल एवं ऑक्सीजन की उपस्थित अत्यन्त आवश्यक हैं । सर्वप्रथम जल का अन्त:शोषण (Imbibition) करके बीज फूल जाता हैं जल अवशोषण से भ्रूण की कोशिकाओं का जीवद्रव्य सक्रिय हो जाता हैं तथा विभिन्न प्रकार के एन्जाइम सक्रिय होकर, ऑक्सीजन की

उपस्थिति में खाद्य पदार्थों को घुलनशील अवस्था में रूपान्तरित कर देते हैं । कोशिकाओं में विभाजन, दीर्घन तथा विभेदन द्वारा भ्रूण की वृद्धि प्रारंभ हो जाती हैं । कुछ पादपों (उदा तम्बाकू एवं लैटयूस) में बीजांकुरण प्रकाश द्वारा उद्रदीपित होता हैं । सर्वाधिक उद्दीपन लाल प्रकाश के द्वा होता हैं ।

अंकुरण के समय पहले मूलांकुर तेजी से वृद्धि करते हुए बीजचोल को बेधकर बाहर आ जाता हैं । यह मृदा में स्थापित होकर प्राथमिक मूल संस्थान (Primary root system) का निर्माण करता हैं । मूल निर्माण के पश्चात् भ्रूणीय अक्ष (Embryonal axis) बीजपत्र (Cotyledons) भूमि के नीचे रह जाते हैं तो इस प्रकार का अंकुरण अधोभूमिक (Hypogeal) कहलाता हैं । इसके विपरीत यदि बीजपत्र भूमि के बाहर निकल आते हैं तो इसे भूम्योपरिक (Epigeal) अंकुरण कहते हैं । भ्रूणीय अक्ष का ऊपरी सिरा प्रांकुर (Plumule) बनाता हैं जो बाद में प्ररोह तंत्र (Shoot system) के रूप में विकसित हो जाता हैं ।

दलदली भूमि के उगने वाले कुछ पादप जैसे राइजोफोरा हैरीटिएरा इत्यादि में विशेष प्रकार का बीजांकुरण पाया जाता हैं जिसे जरायुज या विविपैरस (Viviparous) अंकुरण कहते हैं । इन पादपों में मातृ पादप पर लगे हुए फलों के अन्दर ही बीज अंकुरित हो जाते हैं । भार बढ़ने पर फल नीचे गिर जाते हैं तथा नवोद्भिद दलदली भूमि में स्वतंत्र पादप का निर्माण करते हैं ।

बीजांकुरण के दौरान होने वाले उपापचयी परिवर्तन (Metabolic changes taking place during seed germintation) : अंकुरण के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती हैं जो श्वसन से प्राप्त होती हैं । बीजांकुरण की प्रारम्भिक अवस्था में श्वसन दर स्थिर रहती हैं तथा कुछ घण्टों के पश्चात् पुन: श्वसन गति तीव्र हो जाती हैं ।

विभिन्न संचित पदार्थो का एन्जाइमों द्वारा जल अपघटन (Hydrolysis) होता हैं । α , β एमाइलेज एवं α ग्लूकोसाइडेज स्टार्च के लाइपेज लिपिड्स के प्रोटीनेज एवं पेप्टाइडेज एन्जाइम प्रोटीन्स जल अपघटन में सक्रिय भूमिका निभाते हैं ।

बोध प्रश्न

1. सबसे पहले कौनसे पादप हॉर्मोन की खोज हुई?

....

....

2. गैसीय अवस्था में कौनसा हॉर्मोन्स मिलता हैं?

....

....

3. SDP पादप का एक उदाहरण बताइए?

....

....

4. मूल शीर्ष की वृद्धि को कौनसा हॉर्मोन्स संदमित करता हैं?

....

....

5. पतझड़ के समय कौनसा हॉर्मोन्स अधिक सक्रिय होता हैं?

....

....

6. पुष्पन की क्रिया के प्रारम्भ को प्रेरित करने वाला हॉर्मोन्स कौनसा हैं?

....

....

9F.13 सारांश

पादप वृद्धि के अध्ययन से ज्ञात होता हैं कि पादपों में वृद्धि निरन्तर होती रहती हैं । वृद्धि सजीवों में होने वाली जैविक क्रियाओं का परिणाम हैं । पादपों में वृद्धि लम्बवत् पार्श्व, अन्तर्वेशी हो सकती हैं जो विशेष विभाज्यतक कोशिकाओं द्वारा होती हैं । वृद्धि को नापने हेतु कई विधियाँ भी दशाई गई हैं । वृद्धि नियामक पदार्थ किस प्रकार वृद्धि को प्रभावित करते हैं और इनकी सूक्ष्ममात्रा वृद्धि में किस प्रकार सहायक सिद्ध हुई हैं । वृद्धि निरोधक पदार्थ पौधों की वृद्धि और विकास के पूर्ण संतुलन एवं नियंत्रण के लिए वृद्धिवर्धक और वृद्धिरोधक दोनों प्रकार के पदार्थ आवश्यक हैं यह जानकारी भी हमें प्राप्त हुई । प्रकाश की अवधि, तापक्रम, एन्जाइम भी पादपों की अनेक क्रियाओं को प्रभावित करते हैं यह जानकारी भी इस भाग में प्राप्त हो सकी हैं।

9F.14 शब्दावली

1. **वृद्धि :** सजीवों के परिमाण में स्थायी तथा अनुक्रमणीय परिवर्तन को वृद्धि कहते हैं ।
2. **वसन्तीकरण :** द्रुत शीतन उपचार द्वारा पादपों में पुष्पन की योग्यता को वसन्तीकरण कहते
3. **सुप्तावस्था :** बीजों में अंकुरण के अस्थायी निलंबन को कहते हैं ।
4. **जीर्णता :** किसी जीव की परिपक्व अवस्था से लेकर मृत्यु होने तक के काल को जीर्णता कहते हैं ।
5. **वृद्धि नियामक पदार्थ :** वे कार्बनिक पदार्थ जो पौधों के एक भाग में संश्लेषित होकर अन्य भागों में स्थानान्तरित हो जाते हैं तथा पादप कार्यिकी को प्रभावित व नियंत्रित करते हैं ।

9F.15 संदर्भ ग्रन्थ

1. पादप कार्यिकी एवं जैव रसायन, डॉ. एन. बी. सक्सेना, डॉ. एम. एल. वर्मा, डॉ. बी. एल चौधरी अल्का पब्लिकेशन, अजमेर
2. वनस्पति शास्त्र, डॉ. ओ. पी. दायमा, सी. बी. एच. पब्लिकेशन जयपुर ।
3. वनस्पति विज्ञान, डॉ. प्रमोद कुमार शर्मा, डॉ. मन्जु शर्मा, डी. प्रेम प्रकाश पालीवाल माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर ।

9F.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ऑक्सिन
2. इथाइलीन
3. गन्ना
4. ऑक्सिन
5. ABA (एब्सिसिक अम्ल)
6. फ्लोरीजन

9F.17 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सिग्माइड वृद्धि चाप क्या होता हैं ।
2. टिप्पणी लिखिए:

   (अ) वृद्धि की प्रावस्थाए

   (ब) वृद्धि काल
3. वृद्धि मापन किस प्रकार करते हैं? वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन करिए?
4. पादप वृद्धि पर ऑक्सिन के कार्यिकयि प्रभावों की विवेचना कीजिए
5. जीर्णता तथा विलगन को समझाइए?
6. वृद्धि निरोधक पदार्थ पर टिप्पणी लिखिए?

इकाई 9G : पादप गतियाँ

इकाई की रूपरेखा

9G.0 उद्देश्य
9G.1 प्रस्तावना
9G.2 पादप गतियाँ
9G.2.1 चलन गतियाँ
9G.2.2 वक्रता की गतियाँ
9G.3 पादप गतियों का वर्गीकरण
9G.4 सारांश
9G.5 शब्दावली
9G.6 संदर्भ ग्रन्थ
9G.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
9G.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

9G.0 उद्देश्य (Object)

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त पाठक पादप गतियों जो एक सजीव का लक्षण हैं के बारे में जान सकेंगे । पादप गतियों के प्रकार जैसे चलन गतियों, तथा वक्रता की गतियाँ भली भांति जान सकेंगे । पादप गतियों के वर्गीकरण के बारे में अध्ययन कर सकेंगे ।

9G.1 प्रस्तावना

(Introduction) प्रत्येक जीव अपने आप को वातावरण के अनुकूल बनाये रखता हैं परन्तु वातावरण में धीरे-धीरे परिवर्तन आते रहते हैं । अत: पादपों को स्वस्थ जीवनयापन करने के लिए परिवर्तित वातावरण के अनुकूल बनना पड़ता हैं । परिवर्तित वातावरण के कारण उद्दीपन (Stimulus) होने से अनुक्रिया (Response) होकर उत्तेजनशीलता उत्पन्न होती हैं । इन सभी प्रकृमों के फलस्वरूप किसी जीव में गति होती हैं ।

गति को हम इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं -

परिभाषा : सजीवों के किसी अंग या सम्पूर्ण शरीर के स्थान परिवर्तन को गति कहते हैं । इस संदर्भ में सजीव के सम्पूर्ण शरीर द्वारा स्थान परिवर्तन को प्राय : चलन (Locomotion) तथा गति (Movement) कहते हैं ।

उद्दीपक, अनुक्रिया, तथा उत्तेजनशीलता (Stimulation,Response,Irritability)

उद्दीपन (Stimulus) : बाहय या अन्त कारक जिसके फलस्वरूप पादपों में कोई अनुक्रिया होती हो, उद्दीपन कहते हैं । उद्दीपन यांत्रिक (Mechanical), भौतिक (Physical) या रासायनिक (Chemical) प्रकार के होते हैं ।

अनुक्रिया (Response) : किसी उद्दीपन के फलस्वरूप जब पादपों में कोई क्रिया होती हैं तो यह अनुक्रिया कहलाती हैं जैसे - छुईमुई को स्पर्श करने पर स्फीति में परिवर्तन होना अनुक्रिया हैं ।

उत्तेजनशीलता (Irritability) : किसी भी उद्दीपन के लिये विशिष्ट प्रकार की अनुक्रिया को उत्तेजनाशीलता कहते हैं ।

पौधो में उद्दीपन ग्रहण करने के बाद अनुक्रिया प्रकट होने के मध्य के समय को प्रतिक्रिया काल (Reaction time) तथा अनुक्रिया होने के लिये जिस न्यूनतम समय अवधि के लिए उद्दीपन देते रहने की आवश्यकता होती हैं, जिसे प्रस्तुति काल (Presentation time) कहते हैं । यदि किसी पौधे को प्रथम उद्दीपन के प्रभाव के समाप्त होने से पूर्व ही द्वितीय उद्दीपन दे दिया जाये तो प्रभाव निरन्तर रहने से अनुक्रिया हो जाती हैं, इसे उद्दीपन के संकलन का नियम (Law of summation of stimuli) कहा जाता हैं ।

9G.2 पादप गतियाँ (Plant movement)

पादपों में दो प्रकार की गतियाँ होती हैं ।

(अ) चलन गतियाँ

(ब) वक्रण गतियाँ

(अ) चलन गतियों (Movements of Locomotion) पादप या इनके अंगों को एक स्थान से अन्य स्थान तक शारीरिक गतियाँ होती हैं, ये दो प्रकार की होती हैं -

(I) स्वत: प्रेरित

(II) अनुप्रेरित

(I) **चलन की स्वत : प्रेरित गतियों** (Autonomic movement of locomotion) : इस प्रकार की गतियाँ पादप के आन्तरिक कारकों से होती हैं ये निम्न प्रकार की होती हैं -

1. **पक्ष्माभि गति** (Ciliary movement) : अनेक शैवाल (Udvox) चल बीजाणु (Zoospores) पक्ष्माभिकायुक्त ciliated होते हैं । पक्षमाभ के कम्पन के फलस्वरूप इनमें गति होती हैं ।
2. **अमीबीय गति** (Amoeboid movement) : स्लाइम कवक (Slime fungi) में किशिकाभित्ति का अभाव होन से अभासीपाद (Pseudopodia) निकलते हैं । तथा इनकी सहायता से गति होती हैं ।
3. **जीव द्रव्य भ्रमण** (Cyclosis) : पौधों की कोशिकाओं में कोशिकाद्रव्य की प्रभावी गति (Streaming movement) होती हैं यदि सम्पूर्ण कोशिका द्रव्य कोशिकाभित्ति के साथ के साथ दक्षिणावर्त (Clockwise) या वामावर्त (Anticlockwise) दिशा में प्रवाहित होता हैं तो इसे घूर्णन (Rotation) कहते हैं । जैसे : (Hydrilla,Chara) में।

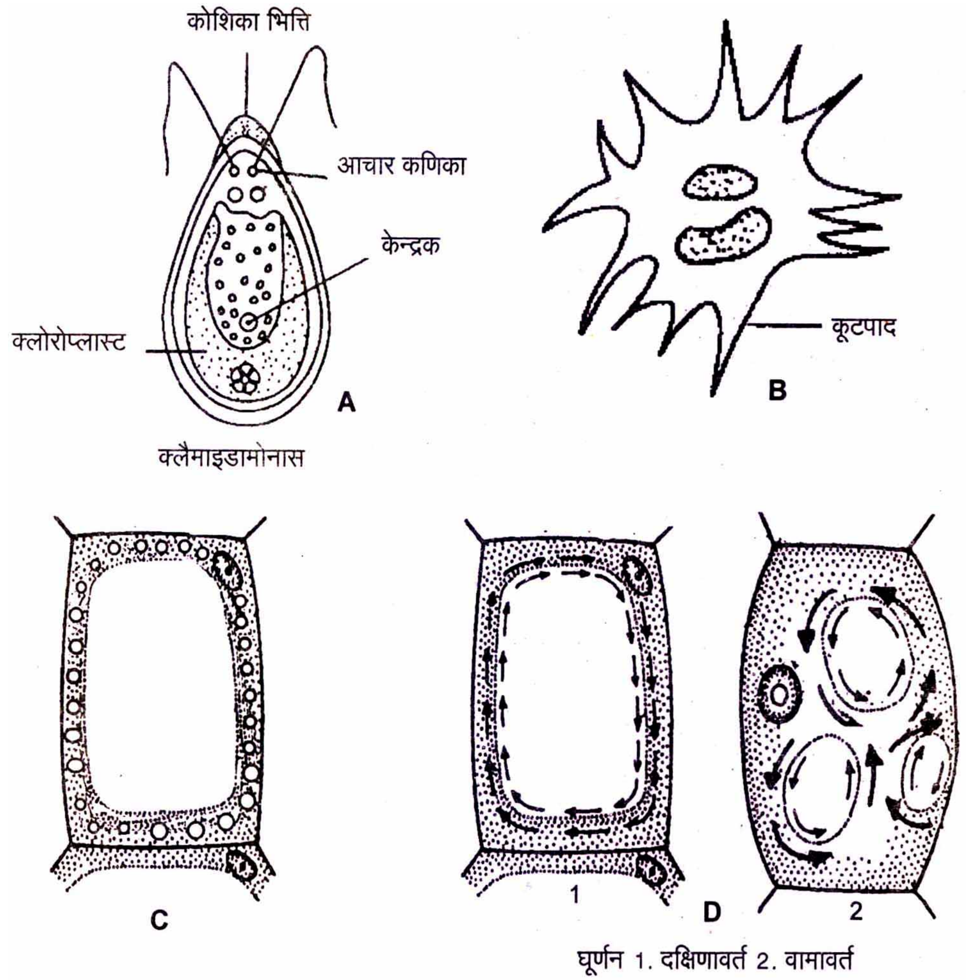

चित्र 9G.1 : A. पक्षमाभि गति; B. अमीबीय गति; C. परिसंचरण; D. घूर्णन

(II) **चलन की अनुप्रेरित गतियों** (Paratonic movement) : इन गतियों को अनुचालित (tactic) गतियाँ भी कहते हैं । इसमें गति की दिशा बाह्य कारकों द्वारा नियंत्रित होती हैं । ये कारक प्रकाश, तापक्रम व रसायन हैं -

1. **प्रकाशानुचलित गतियाँ** (Phototactic movement) : गति प्रकाश उद्दीपन के कारण होती हैं । अनेक शैवाल कम प्रकाश तीव्रता के समय अधिक प्रकाश तीव्रता की ओर गति करते हैं । तथा तीव्र प्रकाश के समय, कम प्रकाश की ओर गति करते हैं ।
2. **ताप अनुचलन गतियाँ** (Thermotactic movements) : पक्ष्मायुक्त (Ciliated) शैवाल ठण्डे स्थानों से सामान्य उष्ण जल की ओर गति करते हैं । परन्तु अधिक तापमान के समय ये कम तापमान वाले जल की ओर गति करते हैं । यह गति ताप उद्दीपन के कारण होती हैं ।
3. **रसायन अनुचलन गतियों** (Chemotactic movement) : यह गति रसायन उद्दीपन के कारण होती हैं । उदहरणार्थ - ब्रायोफाइटा के नरयुग्मक (Antherozoids)

स्त्रीधानियों (Archegonia) की ओर आकर्षित होते हैं । क्योंकि स्त्रीधानी द्वारा शर्करा स्रावित होती हैं । यह शर्करा रसायन उद्दीपन का कारण हैं ।

(ब) वक्रण गतियों (Movements of curvature): इन गतियों में पादप संरचनायें स्थिर रहती हैं परन्तु इनमें वक्रता का निर्माण होता हैं । यह वक्रता वृद्धि (Growth) या परिवर्तनों (Variation) के फलस्वरूप होती हैं । अत: इन्हें दो भागों में (I) वृद्धि गतियाँ या (II) परिवर्तन-गतियों में बाँटा जा सकता हैं ।

(I) वृद्धि की गतियाँ (Movements of growth) :

(a) **वृद्धि की स्व:प्रेरित गतियाँ** (Autonomic movements of growth) : इस प्रकार की गतियाँ आन्तरिक कारकों से प्रभावित व नियंत्रित होती हैं । ये गतियाँ निम्न प्रकार की होती हैं-

1. **अनुकुंचन** (Nastic movement) : जब किसी अंग की एक सतह की अपेक्षा दूसरी सतह की अधिक वृद्धि हो जैसे ऊपरी सतह पर अधिक वृद्धि होने से पुष्प युवा पत्ती की ओर मुड़ जाती हैं जिससे ये रचनायें खुल जाती हैं । ऊपरी सतह की अधिक वृद्धि को अधोकुंचन (Epinasry) कहते हैं ।

   किन्तु जब वृद्धि निचली सतह पर अधिक हो तो वह रचना ऊपर की ओर मुड़कर बन्द हो जाती हैं, जिसे अधोवृद्धि वर्तन (Hyponasty) कहते हैं ।

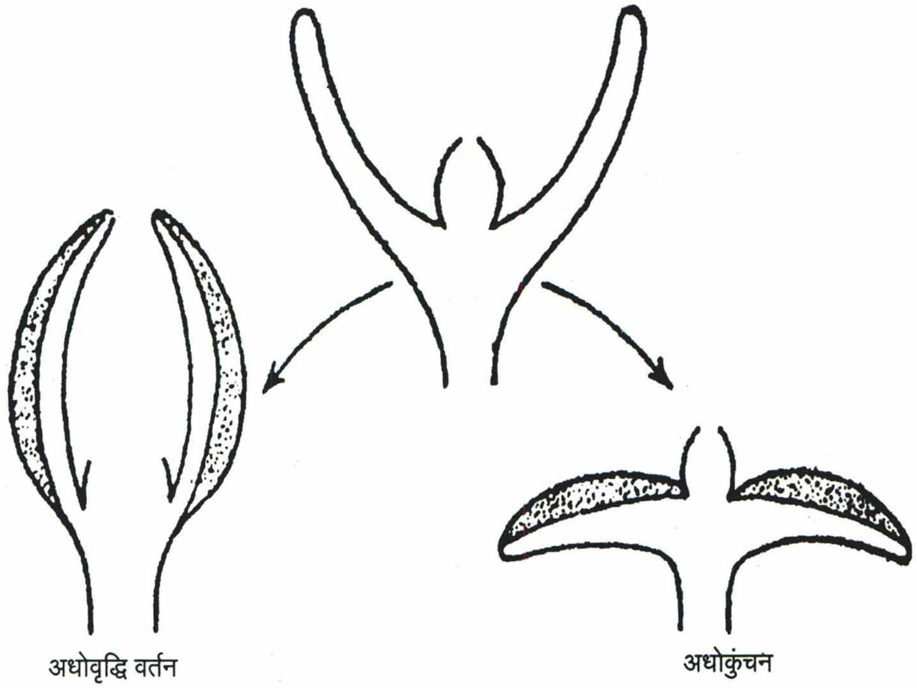

चित्र 9G.2 : अनुकुंचन स्वत :वृद्धि

2. **शिखाचक्रण** (Nutation) : जब प्रतान (Tendril) इत्यादि में प्ररोह शीर्ष (Shoot opex) सर्पिल आकृति से ऊपर बढ़ता हैं तो वृद्धि की दर एक पार्श्व (Side) पर अधिक तथा दूसरे पार्श्व पर कम होने के कारण यह सर्पिल आकृति ग्रहण कर लेता हैं । इसे शिखाचक्रण कहा जाता हैं ।

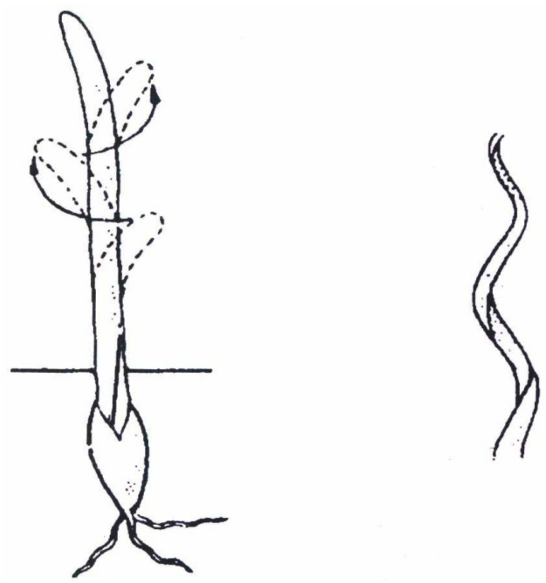

चित्र 9G.3 : शिखा चक्रण

3. **परिशिखा चक्रण** (Ciruminutation) _ प्ररोह शीर्ष सर्पिल आकृति में वृद्धि करते रहते है । और प्ररोह सीधी रेखा में बढता दिखाई देता है ।

(b) **वृद्धि की अनुप्रेरित गतियाँ** (Paratonic movement of growth) ' बाह्य कारकों के प्रभाव से मुड़ने की क्रियाओं को अनुवर्ती (Tropic) गतियाँ कहते हैं । इस प्रकार की गतियों निम्न प्रकार की होती हैं ।

1. **प्रकशनुवर्तन** (Phototropism) : प्रकाश अनुवर्ती गतियों में संबन्धित पादप अंग की वक्रता ब्राहयस्रोत से आ रहे प्रकाश की दिशा द्वारा नियंत्रित होती हैं । उच्चवर्गीय पादपों का मुख्य स्तम्भ प्राय: प्रकाश की दिशा की ओर गमन करता हैं । अत: स्तम्भ को धनात्मक प्रकाशानुवर्ती (Positive phototropic) तथा इस क्रिया को घनात्मक प्रकाशनुवर्तन (Positive phototropism) कहते हैं । मूल (Roots) ऋणात्मक प्रकाश अनुवर्ती (Negative phototropic) होती हैं । क्योंकि ये प्रकाश स्रोत की दिशा से विपरीत दिशा की ओर नमित होती हैं । इस घटना को ऋणात्मक प्रकाशानुवर्तन (Negative phototropism) कहते हैं ।
2. **गुरुत्वानुवर्तन** (Geotropism) : गुरुत्व प्रभाव के आधार पर मूल घनात्मक गुरुत्वानुवर्तन तथा स्तम्भ ऋणात्मक गुरूत्वानुवर्ती होता हैं । यदि पौधों को क्षैतिज (Horizontal) स्थिति में रखे तो तने व मूल के शीर्षो पर ऑक्सिन नीचे की ओर एकत्रित हो जाता हैं, इसमें तने के शीर्ष के नीचे की ओर अधिक वृद्धि होने से यह ऊपर की ओर मुड़ जाता हैं ।,
   जड़ में भी मुख्य या प्राथमिक जड़ घनात्मक गुरूत्वानुवर्ती (positive geotropic) तथा मुख्य या प्राथमिक स्तम्भ ऋणात्मक गुरूत्वानुवर्ती (Negative geotropic) होता हैं ।

द्वितीयक जड़ तथा स्तम्भ की शाखायें मुख्य अक्ष से 45° का कोण बनाती हुई निकलती हैं अतः जड़े घनात्मक व स्तम्भ शाखायें ऋणात्मक तिर्यक गुरूत्वानुवर्ती (Plagiogeotropic)

3. **जलानुवर्तन** (Hydrotropism) : यहाँ जल बाह्य कारक हैं । जडे घनात्मक जलानुवर्ती होती हैं तथा सदैव जल या नमी की ओर वृद्धि करती हैं ।
4. **रसायनानुवर्तन** (Chemotropism) : कवक सूत्र (Fungalhypae) सदैव शर्करा की ओर वृद्धि करते हैं अतः यह गतियाँ रसायन कारक फलस्वरूप होती हैं ।
5. **स्पर्शानुवर्तन** (Thigmotropism) : प्रतान (Tendrils) किसी आधार सें स्पर्श करने पर बढ़ती हैं इसमें स्पर्श करने वाले भाग में कम वृद्धि तथा इसके विपरीत वाले भाग में अधिक वृद्धि होती हैं, इस कारण प्रतान कुण्डालित (Coiled) हो जाते हैं ।

II. परिवर्तन की गतियाँ (Movementsof variation)

यह गतियों दो प्रकार की होती हैं -

(a) स्वतः प्रेरित तथा

(b) अनुप्रेरित

(a) **स्वत : प्रेरित गति** (Autonomic movement of variation) : डेस्मोडियम गइरेन्स (Desmodium gyrans) के तीन पर्णक (Leaflet) में से दो पार्श्विय पर्णक दिन के समय दीर्घवृत्तीय कक्ष (Ellipsoidal arbit) में घूर्णन करते रहते हैं । जबकि शीर्ष वाला पर्णक स्थिर रहता हैं ।

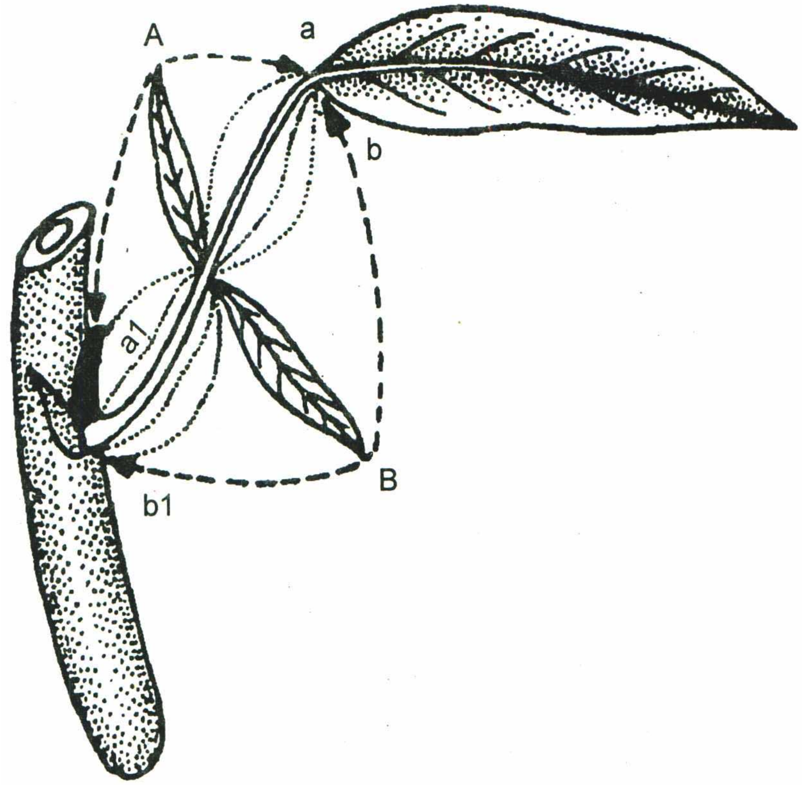

चित्र 9G.4 : डेस्मोडियम गाइरेन्स स्वत : प्रेरित गति

(b) **परिवर्तन की अनुप्रेरित गतियाँ** (Paration movement of varation) : अनेक ब्राह्य कारकों जैसे-प्रकाश, तापक्रम, स्पर्श के कारण पौधों में पीरवर्तन होते हैं । परन्तु यह परिवर्तन दिशात्मक न होकर विसारित (Diffuse) होते हैं । इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

1. **निशानुकुंचन** (Nyctinasty) : पत्तियों व पुष्पों के दिन के खुलने और रात्रि में बन्द होजा ने को निशानुकुचन (Nyctinasty) कहते हैं । प्रकाश के कारण जब पत्तियाँ या पुष्प खिलते हैं तो इसे प्रकाशानुकुंचन (Photonasty) कहते हैं । तापक्रम के कारण पुष्पों का खुलना व बन्द होना तापानुकुंचन (Thermonasty) कहलाता हैं । जैसे : Oxalis (खट्टी बूंटी) की पत्तियाँ दिन में खुली रहती हैं । परन्तु अंधेरा होते ही पर्ण फलक बन्द हो जाते हैं ।
2. **स्पर्शानुकुंचन** (Thigmonasty) : स्पर्श के कारण गति होने को स्पर्शानुकुंचन कहते हैं । जैसे : टोरोनिया (Torenia) इत्यादि में वतिकाग्र (Stigma) कीटों से स्पर्श के कारण ही गतिशील हैं । इसी प्रकार कुकुरबिटोसी कुल के सदस्यों के प्रतान तथा कीटभक्षी पादपों जैसे ड्रॉसेरा (Drosera) में स्पर्श के कारण गति होती हैं ।
3. **कंम्पानुकुंचन** (Seismonasty) : छुईमुई (Mimosa pudica) को स्पर्श करते ही पत्तियाँ बन्द हो जाती हैं, यह गति स्फीति परिवर्तन के कारण होती हैं । जैसे ही पत्ती के पर्णक को स्पर्श करने से उद्दीपन प्राप्त होता हैं तो इस उद्दीपन के कारण कुछ पदार्थ (सम्भवत: ऑक्सिन) संवहन उत्तक द्वारा, पर्ण के आधार पर 'पर्णवृन्ततल्प में पहुँच जाते है । इससे मृदूतक कोशिकाओं का जल आस-पास की कोशिकाओं में विसरित हो जाता हैं । तथा निचला भाग स्थल हो जाने के कारण पत्तियाँ झुककर बन्द हो जाती हैं । जैसे ही उद्दीपन का प्रभाव समाप्त होता हैं त्योंही कोशिकायें पुन: जल प्राप्त कर स्फीत हो जाती हैं जिससे पत्तियाँ पुन: इसी स्थिति में आ जाती हैं ।

बोध प्रश्न

1. प्रकाशनुवर्तन गति पाई जाती हैं?

   ....

   ....
2. पुष्प का खुलना तथा कलियों का गिरना किसके उदाहरण हैं ।

   ....

   ....
3. पत्तियों में निशानुकुंचन का कारण हैं?

   ....

   ....
4. मिमोसा पुडिका के पडाक को छूने से उत्पन्न होने वाली गति को क्या कहते हैं ।?

   ....

   ....

5. उद्दीपन प्राप्त करने के पश्चात् अनुक्रिया प्रकट होने के बीच के काल को क्या कहते हैं ।?

....

....

6. ड्रोसेरा के रोमों में कौनसी गति होती हैं ।?

....

....

9G.3 पादप गतियों का वर्गीकरण (Classfication of plants Movement)

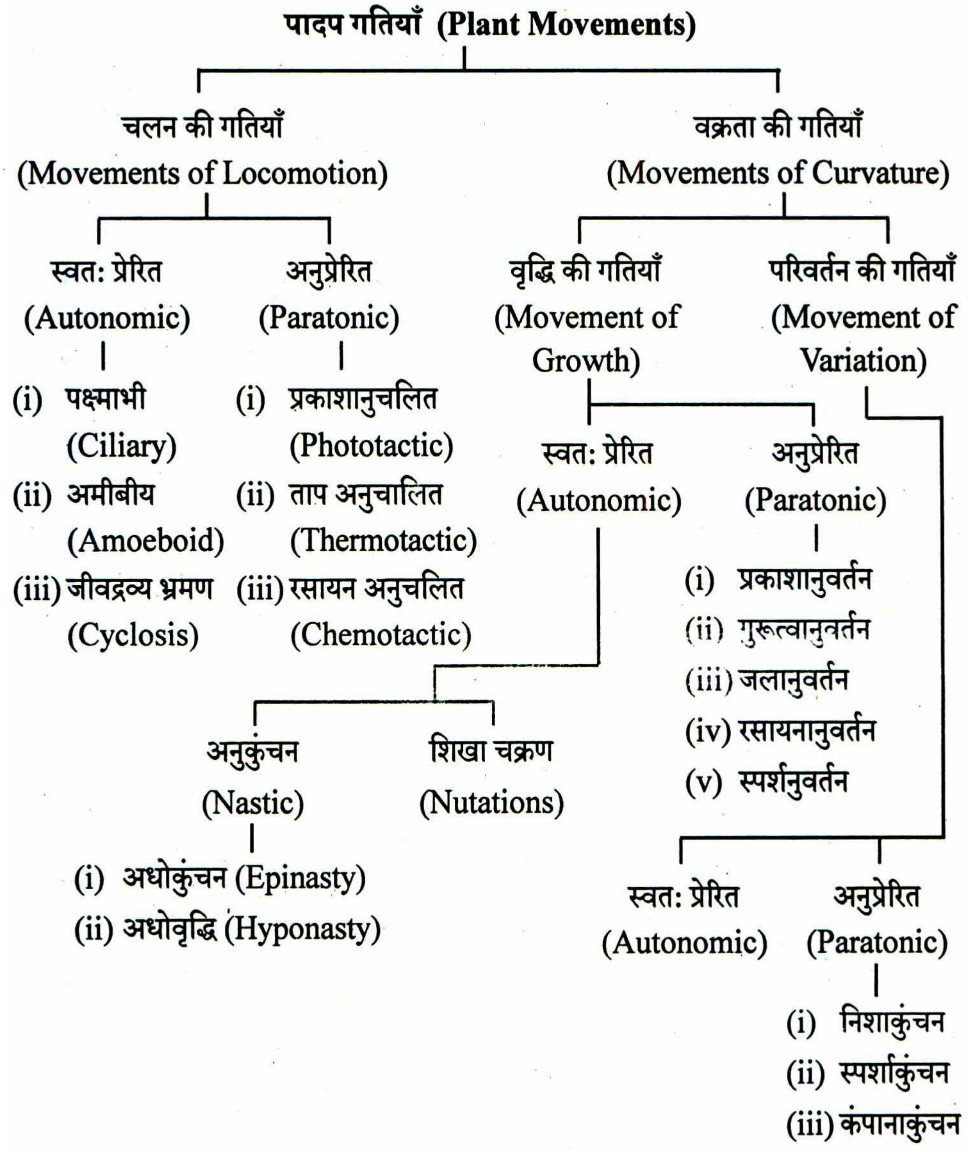

9G.4 सारांश

सभी सजीवों को परिवर्तित वातावरण के अनुसार करने के लिए अपने आप को अनुकूल बनाये रखना आवश्यक हैं । वातावरण प्रभाव अलग-अलग स्थानों पर अलग होते हैं । पौधों में यह गतियाँ पशुओं से भिन्न होती हैं । इन्हें हम उद्दीपन तथा अनुक्रिया के नाम से जानते हैं । पादप गतियाँ दो प्रकार की होती हैं । इनके बाह्य कारक प्रकाश, तापक्रम, रसायन, जल स्पर्श एवं आन्तरिक कारक (वृद्धि, कोशिका द्रव्य गति, शिखा चक्रण) इसमें मुख्य भूमिका निभाते हैं ।

9G.5 शब्दावली

1. अधोकुंचन गति : पुष्पों का खिलना अधोकुंचन गति हैं ।
2. उद्दीपन : ब्राह्य या आंतीरक कारक जिसके फलस्वरूप पादपों में कोई अनुक्रिया होती हैं ।
3. अनुक्रिया : किसी उद्दीपन के फलस्वरूप जब पादपों में कोई क्रिया होती हैं । तो यह अनुक्रिया कहलाती हैं ।
4. तापानुकुंचन : तापक्रम के कारण पुष्पों का खुलना व बन्द होना तापानुकुंचन कहलाता हैं ।

9G.6 संदर्भ ग्रन्थ (Bibliography)

1. पादप कार्यिकी एवं जैव रसायन, डॉ. एन. बी. सक्सेना, डॉ. एम. एल वर्मा, डॉ. बी. एल चौधरी अल्का पब्लिकेशन, अजमेर
2. वनस्पति शास्त्र, डॉ. ओ. पी. दायमा, सी. बी. एच. पब्लिकेशन जयपुर ।
3. वनस्पति विज्ञान, डॉ. प्रमोद कुमार शर्मा, डॉ. मन्जु शर्मा, डी. प्रेम प्रकाश पालीवाल, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर

9G.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. तने के शीर्ष पर
2. स्वत : गति
3. पर्णाधार पर असमान वृद्धि
4. स्पर्शअनुवर्तनी
5. प्रतिक्रिया काल
6. स्पर्शाकुंचन

9G.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पादप गतियाँ क्या हैं?
2. चलन गतियों और वक्रण गतियो को उदाहरण सहित विभेदित करिये ।
3. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :
   (अ) अधोकुंचन
   (ब) शिखाचक्रण
   (स) प्रकाशनुवर्तन
4. पादप गतियो का वर्गीकरण कीजिए ।

इकाई 10 : जैव प्रौद्योगिकी

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 संक्षिप्त इतिहास
10.3 भारत में जैव प्रौद्योगिकी
10.4 जीन अभियांत्रिकी
10.4.1 जीन अभियात्रिकी की विधि
1. रेस्ट्रिक्शन एण्डोन्यूइक्लएज विकर
2 वाहक
3. परपोशी कोशिकायें
4 जीन लाइब्रेरी
10.4.2 जीन स्थानान्तरण
1. प्लाज्मिड वाहक द्वारा परोक्ष जीन स्थानान्तरण
2. प्रत्यक्ष जीन स्थानान्तरण
3. ट्राँसजैनिक पादप तथा उनका महत्व
4. ट्राँसजैनिक जन्तु तथा उनका महत्व
10.5 जैव प्रौद्योगिकी का महत्व
10.6 जैव उर्वरक
10.7 जैव ऊर्जा के प्रमुख स्रोत
10.8 पैटेन्ट तथा बौद्धिक सम्पदा अधिकार
10.9 जैव अनैतिकता
10.10 सारांश
10.11 शब्दावली
10.12 संदर्भग्रंथों की सूची
10.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
10.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.0 उद्देश्य (Objective)

पिछली सदी में जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अत्यधिक कार्य हुआ हैं । आज हमें DNA की संरचना प्रतिकृति निर्माण एवं जीन अभिव्यक्ति की महत्वपूर्ण जानकारियाँ ज्ञात हैं । पिछले तीन दशकों में तो जैव प्रौद्योगिकी का यह ज्ञान जीन स्थानान्तरण तक जा पहुँचा हैं ।

इस इकाई के अध्ययन के बाद हम जैव प्रौद्यगिकी के इतिहास तथा भारत में इसके विकास को जान सकेंगे । जीन अभियांत्रिकी और जीन स्थानान्तरण के बारे में मूलभूत तकनीक का

अध्ययन करेंगे । जैव प्रौद्योगिकी के महत्व, जैव उर्वरक तथा जैव ऊर्जा जैसे सामयिक विषयों पर समुचित जानकारी प्राप्त करेंगे । साथ ही पेटेंट, बौद्धिक सम्पदा अधिकार और जैव अनैतिकता जैसे विषयों पर संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करेंगे ।

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

जैव प्रौद्योगिकी (Biotechnology) शब्द हंगरी के कार्ल एरेकी (Karl Ereky) ने 1919 में दिया। जैव प्रौद्योगिकी का शाब्दिक अर्थ हैं : जैविक प्रक्रियाओं का उपयोग उन पदार्थों के उत्पादन के लिए करना, जिनको उपयोग मानव मात्र के कल्याण में किया जा सके।

जैव प्रौद्योगिकी विज्ञान में व सब औद्योगिक प्रक्रम सम्मिलित किए जाते हैं, जिनमें जीव किसी न किसी रूप में अथवा किसी न किसी स्तर पर सक्रिय भाग लेते हैं।

"Biotechnology is the use and manipulation of living organisms or substances oblained from these organisms to make products of values to humanity."

10.2 संक्षिप्त इतिहास (Brief History)

जैव प्रौद्योगिकी का इतिहास बहुत प्राचीन हैं। इसका प्रारम्भ हम लगभग 6000 ई. पू. से मान सकते हैं, जब मनुष्य ने शराब व बीयर बनाने के लिए यीस्ट का प्रयोग किया। लगभग 4000 ई. पू. किण्वित डबल रोटी (Leavered Bread) का उत्पादन तथा फलों के रस के किण्वन (Fermentation) से एल्काहोलिक पेय का उत्पादन भी जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ रही। 2000 ई. पू प्राचीन ग्रीस में लोगों ने पनीर का उत्पादन प्रारम्भ कर दिया था। 1150 ई. पू. ईथेनॉल का उत्पादन प्रारम्भ हुआ।

जैव प्रौद्योगिकी के नियोजित अध्ययन का प्रारम्भ हम 1860 ई. से मान सकते हैं, जब पाश्चर (Pasteur) ने शराब के खट्टे होने के कारण के रूप पें सूक्ष्म जीवों को पहचाना। 1897 में बुकनर (Buchner) के विकरो (Enzymes) द्वारा कोशिका रहित किण्वन (Cell free fermentation) के द्वारा शर्करा से एल्काहॉल बनाया।

बीसवीं शताब्दी जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में युगांतकारी खोजों की शताब्दी रही जिसमें इस विषय ने नए आयामों को छुआ। 1928 में अलैस्जेंडर फ्लेमिंग (Alexander Fleming) ने पेनीसिलिन की खोज कर चिकित्सा के क्षेत्र में जैव प्रौद्योगिकी की संभावनायें खोली। 1944 में पेनीसिलिन का वृहद स्तर पर उत्पादन भी प्रारंभ हो गया। 1970 में रेट्रिक्शन एण्डोन्यूक्लिएज (Restriction Endonuclease) की खोज ने आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी की नींव रखी। 1971 में **राइजोबियम** (Rhizobium) नामक जीवाणु से क्लेबसिएला में निफ जीन 1 (नाइट्रोजन स्थरीकरण जीन) का स्थानान्तरण किया गया। 1975 में एकक्लोनी प्रतिरक्षी (Monoclonal Antibody) के उत्पादन की हाइब्रिडोमा तकनीक विकसित की गई, जिनके रोग निदान (Diagnosis) में उपयोग को 1981 में यू. एस. ए. (U.S.A.) ने मान्यता प्रदान की। 1982 में आनुवंशिक अभियत्रिक सूक्ष्म जीव (Genetically Modified mirobes) द्वारा प्राप्त

इमूलिन (Insulin) के उपयोग को यू. एस. ए. तथा यू. के. (U.S.A. and U.K) में मान्यता मिली। 1984 में प्राणी इन्टरफेरॉन (Animal Interferon) को पशुरोगों के विरुद्ध प्रयोग के लिए मान्यता मिली। 1981 से 1990 के दशक में कितने ही आनुवंशिक अभियात्रित हार्मोनों का उत्पादन प्रारम्भ हुआ तथा जैव प्रौद्योगिकी की यह तकनीक व्यापक रूप लेने लगी तथा नए सूक्ष्म जीव प्रभेदों (Microbial Steains) का विकास हुआ।

1997 में विल्मुट एवं उसके साथियों (Wilmut et.al) द्वारा भेड़ का क्लोन तैयार करना एक अन्य क्रांतिकारी कदम था। इसी वर्ष यीस्ट जीनोम का अनुक्रमण (Sequence) पूर्ण किया गया। 1998 में मानव भ्रूण से स्टेम कोशिकाओं (Stem Cells) का विकास चिकित्सा के क्षेत्र में एक महती उपलब्धि के रूप में दर्ज हुआ।

2000 में अमरीकी कम्पनी "एडवांस्ट सैल टैस्नोलॉजी" (Advacned Cell Technology) द्वारा मानव भ्रूण का क्लोन तैयार किया गया। इसी वर्ष एरेबिडोप्सिस (Arabidopsis) का जीनोम अनुक्रमण (Genome Sequence) पूर्ण हुआ। 2001 में चावल का प्रथम जीन मैप तैयार हुआ। 2002 में मानव शरीर द्वारा अस्वीकार्य अंगों से सम्बन्धित x 1-3 गैलैम्योसील जीन को अलग करके सूअरों के क्लोन बनाये गये। 2004 में मानव जीनोम प्रोजेक्ट (Human Genome Project) पूरा होकर प्रकाशित किया गया।

10.3 भारत में जैवप्रौद्योगिकी (Biotechnology in India)

यूं तो भारत में पिछली सदी के प्रारम्भ से ही जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विभिन्न विश्वविद्यालय और संस्थान अपने अपने स्तर पर अनुसंधान कार्य कर रहे थे परन्तु एक नियोजित अनुसंधान की आवश्यकता को देखते हुए 1982 में एक राष्ट्रीय जैव प्रौद्योगिकी बोर्ड (National Biotechnology Board-NBTB) की स्थापना भारत सरकार द्वारा की गई। 1986 में एक स्वतंत्र जैव प्रौद्योगिकी विभाग (Department of Biotechnology -DBT) की स्थापना की गई।

जैव प्रौद्योगिकी में शोध के लिए तीन संस्थाओं में शोध केन्द्र की स्थापना की गई। जो निम्नलिखित है :

1. भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, (IARI), नई दिल्ली
2. राष्ट्रीय दुग्ध शोध संस्थान, (NDRI), करनाल (हरियाणा)
3. भारतीय पशु शोध संस्थान, (NVRI), इज्जत नगर, बरेली (उत्तर प्रदेश)

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में स्थापित केंद्र को अब राष्ट्रीय पादप जैवप्रौद्योगिकी अनुसंधान केंद्र कहा जाता हैं।

जैवप्रौद्योगिकी विभाग ने तीन स्वायत्त संस्थान स्थापित किये जो निम्न हैं :

1. राष्ट्रीय रोग प्रतिरक्षण संस्थान, नई दिल्ली
2. राष्ट्रीय पशु ऊतक और कोशिका संवर्धन और रोग लक्षण विज्ञान, हैदराबाद
3. सेंटर फार डी. एन. ए. फिंगर प्रिंटिंग एंड डायग्नोस्टिक्स, हैदराबाद

जैव प्रौद्योगिकी विभाग ने पादप आण्विक जैविकीय शोध के लिए देश भर में सात केंद्रों की स्थापना की - जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय (नई दिल्ली), तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय (कोयम्बटूर), मदुरै कामराज विश्वविद्यालय (मदुरै), दिल्ली विश्वविद्यालय (दिल्ली), उस्मानिया विश्वविद्यालय (हैदराबाद), बोस संस्थान (कोलकात) तथा राष्ट्रीय वनस्पति संस्थान (लखनऊ)। इन केंद्रों को जैवप्रौद्योगिकी में उच्च स्तरीय शोध के लिए प्रचुर मात्रा में सहायता दी गयी हैं। यहाँ विकसित तकनीकों के व्यापारिक उपयोग के लिए बायोटेक कंसोर्टियम इंडिया लिमिटेड नामक कम्पनी भी जैवप्रौद्योगिकी विभाग ने स्थापित की हैं।

जैवप्रौद्योगिकी विभाग ने जननद्रव्य संग्रह और सरंक्षण की भी कई योजनाएं शुरू की हैं। राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संपदा ब्यूरो, नई दिल्ली में क्लोनीय फसलों के जनन द्रव्य सरक्षण के लिए एक राष्ट्रीय पादप ऊतक संवर्धन आधान सुविधा की स्थापना की गई। इसके अलावा औषधि और सुगंधित पौधों के जनन द्रव्य संरक्षण के लिए निम्न संस्थाओं में तीन बैंकों की स्थापना हैं।

(I) केंद्रीय औषधि और सुगंधित पादप संस्थान, (CIMAP), लखनऊ

(II) उष्ण कटिबंधीय वानस्पतिक उद्यान अनुसंधान और संस्थान, त्रिवेन्द्रम

(III) राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संपदा ब्यूरो, (NBPGR), नई दिल्ली।

वन वृक्षों एवं फल वृक्षों के सूक्ष्म प्रवर्धन के लिए जैवप्रौद्योगिकी विभाग ने तीन संस्थाओं में प्रारम्भिक संयत्रों की स्थापना की हैं वे हैं -

(i) टाटा ऊर्जा अनसंधान संस्थान, (TERI), नई दिल्ली

(ii) राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला, (NCL), पूणे

(iii) जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर।

राष्ट्रीय पशु ऊतक और कोशिका संवर्धन संस्थान की स्थापना सन् 1988 में की गई थी। यह संस्थान विभिन्न कोशिकाओं का भण्डारण और अर्प्रित करता हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने एक अन्तर्राष्ट्रीय आनुवंशिक अभियांत्रिकी और जैवप्रौद्योगिकी केंद्र की स्थापना की हैं। इसका एक संस्थान ट्रिएस्टे, इटली तथा दूसरा नई दिल्ली में है। नई दिल्ली केंद्र की स्थापना 1987 में हुई थी।

जैवप्रौद्योगिकी में निजी क्षेत्रों की कम्पनियों की रूचि बढ़ती जा रही हैं। कई कम्पनियाँ केवल जैवप्रौद्योगिकी पर आधारित हैं, जबकि अन्य कई कम्पनियों ने जैवप्रौद्योगिकी इकाइयों की स्थापना की हैं। कुछ कम्पनियों द्वारा रोग निदान किट विकसित किये जा रहे हैं। पिछले लगभग 20 वर्षो में जैवप्रौद्योगिकी विभाग ने अनुसंधान के कार्यक्रम पूरे देश में चलाये हैं। कितनी ही अनुसंधान कार्यक्रमों को वित्तीय तथा तकनीकी सहायता प्रदान की हैं। जैवप्रौद्योगिकी विभाग ने जैवप्रौद्योगिकी के राष्ट्रव्यापी और अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों को विकसित करने का दायित्व वहन किया हैं। विभाग ने बहुमुखी अनुसंधान गतिविधियों को संचालित करने में बहुत प्रशंसनीय कार्य पर शोध एवं विकास के समन्वयन की दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। इसके फलस्वरूप आज जैवप्रौद्योगिकी के क्षेत्र में देश में प्रशिक्षण और अनुसंधान कार्यों को प्रोत्साहन मिला हैं। मानव औषधियों, तंत्रिका तंत्र विज्ञान (न्यूरोसाइसेज) रोग लक्षण

विज्ञान (डायग्रोस्टिक्स), औषधियों का निर्माण, उसकी प्रभाविता बढ़ाने और प्रोटीन अभियांत्रिकी तथा साथ ही खेती के क्षेत्र में अनेक फसलों, संकर बीज और पौधों के विकास, जैव उर्वरक, ऊत्तक संवर्धन और पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित कीट नियंत्रण के कार्यक्रमों को भी विशेष महत्व दिया हैं।

भारत सरकार का जैवप्रौद्योगिकी विभाग नई तकनीकों, नये उपकरणों और नए पदार्थों के उत्पादन और विकास के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहता हैं। तकनीकी सलाहकार निगम, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (सी. एस. आई. आर.) आदि के सहयोग से विभाग ने हैजा, क्षय रोग-जैसी भयंकर बीमारियों के निदान और औषधीय पौधों, प्रोटीन अभियांत्रिकी और परोपजीवी बैंकों की दिशा में अनेक उपलब्धियां प्राप्त की हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के सहयोग से फसलों को सुधारने के कार्य में जैवप्रौद्योगिकी अनुसंधान एवं प्रशिक्षण को विकसित किया जा रहा हैं। भारतीय रासायनिक जीव विज्ञान संस्थान, कोलकाता के द्वारा हैजा और कुष्ठ रोग आदि के निवारण के लिए जैव उपायों के विकास क्रम में टीकों और वैक्सीनों का उत्पादन किया गया हैं । मुम्बई औषधि विज्ञान प्रतिष्ठान, राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान नागपुर, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय और नई दिल्ली के राष्ट्रीय प्रतिरक्षा संस्थान नई दिल्ली में औषधि विज्ञान के क्षेत्र में तथा पर्यावरण-संरक्षण के लिए जैवप्रौद्योगिकी की अनेक उपलब्धियाँ राष्ट्रीय स्तर पर प्राप्त की गई हैं।

कृषि क्षेत्र में फसलों, जैसे - चाय, काँफी, मसालों, रबड़, गेहूँ, मक्का, धान, सरसों के लिए अनेक जैव-प्रौद्योगिकी विधियां अपनाकर फसलों की उत्पादकता, गुणवत्ता बढ़ाने के कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। राष्ट्रीय डेसरी अनुसंधान संस्थान, करनाल और केंद्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान,हिसार में नये दुधारू पशुओं की नई उन्नत नस्लों को बढ़ाने का कार्य जारी हैं। राष्ट्रीय सागर विज्ञान संस्थान गोवा, केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ तथा अनेक राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं के सहयोग से औषधियों एवं जैव द्रव्यों की प्राप्ति के लिए विस्तृत समुद्री संपदा का उपयोग करने में जैवप्रौद्योगिकी की उभरती तकनीकों का उपयोग किया जा रहा हैं।

मछली और अन्य जलीय जन्तुओं का विकास, जैवसंवेदको (बायासेसर्स), कोशिका नियन्त्रण और अत्यन्त विषैले कचरों के उपयोग के लिए विशिष्ट जैवप्रौद्योगिकी विधियाँ आजमायी जा रही हैं। राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला, पुणे और राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान, नागपुर के द्वारा खनिज तेल की पुन: प्राप्ति और तेल के बिखरने से सागर पर उत्पन्न प्रदूषण को घटाने के लिए जैवप्रौद्योगिकी अनुसंधान किये जा रहे हैं। भुवनेश्वर स्थित मीठा जल जीव पालन अनुसंधान ने जैवप्रौद्योगिकी द्वारा मछलियों की अनेक नई किस्में विकसित की हैं, जो अधिक उत्पादन देती हैं। जैवप्रौद्योगिकी मदद से यह संभव हो गया हैं कि मनचाहे लिंग की मछलियां पैदा की जा सकती हैं। यह कार्य आनुवंशिक अभियांत्रिकी से संबद्ध हैं।

जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में दिल्ली विश्वविद्यालय की अनेक उपलब्धियों में विशेष उल्लेखनीय हैं,

बांस.के उत्पादन के लिए ऊतक संवर्धन प्रोद्योगिकी। इस तकनीक को टाटा अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली को हस्तांतरित कर दिया गया हैं। राष्ट्रीय सूक्ष्म जीव प्रकार संग्रह की सुविधा (नेशनल फेसिलिटी फॉर माइक्रोबिअल टाइप कल्चर कलैक्शन) का विकास सूक्ष्मजीव प्रौद्योगिकी संस्थान, चण्डीगढ़ द्वारा किया गया हैं। नील हरित शैवालों के संग्रह की राष्ट्रीय सुविधा, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली में विकसित की गई हैं। तिरूचिरापल्ली स्थित भारती दासन विश्वविद्यालय में अनेक प्रकार के नील-हरित शैवाल (सायनो बैक्टीरिया) का संग्रह समुद्री तटवर्ती क्षेत्रों में गहन सर्वेक्षण के फलस्वरूप किया गया हैं। पौधों के ऊतक संवर्धन के लिए संचयनी सुविधा नेशनल ब्यूरो ऑफ प्लान्ट जेनेटिक रिसोर्सेज, नई दिल्ली, में स्थापित की गयी हैं। प्रयोगशाला अनुसंधान हेतु देश भर के एक लाख से अधिक पशुओं को मुहैया कराने के लिए पशु आवास सुविधा नामक सुविधाएं केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान लखनऊ, राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान, बंगलौर में कार्यरत हैं। जैवप्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान,दिल्ली और अन्य समकक्ष संस्थान तथा नई दिल्ली के जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, बोस संस्थान, कोलकाता, तथा सूक्ष्म जैवप्रौद्योगिकी संस्थान, चंडीगढ़ में उल्लेखनीय कार्य किया जा रहा हैं। मुंबई का कैन्सर अनुसंधान संस्थान, भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान, इज्जत नगर, बरेली, एव अनेक कृषि विश्वविद्यालय में भी इस दिशा में बहत महत्वपूर्ण कार्य किया गया हैं।

आधुनिक जैवप्रौद्योगिकी में इलेक्ट्रानिक्स देश भर में सूचना प्रदान करने एव अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सूचनाओं के आदान -प्रदान के लिए अनेक महत्वपूर्ण सेवायें जिसमें परमाणु ऊर्जा, आन्तरिक संचार, शिक्षा, रक्षा, कृषि, निर्माण, सेवा क्षेत्र, मनोरंजन, रोजगार सृजन और राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका हैं। ये सेवायें शीघ्र अनेक केंद्रों पर भारत सरकार द्वारा विकसित जैवप्रौद्योगिकी सूचना प्रणाली के रूप में दी जा रही हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी की चकाचौंध में हम जैवप्रौद्योगिकी की आहट को नहीं सुन पा रहे हैं। इसमें कोई शक नहीं हैं कि सूचना प्रौद्योगिकी ने न जाने कितने-कितने खानों में बँटी इसी दुनिया को कम्प्यूटर के पर्दे में समेट कर रख दिया हैं। मगर जैवप्रौद्योगिकी की उपलब्धियाँ भी कम अनोखी नहीं हैं। जैवप्रौद्योगिकी के क्षेत्र में होने वाले नवीन अनुसंधान और विकास अल्प समय में विश्व के कोने में फैलाने के लिए जैवप्रौद्योगिकी और सूचना प्रौद्योगिकी को साथ लेकर चलने की आवश्यकता हैं। इसी दिशा में जैवप्रौद्योगिकी विभाग के जैवप्रौद्योगिकी सूचना प्रणाली कार्यक्रम के अंतर्गत जैवप्रौद्योगिकी के विशिष्ट क्षेत्रों में सूचनाएं प्रसारित करने के लिए एक राष्ट्रीय नेटवर्क निर्मित किया गया हैं। राष्ट्रीय सूचना नेटवर्क के अन्तर्गत 10 प्रमुख जैवप्रौद्योगिकी सूचना केंद्र तथा 23 उपकेंद्र हैं। ये केंद्र जैवप्रौद्योगिकी अनुसंधान एवं विकास कार्यों में रत विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थाओं में स्थापित हैं। कुछ महत्वपूर्ण केन्द्र हैं - भारतीय विज्ञान संस्थान बेंगलूर, मदुरै कामराज विश्वविद्यालय मदुरै, कोशकीय और आण्विक जीव विज्ञान केंद्र हैदराबाद पुणे विश्वविद्यालय, पुणे और बोस संस्थान, कोलकाता।

ऊर्जा उत्पादन के लिए जैवप्रौद्योगिकी के उपयोग के लिए जैवप्रतिमारक विकसित करने में अनेक राष्ट्रीय प्रयोगशालायें और अनुसंधान संस्थायें गत दो दशकों से विशेष सक्रिय हैं। टाटा

ऊर्जा अनुसंधान संस्थान ने बायोगैस उत्पादक चूल्हों को राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय बाजार के लिए तैयार कर अनेक छोटे- बड़े प्रतिरूपों का विकास किया हैं। इस क्षेत्र में पहल करने का श्रेय भारत सरकार के गैर परम्परागत वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत विकास विभाग को विशेष रूप से दिया जा सकता हैं। केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, राष्ट्रीय मलेरिया संस्थान, नई दिल्ली आदि ने अनेक प्रतिरक्षा परीक्षण किट विकसित की हैं। बुलन्दशहर (उत्तर प्रदेश) स्थित भारत प्रतिरक्षा और जैविक निगम और गुड़गाँव (हरियाणा) का भारतीय टीका निगम लिमिटेड टीका उत्पादन और अनुसंधान के लिए जैवप्रौद्योगिकी के विकास में सक्रिय हैं। इसके साथ ही एक इन्टो यू एस. टीका कार्यक्रम भी कार्यान्वित किया जा रहा हैं। इसमें भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, जवाहर लाल स्नातकोत्तर चिकित्सा शिक्षा एव शोध संस्थान, पांडिचेरी, राष्ट्रीय विषाणु संस्थान, पुणे, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ कॉलरा एण्ड एण्टीरक डिसीजेज कोलकाता, क्रिश्चन मेडिकल कॉलेज, बेल्लोर; भारतीय विज्ञान संस्थान बैंगलूर और अमरीका की अनेक संस्थायें जैसे रोग रोकथाम केंद्र अटलांटा आदि सहयोग कर रही हैं।

जैव प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार के अन्तगर्त दो अन्य महत्व के संस्थान सक्रिय हैं, यह हैं - राष्ट्रीय प्रतिरक्षा सस्थान, नई दिल्ली और पशु ऊतक संवर्धन एव कोशिका संवर्धन की राष्ट्रीय सुविधा, संस्थान, पुणे। राष्ट्रीय प्रतिरक्षा संस्थान ने गर्भ निरोधकों और संक्रामक रोगों रोग परीक्षण व भ्रूण प्रतिरोपण में अनेक उपलब्धियां प्राप्त की हैं। जनसंख्या नियंत्रण के लिए औषध उत्पादन की अनेक विधियां यहाँ विकसित की गयी हैं। पुणे की राष्ट्रीय सुविधा संस्थान पशुओं के ऊतकों एव कोशिकाओं के संग्रह एवं अर्जित का कार्य कर रही हैं। जनवरी 1990 में जी- 15 देशों की बैठक जो क्वालालमपुर, मलेशिया में हुई, इसमें लिए निर्णय के अनुसार औषधीय एवं सुगंधित पौधों के जीन बैंकों के बनाने का कार्य भी देश में प्रगति पर हैं। इससे जी- 15 देशों के संगठन के सभी देशों को जीन अभियंत्रिकी और जैवप्रौद्योगिकी में आपसी सहयोग करना तथा भाई चारा बनाने एव जैव विविधता के सरंक्षण में सहायता मिलेगी।

जीन विधियों द्वारा परिवर्तित जीवों, पशुओं आदि के वृहत् उत्पादन के लिए एक नियंत्रण समिति आनुवंशिक अभियांत्रिकी स्वीकृति कमेंटी की स्थापना की गई हैं। यह भारत सरकार के पर्यावरण और वन मंत्रालय के अधीन अपना कार्य करती हैं। यह कमेटी औषध, पशुधन एव खाद्य पदार्थों के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्था यूनिट द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार उत्पादों को आंकेगी। उनके ऐसे परीक्षण जो इन पदार्थों की जैव-सुरक्षा को सुनिश्चित कर सके, इसके पश्चात ही वह इन्हें उत्पादन करने की (या पेटेंट कराने की) अनुमति प्रदान करेगी।

10.4 जीन अभियांत्रिकी (Genetic Engineering)

वह तकनीक जिसमें एक प्रजाति के DNA को दूसरी प्रजाति के DNA में प्रवेश करवाकर पुनर्योजी DNA (Recombinant DNA) प्राप्त किया जाता हैं, आनुवंशिक अभियांत्रिकी या पुनर्योजी DNA तकनीक (Genetic Engineering or Recombinant DNA Technology) कहलाती हैं

इस तकनीक की खोज 1972 में हुई जब ये देखा गया कि किसी एक जीव से DNA का एक खण्ड लेकर, उसका दूसरे जीव के DNA के साथ संकरण करना परखनली में संभव हैं। पाल बर्ग ने एस बी. 40 नामक वायरस या विषाणु के परम को ई. कोलाई (E. Coli) नामक बैक्टीरिया में सफलतापूर्वक प्रतिस्थापित किया। इसके लिए उन्हें नोबल पुरस्कार प्रदान किया। जीवाणु से हुई ये शुरुआत जीन विनियम के लिए आज भी जीवाणु पर निर्भर हैं। पौधों में नए जीन डालने के लिए एग्रोबैक्टीरियम ट्यूमिफेसिएन्स (Agrobacterium tumifacience) नामक जीवाणु को जीन वाहक बनाया जाता हैं। यह कार्य जंतुओं में मुश्किल हैं। इसके लिए विकासशील भ्रूण की शल्य क्रिया करनी पड़ती हैं। इसी वजह से वैज्ञानिकों ने जीन के विनिमय के ज्यादातर प्रयोग पेड़ पौधों पर ही किए हैं।

10.4.1 जीन अभियांत्रिकी की विधि (Methods for gene engineering)

इस विधि को निम्न चरणों में बाँटा जा सकता हैं -

1. वांछित जीन (Desired on Target gene) की पहचान तथा प्रथक्करण
2. वांछित जीन को वाहक DNA (Vector DNA) से जोड़कर पुर्नयोजन DNA (Recombinant DNA) बनाना
3. पुर्नयोजित DNA का परपोषी कोशिका में स्थानान्तरण
4. पुर्नयोजित DNA युक्त परपोषी कोशिकाओं का चयन एवं गुणन (Selection and Multiplication)
5. चयनित क्लोन से वांछित जीन की ग्राही कोशिका में अभिव्यक्ति

जीन अभियांत्रिकी के द्वारा पुर्नसंयोजी पर DNA प्राप्त करने के लिए निम्न अवयव आवश्यक होते हैं।

1. रेस्ट्रिक्शन एण्डोन्यूक्लिलएज विकर (Restriction Endonuclease Enzyme)

रेस्ट्रिक्शन एण्डोन्यूक्लिएज विकरों की उपस्थिति की परिकल्पना डबल्यू. आर्बर (W.Arber) ने 1960 में की थी, लेकिन पहली बार विलगन 1971 में सम्भव हुआ।

ये विकर वाहक व वांछित DNA को विशिष्ट स्थानों पर काटते हैं। प्राकृतिक रूप से ये विकर ई. कोलाई, बेसीलस, स्ट्रैप्टोकॉकस इत्यादि जीवाणुओं में पाए जाते हैं। ये जीवाणुओं पर आक्रमण करने वाले वायरस से जीवाणु की सुरक्षा करते हैं। ये जीवाणु पर DNA का अपघटन नहीं करते हैं। प्रत्येक रेस्ट्रिक्शन एण्डोन्यूक्तिएज विकर पर DNA तंतु के विशिष्ट 4 - 6 न्यूक्तिओटाइड क्षारक अनुक्रम को पहचान कर काटता हैं।

इन विकरों (Enzymes) के अतिरिक्त पॉलीमरेज (Polymerase), लाइसोजाइम्स (Lysozymes), लाइगेजेज (Lygases) तथा क्षारीय फास्फेटेजेज (Alkalin Phosphatases) विकरों की भी विभिन्न क्रियाओं हेतु आवश्यकता होती हैं।

2. **वाहक** (Vectors)

ऐसे पर DNA अणु जो उपयुक्त परपोषी कोशिका में स्वतंत्र प्रतिकृति (Replication) करते हैं और जिनमें वंचित DNA खण्ड (Desired DNA Segment) को समाकलित (Insert) किया जा सकता हैं, वाहक की तरह कार्य करते हैं, उदाहरणार्थ - प्लामिमड एवं विषाणु।

उत्तम वाहक लक्षण

(i) इसका विलगन एवं शोधन सरल व सुविधाजनक हो।

(ii) इसको परपोषी कोशिका में सरलता से प्रविष्ट करा सकें।

(iii) इसमें उपयुक्त रिर्पोटर जीन (Reporter gene) हों, जिससे रूपान्तरित परपोषी कोशिकाएं आसानी से पहचानी जा सकें।

(iv) वाहक स्वयं या अपने निविष्ट जीन को परपोषी जीनोम में समाकलित कर पाने में सक्षम हों वांछित DNA मै की अभिव्यक्ति हेतु वाहक में प्रमोटर ऑपरेटर जैसे नियामक अवयव उपस्थित हों

(v) सामान्य तौर पर DNA क्लोनन के लिए E. coli (strain k - 12) परपोषी के रूप में काम लिया जाता हैं।

सामान्य तौर पर जीन स्थानान्तरण में काम आने वाले वाहक निम्नांकित हैं :

(i) **प्लाज्मिड** (Plasmid) : प्लाजिमड जीवाणुओं में पाया जाने वाला अतिरिक्त गुणसूत्री DNA Extra Chromosomal DNA) हैं । जिसमें प्रतिलिपिकरण (Replication) की क्षमता होती हैं।

DNA के किसी खण्ड की क्लोनिंग के लिए उसको प्लाज्मिड से जोड़ा जाता हैं और इस मिश्रित DNA अणु को किसी जीवाणु में स्थानान्तरित कर दिया जाता हैं। जीवाणु के गुणन के साथ साथ यह भी गुणित होता रहता हैं - उदाहरण पी. बी. आर. 322 (PBR - 322)

उच्च वर्ग के पोधों के लिए एग्रोबैक्टीरियम ट्यूमीफेसिएस (Agrobacterium tumifacience) नामक जीवाणु का प्लाज्मिड (Ti Plasmid) सामान्यत : प्रयुक्त होता हैं।(चित्र 10.1)

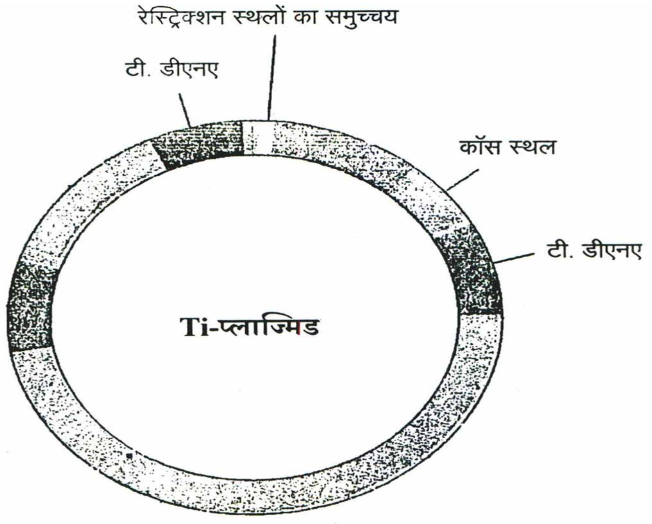

चित्र 10.1 : Ti -प्लाज्मिड

(ii) **जीवाणुभोजी वाहक** (Bacteriophage Vector) : ऐसे वायरस जो जीवाणु को संक्रमित करते हैं, जीवाणुभोजी कहलाते हैं। इन जीवाणुओं में एक रेखिक डी. एन. ए. अणु पाया जाता हैं। इस डी. एन. ए. अणु के साथ वांछित D.N.A. के निवेशन से पुनर्योजित जीवाणुभोजी DNA बन जाता हैं। जीवाणुभोजी, जीवाणुओं को संक्रमित कर लयन चक्र (Lytic cycle) पूरा कर पुनर्योजित DNA की कई प्रतियां निर्मित कर लेता हैं। इस जीवाणुभोजी DNA में से अनावश्यक भाग को हटाकर इसका पुन निर्माण किया जाता है।

(iii) **कॉस्मिड वाहक** (Cosmid Vector) : ऐसे प्लाज्मिड जिनमें फेज वायरस के कॉस स्थलों (Cos Sites) पर पाए जाने वाले अनुक्रमों को निवेशित कर दिया जाए, कॉस्मिड कहलाते हैं। ये कॉस स्थल ही प्लाज्मिड DNA को λ कणों के रूप में पैक करने में सुविधा प्रदान करते हैं। कास्मिड भी प्लाज्मिड की भांति ही व्यवहार करते हैं। परन्तु इनमें लयन क्रिया के लिए जीनों का अभाव होता हैं। इन कॉस्मिडों को यूरैकियोटिक जीनोम से प्राप्त DNA के अपेक्षाकृत बड़े खण्डों की क्लोनिंग के लिए प्रयोग किया जाता हैं।

(iv) **फेज्मिड वाहक** (Phasemid Vector) : ये कृत्रिम रूप से तैयार किए गए वाहक हैं जिनमें जीवाणुभोजी तथा प्लाज्मिड दोनों के गुण उपस्थित होते हैं।

(v) **कृत्रिम गुणसूत्र** (Aritficial Chromosome) : अधिक लम्बे DNA खण्डों (100 kb - 1000 kb) की क्लोनिंग के लिए कृत्रिम जीवाणुवीय गुणसूत्र (Bacterial Artificial Chromosome-BAC), कृत्रिम यीस्ट गुणसूत्र (Yeast Artificial Chromosome - YAC) एवं कृत्रिम मैमेलियन गुणसूत्र (Mamalian Artificial chromosome MAC) की रचना की गई।

इन वाहकों के अतिरिक्त ट्रांसपोजोन (Transposon) एवं विभिन्न पादप तथा जन्तु वायरस भी वाहकों की भांति कार्य कर सकते हैं।

3. परपोषी कोशिकायें (Host Cells)

DNA क्लोनिंग के लिए परपोषी के रूप में ई. कोलाई जीवाणु सर्वाधिक प्रयोग में लाया जाता हैं। इसका सामान्यत: k-12 प्रमेद प्रयोग में लाया जाता हैं। यह प्रमेद न केवल आसानी से रूपान्तरित हो जाता हैं बल्कि यह पुनर्योजक DNA की पुनरावृत्ति में सहायता भी करता हैं। इसके अतिरिक्त यीस्ट व कई पादप एवं जन्तु कोशिकायें भी परपोषी के रूप में कार्य कर सकती हैं।

4. **जीन लाइब्रेरी (Gene Library)**

क्लोनित DNA अणुओं का संकलन जिसमें सम्पूर्ण जीनोम समाविष्ट हो जीन लाइब्रेरी कहलाती हैं C- DNA प्रतियों का संकलन C- DNA लाइब्रेरी कहलाती हैं। जीन लाइब्रेरी को जीन बैंक (Gene Bank) या DNA लाइब्रेरी (DNA Library) भी कहते हैं।

जीनोम लाइब्रेरी वास्तव में प्लाज्मिड या फाज लयननों का संग्रह होता हैं जिसमें निवेशित DNA के रूप में उपस्थित विभिन्न DNA खण्डों का संम्पूर्ण योग सम्बन्धित जीव के पूरे

जीनोम का प्रतिनिधित्व करता है। जीनोम लाइब्रेरी में कुछ खण्ड, प्राकृतिक अवस्था की तुलना में कम आवृत्ति में या अनुपस्थित भी हो सकते हैं।

ऐसे ऊतक जिनमें प्रोटीन का सक्रिय संश्लेषण होता रहता हैं, उनमें mRNA को पृथक करके cDNA मै (Complementory DNA) लाइब्रेरी भी बनाई जा सकती हैं। इसका एक लाभ यह हैं कि ये जीवाणुओं में भी प्रगट हो सकते हैं, (mRNA) बना सकते हैं जबकि जीवाणुओं में विभक्त जीनों (Split Gens) से प्राप्त HnRNA को mRNA में बदलने की क्षमता नहीं होती हैं।

10.4.2 जीन स्थानान्तरण:

पीड़क, कीट, रोग आदि के कारण हर बार फसलों का एक बड़ा भाग नष्ट हो जाता हैं। इसको नियंत्रण करने के लिए विभिन्न रसायनों का प्रयोग किया जाता हैं। इन रसायनों के प्रभाव हानिकारक भी होते हैं। अत: अब रसायनों के दुष्प्रभावों से बचने के लिए जैव तकनीकी का सहारा लिया जा रहा हैं। प्रतिरोधक जीन को स्थानान्तरित करके ट्रांसजैनिक पादप बनाये जाते हैं।

निम्न दो विधियों से जीन स्थानान्तरित किया जाता हैं। ट्रांसजैनिक पादप दो विधियों से बनाए जाते हैं।

1. प्लाजिमड वाहक द्वारा जीन स्थानान्तरण
2. प्रत्यक्ष जीन स्थानान्तरण

(1) प्लाज्मिड वाहक द्वारा परोक्ष जीन स्थानान्तरण

इसके लिए Ri या Ti प्लाज्मिड पर आधारित वाहक प्लाज्मिड का निर्माण किया जाता हैं तथा उसके द्वारा बाह्य जीन को स्थानान्तरित किया जाता हैं। ट्रांसजैनिक पौधे बनाने के लिए एग्रोबैक्टीरियम ट्यूमिफेसियन्स के Ti प्लाज्मिड में विशिष्ट या वांछित जीन को पुनर्स्थापित करते हैं। सामान्य प्लाज्मिड से पादप ट्यूमर होने का खतरा रहता हैं। परन्तु जीन के ट्यूमर बनाने वाले भाग को हटाकर वहां विजातीय DNA को रोपित करते हैं। अब इस प्रकार के जीवाणुओं का वांछित पादप के साथ ऊतक संवर्धन किया जाता हैं। इस ऊतक से होने वाला. संवर्धित पौधा उस विशेष जीन से युक्त होगा। इस प्रकार इक पौधे से वांछित जीन लेकर दूसरे में प्लाज्मिड के माध्यम से रोपित कर ट्रांसजैनिक पादप तैयार किया जाता हैं।

द्विबीजपत्री पौधों की किरीट पिटिका (Crown gall) रोग एग्रोबैक्टीरियम ट्यूमिफेसियन्स जीवाणु द्वारा होता हैं तथा यह एक अर्बुदकारी वृद्धि हैं। जबकि ए राइजोजिनीज जीवाणु में रोमिल मूल वृद्धि करने वाला Ri प्लाज्मिड पाया जाता हैं। इन दोनों के रोग कारक प्लाज्मिड का उपयोग आनुवंशिक अभियांत्रिकी में जीन स्थानान्तरण के लिए किया जाता हैं।

अर्बुद उत्पन्न करने वाले ए ट्यूमीफेसियन्स में एक बड़ा प्लाज्मिड होता हैं इसे अर्बुदकारी (Ti) प्लाज्मिड के एक भाग की प्रतिलिपि का परपोषी के संजीन में समाकलन होता हैं। DNA के इस खण्ड को T-DNA के दोनों किनारों पर 25 न्यूक्लीओटाइड का सीधे दोहराया गया क्रम होता हैं जिसे बायां किनारा व दायां किनारा कहते हैं। जिस जीन को स्थानान्तरित करना हो,

उसे इन दोनों किनारों के बीच स्थित करना होता हैं। एग्रोबैक्टीरियम के संक्रमण के बाद या तो अर्बुद जैसी वृद्धि होती हैं अथवा रोमिल मूल विकसित होते हैं। दोनों ही अवस्था में परपोषी कोशिकायें रूपान्तरित हो जाती हैं।

इन प्लाज्मिड के द्वारा उत्पादित अमीनों अम्लों द्वारा पादप में रूपान्तरण का पता लगाया जा सकता है

ये कोशिकायें ओपीन बनाती हैं। ओपीन विभिन्न प्रकार के होते हैं, जो एग्रोबैक्टीरियम के विभेदों पर निर्भर होता हैं। ट्यूमिफोसियन्स के विभेद आक्टोपीन तथा नोपालीन का उत्पादन करते हैं जबकि राइजोजिनेज के विभेद एग्रोपीन या मैनोपीन का उत्पादन करते हैं।

शिल्टन तथा सहयोगियों के कार्य के कारण एग्रोबैक्टीरियम का जीन स्थानान्तरण में उपयोग संभव हो सकता हैं। उन्होंने यह दर्शाया कि किरीट पिटिका बीमारी के जनक जीवाणु प्लाज्मिड के स्थानान्तरण DNA को स्थायी रूप से पादप कोशिका में स्थानान्तरित करता हैं तथा जीवाणु की अनुपस्थिति में भी ये जीन अपना कार्य करते हैं। प्रथम पराजीनी तम्बाकू का पौधा हार्स तथा सहयोगियों (1984) द्वारा एग्रोबैक्टीरियम के उपयोग से बनाया गया था।

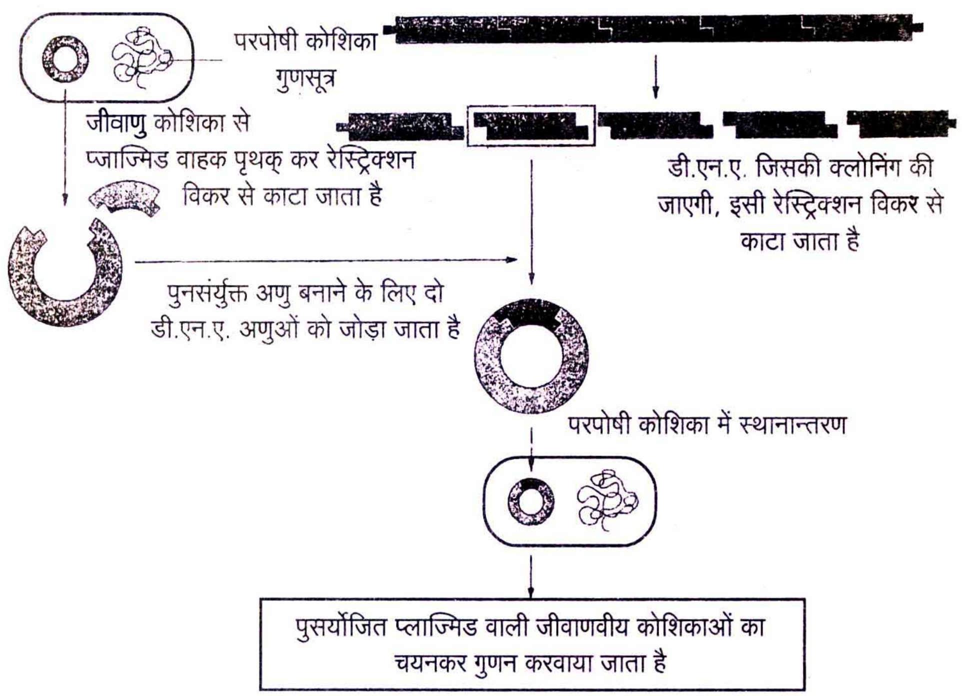

चित्र 10.2 : पुनसंयुक्त डी. एन .ए. तकनीक

एग्रोबैक्टीरियम द्वारा जीन स्थानान्तरण के लिये चुने गये जीन रचना को निरस्त्रीकृत Ti प्लाज्मिड के T-DNA में निवेशित करते हैं ।वह प्लाज्मिड जिसमें अर्बुदकारी जीनो को T-DNA में से हटा लिया जाता हैं, उसे निरस्त्रीकृत प्लाज्मिड कहते हैं। प्लाज्मिड के सहसमाकलित अथवा द्विवाहक प्ररूप का उपयोग कर सकते हैं। उपयुक्त पुनर्योगेज Ti वाहक को एग्रोबैक्टीरियम में प्रविष्ट कराते हैं। फिर पादप कोशिकाओं का रूपान्तरण सहकल्वर विधि से करते हैं। एग्रोबैक्टीरियम को कोशिका कल्चरों अथवा ऊतक कर्लोतकों के साथ सहकल्चर कहते

हैं। टमाटर, तम्बाकू, पिटुनिया आदि की पत्तियों के डिस्कों का व्यापक उपयोग सहकल्चर में करते हैं। पत्ती की (कटी हुई) डिस्कों द्वारा उत्पादित एसीटोसिरिगोन Ti प्लाज्मिड ओपेरोनों को सक्रिय करता हैं और पादप संजीन में समाकलित होता हैं। दो दिन के सहकल्चर के बाद रूपान्तरित पादप कोशिकाओं का उपयुक्त पोष पदार्थ पर कल्चर कर वरण करते हैं। इस तकनीक का उपयोग द्विबीजपत्री पौधों में ही किया जा सकता है, क्योंकि रसायन -ग्रहित के लिए एसीटोसिरिगोन का बनना आवश्यक हैं, जो द्विबीजपत्री में ही होता हैं।

(2) प्रत्यक्ष जीन स्थानान्तरण

एग्रोबैक्टीरियम द्वारा जीन स्थानान्तराग केवल द्विबीजपत्री पौधों में ही संभव हैं। अत: एकबीजपत्री पौधों में जो कि मुख्य धान्य हैं जीन स्थानान्तरण के लिए अन्य विधियां विकसित की गई। बिना किसी जैविक कारक जैसे एग्रोबैक्टीरियम की सहायता से पादप कोशिका में डी. एन. ए. प्रवेश कराने तथा स्थायी रूपान्तरण प्राप्त करने को प्रत्यक्ष जीन स्थानान्तरण कहते हैं। चूंकि पादप कोशिकाओं में स्वत: DNA पर प्रवेश बहुत ही कम होता हैं, अत : विभिन्न भौतिक एवं रासायनिक उपचारों से DNA' प्रवेश में सहायता करते हैं। वांछित DNA खण्ड किसी वाहक में समाकलित हो सकता हैं अथवा यह मुक्त हो सकता हैं। सीधा जीन स्थानान्तरण निम्न विधियों से संभव हैं -

(i) सोनीकरण

(ii) लाइपोसोम

(iii) सूक्ष्म इंजेक्शन

(iv) कणिका बन्दूक प्रौद्योगिकी

(v) रासायनिक विधियां

(vi) इलेक्ट्रोपोरेशन

(vii) सिलिकन कार्बाइड रेशों द्वारा

(viii) लेसर सूक्ष्मपुंज

इन विधियों के लिए पादप ऊतक, कोशिकायें, अंग तथा प्रोटोप्लास्ट का उपयोग किया जाता हैं पृथक किये गये प्रोटोप्लास्ट से पुनर्जनन सभी जातियों में संभव नहीं हैं। इन कारणों से जनन क्षम ट्रांसजेनिक पादप प्राप्त करना सभी धान्य जाति के पौधे में संभव नहीं हैं फिर भी कुछ एकबीजपत्री पौधों जैसे ज्वार (Sorghum Vulgare) चावल (Oryza sativa) मक्का (Zea mays) तथा जौ (Hordeum vulgare) में पराजीनी पौधें बना लिये गए हैं।

(i) **सोनीकरण :** पराध्वनि (20KHz) द्वारा सौम्य सोनीकरण का उपयोग क्लोराम्फेनीकोल एसीटिल ट्रांसफरेज जीन के चुकन्दर तथा तम्बाकू के प्रोटोप्लास्ट में उद्ग्रहण की सहायता के लिए किया जाता है यह जीन अस्थायी तौर पर इन प्रोटोप्लास्ट में अभिव्यक्त होता है। इस तकनीक द्वारा रूपान्तरित पौधों का उत्पादन देखा नहीं गया हैं।

(ii) **लाइपोसोम :** लाइपोसोम को एक वाहक के रूप में उपयोग कर DNA को पादप प्रोटोप्लास्ट में पहुँचाया जाता हैं। यह क्रिया लाइपोफेक्शन कहलाती हैं। लाइपोसोम वसा के बने छोटे

थैले होते हैं जिन्हें कृत्रिम रूप से बनाया जाता हैं तथा प्लाज्मिड उनमें भरा जाता हैं। लाइपोसोम का प्रोटोप्लास्ट से संलगन को सहस जैसे रसायन प्रेरित करते हैं।

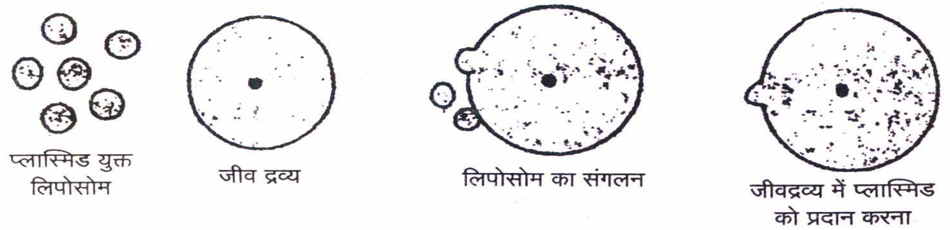

चित्र 10.3 : लाइपोसोम की मध्यस्थता से जीनस्थानान्तरण

(iii) **सूक्ष्म इंजेक्शन :** इस विधि में सूक्ष्म इंजेक्शन की सहायता से न्यूक्लीक अम्लो को प्रोटोप्लास्ट या सम्पूर्ण कोशिका में डाला जाता हैं। सामान्यतया प्रोटोप्लास्ट में सूक्ष्म इंजेक्शन दिये जाते हैं, क्योंकि कोशिकाओं में कोशिका भित्ति बाधा पहुँचाती है। यह एक श्रमयुक्त व काफी समय लेने वाला कार्य हैं। लंकिन यह विधि धान्य पौधों में अधिक सफल नहीं रही।

(iv) **कणिका बन्दूक प्रौद्यगिकी:** यह ऊतकों में DNA स्थानान्तरण की अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी हैं। इसमें DNA से आवृत सूक्ष्म आमाप के कणों का कोशिकाओं में स्थानान्तरण किया जाता हैं। इन कणों के साथ DNA भी कोशिकाओं के अदर प्रवेश कर जाता है। इस विधि में माइक्रोन आमाप के सोने या टंगस्टन (DNA आवृत) कणों को अतिसूक्ष्म जीनगन से त्वरण द्वारा उपयुक्त गति से कोशिकाओं में प्रवेश कराते हैं जो कि कोशिका भित्ति तथा कोशिका झिल्ली को भेदकर कोशिका में प्रवेश करते हैं, इन्हें नष्ट नहीं करते। सूक्ष्म प्रक्षेप्य से पादप कोशिकाओं में DNA प्रवेश की यह एक यांत्रिक विधि हैं। इस विधि का उपयोग उन प्रजातियों में किया जाता हैं, जिनमें प्लाज्मिड की मध्यस्था से या प्रोटोप्लास्ट द्वारा रूपान्तरण नहीं किया जा सकता। क्लेन तथा सहयोगियों ने पहले बार इस तकनीक का विकास व उपयोग काइमेरिक DNA तथा विषाणु क्षपम अणुओं RNA की पूर्ण कोशिकाओं में स्थानान्तरण के लिये किया।

(v) **रासायनिक विधियां :** कुछ रसायन जैसे पॉपालिएथिलिन ग्लाइकोल (PEG), पॉलिविनाइल एल्कोहल एवं कैल्शियम फॉस्फेट पादप प्रोटोप्लास्टों में DNA का प्रवेश बढ़ाते है। PEG का उपयोग इस कार्य के लिए विस्तृत तौर पर हुआ हैं। DNA की मध्यस्थता से किये जाने वाले रूपान्तरण के लिए ताजा विर्लागत किये हुये प्रोटोप्लास्ट को DNA के साथ रखते हैं। फिर एक बफर घोल को मिलाते हैं जिसमें 15-20%PEG तथा धनायन $Mg+^2$ की उच्च सान्द्रता होती हैं। इस मिश्रण को 30 मिनट तक रखा जाता हैं। तब प्रोटोप्लास्ट को साफ घोकर प्लेटन किया जाता हैं जहाँ उनकी वृद्धि होती हैं।

(vi) **इलैक्ट्रोपोरशन :** यह विधि बहुत अल्प समय के लिए उच्च वोल्टता शक्ति के स्पंद पर आधारित हैं। उच्च वोल्टता स्पंद से प्रोटोप्लास्ट की झिल्ली में क्षणिक छिद्र बनते हैं जिससे DNA उनमें प्रवेश करता हैं। प्रोटोप्लास्ट तथा बाह्य परत को एक बफर विलयन में दो इलैक्ट्रोडों के बीच रखकर एक उच्च वोल्टता की विद्युतधारा दी जाती हैं। सामान्य तौर पर

जिन दशाओं में इलैक्ट्रोपोरशन से 50 प्रतिशत प्रोटोप्लास्ट जीवित बचते हैं, रूपान्तरण के लिए इष्टतम होती है। जब तक रन्ध्र बन्द नहीं हो जाते हैं, DNA प्रोटोप्लास्ट के भीतर पहुँचता रहता हैं। तम्बाकू मोजेक विषाणु (TMV) को इस विधि से तम्बाकू प्रोटोप्लास्ट में प्रवेश कराया गया। इलैक्टूपोरेटेड प्रोटोप्लास्ट को वरणात्मक पोषपदार्थ पर वृद्धि कराकर रूपान्तरित कोशिकाओं का वरण किया जाता हैं जो अधिकतम 0.5% हो सकता हैं।

(vii) **सिलिकन कार्बाइड रेशों द्वारा :** इस विधि में पादप कोशिकाओं, DNA तथा सिलिकन कार्बाइड के रेशों को उपयुक्त पोषपदार्थ में निलंबित करके वोर्टेक्स करते हैं। वोर्टेक्स के दौरान (कम्पन द्वारा तेजी से हिलना) सिलिकन रेशों के कोशिकाओं में घुसने के कारण सूक्ष्म छिद्र हो जाते है तथा DNA को प्रवेश के लिए मार्ग मिल जाता हैं। इस विधि से मक्का तथा तम्बाकू के निलंबन कल्चरो का सफल रूपान्तरण किया गया, लेकिन यह ज्ञात नहीं हैं कि रूपान्तरण स्थायी हुआ या नहीं।

(viii) **लेसर सूक्ष्मपुंज :** वेबर तथा सहयोगियों (1988) ने पादप कोशिकाओं के रूपान्तरण के लिए लेसर सूक्ष्मपुंज के उपयोग को दर्शाया। इस कार्य के लिए पराबैगनी लेसर सूक्ष्मपुंज का उपयोग पादप कोशिकाओं तथा क्लोरोप्लास्ट में DNA के प्रवेश के लिए किया गया। इसके लिए 343mm तरंगदैर्ध्य के पुंज को औंधे सूक्ष्मदर्शी में प्रकाश के पथ पर डालकर कोशिकाओं पर केन्द्रित करते हैं। केन्द्र पर आने वाले भागों पर लेसर सूक्ष्मपुज छिद्र उत्पन्न करते हैं। जिससे प्लाज्मिड DNA इन छिद्रों द्वारा कोशिका में प्रवेश कर जाता हैं कोशिका मरम्मत द्वारा छिद्र बन्द कर देती हैं। रेपसीड (Brassicam napus) की कोशिकाओंतथा परागकणों का रूपान्तरण इस विधि द्वारा किया गया।

3. **ट्रांसजैनिक पादप तथा उनका महत्व :**

ट्रांसजैनिक पादप वह पादप हैं जिनके DNA में दूसरे किसी पादप व जीन स्थानान्तीरत किया जाता हैं। 1984 - 85 से ही जीन स्थानान्तरण की विधियों द्वारा भी जीव से पृथक किये गये जीन को किसी भी पादप स्पीसीज में स्थानान्तीरत कर इच्छित लक्षणों का समावेश किया जा सकता हैं। इससे फसलों को सुधारने की लगभग असीम संभावनाओं को मूर्त रूप मिला हैं और फसलों की कई पराजीनी किस्मों का निर्माण किया गया हैं और इन फसलों को बड़े पैमाने पर उतादित किया जा रहा हैं। फसली पादपों में वैज्ञानिकों ने मक्का, तम्बाकू, आलू व कपास में इस तकनीक द्वारा अत्यधिक उत्पादन व कीटों के प्रति सहनशीलता विकसित कर ली है। चावल की फसल में भी अन्तर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान सस्थान (IRRI), फिलिपिन के वैज्ञानिक इस ओर अग्रसर हैं। अस्त के युग में जीन क्रान्ति ने तहलका मचा दिया हैं। बाजारों में ताजे-ताजे टमाटर, फल, सज़ा सब्जी की रंग-रंगत सबकों अपनी ओर आकर्षित करते हैं। लम्बी अवधि तक न गलने वाले टमाटर प्राप्त करने के लिए बाहय जीन को पौधों में ही ट्रांसप्लांट कर दिया जाता हैं। ट्रांसजैनिक पादपों के महत्व को निम्न शीर्षकों के अन्तगर्त समझा जा सकता हैं -

(i) **कटि रोधिता :** इस विधि द्वारा कटि रोधी पादपों का उत्पादन किया जा सकता हैं जैसे - Bt आविषजीन।

(ii) **बीज प्रोटीन गुणवत्ता :** सामान्यतया धान्य बीजों में लाइसीन तथा दलहनी बीजों में मैथाइओनीन तथा ट्रिफ्टोफेन की कमी होती हैं। इन्हें जीन स्थानान्तरण द्वारा सुधारा जा सकता है।

(iii) **शाकनाशी रोधिता :** अमीनोअप्ल संश्लेषण निरोधी उत्परिवर्ती जीन को कई स्पीसीज -में स्थानान्तरित कर शाकनाशी रोधिता उत्पन्न की जाती हैं।

(iv) **विषाणु रोधिता :** पौधों में विषाणु की किसी जीन का स्थानान्तरण कर विषाणुरोधिता उत्पन्न की जाती हैं। जैसे TMV की कई जीनों को तम्बाकू, टमाटर, आलू, चुकन्दर आदि में स्थानान्तरित किया गया।

(v) **जीवाणु तथा कवक रोगजनक के विरुद्ध रोधिता :** पराजीनों के उपयोग से रोग फैलाने वाले जीवाणु तथा कवक के प्रति प्रतिरोधक क्षमता का विकास किया जाता हैं। जैसे तम्बाकू में वाइल्ड फायर रोग फैलाने वाले जीवाणु स्यूडोमोनास सीरीन्ती के विस्क एसीटिल ट्रांसफरेज जीन के स्थानान्तरण द्वारा रोधिता उत्पन्न की जाती हैं। इंग्लैंड के कुछ वैज्ञानिकों ने तम्बाकू के ट्रांसजैनिक पादप तैयार किये हैं जो स्ट्रेप्टोकोकस म्यूटोंक के विरूद्ध एन्टीबॉडी बनाते हैं। ये जीवाणु दंतक्षय करतेहैं । दंतक्षय को रोकने के लिए इस तम्बाकू को दन्त मंजन बनाने में प्रयुक्त किया जाता हैं।

(vi) **अर्न्तजात जीनों का दमन :** पौधों में कुछ जीनों की अभिव्यक्ति अनावश्यक होती हैं। जीन स्थानान्तरण के द्वारा ऐसी जीनों की अभिव्यक्ति घटाना पौधों के लिए लाभदायक होता हैं।

(vii) **जैव रसायन उत्पादन :** पराजीनों द्वारा विभिन्न जैव रसायनों के उत्पादन के प्रयास किये गये हैं। पराजीनो को अभिव्यक्ति कर बहुमूल्य प्रोटीनों का उत्पादन किया जा सकता हैं। जैसे हिरूडिन का ब्रैसिका नेपस में स्थानान्तरण कर वृद्धि हारमोन तथा इन्टरफेरोन का उत्पादन।

(viii) **खाद्य टीके :** पराजीनी पौधों के फल, कन्द या कोई अन्य भाग जिनमें किसी रोगजनक का कोई प्रतिजनी प्रोटीन उत्पादित व संग्रहित हो और जिसे मानव को खिलाने पर उसमें संबंधित रोगजनक के प्रति रोधक्षमता उत्पन्न हो, खाद्य टीके कहलाते हैं। जीन स्थानान्तरण द्वारा ऐसे खाद्य टीके उत्पन्न कर मानव में रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास किया जा सकता हैं। जैसे हैसा आविष का टीका आलू में।

(ix) पुनर्योजन तकनीक की सहायता से पौधों में नए वेक्सीन प्राप्त किये जा सकते हैं।

4. ट्रांसजैनिक जंतु तथा उनका महत्व :

जिन जंतुओं में आनुवंशिक अभियांत्रिकी या ट्रांसफेक्शन द्वारा जीन स्थानान्तरित किया गया हो, उन्हें ट्रांसजैनिक जंतु कहते हैं। जंतुओं की कोशिकाओं अथवा भ्रूणो में किसी DNA खण्ड के प्रवेश करने को ट्रांसफेक्शन कहते हैं तथा प्रवेश कराये जाने वाले जीन को पराजीन (transgene) कहते

उद्देश्य : जंतुओं में जीन स्थानान्तरण के निम्न उद्देश्य हो सकते हैं -

(i) कोशिका संवर्धन में पराजीनो द्वारा विशिष्ट प्रोटीन का उत्पादन।

(ii) जंतुओं द्वारा दूध, मांस, ऊन आदि उत्पादन में सुधार।

(iii) जंतुओं में पराजीनों द्वारा प्रोटीन उत्पादन।

(iv) आनुवंशिक रोगों का उपचार तथा

(v) जीन विशेष को निष्क्रिय करना।

इन्हीं प्रकियाओं द्वारा अत्यन्त विशिष्ट प्रकार के जंतु प्रयोगात्मक या चिकित्सकीय उपयोग के लिए तैयार किये गये हैं। जैसे - चूहे जिन पर मानव कर्ण उगाये जाते हैं।

ट्रांसफेक्शन विधियां : जंतु कोशिकाओं अथवा भ्रूणों के टांसफेक्शन के लिए निम्न विधियों का उपयोग करते हैं -

(i) कैल्शियम फॉस्फेट अवक्षेपन

(ii) माइक्रोइंजेक्शन

(iii) रिट्रोवाइरस संक्रमण

(iv) लाइपोफेक्शन

(v) कणिका बंदूक एवं

(vi) इलेक्ट्रोपोरशन

(i) **कैल्शियम फॉस्फेट अवक्षेपन :** टांसफेक्शन के लिए उपयोग किये जाने वाले DNA को पहले फॉस्फेट बफर में घोलते हैं। फिर इसमें कैल्शियम क्लोराइड घोल मिलाते हैं। इससे अघुलनशील कैल्शियम फॉस्फेट बनता हैं जिसके साथ-साथ DNA अणु भी अवक्षेपित हो जाते हैं। इस कैल्शियम फॉस्फेट डी. एन. ए. अवक्षेप को उन कोशिकाओं के कल्चर में मिलाते हैं, जिन्हें ट्रांस्फेक्ट करना हैं। इस अवक्षेप के कणों को कोशिकायें भक्षकाणु क्रिया द्वारा ग्रहण करती हैं।

(ii) **माइक्रोइंजेक्शन :** इस विधि में DNA को सीधे कोशिका के केन्द्रक में अथवा निषेचित अण्डों के नर पूर्व केन्द्रक में प्रवेश कराते हैं। स्तनधारियों में नरपूर्वकेन्द्रक अण्डको के केन्द्रक की अपेक्षा काफी बड़ा होता हैं। अत: इसमें सूक्ष्मइंजेक्शन में सरलता होती हैं। मछली में DNA को सीधे अण्डों के कोशिकाद्रव्य में इंजेक्ट करते हैं।

(iii) **रिट्रोवाइरस संक्रमण :** पुनर्योगज रिट्रोवाइरस वाहक वाइरस कण बनाते हैं। इनको जंतु कोशिकाओं तथा 4 - 16 कोशिकीय मूषक भ्रूणों का संक्रमण कराते हैं।

पुनर्योगज रिट्रोवाइरस के RNA जिनोम की रिवर्स ट्रांसक्रिप्टेस द्वारा प्रतिलोम अनुकृति से इसकी DNA प्रति बनती हैं जो कि कोशिका के जिनोम में समाकलित होती हैं।

(iv) **लाइपोफेक्शन :** कोशिकाओं में लाइलिपोसोमो द्वारा DNA प्रवेश कराने को लाइलिपोफेक्शन कहते हैं। लाइलिपोसोम फास्फोलिपिडों की बनी छोटी-छोटी पुटिकायें होती हैं।

(v) **इलेक्ट्रोपोरेशन :** इस विधि में DNA एवं कोशिका मिश्रण को अतिअल्प समय (कुछ मिली सेकण्ड) के लिए अति उच्च वोल्टेज प्रवणता से प्रभावित करते हैं। ऐसा कई बार करते हैं। वोल्टेज प्रवणता प्रभाव से कोशिका झिल्ली में क्षणिक छिद्र बनते हैं। जिनसे DNA अणु कोशिका में प्रवेश करते हैं।

पादपों के समानता कणिका बन्दूक विधि का प्रयोग पराजीनी जन्तु तैयार करने में भी किया जाता हैं।

पराजीनी जन्तुओं का महत्व : कई प्रजातियों के पराजीनी जंतु तैयार किये गये हैं। इनमें विशेष प्रकार के प्रोटीन (मानव की प्रति ट्रिप्सिन जीन) उत्पादन करने वाले दुधारू पशु हैं जिनमें दूध के साथ नया प्रोटीन उत्पादित होता है, जैसे - गाय, भेड़ बकरी इत्यादि। अधिक मांस उत्पादन करने वाले सूअर, मानव हिमोग्लोबिन बनाने वाले चूहें' एवं सूअर, मानव वृद्धि हारमोन बनाने वाले खरगोश, सूअर साल्मन एवं ट्राउट मछली में वृद्धि हारमोन द्वारा नस्ल सुधार तथा कुस्कुट में प्रतिहिमी करणजीन द्वारा नस्ल सुधार इत्यादि प्रमुख उदाहरण हैं। इन उदाहरणों से पराजीनी जंतुओं का महत्व आसानी से समझ में आ जाता हैं। इन पराजीनी पशुओं द्वारा दूध, मांस में बढ़ोतरी, मानव के उपयोग में आने वाले विशिष्ट प्रोटीन एवं हार्मोन का निर्माण, जो अन्यथा असंभव हैं, पशुओं में रोगजनकों के प्रति अधिक रोधिता इत्यादि गुणों के समावेश से आर्थिक लाभ होता हैं।

10.5 जैव प्रौद्योगिकी का महत्व

जैव प्रौद्योगिकी मै मानव जीवन के लगभग सभी पहलूओं को प्रभावित किया हैं। जैव प्रौद्योगिकी के महत्व का अध्ययन हम निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत कर सकते हैं।

(1) **कायिक संकरण तथा आनुवंशिक रूपान्तरण :** कायिक संकरण तथा आनुवंशिक रूपान्तरण द्वारा उच्च दर पर उन्नत किस्मों का विकास किया जा सकता हैं। इस विधि से सीधे या प्लान्ज्मिड द्वारा कई जीनों का स्थानान्तरण कर रूपान्तरित पौधे तैयार किये गये हैं। जिनके कारण फसलों की गुणवत्ता तथा मात्रात्मक बढ़ोतरी हुई। इस विधि से निम्न में अन्तर स्पीसीज तथा अंतर जेनेरिक संकर उत्पन्न किये गये हैं, जैसे मक्का x जई, गाजर x तम्बाकू।

(2) **कायिक क्लोनीय विविधता :** पादप ऊतक तथा कोशिका संवर्धन में कोशिका विभाजन तीव्र गति से होता हैं। कई अन्तर्जात तथा बहिर्जात कारकों के कारण कायिक क्लोनीय विविधिता उत्पन्न हो जाती हैं। इस तरह वर्णित पौधों को परिवर्त कहते हैं। कई फसलों में उन्नत गुणों वाले परिवर्तों का वरण किया गया हैं, जैसे आलू, चुकन्दर, गेहूँ, तम्बाकू, गन्ना, चावल, जौ इत्यादि।

(3) **सूक्ष्म प्रवर्धन :** भारत एक समउन्न कटिबंधीय प्रदेश हैं, जिसमें बागवानी, सजावटी तथा औषधीय पौधों की बहुत विविधता हैं। परन्तु किसानों को अच्छी किस्म के पौधे उपलब्ध नहीं हैं। शीतोष्ण फलदायी फसलों में स्ट्रोबेरी का सूक्ष्म प्रवर्धन किया जा रहा हैं। यह कार्य दो प्रकार से किया जाता हैं। पहला उत्तम किस्मों का सीधा क्लोनीय प्रवर्धन किया जाता हैं। जैसे - अनार, अंगूर, अमरूद, पपीता आदि। दूसरा तरीका उन फलदार पौधों के लिये किया जाता हैं जिनका अपना मूल मंत्र मजबूत नहीं होता हैं।

(4) **आणविक खेती :** पौधों में विशिष्ट प्रकार के अणुओं जैसे रूपान्तरित स्टार्च, औद्योगिक तेल, प्लास्टिक, औषधीय दवाईयाँ एवं विकर के जीन का स्थानान्तरण करने पर ये पौधे

वंश दर वंश इन अणुओं का उत्पादन करने लगते हैं। अत: इन अणुओं को कारखाने में न बनाकर पौधों द्वारा तैयार किया जाता हैं, इसे आणविक खेती कहते हैं।

(5) **विशिष्ट रसायनों का उत्पादन :** पादप ऊतक संवर्धन में द्वितीय उपापचयचों के उत्पादन की विधि बहु त विकसित हो चुकी हैं। यह एक गैर पारम्पीरक विधि हैं, जिसका अन्य प्राकृतिक साधनों द्वारा यौगिक की प्राप्ति कठिन होने पर या रासायनिक संश्लेषण द्वारा संभव नहीं होने पर उपयोग में लाई जाती हैं। उदाहरणार्थ - टैक्सॉल, विंक्रिस्टीन, डीजॉक्सिन इत्यादि की भारी मांग एवं प्राकृतिक साधनों से कम आपूर्ति। इस प्रकार महत्वपूर्ण द्वितीय उपापचयचों का उत्पादन जैव प्रौद्योगिकी द्वारा किया जा सकता हैं।

(6) **उन्नत फसलों का विकास :** पुनर्योजन डी. एन. ए. तकनीक द्वारा फसलों की उन उन्नत किस्मों का विकास संभव हो सका हैं, जो पारम्परिक पादप प्रजनन द्वारा असंभव था, जैसे (i) जीवाणुओं में पायी जाने वाली कटि रोधिता की जीन जो एक विशेष आविष का निर्माण करती हैं (Bt-gene, Bt-toxin) का तम्बाकू एवं कपास के पौधों में स्थानान्तरण द्वारा कीट रोधिता उत्पन्न करना। (ii) जीवाणु में पायी जाने वाली ग्लायोफोसाट प्रतिरोधी जीन का जीवाणु से पौधों में स्थानान्तरण कर खरपतवारनाशक प्रतिरोधिता उत्पन्न करना। इस प्रकार जीवाणुओं, कवकों, एवं पौधों से पौधों में जीन स्थानान्तरण कर फसलों की नई उन्नत किस्मों का विकास किया गया हैं।

(7) **जीवों के उत्पाद :** इस तकनीक द्वारा परजीवी जन्तुओं का विकास संभव हो सका हैं। जो वृद्धि हारमोन्स इत्यादि का उत्पादन करते हैं। इस प्रकार के उत्पाद अन्यथा मृत जनवरों के अंगों से प्राप्त किये जाते थे, जिनसे कई दूसरी कठिनाइयां आती थी। इन सुविधाओं के कारण मानव जीवन अधिक निरोगी एवं उन्नत हो सका हैं।

(8) **चिकित्सकीय महत्व :** पुनर्योगज डी. एन. ए. तकनीक द्वारा किसी भी जीव से मनचाही उपयोगी जीन को किसी भी जीव में स्थानान्तरित कर, उन जीवों में अभूतपूर्व क्षमताओं का विकास किया जा सकता हैं। जैसे मानव इन्सूलिन कोडित करने वाले जीन का उत्पादन किया गया। जीवाणु द्वारा उत्पादित इंसुलिन का उपयोग मानव के लिए मधुमेह बीमारी में किया जा रहा हैं। इस तकनीक के प्रयोग से चिकित्सा के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हु ए हैं। अन्य उदाहरण हैं - कोलेरा टॉक्सिन की जीन का केले में स्थानान्तरण एवं कई प्रकार के टीकों का निर्माण।

10.6 जैव उर्वरक

उर्वरकों के उपयोग के संदर्भ में भारत विश्व का चौथा देश बन गया हैं। रासायनिक उर्वरकों की सहायता से यद्यपि हम कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि कर सके हैं किन्तु रासायनिक उर्वरक महंगे होने के साथ- साथ भूमि की उर्वराशक्ति को कम करके पर्यावरण को प्रदूषित करने का कार्य करते हैं। अत: यह आवश्यक हो जाता है कि हम कुछ ऐंसे उर्वरकों का प्रयोग करें, जिससे इन हानिकारक प्रभावों से बचा जा सके। जैवउर्वरक ऐसे ही उर्वरक है।

वायुमण्डल में 79 प्रतिशत नाइट्रोजन गैस अक्रिय अवस्था में विद्यमान हैं। जीवाणु (राइजोबिंयम, एजोटोबैक्टर, एजोस्पाइरिलम, बेसिलस स्यूडोमोनास, साइनोजीवाणु, माइक्रोवाइरस थायोबैसिलस,माइक्रोबैक्टीरिया), एजोला, नील हरित शैवाल, माइकोराइला आदि इस गैस का स्थिरीकरण कर मृदा व पौधों को पोषण प्रदान करते हैं, और इसकी उत्पादकता में वृद्धि करते हैं। ऐसे सूक्ष्मजीवों को जैव-उर्वरक कहते हैं। ये पौधों के लिए समन्वय आपूर्ति प्रणाली के अन्तर्गत सस्ते एवं सार्थक विकल्प हैं।

उर्वरकों के रूप में रसायनों के स्थान पर जीवों पर आधारित पदार्थो का उपयोग जैवप्रौद्योगिकी के कृषि में उपयोगों के अन्तर्गत बहु त महत्व रखता हैं। जैव उर्वरक वास्तव में ऐसे सूक्ष्म जीव, जीवाणु, फर्न शैवाल फफूँदी आदि हैं, जो खेत में विभिन्न पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और सल्फर आदि को वातावरण से प्राप्त करके फसलों को उपलब्ध कराते हैं।

रासायनिक उर्वरकों के ज्यादा उपयोग से जमीन की उर्वरा शक्ति पर प्रभाव पड़ता हैं। अत: फसलों की नाइट्रोजन आवश्यकता की पूर्ति के लिए पूर्ण रूप से रासायनिक उर्वरकों पर निर्भर रहना तर्कसंगत नहीं होता इसलिए जैव उर्वरकों का प्रयोग महत्वपूर्ण हैं।

जैव उर्वरकों को मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा जाता हैं :

(1) नाइट्रोजनयुक्त जैवउर्वरक

(2) फास्फोरसयुक्त जैवउर्वरक

(3) सल्फरयुक्त जैवउर्वरक

नाइट्रोजन के जैविक संश्लेषण में विभिन्न सूक्ष्मजीव भाग लेते है। कुछ सूक्ष्मजीव पौधो में सहजीवन यापन करते हु ए नाइट्रोजन को कार्बनिक रूप से संश्लेषित करते हैं जो पौधों द्वारा खनिज लवणों के अवशोषण के बाद ग्रहण कर ली जाती हैं। नाइट्रोजन जैवउर्वरक में सर्वप्रथम स्थान राइजोबियम का आता हैं। राइजोबियम सिर्फ दलहनों में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर पाता हैं। राइजोयम के बाद एजोटोबैक्टर, एजोस्पारीलम, नील हरित शैवाल और एजोला का स्थान आता हैं। राइजोबियम सूक्ष्म जोवाणु हैं जो पौधों की जड़ों में गाँठ बनाते हैं, और वायु से नाईट्रोजन ग्रहण कर उसे स्थिरीकृत करते हैं। राइजोबियम कल्चर का बीज शोघन करने से दलहनी फसल के उत्पादन में 10 से 15 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती हैं, अन्य फसलों की उपज में 10-20 प्रतिशत की वृद्धि होती है। उत्तम किस्म के राइजाबियम जैव उर्वरक के उपयोग से सोयाबीन के फसल की उपज लगभग दोगुनी हो जाती है। यह भूमि में 20 से 40 किलोग्राम नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करता हैं। राइजोबियम का पेकेट (250 ग्राम) एक एकड़ भूमि के लिए पर्याप्त होता हैं।

प्रभावी राइजोबियम जैवउर्वरक से दलहनी फसलों की नाइट्रोजन की 80-90 प्रतिशत आवश्यकता की पूर्ति हो जाती हैं।

नील-हरित शैवाल एक प्रकार की काई हैं। यह नीले हरे रंग की होती हैं, जो वायुमंडल में उपलब्ध लगभग 78 प्रतिशत नाइट्रोजन को जैविक नाइट्रोजन यौगिकीकरण द्वारा अमोनिया में बदल देने की क्षमता रखती हैं। इस कार्य हेतु ऊर्जा, सूर्य के प्रकाश व एडिनोसिन ट्राईफास्फेट के एडिनोसिनफास्फेट में परिर्वन द्वारा उत्सर्जित फॉस्फेट लोहा से प्राप्त होती हैं। इसलिए नील

हरित शैवाल वायुमंडलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण कर लगातार धान (जलमग्न) की फसल को नाइट्रोजन उपलब्ध कराता हैं।

नील हरित शैवाल एक प्रकृति प्रदत्त शैवाल हैं। इसको जीवाणुओं से अधिक समानता के कारण इसे साइनोजीवाणु भी कहते हैं। इसका लगभग 40 प्रजातियों में नाइट्रोजन यौगिकीकरण का गुण होता हैं। इनमें एनाबिना, नास्टॉक, साइटोनिया, आलोसाइरिया प्रमुख हैं। नील हरित शैवाल जैव उर्वरक की 12.5 किग्रा मात्रा प्रति हेक्टेयर का प्रयोग धान की रोपाई के 5 - 6 दिन बाद स्थिर पानी में करना चाहिए। शैवालीकरण के 4 - 5 दिन बाद भी पानी खेत में लगा रहना आवश्यक हैं। इससे फसल को 25 - 30 कि नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो जाती हैं। इसके प्रयोग से 12 - 13 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक. की अच्छी उपज भी प्राप्त हो जाती हैं। नील हरित -शैवाल नाइट्रोजन यौगिकीकरण के साथ-साथ की ऊर्जा से वायुमण्डलीय कार्बन-डाई - ऑक्साइड को शर्करा में भी परिवर्तित कर देता हैं।

एजोला तीव्र से विकसित होने वाले फर्न की एक प्रजाति हैं जो पानी में तैरती रहती हैं। इसकी पत्तियों की गुहाओं में 'एनाबिना एजोली ' नामक साइनोजीवाणु निवास करता हैं, यह वायुमण्डल से नाइट्रोजन लेकर पोषक पदार्थों का निर्माण करता हैं। एजोला 40-60 किग्रा. प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करता हैं।

एजोटोबैक्टर जीवाणु की खोज 1901 में 'बीजरिंग' ने की थी तथा एजोस्पाइरिलम जीवाणु की खोज 1922 में हालैण्ड के सूक्ष्मजीव वैज्ञानिक ने की थी और 1978 में इसका नाम एजोस्पाइरिलम रखा गया। एजोस्पाइरिलम बाजरे, व मक्का आदि में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करता हैं। एजोटोबैक्टर गेहूँ जौ, बाजरा आदि में नाइट्रोजन स्थिरीकरण का कार्य करता हैं।

फास्फोरस घुलनशील सूक्ष्म जीव (पी सी. बी. फास्फेट सोलूबिलाइजिंग बैक्टीरिया) को जैवप्रौद्योगिकी द्वारा वीकसित करने के लिए आनुवंशिक विधियों से जैव उर्वरकों की क्षमता बढ़ाई जा सकती हैं। बागवानी फसलों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण कारकों, जैसे - राइजोबियम, एजोस्पाइरिलम, एजोटोबैक्टर, एजोला कुछ सायनों जीवाणु जैसे नास्टॉक, तथा एनाबिना की जाति द्वारा आपूर्ति की जा सकती हैं साथ ही फास्फेट घुलनशील जीवाणु स्यूडोमोनास और बैसिलस तथा पेनीसीलियम और एस्पर्जिलस द्वारा आपूति होती हैं। आम, केला,अनार, पपीता तथा नींबू वर्गीय फलों में माइकोराइजा फफूँदी अत्यन्त लाभकारी होती हैं। इस क्षेत्र में माइकोराइजा फफूँदी कें जीन संरचना का पता लगाया जा रहा है, जिससे बागवानी फसलें और अधिक खुशहाल हो सकें। इसी प्रकार लीची में एण्डो माइकोराइजा काफी लाभ पहुँचता हैं।

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र मुम्बई में इस बात पर शोध चल रहा हैं कि विकिरण का प्रयोग करके दलहन पौधों का कुछ ऐसा रूपान्तरण किया जाए कि यह व्यापक पैमाने पर हवा से मुक्त नाइट्रोजन ग्रहण कर उसे जमीन में संग्रहित कर सकें। इस क्रम में 'सेस्वोनिया रास्ट्रेटा' नामक फली वाले पौधे का रूपान्तरण किया गया हैं इस नये पौधों की न केवल जड़ बल्कि तना में भी ऐसी गाँठ मौजूद हैं। जिसमें 'एजोराइजोबियम कोलिनोडस' जीवाणु रहता हैं। यह नया पौधा 50 दिन के भीतर एक हेक्टेयर भूमि में 120 से 160 किलोग्राम नाइट्रोजन का संग्रह कर देता हैं।

पौधों के पोषक तत्व में फास्फोरस लवण जल में अघुलनशील होते हैं। अतएव पौधों द्वारा धरती से ग्रहण किए जाए पोषक पदार्थों में आमतौर से वे मौजूद नहीं होते । विभिन्न जीवाणु जैसे - बैसिलस स्यूडोमोनास, माइक्रोबैक्टीरियम, माइक्रोवायल कवक अनुपलब्ध फास्फोरस लवणों को घुलनशील एवं गतिशील बनाने में सहायक हैं।

सल्फर जैव उर्वरक में थायोबैसिलस नामक जीवाणु मौजूद होता हैं जो कार्बनिक सल्फर को अकार्बनिक सल्फर के रूप में परिवर्तित कर पौधों को उपलब्ध कराता हैं। नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाला एजोला खेतों के लिए कार्बनिक पदार्थों को उपलब्ध कराने का एक बढ़िया स्रोत हैं। जुलाई 99 में टाटा ऊर्जा शोध संस्थान नई दिल्ली के वैज्ञानिकों ने एक ऐसी जैव खाद जिसे वैज्ञानिक भाषा में माइकोराइजा कहते हैं का विकास किया हैं जो कई प्रकार की सब्जियों, फलों, चारों की फसलों, के उत्पादन बढ़ाने में सक्षम होगा। अनुमान के अनुसार उत्पादकता की यह 30 से 50 प्रतिशत तक हो सकती हैं। माइकोराइजा वस्तुत: कवकों का मिश्रण होता हैं जो स्वयं को पौधों की जड़ों से सम्बन्धित रखकर उनसे एक तरह का सहजीवी सम्बन्ध बना लेता हैं। वह वायुमंडल से नाइट्रोजन लेकर उसे पौधों के लिए उपयोगी बनाने का काम लेता हैं। साथ ही यह फास्फोरस को अवशोषित करने में सहायक होता हैं। ध्यान रहें कि ये दोनों ही पदार्थ नाइट्रोजन फास्फोरस क्रमश: वायुमण्डल तथा मिट्टी में मौजूद तो रहते हैं, लेकिन इन्हें पौधे प्रत्यक्ष रूप से लेने में समर्थ नहीं होते। लेकिन माइकोराइजा इन पदार्थों को ग्रहण कर उन्हें पौधों को स्थानान्तरित कर देते हैं। टाटा ऊर्जा शोध संस्थान के वैज्ञानिकों ने इस नये जैव खाद की कई विशेषताओं का उल्लेख किया हैं। इनका मानना हैं कि इसकी बहुत कम मात्रा का प्रयोग कर ही उत्पादकता हासिल की जाती हैं।

इसमें रासायनिक तत्वों की प्रतिशतता काफी कमी होती हैं इस कारण यह वातावरण के अनुकूल ही बना रहता हैं तथा इससे प्रदूषण की सम्भावना कम होती हैं। यह मिट्टी की क्षमता, उसकी उर्वरता तथा पौधों की जड़ों द्वारा मिट्टी को पकड़ रखने की क्षमता में विशेष रूप से सहायक होती हैं। यह कई प्रकार के सूक्ष्मजीवों को नष्ट कर पौधों को विभिन्न प्रकार के व्याधियों से बचाने का कार्य करती हैं। यद्यपि ये कवक वातावरण में मौजूद होते हैं किन्तु इन्हें जैविक खाद का रूप नहीं दिया जाए तो ये पौधों के लिए उपयोगी नही बन पाते हैं।

सर 1995 में बायोवेद शोध एवं प्रसार केंद्र इलाहाबाद के वैज्ञानिकों ने एक ऐसे जैवउर्वरक और जैवकटिनाशी बायोनीमा का उत्पादन किया हैं जो विभिन्न फसलों के लिए आर्थिक दृष्टि से उपयोगी तथा प्रदूषण रहित हैं इसका प्रयोग एक एकड़ के लिए 15 किलोग्राम होता हैं। इसके प्रयोग से भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ जाती हैं तथा पैदावार में 20-25 प्रतिशत की वृद्धि होती हैं तथा भूमि की उर्वराशक्ति कई वर्षों तक बनी रहती हैं। यह हानिकारक कीटों और व्याधियों विशेष रूप से सूत्रकृमियों द्वारा होने वाले रोगों की रोकथाम करता हैं।

भारत सरकार ने जैवउर्वरकों को प्रोत्साहित करने के लिए देश के सात राज्यों में राष्ट्रीय परियोजनाएं शुरू की हैं। देश के शीर्ष संस्था के रूप में राष्ट्रीय जैवउर्वरक केंद्र की स्थापना गाजियाबाद में की गई हैं। जैवउर्वरक के महत्व को ध्यान में रखते हुए इसके उपयोग को बढ़ावा देने इसकी उपलब्धता सुनिश्चित करना ही इस परियोजना का उद्देश्य था। इसके अलावा पूरे देश में 6 क्षेत्रीय जैवउर्वरक विकास केंद्र क्रमश: जबलपुर, नागपुर, हिसार, बैंगलूर, इम्फाल, व

भुवनेश्वर में स्थापित किए गए हैं। राष्ट्रीय जैवउर्वरक विकास परियोजना का मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं :

1. जैवउर्वरक के सक्षम उपयोग पर प्रदर्शन तथा प्रशिक्षण का आयोजन करना।
2. गुणवत्ता, जाँच, नियंत्रण का कार्य करना।
3. जैवउर्वरक से सम्बन्धित साहित्य को विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में प्रकाशित करना।
4. संवर्धन बैंक की स्थापना करना।
5. उच्च कोटि के राइजोबियम, एजोटोबैक्टर व एजोस्पाइरियम संवर्धन तथा नील-हरित शैवाल के उपयोग द्वारा रासायनिक उर्वरकों की कमी की पूर्ति को सुधारने हेतु जैवउर्वरकों का उत्पादन व वितरण करना।
6. सरकारी संस्थाओं के साथ-साथ अन्य संस्थाएँ जो कि जैवउर्वरकों के उत्पादन व वितरण कार्यों से जुड़ी हैं को जैवउर्वरक से सम्बन्धित तकनीकी सहायता प्रदान करना।

राष्ट्रीय जैवउर्वरक कार्यक्रम के अन्तर्गत कृषि निदेशालय, सार्वजनिक क्षेत्र के कई उपक्रम राज्य के कृषि विश्वविद्यालय, राज्य के कृषि विभाग और कई निजी क्षेत्र उपक्रम राइजोबियम टीकों, निवेशक (इनाकुलेन्ट) के उत्पादन एवं वितरण में कार्यरत हैं। अखिल भारतीय एकीकृत अनुसंधान परियोजना के अंतर्गत सोयाबीन, मूँगफली एवं अन्य दलहनी फसलों को ध्यान में रखकर नाणोजन स्थिरीकरण परियोजना भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा प्रायोजित हैं। इसके अथक प्रयासों के बाद कई उपयुक्त विभेद पहचाने गये हैं। इनका उपयोग विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों, विभिन्न प्रजातियों एवं फली वाली फसलों के लिए किया जाता हैं।

10.7 जैव ऊर्जा के प्रमुख स्रोत

मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ऊर्जा की आवश्यकता होती हैं। ऊर्जा की खपत देश की प्रगति का द्योतक होती हैं। सकल राष्ट्रीय उत्पादन ऊर्जा खपत के समानुपाती होता हैं। इसका अर्थ हैं जो देश जितनी अधिक ऊर्जा की खपत करेगा उस देश का सकल राष्ट्रीय उत्पादन उतना ही अधिक होगा। केवल अमेरिका में सम्पूर्ण विश्व के सकल ऊर्जा उत्पादन के आधे भाग की खपत होती हैं वहीं भारत में केवल विश्व के दसवाँ भाग की ही खपत होती हैं। अमेरिका का प्रत्येक नागरिक भारत के प्रत्येक नागरिक की अपेक्षा औसतन 70 गुना अधिक ऊर्जा की खपत करता हैं। इसके कारण वहाँ नागरिकों का जीवन स्तर अत्यधिक ऊँचा हैं और वह देश सबसे अधिक विकसित हैं। अत: स्पष्ट हैं कि राष्ट्र की प्रगति, विकास नागरिकों के रहन-सहन और आर्थिक समृद्धि के लिए ऊर्जा एवं उसकी खपत का अत्यधिक महत्व हैं।

ऊर्जा स्रोत दो प्रकार के होते हैं - (1) अनवीनीकरण ऊर्जा स्रोत (जीवाश्म ईंधन) व (2) नवीनीकरण ऊर्जा स्रोत। अनवीनीकरण ऊर्जा स्रोत के बनने की क्रिया बहुत मन्द होती हैं । सम्पूर्ण विश्व में जनसंख्या वृद्धि औद्योगिक विकास और अन्य कई कारणों से ऊर्जा की खपत बहुत अधिक बढ़ गई हैं। जिस गति से जीवाश्मीय ईंधन का दोहन किया जा रहा हैं उस गति से आने वाले कुछ ही वर्षों में पारपीरक ऊर्जा स्रोत समाप्त हो जायेंगे और सम्पूर्ण विश्व में ऊर्जा संकट उत्पन्न हो जाएगा। इस ऊर्जा संकट को दूर करने के लिए हमें नवीनीकरण ऊर्जा स्रोतों को ढूँढ कर उनसे ऊर्जा प्राप्त करने के लिए आवश्यक कदम उठाने की आवश्यकता हैं।

जैविक कारकों तथा उनके अवयवों के उपयोग से ऊर्जा विरल एवं उपयोग असुविधाजनक स्रोतों जैसे जैव भार एवं धूप को ऊर्जा सघन एवं उपयोग में सुविधाजनक ऊर्जा स्रोतों जैसे मिथैन, इथोनेल, स्कूटेनोल, जैव डीजल एवं हाइड्रोजन में रूपान्तरित करना ऊर्जा जैव प्रौद्योगिकी कहलाता हैं। किसी जीव द्वारा उत्पादित सम्पूर्ण कोशिकीय शुष्क भार या कार्बनिक पदार्थ को जैव भार कहते हैं। ऊर्जा के रूप में उपयोग किया जाने वाला जैव भार CO_2 एवं सूर्य के उपयोग से बनाया जाता हैं। जैविक कारकों द्वारा उत्पादित ऊर्जा जैव ऊर्जा कहलाती हैं।

ध्यान देने योग्य हैं कि जैव ऊर्जा और जीवाश्म (फासिल) ऊर्जा दोनों ही जैव भार से प्राप्त होते हैं और दोनों ही प्रकार की ऊर्जा का स्रोत सूर्य हैं। किन्तु फासिल ऊर्जा स्रोतों की कुल उपलब्ध मात्रा सीमित हैं और अनवीनीकरण हैं। इसके विपरीत, जैव ऊर्जा स्रोत नवीनीकरण हैं। प्रारम्भ में मानक केवल जैव भार को ही ऊर्जा स्रोत के रूप में उपयोग करता था। लेकिन विज्ञान के विकास के साथ ही उसने मुख्य रूप से फाँसिल ऊर्जा स्रोतों का उपयोग प्रारम्भ कर दिया। इसके फलस्वरूप विकसित देशों की कुल ऊर्जा आवश्यकता का लगभग 96 प्रतिशत भाग फाँसिल ऊर्जा स्रोतों से प्राप्त होता हैं। इसके विपरीत विकासशील देशों में ऊर्जा की आवश्यकता का लगभाग 42 प्रतिशत जैव भार से प्राप्त किया जाता हैं। विकासशील देशों में बढ़ते औद्योगिकरण के कारण फाँसिल ऊर्जा स्रोतों की खपत लगातार बढ़ने के कारण वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों के रूप में जैव ऊर्जा स्रोतों में जैव तकनीकी विशेषज्ञों की रूचि बढ़ती जा रही हैं।

जैव ऊर्जा के उपयोगी लक्षण -

1. अधिकांश जैव ऊर्जा जैव भार से प्राप्त होती हैं और जैव भार सस्ता, नवीनीकरण एवं उसी क्षेत्र में उत्पादित होता हैं। इससे विदेशी मुद्रा की बचत होती हैं।
2. इनसे कम CO_2 निकलती हैं।
3. ये पर्यावरण को SO_2 जैसी गैसों से प्रदूषित नहीं करते।
4. इनके उत्पादन के लिए अधिकांश सब्सट्रेट अपशिष्ट होते हैं। अत: जैव ऊर्जा के उत्पादन से केवल मूल्यहीन पदार्र्थो से ऊर्जा ही प्राप्त नहीं होती बल्कि पर्यावरण भी प्रदूषण मुक्त होता हैं।

जैव ऊर्जा के प्रमुख स्रोत निम्न हैं -

(1) **जैव भार** (Biomass) : पिछले कुछ वर्षों में नवीनीकरण ऊर्जा स्रोत के रूप में जैव भार के उत्पादन और उपयोग में वृद्धि संबंधी गहन शोध की गई हैं। जैव भार के अन्तर्गत हैं वे सभी जीवित पदार्थ या उनके अपशिष्ट (जो ऊर्जा प्राप्ति के स्रोत हो सकते हैं सम्मिलित किये जा सकते हैं। ऊर्जा प्राप्ति के लिए जैव भार निम्न साधनों से प्राप्त हो सकता हैं -

(1) लिग्नोसेलुलोज युक्त स्थलीय पादप जैसे यूकेलिप्टस, चीड, त्थूसीना, मक्का, कसावा, गन्ना, व चुकन्दर

(2) जलीय पादप जैसे - जलकुम्भी

(3) व्यर्थ पदार्थ जैसे खाद, कूड़ा करकट, काष्ठ, फसलों के बचे हुए भाग जैसे भूसा, नींबू के छिलके, गन्ने के बचे हुए भाग, गुड़, नारियल के रेशे महुआ, फूल, पत्ती, गीला गोबर आदि।

पादप जैव भार में निम्न छह मुख्य भाग होते हैं -

(1) सेलुलोज

(2) हेमिसेलुलोज

(3) लिग्निन

(4) जलघुलित शर्करा

(5) एमीनोअप्ल

(6) वसा-तेल, मोम, रेजिन, अनेक वर्णक

(7) प्रोटीन जैव भार

(2) **सेलुलोज :** पौधों का एक मुख्य घटक सेलुलोज पृथ्वी पर बहुतायत में पाया जाने वाला एक महत्वपूर्ण कार्बनिक पदार्थ हैं। यदि सेलुलोज से ईंधन एल्कोहॉल का उत्पादन किया जाये तो भविष्य में यह एक विकसित उद्योग के रूप में सफल हो सकता हैं। सेलुलोज ग्लूकोज का एक बहुलक है, जिसमें कई सौ से कई हजार ग्लूकोज अणु आपस में जुड़कर दीर्घ व जटिल अणु का निर्माण करते हैं। एन्जाइम सेलुलेज की सहायता से सेलुलोज का अपघटन कर ग्लूकोज और ग्लूकोज से ईधन एल्कोंहॉल सरलता से प्राप्त किया जा सकता हैं। कई ऐसे कवक ज्ञात हैं जिनमें एंजाइम सेलुलेज पाया जाता हैं और जो सेलुलोज का अपघटन कर सकते हैं। काष्ठीय पौधों में लिग्नोसेलुलोज के रूप में लिग्निन, सेलुलोज के साथ पाया जाता हैं। लिग्निन का अपघटन करने वाले एंजाइम लिग्निनेज की भी खोज की जा चुकी हैं। इसलिए जैव प्रौद्योगिकी विशेषज्ञ ऐसी दो पदीय प्रक्रिया को विकसित करने में जुटे हैं जिससे सेलुलोज ईंधन एल्कोहोल प्राप्त किया जा सके।

(i) कुछ एंजाइम्स की सहायता से लिग्नोसेलुलोज का शर्करा में अपघटन तथा

(ii) शर्करा में यीस्ट मिलाकर किण्वन द्वारा ईंधन एल्कोहल का उत्पादन। अमेरिका और स्वीडन के अतिरिक्त कई देश इस दिशा में कार्यरत है।

(3) **ऊर्जा फसलें :** जो फसलें CO_2 के जीवभार में रूपान्तरण के लिए सूर्य के प्रकाश का उपयोग दक्षतापूर्वक करती हैं और जिनके जैवभार का उपयोग ऊर्जा के स्रोत के रूप में किया जाता हैं, ऊर्जा फसलें कहलाती हैं। इन फसलों से प्राप्त जैव भार निम्न प्रकार का हो सकता हैं-

लकड़ी : लकड़ी उत्पादन के लिए कई तेजी से बढ़ने वाले वृक्ष जैसे मीलिया, त्थूसीना, केजुराइना, यूकेलिप्टस, पोपुलस, पाइनस आदि उगाये जाते हैं। इस प्रकार का जैव भार अनेक प्रकार की जलवायु में सफलतापूर्वक उगाये जा सकता हैं और अधिक उत्पादन देता हैं। हाल की के कुछ वर्षों में उतक संवर्धन तकनीक के द्वारा (माइक्रोप्रोपेगेशन) सूक्ष्म प्रवर्धन, इन वृक्षों के प्रवर्धन में उपयोगी सिद्ध हुआ है

शर्करा एवं स्टार्च फसलें : शर्करा फसलें (गन्ना व चुकन्दर) एवं स्टार्च फसलें (धान्य मिलेट एवं कंद) जैव भार उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण फसलें हैं। इन नवीनीकरण स्रोतों के सफलतापूर्वक उपयोग से कई प्रकार के उत्पाद प्राप्त किये जा सकते हैं। जो ऊर्जा स्रोत रसायन और अन्य कार्यों के लिए प्रयुक्त किए जा सकते हैं। इन फसलों से न केवल शर्करा प्राप्त होती हैं जिसे द्रव ईंधन इथेनोल में परिवर्तित किया जा सकता हैं, बल्कि कीमती उपउत्पाद के रूप में

(Bagesse) निचोड़ा हुआ गन्ना भी प्राप्त होता हैं जो ठोस ईंधन के रूप में प्रयोग लिया जा सकता है। लेकिन इन फसलों के मानव व पशु आहार के रूप में भी उपयोग होने से जैव ऊर्जा के रूप में इनकी उपलब्धता कम ही होती हैं।

ऐसी तकनीक विकसित की जा चुकी हैं जिससे स्टार्च एवं शर्करा फसलों से प्राप्त इथेनोल को मोटर कारों में ईंधन ऐल्कोहल के रूप में काम में लिया जा सके। ब्राजील में ब्राजीलियन राष्ट्रीय ऐल्कोहल प्रोग्राम (गैस ऐल्कोहल प्रोग्राम) 1975 में प्रारम्भ किया गया था। वहाँ आजकल 25 करोड गैलन एल्कोहल का उत्पादन इस विधि से प्रतिवर्ष उत्पन्न किया जाता हैं। ब्राजील में सभी कारें या तो शुद्व ऐल्कोहल (95%) या ऐल्कोहल पेट्रोल में एक भाग इथेनोल का मिलाकर 900 सर्विस स्टेशनों पर व्यावसायिक रूप से गैसोहोल के रूप में कार्य में आता हैं।

हाइड्रोकार्बन उत्पादक फसलें : कुछ पौधे जैसे यूफोर्बिया लैथाइरिस, मिल्कवीड, एक्लेपिया एव लेग्यूम वृक्ष कोपेइफेरा मल्टीजुगा हाइड्रोकार्बन उत्पादित करते हैं। इन वंश के वृक्षों में लेटेक्स पाया जाता हैं। यदि इस लेटेक्स में से जल निकाल दिया जाये तो द्रव तेल प्राप्त होता हैं। यूफोर्बिया लेथाइरस से प्राप्त लेटेक्स के रासायनिक विश्लेषण से ज्ञात किया जा चुका हैं कि इसके शुष्क भार का 5 प्रतिशत टरपेनोइड्स से गैसोलीन समान उत्पाद तथा साधारण शर्करा के किण्वन से इथेनोल प्राप्त किया जा सकता हैं। इस प्रकार इस पौधे के शुष्क भार के 8 से 12 प्रतिशत भाग से प्रतिवर्ष 20 बैरल जैव डीजल प्रति एकड़ प्राप्त किया जा सकता हैं। पैट्रोप्लान्टस में मुख्य हैं - पीला कनेर, आक सत्यानाशी, डंडाथोर, रतनजोत, चाँदनी, सफेदचम्पा, कटहल, अगेव बडीदूदी आदि।

(4) **अपशिष्ट पदार्थ :** पौधों, जन्तुओं, घरों एवं नगरपालिका से प्राप्त कूड़ा-करकट अपशिष्ट पदार्थ कहलाते हैं। पादप अपशिष्ट में लकड़ी, हरे पादप भाग, भूसी, धान का छिलका, चावल का चोकर इत्यादि सम्मिलित होते हैं। बेकार लकड़ी से द्रव ईंधन मीथेनोल प्राप्त किया जा सकता हैं। अपशिष्ट हरे पादप भाग व भूसी का उपयोग पशुओं के चारे के साथ -साथ अवायवीय पाचन (Digestion) के द्वारा ऊर्जा स्रोत में परिवर्तित किया जा सकता हैं। 1980 में भारत में जाखेरी (पंजाब) में 35 करोड़ की लागत से चोकर पर आधारित तापीय बिजलीघर की स्थापना की गई जो विश्व में अपनी तरह की पहली तापीय इकाई हैं। इससे प्रतिवर्ष 62 मिलियन इकाई बिजली प्रतिवर्ष प्राप्त की जा सकेगी। धान के छिलके से धुँआ रहित ईंधन (Briquettes) प्राप्त किया जा सकता हैं जो घरों, होटलों, क्लिनिकों और बोयलर्स में ईंधन के रूप में प्रयोग लिया जा सकता हैं। भारत में आल्टरनेट हाइड्रोजएनर्जी सेन्टर, रूड़की, में (Briquelted fuel plant) की स्थापना की गई। इसी प्रकार चावल की पॉलिश के दौरान प्राप्त होने वाले चावल के चोकर से भी तेल प्राप्त किया जाता हैं, जिससे प्राप्त मिथाइल एस्टर का प्रयोग ईंधन के रूप में किया जाता हैं। घरेलू और नगरपालिका से प्राप्त अपशिष्ट पदार्थ को भी ऊर्जा स्रोत के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता हैं। पश्चिमी देशों में यह उपयोगी नही हो सकता हैं लेकिन एशियन देशों में जहाँ जनसंख्या विस्फोट के कारण असीमित मानव अपशिष्ट प्राप्त होते हैं। यह महत्वपूर्ण ऊर्जा स्रोत के रूप में प्रयोग में लिया जा सकता हैं। केन्द्रीय यांत्रिकीय इंजीनियरिंग संस्थान

(CMERI) दुर्गापुर में (1988) ऐसा पायलट प्लान्ट विकसित किया गया हैं । जहाँ शहर के कचरे (City waste-grabage) से बिजली उत्पन्न की जाती हैं।

(5) **जैव गैस (मीथेन) :** जीवाणुओं द्वारा कार्बनिक पदार्थों के अवायवीय पाचन से उत्पादित गैसों के मिश्रण को जैव गैस कहा जाता हैं। वास्तव में यह एक प्राचीन पद्धति हैं जिसमें जैव भार को ऊर्जा में परिवर्तित कर लिया जाता हैं।

जैव गैस उत्पादन के लिए उपयोग किए जाने वाले सब्सट्रेट साधारणतया औद्योगिक कृषि, पशुपालन, घरेलू तथा नगरीय अपशिष्ट हो सकता हैं। भारत में जैव गैस उत्पादन के लिए सामान्यतया गोबर का प्रयोग किया जाता हैं। भारत के कई गाँवों में ऊर्जा प्राप्ति के लिए गोबर गैस सयत्र संचालित किये जा रहे हैं। यह केवल ऊर्जा प्राप्ति का सस्ता स्रोत ही नहीं हैं वरन् प्रदूषण नियंत्रण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं। मृदा में उपस्थित मीथेनों बैक्टीरियम और मीथेनोकोकस जीवाणु मृत एवं सड़े गले पौधों एव जीवों के किण्वन से मीथेन गैस प्राप्त होती हैं। बायोगैस में 68 प्रतिशत मीथेन, 31 प्रतिशत CO_2, व 1 प्रतिशत नाइट्रोजन होती हैं। बायोगैस की क्षमता प्राकृतिक गैस से कुछ कम होती हाई, इसका कारण हैं बायोगैस में उपस्थित 31 प्रतिशत CO_2। यदि CO_2 की मात्रा कम हो जाए तो इसका उष्मा मान बढ़ सकता हैं। ऐसे प्रयास किए जा रहे हैं कि विभिन्न प्रकार के अपशिष्ट पदार्थों के मिश्रण से जैविक किण्वन द्वारा उच्च मान की गैस उत्पन्न की जाये। उत्तर प्रदेश के इटावा जिले के अजीतमल स्थान पर 1961 में गोबर गैस अनुसंधान स्टेशन की स्थापना की गई।

कुछ वर्ष पूर्व जापान की एक कम्पनी ने एक नये मीथेन बैक्टीरिया (बैक्टीरियम केडेमिन्सिस स्ट्रेन 23) की खोज की हैं, जिससे अधिक गति से मीथेन प्राप्त होती हैं।

(6) **हाइड्रोजन :** हाइड्रोजन भी एक नवीनीकरणीय ऊर्जा स्रोत हैं क्योंकि इसके उत्पादन में मूल पदार्थ के रूप में काम आने वाला पदार्थ पानी पृथ्वी पर असीमित मात्रा में हैं और पानी के अपघटन में काम आने वाली सौर ऊर्जा करोड़ों वर्षों तक प्राप्त हो सकेगी। इसके अतिरिक्त जब इसे ईंधन के रूप में काम लिया जाता हैं तब केवल जलवाष्प बनती हैं और कोई प्रदूषण नहीं होता। इस प्रकार मूल पदार्थ के रूप में काम लिया जाने वाला जल पुन: प्राप्त होता रहता हैं। लेकिन इसके उत्पादन एव उपयोग की विधियाँ काफी खर्चीली हैं और हाइड्रोजन गैस मुक्त होने पर पृथ्वी के वातावरण से निकल कर अंतरिक्ष में गायब हो जाती हैं। अत: वर्तमान में जैव हाइड्रोजन का उत्पादन एवं उपयोग जैव प्रौद्योगिकी के तहत एक लम्बे एवं गहन शोध का विषय हैं।

जैविक कारकों द्वारा उत्पादित हाइड्रोजन को जैव हाइड्रोजन कहते हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रकाशसंश्लेषण क्रिया हरे पौधों की कार्य प्रणाली का प्रयोग किया जाता हैं। पौधों का पर्णहरित सौर ऊर्जा को ATP के रूप में संचित करता हैं, जिसे प्रकाश संश्लेषण क्रिया में प्रयुक्त किया जाता हैं। इस क्रिया में पानी का प्रकाश अपघटन किया जाता हैं जिससे जल का अणु ऑक्सीजन, इलेट्रॉन्स और हाइड्रोजन आयन्स में टूटता हैं। प्रकाश संश्लेषण में इस प्रकार निर्मित हाइड्रोजन आयन्स हाइड्रोजन गैस बनाने के स्थान पर उच्च ऊर्जा वाले यौगिक जैसे ग्लूकोस बनाने में काम आ जाते हैं। यदि किसी प्रकार इन हाइड्रोजन आयन्स को हाइड्रोजन गैस

में बदला जा सके और उसे संग्रहित कर उसका प्रयोग किया जा सके तो जैव हाइड्रोजन एक उत्तम वैकल्पिक नवीनीकरण ऊर्जा स्रोत हो सकता हाइड्रोजन आयन्स को हाइड्रोजन गैस में बदलने का कार्य एन्जाइम हाइड्रोजिनेज और नाइट्रोजिनेस द्वारा किया जा सकता हैं।

(अ) हाइड्रोजिनेज एन्जाइम द्वारा जैव हाइड्रोजन का उत्पादन: कुछ पौधों में हाइड्रोजिनेज एंजाइम पाया जाता हैं जो जल के प्रकाश अपघटन से प्राप्त दो इलेक्टॉन्स को दो हाइड्रोजन आयन्स के साथ युग्मितकर हाइड्रोजन गैस का एक अणु बनाते हैं। इन पौधों में जैसे क्लेमाइडोमानास, पोरफाइरिडियम, ओसिलेटोरिया आदि कई शैवाल तथा रोडोस्पीरिलयम, क्रोमेटियम तथा क्लोस्ट्रीडियम जैसे प्रकाश संश्लेषी जीवाणु सम्मिलित हैं ।

(1) **जीवाणु द्वारा हाइड्रोजन उत्पादन :** ये जीवाणु सबस्ट्रेट का ऑक्सीकरण करने के लिए NAD^+ का अपचयन $NADH^+$ में करते हैं। अत: सबस्ट्रेट का ऑक्सीकरण जारी रखने के लिए यह अनिवार्य हैं कि इनकी कोशिकाओं में NADH से NAD^+ का पुनर्जनन होता रहे। इसके लिए ये NADH से इलेक्ट्रान (e^-) को H^+ आयनों को स्थानान्तरित करते हैं। जिससे H_2 का उत्पादन होता हैं और NAD^{+}' का पुनर्जनन होता हैं। यह अभिक्रिया हाइड्रोजिनेज द्वारा उत्प्रेरित होती हैं।

(2) **प्रकाशसंश्लेषक शैवाल द्वारा H_2 का उत्पादन :** कई सूक्ष्म शैवाल, विशेष रूप से कम प्रकाश में तें, उत्पादन करते हैं। इनका प्रकाश संश्लेषी उपकरण जल को H_2 व O_2 में विभक्त करता हैं। फोटोसिस्टम I के द्वारा उपचयित फेरेदाक्सिन का उत्पादन होता हैं जिसके ऑक्सीकरण के दौरान इलेक्ट्रोन्स (e^-) H^+ आयनों को स्थानान्तरित होते हैं और H_2 का उत्पादन होता हैं। कम तीव्र प्रकाश में प्रकाश की लगभग 15 प्रतिशत ऊर्जा का भडारण H_2 के रूप में होता हैं। लेकिन उच्च प्रकाश तीव्रताओं (जो कि वातावरण में पायी जाती हैं) में यह दक्षता काफी घट जाती हैं। इस समस्या का उचित समाधान किये बगैर जैव हाइड्रोजन के इस स्रोत का व्यावहारिक उपयोग संभव नहीं हैं।

(3) **पात्रे प्रकाश संश्लेषी उपकरण हाइड्रोजिनेज पद्धति :** इस पद्धति में बैक्टीरिया से प्राप्त हाइड्रोजिनेज एन्जाइम तथा विलगित हरितलवक को युग्मित करके एक पात्र पद्धति का विकास किया गया। इस पद्धति में हरितलवक द्वारा सौर ऊर्जा के प्रयोग से उत्पन्न H^+ आयन्स तथा इलेक्ट्रॉन को हाइड्रोजिनेज एन्जाइम द्वारा जोड़ा गया। इस प्रकार प्राप्त हाइड्रोजन गैस विलयन से बुलबुले के रूप में प्राप्त होगी जो आसानी से संचित की जा सकेगी। यह पद्धति वर्तमान में कुछ घण्टों के लिए ही प्रभावित रहती हैं लेकिन आशा हैं कि इसमें सुधार कर इस पद्धति द्वारा व्यावसायिक स्तर पर जैव हाइड्रोजन का उत्पादन संभव हो सकेगा।

(ब) नाइट्रोजिनेज एन्जाइम द्वारा H_2 का उत्पादन: नील हरित शैवाल (सायनोबैक्टीरिया) में नाइटोजिनेज नाइड्रोजन उत्पादन के लिए मुख्य एंजाइम हैं। यह अधिक अच्छा माना जाता हैं क्योंकि हाइड्रोजिनेज एंजाइम जल के प्रकाश अपघटन में ऑक्सीजन के प्रति अधिक संवेदनशील (Sensitive) हैं, जबकि नाइट्रोजिनेज एजाइम तुलनात्मक दृष्टि से कम संवेदनशील हैं। इसके

अतिरिक्त सायनोबैक्टीरिया के हिटरोसिस्ट में ऑक्सीकरण सान्द्रता या तो कम होती हैं या बिल्कुल नहीं, अत: हाइड्रोजन का उत्पादन अधिक प्रभावी (Efficient) हो जाता हैं।

नाइट्रोजिनेज एंजाइम हाइड्रोजन गैस के उत्पादन के साथ-साथ नाइट्रोजन को अमोनिया में अपचयित करता हैं। हाइड्रोजन की उत्पत्ति प्रकाश की उपलब्धि पर निर्भर करती हैं जो इलेक्ट्रोन दाता को देने के साथ-साथ हिटरोसिस्ट में नाइट्रोजिनेज एंजाइम और ATP के उत्पादन को प्रेरित करती हैं। यह देखा गया हैं कि एनाबीना (नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने वाले सायनोबैक्टीरिंया) की कुछ जातियों में प्रकाश पर निर्भर हाइड्रोजन उत्पादन कई दिनों तक लगातार चल सकता हैं।

भारतीय परिपेक्ष्य में जैव ऊर्जा के प्रमुख स्रोत : बढ़ती हुई जनसंख्या के द्वार बढ़ती हुई मांग से भारत में जीवाशेष से प्राप्त प्रेट्रोल व डीजल के रूप मे अनवीनीकरणीय ऊर्जा स्रोत धीरे-धीरे समाप्त होते जा रहे हैं। भारत की 80 प्रतिशत गाँवों की जनसंख्या अव्यावसायिक ऊर्जा स्रोतों पर निर्भर करती हैं जो कि 275 टन कोयले से प्राप्त ऊर्जा के बराबर हैं। इसलिए हमारे भारत में व्यावसायिक उपयोग के लिए ऊर्जा प्राप्ति के विकल्पों को खोजना आवश्यक हैं।

भारत की ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जैव ऊर्जा निम्न स्रोतों से प्राप्त की जा सकती हैं

(1) **अपशिष्ट पदार्थ :** भारत में डेनिश फर्म वोलेण्ड मिलिपोटेनिक की सहायता से अनवीकरण ऊर्जा विभाग द्वारा दिल्ली में सन् 1987 में एक ऊर्जा संयन्त्र स्थापित किया गया था। इस संयन्त्र में शहरों से एकत्रित अपशिष्टों द्वारा ऊर्जा प्राप्त होती हैं। इसके द्वारा 3 मेगावाट तक की बिजली प्राप्त होने लगी थी। इस सयंत्र में 3.75 MW बिजली उत्पादन हेतु 300 मेट्रिक टन अपशिष्ट की आवश्यकता होती हैं। भारत में अपशिष्ट पदार्थ की केलोरिफिक क्षमता (उत्पादित उष्मा) 1200 से 1600 किलो कैलोरी प्रति किलोग्रोम हैं। इसका कारण हैं कि हमारे देश में अपशिष्टों को उठाने वाले अनेक ज्वलनशील पदार्थ शायद उसमें से निकाल लेते हैं, इसके साथ ही उसमें अत्यधिक मात्रा में रेत व पत्थर के टुकड़े मिले होते हैं जो कैलोरिफिक क्षमता को कम करते हैं।

(2) **जैव भार** (Biomass) : इस समय भारत में जलकुम्भी (आइकोर्निया क्रासपीस) खरपतवार की तरह प्रत्येक जलाशय में फैली हुई हैं। इसको जलाशयों से निकालकर सुखाकर ईंधन के रूप में काम में लिया जा सकता हैं। इसको सड़ाकर बायो गैस प्राप्त की जा सकती हैं।

इसी प्रकार पिछले कुछ वर्षो में पार्थीनियम (गाजर घास) नामक पौधे ने भी हमारे शहरों में खाली पड़े भू-भागों पर अपना साम्राज्य जमा लिया हैं। इस पौधें को बड़ी मात्रा में एकत्रित कर किण्वन द्वारा अथवा अन्य तरीके खोजकर इससे हम उच्च कैलोरिफिक क्षमता की ऊर्जा प्राप्त कर सकते हैं।

(3) **पैट्रो पादप :** पैट्रो पादपों को फसलों के रूप में उगाकर भी हम ईंधन प्राप्त कर सकते है।

(4) **गन्ने को पेट्रोल के विकल्प के रूप में प्रयुक्त करना :** कृषि वैज्ञानिकों का मत हैं कि ऊर्जा की बढ़ती हुई माँग को देखते हुए भारत में पेट्रोल के वैकल्पिक स्रोत इथेनोल-गेसोलीन मिश्रण का ऑटो रिक्शाओं में ईंधन के रूप में काम में लेना चाहिए। चण्डीगढ़ के एम. एस.

कोहली के अनुसार पेट्रोल के साथ 30 प्रतिशत इथाइल एल्कोहल का उपयोग अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए। इससे न केवल भारत के तेल क्षेत्र में होने वाली क्षति को राहत मिलेगी, अपितु भारतीय कृषि व्यवस्था को भी नया आयाम मिलेगा। गन्ने से इथाइल एल्कोहल बनाने के लिए सरकार को लघु उद्योग इकाइयों को प्रोत्साहन देना चाहिए। इस प्रकार का प्रोत्साहन न केवल पेट्रोल के आयात को प्रभावित करेगा, अपितु गन्ना बाजार में गन्ने की कीमतें बढ़ाने के लिए फसलों को जला देने वाले किसानों को भी अधिक धन की प्राप्ति होगी। कोहली के अनुसार एक हैक्टेयर में उपजाये गन्ने से 5 हजार लीटर इथाइल एल्कोहल का उत्पादन किया जा सकता हैं। गन्ने की फसल तैयार होने के 5-6 माह के अन्दर ही औसतन 24. 75 अरब लीटर एल्कोहल का उत्पादन किया जा सकता हैं। यह भारत के कुल ईंधन उत्पादों की खपत का 30 से 40 प्रतिशत ऊर्जा का अतिरिक्त विकल्प होगा। गन्ने से ऐल्कोहल उत्पादन में लगी फैक्ट्रियाँ जब गन्ने की फसल न हो जब गन्ने के पत्तों, कूड़े, शीरा, स्टार्च और यहाँ तक कि सड़े गले फल और सब्जियाँ द्वारा भी संचालित कीं जा सकती हैं।

10.8 पेटेन्ट, बौद्धिक सम्पदा अधिकार एवं जैव अनैतिकता (Patent, Intellectual Property Righes and Biopiracy)

जैव प्रौद्योगिकी में प्रौद्योगिकी द्वारा उत्पादित उत्पाद एवं उनको बनाने की प्रक्रिया से सम्बन्धित पेचीदगियों को कानून सम्मत ढाचें में बिठाना एक मुख्य मुद्दा हैं, इस प्रकार की प्रक्रियाओं को उनके आविष्कारक के हितों में उपयोग करने को बौद्धिक सम्पदा अधिकार (Intellectual Property Rights) कहते हैं। आमतौर पर सम्पदा शब्द का उपयोग जमीन, मकान एवं इस प्रकार के भौतिक सामान के लिए उपयोग में लिया जाता हैं। जिनके लिए उस देश में लागू कानून व्यक्ति विशेष का सम्पदा की रक्षा करता हैं। दूसरी ओर बौद्धिक सम्पदा के अधिकार में व्यक्ति द्वारा सृजन की गयी वस्तु या कार्य की रक्षा की जाती हैं। यह कार्य पेटेन्ट (Patent), व्यापारिक गोपनीयता (Teade secrete), प्रकाशनाधिकार (Copyright), मार्का (Trademarks) रूप में रंक्षित की जाती हैं ताकि इस सम्पदा का उसके निर्माण कर्ता की अनुमति के बिना उपयोग नहीं किया जा सके। जैसे किसी पुस्तक का दूसरे देश में प्रकाशन या अनुवाद फिल्मों एवं सगीत का अनाधिकृत प्रतिलिपि बनाना, किसी यंत्र या कलपुर्जे का निर्माण पुनर्योजन डी. एन. ए. द्वारा तैयार बीजों का निर्माण एवं उपयोग इत्यादि।

जैव प्रौद्योगिकी में रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम के उपयोग से पुनर्योजन डी. एन. ए. (r-D.N.A.) का निर्माण, पराजिनी पौधों एवं जंतुओं का निर्माण एवं डी. एन. ए. की अनुक्रम इत्यादि बौद्धिक सम्पदा कहलाते इन सबके उपयोग का लाभ अगर इसके अविष्कारक को नहीं मिलता हैं तो गैर सरकारी कम्पनियाँ इन शोध कार्यों में धन लगाने में आगे नहीं आयेगी, अत: इस प्रकार के कार्यों की इनके आविष्कारकों के हितों में रक्षा करने के लिए कानून बनाना अति आवश्यक हैं।

विश्व स्तर पर पराजीनी पौधों एवं जंतुओं के निर्माण एवं उपयोग पर एक बहस जारी हैं, स्व ओर इनके निर्माण करने वाले इनके उपयोग बताकर इनके निर्माण में आये खर्च की भरपाई

करना एवं लाभ कमाना चाहते हैं, तो दूसरी ओर इनका विरोध करने वाले इन्हें गरीब किसानों के लिए अहितकारी, पर्यावरण के लिये नुकसानदेह, तथा सुरक्षित अन्न व्यवस्था के विरूद्ध बता रहे हैं।

इस सामान्य अभिव्यक्ति के अन्तर्गत पेटेंट प्रतिलिप्याधिकार, (Copyright), व्यापार चिन्ह (Trademark), औद्योगिकी डिजाइन भौगोलिक संकेतक समाकलित (Integrated) सर्किटों के अभिन्यास डिजाइन और अप्रकट सूचनाओं (व्यापार गुप्त बातों) का सरंक्षण आते हैं।

प्रत्येक उद्योग अथवा व्यवसाय को अपनी बौद्धिक सम्पदा की पहचान करने, उसकी रक्षा करने तथा उनका प्रबन्ध करने के लिए व्यवस्थित उपाय करना आवश्यक हैं ताकि स्वामित्व से हर सम्भव लाभकारी परिणाम प्राप्त किये जा सकें। भारत में बौद्धिक सम्पदा अधिकार (IPR) पेटेन्ट (Patent) व्यापार चिन्ह (Trademark) प्रतिलिप्याधिकार (Copyright) विधानों के अन्तर्गत आते हैं।

पेटेन्ट (Patent): किसी भी नये उत्पाद के लिए उसे बनाने एवं बेचने के विशिष्ट विशेषाधिकार देने से नये उत्पादों के शोध को बढ़ावा मिलता हैं। इस प्रकार किसी उत्पाद या खोज के पंजीकरण को पेटेन्ट कहते हैं, इसके लिए विशेष कार्यालय होते हैं तथा पंजीकृत वस्तु या खोज पेटेन्ट कानून के तहत पेटेन्टकर्ता के नाम संरक्षित रहती हैं। इस प्रकार के विशेषाधिकार से खोजकर्ता स्वयं या कोई व्यक्ति या कम्पनी खोजकर्ता को उचित मुआवजा देकर उस वस्तु का उत्पादन कर सकती हैं। अगर कोई अन्य मुआवजे के बिना उस वस्तु का उत्पादन करता हैं, तो वह गैर कानूनी कहलाता हैं तथा दण्डनीय अपराध हैं।

अमेरिकी पेटेन्ट कानून के अनुसार गैरपेटेन्ट शुदा व्यक्ति को उस उत्पाद को बनाने, उपयोग में लाने एवं बेचने का अधिकार नहीं हैं अर्थात् यह कार्य केवल पेटेन्टशुदा कम्पनी या फर्म ही कर सकती हैं। अमेरिकी पेटेन्ट कानून के तहत उत्पाद बनाने की प्रक्रिया एवं उत्पाद दोनों ही 17 वर्ष की अवधि के लिए दिये जाते हैं। भारतीय पेटेंट कानून 1970 के अनुसार सिर्फ प्रक्रिया का पेटेन्ट दिया जाता हैं न कि उत्पाद का। इस तरह अलग-अलग. प्रक्रियाओं से अथवा पुरानी प्रक्रिया में थोड़ा सुधार कर वही उत्पाद बनाया जा सकता हैं। भारत में पेटेन्ट पाँच वर्ष के लिए मान्य होता हैं। अमेरिकी कानून के तहत नई दवाओं के उपयोग से पहले संघीय, खाद्य एवं दवा प्रशासन (Food and drug administration) से अनुमति लेनी पड़ती हैं। इसी प्रकार अमेरिकी संघीय नये कीटनाशक फंफूद नाशक एवं चूहे नाशक एक्ट के अनुसार आनुवांशिक अभियांत्रिकी द्वारा तैयार सूक्ष्म जैविक रोग नाशकों के लिए पर्यावरण शाखा से अनुमति लेनी होती हैं। इस प्रकार आनुवांशिकी अभियांत्रिकी द्वारा तैयार पराजीनी सूक्ष्म जीवों, पौधों, एवं जंतुओं के उत्पादन एवं उपयोग के लिए भी सरकारी अनुमति आवश्यक हैं। भारत में यह नियंत्रण जैव प्रौद्योगिकी विभाग, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग एवं पर्यावरण तथा वन विभाग करता हैं। अत: इन विभागों की अनुमति आवश्यक हैं।

आमतौर पर पेटेन्ट के आवेदन आम जनता की सूचनार्थ प्रकाशित किये जाते हैं ताकि कोई अन्य व्यक्ति उसके बारे में तकनीकी विरोध कर सकता हैं। एक बार पेटेन्ट दे दिये जाने पर उस देश के नियमानुसार विशेष अवधि के लिए लागू हो जाता हैं। प्रकाशित पेटेन्ट के आधार पर

इन्हें शोध द्वारा उन्नत करने का प्रोत्साहन मिलता हैं. पेटेन्ट भारत, यूरोपीय देशों एवं अमेरिका में अलग-अलग किये जाते हैं। साधारणतया किसी भी उत्पाद या प्रक्रिया में नयी उपयोगिता, प्रक्रिया का नयापन एवं कानूनानुसार विषय वस्तु का होना पेटेन्ट के आवेदन के लिए आवश्यक हैं।

(क) पेटेन्ट अधिनियम 1970 के अधीन पेटेन्ट योग्य आविष्कार निम्न हैं -

(ख) कला प्रसंस्करण, प्रक्रिया, विनिर्माण की पद्धति या रीति,

(ग) मशीने उपकरण (Apparatus) या अन्य वस्तु,

(घ) विनिर्माण द्वारा उत्पादित पदार्थ और उसमें उनमें से किसी का भी कोई नया उपयोगी सुधार या कोई अभिव्यक्ति आविष्कार हैं।

प्रकाशनाधिकार (Copyright) : प्रकाशन अधिकार मुख्य रूप से लेखक द्वारा लिखी गई अथवा सम्पादक द्वार सम्पादित पुस्तकों, सुनने व देखने वाले कैसेट्स आदि से सम्बन्धित हैं। इन सबका इनके रचियता या प्रकाशक की अनुमति के बिना प्रतिलिपि निर्माण दण्डनीय अपराध हैं। इसके अन्तर्गत लिखित सामग्री (छपा हुआ या कैसेट पर अंकित) का होना आवश्यक हैं। इसके अन्तर्गत नियमों में परिवर्तन का कम्प्यूटर की कॉम्पेक्ट डिस्क (C.D.) को भी लाया गया हैं। जैव प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत D.N.A. के अनुक्रम जो प्रकाशित हो, उसको भी रखा गया हैं।

पादप प्रजनक अधिकार (P.B.R.) : इसी प्रकार फसलों की नई किस्मों को भी बौद्धिक सम्पदा के अधिकार क्षेत्र में लाया गया हैं। इसे पादप प्रजनक अधिकार (Plant Breeders rights, P.B.R.) कहा जाता हैं। विकसित देशों में इसके कानून बन चुके हैं, जबकि भारत में यह अभी बनने बाकी हैं। इन किस्मों को बनाने वाला इस अधिकार के तहत किस्म का स्वामित्व रखता हैं। अर्थात् उगाने, बेचने एवं उन्नत करने का अधिकार। दूसरे किसान इससे बीच खरीद का फसल उगा सकते हैं, परन्तु कोई ओर इनका सीधा उपयोग अपने लाभ के लिये नहीं कर सकता। इसके तहत इस प्रकार के बीज खरीदने वाला किसान अगली फसलों के लिए या इन किस्मों को और उन्नत करने के लिए खरीदे गये बीजों की संतति का उपयोग कर सकता हैं। इसे किसान छूट (Farmers exemption) कहा जाता भारत में यह कानून अभी लागू नहीं किया गया हैं क्योंकि इसमें बीजों की कीमते बढ़ने लाभ का फायदा कुछ किसानों को होने तथा नयी किस्मों के किसानों तक पहुँचाने में समय लगने की सम्भावना हैं अर्थात् यह बड़े किसानों के हितों में तथा छोटे किसानों के लिए नुकसानदेह समझा जा सकता हैं।

ट्रिप्स (Trip - Trade Related Intellectual Property Rights) : वर्ल्ड ट्रेड ऑर्गेनाइजेशन (WTO) के अन्तर्गत यह समझौता सन्धि दुनिया के WTO के सदस्यों देशों द्वारा किया जाता हैं। जिसके अन्तर्गत दुनिया में व्यापार एवं बौद्धिक सम्पदा की रक्षा पर सदस्य देशों की सहमति मांगी गयी हैं। इसप्रकार खोजकर्ता अथवा उत्पादन करने वाले को उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं का एकाधिकार मिलेगा, परन्तु उत्पाद के बहुत अधिक मूल्य से गरीबों की रक्षा के अन्तर्गत अविकसित एवं विकासशील देशों को कुछ मामलों, जैसे - जीवन रक्षक दवाईयों में, छूट देने के उपाय रखे गये हैं। इन उपायों पर शीघ्र ही आम सहमति होने की आशा हैं। भारत सरकार ने 1

अप्रैल 2003 से कई वस्तुओं पर से WTO के समझौते के अनुसार आयात प्रतिबंध हटा लिया हैं।

गेट (GATT) : उरूग्वे कॉन्फ्रेस में वर्ल्ड ट्रेड ऑर्गेनाइजेशन बनाया गया जिसका मुख्य उद्देश्य दुनिया के देशों के बीच होने वाले व्यापार एवं करों पर आम सहमति के नियम बनाना है (General Agreement on Tariffs and Trade,GATT)। इसके अन्तर्गत विश्व व्यापार में सदस्य देशों की हिस्सेदारी एवं करों के बारे में दिशा निर्देश लागू करना हैं जिसे 1.1.1995 से लागू होना था जबकि TRIPS, जो कि बौद्धिक सम्पदा के मसलों से जुड़ा था उसे 1.1.1996 से लागूहोना था। डाकर में अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन द्वारा 1994 में हस्ताक्षरित इस समझौते पर सौ से अधिक देशों ने हस्ताक्षर कर दिये हैं। गेट का मुख्यालय जनेवा, स्वीजरलैण्ड में रखा गया हैं।

जैव प्रौद्योगिकी एवं पर्यावरण व्यापार : जैव प्रौद्योगिकी द्वारा तैयार जीवों (पराजीनी पौधों एवं जंतुओं) के बारे में कई भ्रांतियां हैं जैसे क्या जैव प्रौद्योगिकी द्वारा तैयार पराजीनी जीवों को खाया जाना नुकसान देह तो नहीं? क्या पराजीनी जीव (खासकर पौधे) संकरण से (परागण द्वारा) दूसरे किस्मों में परिवर्तन कर देंगे या नष्ट कर देंगे? क्या इससे पर्यावरण संतुलन बिगड़ जायेगा और भयानक एवं प्रतिरोधी कीड़ों का विकास हो जायेगा?

साधारणतया हम गेहूँ का आटा चपाती बनाने में काम लेते हैं। हम यह ज्ञात नहीं करते हैं कि यह कौन सी किस्म के गेहूँ का आटा हैं? आटा गेहूँ पीस कर तैयार होता हैं और ह र कोशिका का डी. एन. ए. भी उसमें होता हैं जो आसानी से पेट में पच (Digest) जाता हैं, अर्थात् उसमें उपस्थित हजारों न्यूक्लियोटाइड या जीने आसानी से पच जाती हैं। अगर इसमे एक या कुछ नयी जीने (जो कि न्यूक्लिओटाइड की बनी होती हैं) मौजूद हो तो वह बिना कोई नुकसान किये हजम हो जायेगी। इस प्रकार नयी जीनों (पराजीनों) का कोई विपरीत प्रभाव खाद्य पदार्थ पर नहीं होगा। अमेरिका में खाद्य पदार्थ पर इस प्रकार का वर्णन भी जरूरी नहीं हैं।

पराजीनो से उन्नत किस्मों का तेजी से विकास सम्भव हो सका हैं जैसे बीटी कपास (Bt cotton) बेसिलिस थूरीजियेनसिस से प्राप्त जीन के कपास से स्थानान्तरण द्वारा। यह एक विशेष कीड़े को जो कपास के फल को (जहां बीजों पर कपास के रेशे बनते हैं) नष्ट करता हैं, उसे नष्ट करने में एक विशेष प्रोटीन के उत्पादन द्वारा। कपास के इस परिवर्तन से इस कीट में प्रतिरोध उत्पन्न होना असम्भव हैं, फिर भी काफी समय के पश्चात् ही नये निष्कर्ष निकल पायेंगे। खरपतवार नाशी प्रतिरोधी (Weedicide resistant) फसलों के लगातार क्रमवार उगाने एवं सब फसलों में एक ही खरपतवारनाशी जीन के होने से इस प्रकार का खतरा बन सकता हैं कि कुछ पिछली फसल के पौधे अगली फसल मे खरपतवार के समान उग जाये क्योंकि उसमें भी वही प्रतिरोध उपस्थित होगा। अत : अलग - अलग खरपतवार प्रतिरोधी जीनों वाली फसलों का क्रमवार उगाने से यह समस्या उत्पन्न नहीं होगी।

परागकण द्वारा जीनों के स्थानान्तरण की प्रक्रिया प्रकृति में भी पायी जाती हैं। उदाहरणार्थ मक्का और उसके जंगली सम्बन्धी (Wild Relatvie) टियोसिन (Teosinte) के बीच संकरण पाया जाता हैं। इसी प्रकार ज्वार (Sorghum) के जंगली सम्बन्धी (Sorghum biocolor

and S. halpense) में भी संकरण होता हैं। अत: पराजीनो से दूसरे पौधें में परागण द्वारा जीनों के स्थानान्तरण का डर बना हुआ हैं, परन्तु यह बहुत नगण्य मात्रा में होता हैं, और ये पराजीनी फसले अभी धरती पर नयी हैं। अत: आने वाला समय ही पर्यावरण पर इनके प्रभाव को दर्शायेगा।

साधारणतया पराजीनी पौधों में एक या कुछ जीनों का स्थानान्तरण किया जाता हैं अर्थात् पौधों की हजारों जीनों में से कुछ। ये पौधे (पराजीनी नहीं) कई सदियों से उगाये जा रहे हैं और एक -दो नयी जीन के साथ उगाने से पर्यावरण में भारी परिवर्तन आ जाना असम्भव हैं जैसा कि उपर उदाहरण द्वारा समझाया गया हैं। इस प्रकार जीन स्थानान्तरण बहुत मुश्किल एवं नगण्य स्तर पर ही हो सकता हैं। जो क्रान्ति प्रौद्योगिकी से सम्भव हैं यह पारम्परिक तरीकों से बहुत मुश्किल हैं। उदाहरण के तौर पर अगर पशुओं की खाद से ही खेती की जाये तो इतने पशुओं और गोबर की आवश्यकता होगी कि धरती पर गोबर एवं पशु ही रह जायेंगे। मानव के लिए जगह ही नहीं बचेगी, अत : यह भ्रांतियां ही हैं कि इससे पर्यावरण संतुलन बिगड़ जायेगा। फिर भी जो लोग इसका विरोध कर-रहे हैं। वे मुद्दे इस प्रकार हैं -

(i) **नैतिकता :** इन पौधों या जीवों में प्राकृतिक तौर पर संकरण नहीं होते इनमें जीन स्थानान्तरण नहीं करना चाहिये इससे जीनों की प्रवृत्ति में बदलाव आयेगा।

(ii) **सुरक्षा :** पर्यावरण में संतुलन बिगड़ने का खतरा हैं क्योंकि पराजीनी जीवों के बारे में ज्यादा अनुभव नहीं हैं।

(iii) **खुशहाली नहीं :** अधिकांशत : यह कार्य गैर सरकारी कम्पनियां कर रही हैं जो पैसा कमाना चाहती हैं न कि मानव के खुशहाली के लिए कार्य करेगी।

(iv) **प्रकृति विरुद्ध :** इन लोगों का मानना हैं कि प्रकृति से ज्यादा छेड़छाड़ न की जाये चाहे व रसायन (खाद, खरपतवारनाशी कीटनाशी) के ज्यादा उपयोग की बात हो या पर्यावरण संतुलन की।

10.9 जैव अनैतिकता (Biopiracy)

सारी दुनिया में यह बहस का मुख्य मुद्दा हैं कि मानव का क्लोन या मानव जीनों से छेड़छाड़ की जाये या नहीं। मानव जीनोम परियोजना (Humangenome project) द्वारा मानव जीनों में D.N.A. का अनुक्रम ज्ञात हो जायेगा तथा दूसरे चरण में जीनों की पहचान रख कार्य पद्धति ज्ञात की जायेगी। इसका विरोध करने वालों का कहना हैं कि इसके बाद मानव जीनों से छेड़छाड़ (काटना, अनुक्रम बदलना, अभिव्यक्ति में बदलाव इत्यादि) शुरू हो जायेगा जो प्रकृति के विरूद्ध हैं। मानव क्लोन बनाने की प्रक्रिया पर भी बहस हो रही हैं। इसे कर्म या प्रकृति के विरूद्ध बतलाया जा रहा हैं। पराजीनी पौधों के मुकाबले पराजीनी जंतुओं और मानव बनाने का पुरजोर विरोध हो रहा हैं अभी मानव क्लोन या मानव जीनों के उपयोग के बारे में मनाही हैं तथा इसका समर्थन करने वालो का कहना हैं कि क्लोन किये गये मानव या भ्रूण का उपयोग अंग प्रत्यारोपण में आसानी से किया जा सकता हैं क्योंकि वह क्लोन उसी मानव का होने से अंगों की ग्राहता में कठिनाई नहीं आयेगी और चिकित्सा क्षेत्र में नये आयाम स्थापित होंगे जो बहुत से लोगों को नया जीवनदान एवं नये अंग मिलने से उनके जीवन में सुधार सम्भव होगा। कई

आनुवांशिक बीमारियों का इलाज संभव हो सकेगा क्योंकि जीवों की संरचना एवं कार्य प्रणाली ज्ञात होने से उनमें परिवर्तन करना या पहले से यह पता लगाना संभव हो सकेगा। फिलहाल यह विश्व-समुदाय को इसके पक्ष एवं विपक्ष दो खेमों में बांट चुका हैं।

बोध प्रश्न

1. IARI स्थित हैं -
   (अ)नई दिल्ली में
   (ब) बरेली में
   (स) कसाल में
   (द) तमिलनाडु में
2. रेस्ट्रिशन एण्डोन्यूक्तिएज विकर की उपस्थिति की परिकल्पना की थी-
   (अ)कार्नबर्ग ने
   (ब) खुराना ने
   (स) आर्बर ने
   (द) नीरेनबर्ग ने
3. जीवाणुओं का अतिरिक्त गुणद्वी पर कहलाता हैं
   (अ)प्लाजिमड
   (ब) कॉस्मिड
   (स) फेस्मिड
   (द) न्यूक्लिऑयड
4. उर्वरक के रूप में प्रयुक्त होने वाले शैवाल हैं -
   (अ)कारा
   (ब) क्लेडोफोरा
   (स) नील हील शैवाल
   (द) उपरोक्त सभी
5. सूक्ष्म जीवों द्वारा नाइट्रोजन स्थरीकरण से सम्बन्धित महत्वपूर्ण विकर हैं
   (अ)हाइड्रोलेजेज
   (ब) नाइट्रोजिनेज
   (स) प्रोटीएज
   (द) रिडक्टेज
6. जीवों से प्राप्त ऊर्जा कहलाती हैं -
   (अ)जैव ईंधन
   (ब) जैवभार
   (स) जैव ऊर्जा
   (द) यांत्रिक ऊर्जा
7. DNA अनुक्रम को कानूनन संरक्षित किया जा सकता हैं -
   (अ)पेटेन्ट
   (ब) ट्रिप्स

(स) पादप प्रजनक अधिकार
(द) प्रकाशनाधिकार

10.10 सारांश

जैव प्रौद्योगिकी में वे सब औद्योगिक प्रक्रम सम्मिलित किये जाते हैं, जिनमें जीव किसी न किसी रूप में या किसी न किसी स्तर पर सक्रिय भाग लेते हैं।

जैव प्रौद्योगिकी और आनुवांशिक तकनीकों के संयोजन से आनुवांशिक अभियांत्रिकी का विकास संभव हुआ जिसमें कोशिका संवर्धन, आण्वीय पुनर्योजन तथा वाहक के माध्यम से जीन स्थानान्तरण प्रमुख हैं। जैव प्रौद्योगिकी के विकास के साथ साथ ऊर्जा के क्षेत्र में भी जैव ऊर्जा, एक प्रमुख गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोत के रूप में उभरा हैं। जैव उर्वरक इसकी अन्य उल्लेखनीय उपलब्धि हैं जिसने खाद्यान्न उत्पादन वृद्धि में प्रमुख भूमिका निभाई हैं।

जैव प्रौद्योगिकी में बढ़ते कलेवर के साथ ही यह आवश्यक हो गया था कि कहीं ना कहीं कानूनी रूप से इस तकनीक के दुरूपयोग को रोका जाये और आविष्कारक को उचित श्रेय एवं मानदेय भी उपलब्ध हो। यही सब पेटेंट तथा बौद्धिक सम्पदा अधिकार के रूप में सामने आया जिसने जैव अनैतिकता (Biopiracy) को एक हद तक रोक पाने में सफलता प्राप्त की है।

10.11 शब्दावली

(i) जैवप्रौधोगिकी (Biotechnology)
(ii) प्लाज्मिड (Plasmid)
(iii) आनुवांशिक अभियांत्रिकी (Genetic Engineering)
(iv) जीनस्थानान्तरण (Gene transfer)
(v) जैवउर्वरक (Biofutilizer)
(vi) जैवऊर्जा (Bioenergy)
(vii) जैव अनैतिकता (Biopiracy)

10.12 संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. Kumar H.D. (2004), A text book on biotechnology, EWP Private Ltd., New Delhi
2. Dubey R.C. (2006) - A text book of biotechnology - S. Chand & Company Ltd., New Delhi
3. Singh B.D. (2007) - Biotechnology - Kalyani Publishers New Delhi

10.13 बोधप्रश्नो के उत्तर

1. (अ) 2. (स) 3. (अ) 4. (स) 5. (ब)
6. (स) 7. (अ)

10.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पुनर्योजित DNA निर्माण विधि का वर्णन कीजिये।
2. आनुवांशिक अभियांत्रिकी किसे कहते हैं? आनुवांशिक अभियांत्रिकी में प्लाज्मिड का उपयोग बताइये।
3. भारत में जैव प्रौद्योगिकी पर एक निबन्ध लिखिये
4. ऊर्जा फसलें क्या हैं? इसके मुख्य प्रकारों का वर्णन कीजिये।
5. भारतीय परिप्रेक्ष्य में जैव ऊर्जा के प्रमुख स्रोतों का वर्णन कीजिये
6. बौद्धिक सम्पदा क्या हैं? भारत के संदर्भ में इनकी विवेचना कीजिये